वनौषधि रत्नाकर

(अष्टम भाग)

0
2·1

सुधानिधि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

आवश्यक सूचना

सुधानिधि के ग्राहक मूल्य में इस वर्ष पाँच रूपये की मूल्य वृद्धि की गयी है। इस वर्ष 2005 में साधारण कागज पर प्रकाशित विशेषांक प्राप्त करने वाले ग्राहकों का ग्राहक मूल्य 75.00 एवं ग्लेज कागज पर छपा विशेषांक प्राप्त करने वाले ग्राहकों का 95.00 वार्षिक है। जिन ग्राहकों ने साधारण कागज पर छपे विशेषांक के लिये 50.00 और ग्लेज कागज पर छपे विशेषांक के लिये 70.00 भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित कराली है उन्हें रियायत प्रदान कर विशेषांक की वी0पी0 भेजी जा रही है। लेकिन जिन महानुभावों ने अग्रिम रुपया नहीं भेजा है उन्हें भी छूट प्रदान कर 50.00 की वी0पी0.से विशेषांक भेजा जा रहा है।

15.00 का मनिआर्डर भेजें

जिन ग्राहकों को 50.00 की वी0पी0 से विशेषांक भेजा जा रहा है उनको विशेषांक के साथ 15.00 मूल्य का एक मनिआर्डर फार्म भेजा जा रहा है जिसे विशेषांक मिलने के 1 माह वाद भेजा जाना अनिवार्य है। इस मनिआर्डर के प्राप्त होने पर ही अप्रेल माह के वाद के अंक पाठकों की सेवा में भेजे जा सकेंगे। आशा है पाठक वन्धु शीघ्र ही यह मनिआर्डर फार्म भेजकर अपनी सदस्यता वनाये रखेंगे। अग्रिम रुपये भेजने वाले महानुभावों को मनिआर्डर भेजने की आवश्यकता नहीं है।

हमारा सहयोग करें!

इस विशाल एवं अत्युपयोगी विशेषांक को देख-पढ़कर आपके हृदय में निश्चय ही यह भावना आयी होगी कि सुधानिधि आयुर्वेद का सर्वोत्तम मासिक पत्र है तथा यह मासिक पत्र अति अल्प मूल्य में कितनी महान और उपयोगी सामग्री पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। अपने हृदय में आई हुयी इस भावना का आदर कीजिये और अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरुक वनिये। यदि आप अपने कर्तव्य को समझते हुये सुधानिधि को अपना सहयोग देना चाहते हैं तो इसके 2-4 नवीन ग्राहक वनाने का प्रयत्न अवश्य कीजिये। जिस आयुर्वेद प्रेमी के सामने आप इस विशेषांक को रखेंगे तथा इसकी उपयोगिता समझाते हुए ग्राहक वनने का आग्रह करेंगे वह सुधानिधि का ग्राहक अवश्य वन जावेगा ऐसा हमारा विश्वास है। आशा है आप हमारा यह सहयोग अवश्य करेंगे।

विशेषांक के ऊपर आपके पते के साथ आपकी ग्राहक संख्या अंकित है उसे—

इस स्थान पर लिख लें तथा पत्र व्यवहार के समय अपने पूरे पते के साथ अवश्य लिख दिया करें।

वनौषधि रत्नाकर (अष्टम भाग) 2005

सम्पादक–प्रकाशक–मुद्रक–वैद्य गोपालशरण गर्ग

सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ (उ.प्र.)-202170

सुधानिधि

वनौषधि रत्नाकर

(अष्टम भाग)





विशेष सम्पादक

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

भिषगाचार्य, आयुर्वेद रत्न, साहित्य रत्न, साहित्यालंकार, साहित्यशास्त्री

बी-21 रामेश्वर धाम मुरलीपुरा स्कीम जयपुर-13



सहायक सम्पादक

वैद्य उमाकान्त शुक्ल

22/23 विवेकानन्द कालोनी फ्रीगंज उज्जैन (म०प्र०)

सम्पादक-मुद्रक-प्रकाशक

वैद्य गोपालशरण गर्ग आयुर्वेदाचार्य

सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ (उ०प्र०)

मार्च 2005

वार्षिक मूल्य 75.00, ग्लेज कागज पर छपा 95.00

साधारण कागज पर छपे इस पुस्तक (विशेषांक) का मूल्य 50.00

ग्लेज कागज पर छपे इस पुस्तक (विशेषांक) का मूल्य 70.00

राष्ट्र-गायत्री

ॐ

भूर्भुवः स्वः
महोराष्ट्रस्य धीमहि
वरीयो द्युम्नवर्धनम्।
धियस्तन्नः प्रशोधयात्
ॐ

—आचार्य नवल किशोर काङ्करार्षेयो राष्ट्रः वेदात

भारतवासी हम सब मिलकर
ध्यान धरें वह जोति विशाल।
यश वैभव दे, वह जीवन को
धन्य बनावे, करे निहाल।।
वही जोति नित कर दे उन्नत
हमरे सारे कार्य कलाप।
बुद्धि हमारी पावन कर दे
मिट जाये फिर सब संताप।।

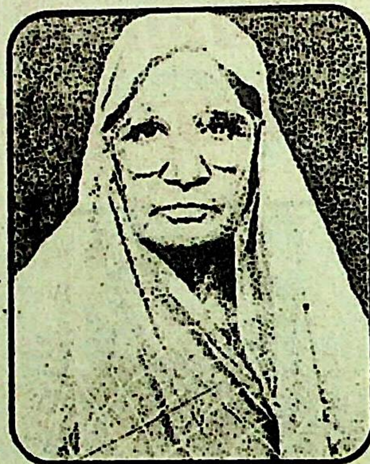
—गोपेश

वनौषधि रत्नाकर शृंखला के विशेष सम्पादक



वैद्यराज पं. गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य
साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, आयुर्वेद वृहस्पति
डी. 21, रामेश्वर धाम मुरलीपुरा स्कीम
जयपुर-13 (राज.)

समर्पण



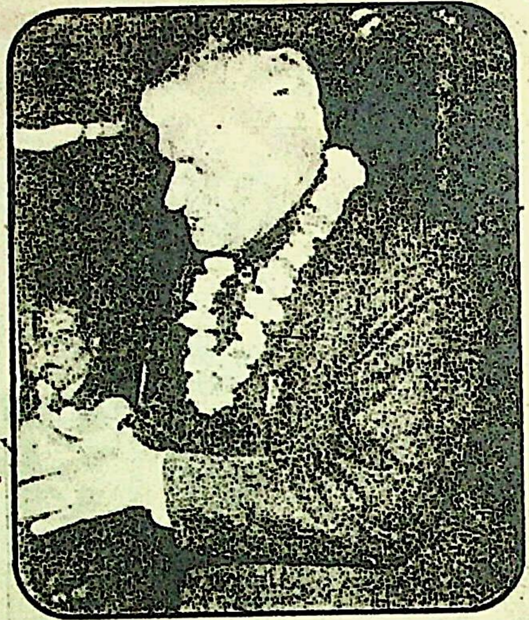
पाई कुशलाई मन भाई है भलाई नित
नारी होय पाई नर की सी दृढ़ताई को,
तारक सी छाई है ऊँचाई व्यवहार मांही
भावनाई पाई जलधि-सी गहराई को।
विधि ने बनाई गरिमाई जे विधान राई
सिर धरि जाई कर नमन कनाई को
मन मांही आई यह अंक सुखदाई भाई
कर दे समरपित ऐसी जीजी बाई को।।

— विनयावनत अनुज
गोपीनाथ ''गोपेश''



शुभ कामना सन्देश

शुभकामना सन्देश



अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन नई दिल्ली के यशस्वी प्रधानमंत्री

वैद्य शिवकुमार मिश्र

का

शुभकामना सन्देश

माननीय गर्ग साहब !

सादर नमस्कार ! यह जानकर प्रसन्नता हुयी कि आपके सम्पादन एवं प्रसिद्ध वनौषधि वेत्ता वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' के सम्पादन में सुधानिधि द्वारा वर्ष 2005 में वनौषधि रत्नाकर अष्टम भाग प्रकाशित किया जा रहा है। यह सर्व विदित है कि सम्पूर्ण विश्व में वनौषधियों के विषय में जिज्ञासा बढ़ रही है इसलिये यह आवश्यक है कि वनौषधि विषयक शोध परक ग्रन्थों-विशेषांकों का प्रकाशन होता रहे। आशा है आपके सम्पादन में प्रकाशित यह विशेषांक इस दिशा में प्रभावी प्रमाणित होगा।

आयुर्वेद वाङमय को समृद्ध करने में आपके पत्र सुधानिधि का अपूर्व योगदान रहा है। यह योगदान सतत बना रहे यह ईश्वर से कामना है। विशेषांक प्रकाशन के लिए मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें।

— वैद्य शिवकुमार

आचार्य वैणी माधव अश्विनी कुमार शास्त्री

पू० प्राचार्य राज० आयु० महाविद्यालय ग्वालियर

प्रिय गर्ग,

चिरंजीवी रहो। यह जानकर प्रमन्नता हुयी कि सुधानिधि द्वारा वर्प 2005 में वनौपधि रत्नाकर श्रृंखला का अप्टम भाग प्रकाशित किया जा रहा है इसके पूर्व भाग वनौषधि सम्बन्धी ज्ञान से परिपूर्ण एवं उपयोगी रहे हैं आशा है यह भाग भी उन्हीं की तरह छात्रों तथा आयुर्वेद जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी प्रमाणित होगा। मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें। —वैणीमाधव

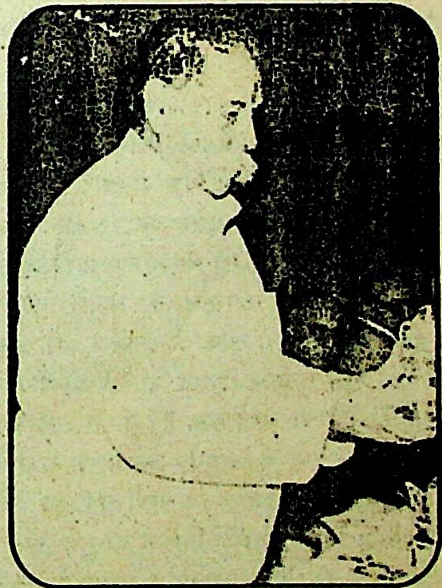
शुभकामना सन्देश

वैद्य अयोध्या प्रसाद मिश्र

पू० महामंत्री प्रा. आयु. सम्मेलन उ. प्र. बुलन्दशहर (उ. प्र.)

माननीय गर्गजी,

नमस्कार ! आपके पत्र द्वारा ज्ञात हुआ कि आपकी लोकप्रिय पत्रिका सुधानिधि द्वारा वर्ष 2005 में वनौषधि रत्नाकर का आंठवा भाग प्रकाशित किया जा रहा है वनौषधि सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करने के लिये आपने यह श्रृंखला प्रकाशित करके आयुर्वेद पर बहुत उपकार किया है। इसके पूर्व सभी भाग इसके लेखक गोपीनाथ जी और आपके श्रेष्ठ सम्पादन की झलक प्रदान करते हैं। आशा है यह भागभी उसी के अनुरूप होगा। मेरी शुभकामनायें सदैव आपके साथ हैं।



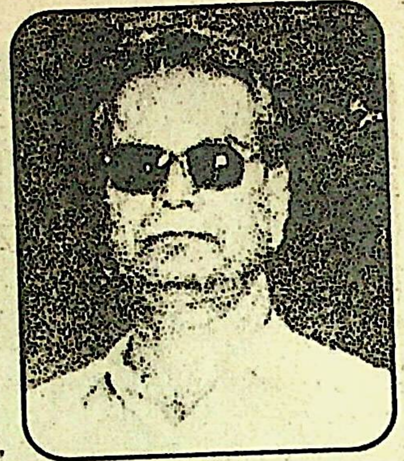
- अयोध्या प्रसाद मिश्र

पूर्व उप निदेशक आयुर्वेद विभाग
राजस्थान जयपुर

वैद्यरत्न हरिमोहन शर्मा

का

शुभकामना सन्देश



श्री वैद्य गोपीनाथ पारीक "गोपेश" राजस्थान के ज्ञानवृद्ध, गुणवान, पीयूषपाणि, सद्गुण सम्पन्न और अब तो वयोवृद्ध भी आयुर्वेदज्ञों की प्रथम पंक्ति के विद्वान आयुर्वेदज्ञों और लेखकों में अग्रणी हैं। एक ही महाविद्यालय के स्नातक होते हुए आयु में अधिक होने के कारण प्रारम्भ में मैं उनसे केवल आयुर्वेद की पत्र पत्रिकाओं में नियमित रूप से छपने वाले उनके लेखों व स्वास्थ्य विषयक कविताओं के द्वारा ही परिचित था। फिर राजस्थान के आयुर्वेदज्ञों के संगठन चिकित्सक संघ के संस्थापक तथा प्रथम दशक के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते समय उनकी सदस्यता के बाद हुए पत्र व्यवहार से कुछ संपर्क बढ़ा। जब लगभग 15 वर्ष पूर्व प्रथम दर्शन के बाद हम एक दूसरे के इतने निकट आगये कि हम दोनों में अग्रज अनुज जैसे संबंध बन गये।

उन द्वारा पहले "धन्वन्तरि" के विशेषांकों फिर सुधानिधि के "वनौषधि रत्नाकर" की ग्रंथमाला के लेखक के बाद तो ऐसा अनुभव होता गया कि मैं सदा यह सोचता रहा कि उनसे पहले परिचय और घनिष्ठता क्यों नहीं हुई। अब पिछले तीन वर्षों से तो हम दोनों महीने में 8 10 दिन विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक और आयुर्वेदिक गतिविधियों में साथ रहते आये हैं। श्री गोपीनाथ जी द्वारा लिखित और संपादित वनौषधि रत्नाकर के आठवें भाग के साथ इन द्वारा लिखी गई ग्रंथमाला का समापन हो रहा है पर मैं तो मन से चहता हूँ कि यह विद्वान आयुर्वेद विशेषज्ञ इस ग्रंथ माला के तीन खंड कम से कम दो खंड और लिखें तथा इन खंडों में अकारादिक्रम से अब तक लिखे गये वनौषधि परिचय से अवशिष्ट तथा बहु प्रचारित और प्रचलित वनौषधियों का विवरण और भी संकलित करें।

सुधानिधि के विद्वान, यशस्वी और उत्साही संपादक, मुद्रक और प्रकाशक श्री गोपालशरण जी गर्ग इस सारस्वत पुण्य कार्य के लिये उन्हें प्रेरित कर इस ज्ञान गंगा के अभिनव भगीरथ बने रहें यह शुभेच्छा है। सुधानिधि ने पहले पं. रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी जैसे भारत विख्यात प्रौढ़ विद्वान फिर "गोपेश" जी जैसे विद्वान के सहयोग से आयुर्वेद के कोष में अनमोल मणियों की माला की श्रीवृद्धि की है। गोपेश जी के लेखन को पढ़कर एक साथ ललित लेख, कविता, विज्ञान तथा कल्पना लोक के लालित्य का अनुभव होता है। इस कारण हिन्दी भाषा में अन्य सभी आयुर्वेदज्ञ श्री "गोपेश" जी से काफी पिछड़ जाते हैं श्री गोपालशरण गर्ग जी मुझसे व्यक्तिगत रूप से परिचित नहीं हैं न मेरा पत्र व्यवहार ही उनसे कभी हुआ है। पर मैं उन्हें बधाई देता हूँ कि वे गुणों के पारखी तथा आयुर्वेद प्रकाशनों के वार्षिक विशेषांकों के रूप में आयुर्वेद की महती सेवा कर रहे हैं। भगवान धन्वन्तरि श्री गोपीनाथ जी पारीक, सुधानिधि पत्रिका तथा गोपालशरण जी गर्ग तीनों को वेदोक्त "जीवेमशरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात" वाली प्रार्थना का पात्र बनावें ताकि आयुर्वेद विज्ञान का सूर्य और भी तेजोमय होता रहे। अपनी आयु का उनहत्तरवाँ वर्ष पूर्ण कर रहा मैं इन तीनों को यही आशीर्वाद दे सकता हूँ। स्वस्ति।

—भिषगाचार्य हरीमोहन शर्मा, वैद्य

वैद्य मदनलाल शर्मा भू. पू. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
रसभैषज्य कल्पना स्नातकोत्तर विभाग
म. मो. मा. रा. आयुर्वेद महाविद्यालय उदयपुर

विजयगढ़ (अलीगढ़) उत्तर प्रदेश से पिछले काफी समय से आयुर्वेद का मासिक सुधानिधि प्रकाशित हो रहा है। सुधानिधि प्रतिवर्ष किसी विशेष विषय पर वार्षिक विशेषांक प्रकाशित करता आया है। ये विशेषांक अपने विषय के अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित व संपादित होकर आयुर्वेद की श्री वृद्धि कर रहे हैं। श्री गोपीनाथ "पारीक" राजस्थान के सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ, लेखक तथा वनौषधि विशेषज्ञ हैं।

इन्होंने सुधानिधि के वार्षिक विशेषांकों की श्रृंखला में "वनौषधि रत्नाकर" नामक आठ पुस्तकें लिखी हैं। ये सभी विशेषांक बहुत उत्तम सामग्री समाहित किये हुये हैं। इनमें वर्णित वनौषधियों की पूर्ण जानकारी पाठकों तथा वैद्यों, अनुसंधानकर्ताओं, रसायन शाला संचालकों व छात्रों को सरल व रोचक ढंग से मिल रही है। सबमें पूर्ण उत्कृष्ठता का निर्वाह हुआ है। मैं सुधानिधि मासिक इसके प्रकाशक संपादक वैद्य श्री गोपालशरण गर्ग और लेखक संपादक गोपीनाथ जी पारीक की दीर्घायुष्य व श्री कीर्ति वृद्धि की कामना करता हूँ।

—वैद्य मदनलाल शर्मा

शुभकामना सन्देश

वैद्य भजन दास स्वामी रस विशेषज्ञ
स्वामी लक्ष्मीराम पीठाचार्य
स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय नथमल का चौक जयपुर

वैद्य गोपीनाथ पारीक "गोपेश" आयुर्वेद के विभिन्न विषयों पर नियमित रूप से हिन्दी में लिखने तथा पूरे देश की पत्र पत्रिकाओं में छपने वाले प्रमुख वैद्य तथा आयुर्वेद के विद्वान हैं। इन्होंने विजयगढ़ की प्रसिद्ध आयुर्वेद: मासिक पत्रिका सुधानिधि के 'वनौषधि रत्नाकर' नाम से लिखे गये आठ विशेषांकों का लेखन किया है। इनमें वर्णित औषधियों पर श्री पारीक ने विस्तृत रूप से रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव, प्रयोग विधि, सिद्धौषधियों की सूची, परिचय, विभिन्न भाषाओं में नाम, यूनानी, स्थानीय व वर्तमान चिकित्सा प्रणाली में उपयोग आदि का विवेचन कर इसे वैद्यों, आयुर्वेद विद्यार्थियों, आयुर्वेदाध्यापकों और जन सामान्य के लिए उपयोगी बनाया है।

मैं श्री गोपीनाथ जी के दीर्घायुष्य और यशस्वी लेखकीय जीवन की शुभकामना करता हूँ। सुधानिधि इसी प्रकार आयुर्वेद विज्ञान की श्री वृद्धि में योगदान देता रहे यह विश्वास है।

—भजनदास स्वामी

आयुर्वेद चक्रवर्ती वैद्य श्री हरिशंकर शाण्डिल्य

भिषगाचार्य डी. एस. सी. (आयुर्वेद)

सेवा निवृत्त सहायक निदेशक आयुर्वेद राजस्थान, सिरकी पाडा, भरतपुर

आदरणीय श्री पारीक जी,

आपका दिनांक 20.10.04 का शुभ सम्मति विषयक पत्र मिला। एतदर्थ बहुशः धन्यवाद।

मुझे यह जानकर परम हर्ष हुआ कि आयुर्वेदीय पत्रकारिता जगत का देदीप्यमान नक्षत्र ''सुधानिधि'' मासिक पत्र का वर्ष 2005 का वार्षिक विशेषांक वनौषधि रत्नाकर - विशेषांक अष्टम भाग'' के रूप में आपके कुशल सम्पादन एवं विद्वत्वरेण्य शैली में प्रकाशित होने जा रहा है।

वर्तमान समय वनौषधियों के प्रचार का स्वर्णिम काल है। मॉडर्न मेडिसिन्स के उपयोग जन्य प्रतिक्रियाओं एवं दुष्प्रभावों से भयत्रस्त देश विदेशों में चतुर्दिक हर्बल प्रयोगों का शंखनाद गुञ्जायमान हो रहा है।

ऐसे समय में वनौषधि विषयक साहित्य श्रृंखला का प्रकाशन जड़ी बूटियों के परिचय (सचित्र) गुण, व अनुभूत प्रयोगों की व्यापक जानकारी विद्वानों चिकित्सकों व सामान्य जनता को देने हेतु यह अनुपम प्रयास वनस्पति साहित्य जगत में ''मील का पत्थर'' सिद्ध होगा।

मैं इस वशेषांक की सफलता हेतु आपको व आयोजकों को हार्दिक शुभकामनाऐं प्रेषित करता हूँ।

—वैद्य हरिशंकर शाण्डिल्य

शुभकामना सन्देश

आचार्य डॉ. महेश्वर प्रसाद आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद बृहस्पति

दुग्धपुरा, मंगलगढ़ समस्तीपुर

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न होकर हृदय प्रफुल्लता से भर गया है कि 'सुधानिधि' मासिक पत्रिका का वर्ष 2005 का विशेषांक ''वनौषधि रत्नाकर'' अष्टम भाग हिन्दी साहित्य लोक के चन्द्र एवं वनौषधि विशेषज्ञ मान्यवर परम प्रिय वैद्य श्री गोपीनाथ पारीक ''गोपेश' के सम्पूर्ण लेखन एवं कुशल सम्पादकत्व में एक संग्रहणीय साहित्य के रूप में प्रकाशित होने जा रहा है।

मुझे आशा एवं पूर्ण विश्वास है कि यह विशेषांक आज की विकट स्वास्थ्य समस्याओं से आयुर्वेद की जड़ी-बूटियों एवं दिव्य वनौषधियों द्वारा निजात पाने में अभूतपूर्व सफल एवं परम उपयोगी प्रमाणित होगा तथा 'वनौषधि रत्नाकर' के पूर्व भागों से भी अधिक श्लाघनीय एवं समादृत होगा।

मान्य वैद्य ही नहीं जन-गण कल्याणकारी एवं परम उपयोगी इस विषय पर विशेषांक निकालने के निर्णय के लिए मान्य वैद्य चि. श्री गोपालशरण जी गर्ग और सम्पूर्ण सुधानिधि परिवार भी प्रशंसा के योग्य हैं।

यह विशेषांक भी 'सुधानिधि' के अन्य विशेषाकों के सदृश ही आयुर्वेद के जिज्ञासु चिकित्सकों, वैद्य महानुभावों, विद्यार्थियों, मान्य प्राध्यापकों, स्नातकोत्तर शोध अधिकारियों और विज्ञ जन गण को सम रूप से आयुर्वेद एवं वनौषधियों के विषय में अद्भुत विस्मयकारी ज्ञान प्रदान एवं उठने वाली शंकाओं का समाधान करायेगा ऐसी आशा है।

मैं इस अति परोपकारी विशेषांक के सफल लेखन, विशेष सम्पादन एवं प्रकाशन की हार्दिक कामना करता हूँ।

—आचार्य डॉ. महेश्वर प्रसाद

प्रकाशकीय

प्रस्तुत वनौषधि रत्नाकर अष्टम भाग के साथ सुधानिधि अपने 33 वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इसी के साथ आयुर्वेद सेवा के दिव्य पथ पर चलते हुये सुधानिधि पत्रिका का एक वर्ष और वीत गया। वस्तुत: यह 'दिव्य पथ' शब्द मैंने सुधानिधि के जन्मकाल से जुड़े टीकमगढ़ म.प्र. के एक सम्माननीय पाठक के पत्र से उद्धत किया है जिन्होंने विगत अगस्त माह में एक लम्बा पत्र लिखकर इस पथ पर सतत् चलने की प्रेरणा मुझे प्रदान की है। इस प्रकाशकीय में प्रस्तुत करने के लिए यह पत्र मैंने अपने पास सुरक्षित रख लिया था जिसे सुधानिधि के पाठकों के समक्ष अक्षरश: प्रकाशित कर रहा हूँ—

"माननीय गर्ग जी! सादर नमस्कार! मैं आपकी पत्रिका सुधानिधि का जन्मकाल से पाठक हूँ। जब आपके पिताजी तथा चाचाजी में विभाजन होने के बाद सुधानिधि पत्रिका प्रकाशित होने की सूचना प्रकाशित हुयी तो मैंने सर्वप्रथम ग्राहक मूल्य भेजकर उसकी सदस्यता ग्रहण की थी आपके पिताजी के हाथ से लिखा वह पत्र मेरे पास आज भी सुरक्षित है जिसमें उन्होंने सर्वप्रथम सुधानिधि की सदस्यता ग्रहण करने के लिए मुझे साधुवाद दिया था। शायद आपको जानकर आश्चर्य और प्रसन्नता होगी कि सुधानिधि के प्रथम अंक से गतमाह प्रकाशित जौलाई 04 तक के सभी अंक मेरे पास सजिल्द रूप में सुरक्षित हैं। मैं 88 वर्ष पूर्ण कर अपने जीवन के अन्तिम पढ़ाव पर हूँ। और मेरे हृदय में आपके प्रति जो भाव हिलोरे ले रहे हैं उन्हें प्रस्तुत करने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ। सुधानिधि के प्रारम्भिक वर्षों में जब सुधानिधि का सम्पादन आपके पिताजी तथा आचार्य रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी के हाथों में था तो आपके यदा कदा लेख सुधानिधि में प्रकाशित होते रहते थे लेकिन उनमें चिकित्सकीय अनुभव की कमी प्रतीत होती थी लेकिन इन दोनों व्यक्तियों के महाप्रयाण के बाद प्रयोग संग्रह अंक के 4 भागों का लेखन कर आपकी सम्पादन कला का जो परिचय सुधानिधि पाठकों को प्राप्त हुआ उसमें निरन्तर निखार होता रहा है। विगत 4-5 वर्षों से सुधानिधि के प्रत्येक अंक में आपके द्वारा प्रस्तुत सम्पादकीय टिप्पणियों ने इस पत्रिका को नई दिशा प्रदान की है। और पाठकों का तो पता नहीं लेकिन मैं हर माह आपके द्वारा लिखित इन टिप्पणियों की प्रतीक्षा में रहता हूँ। मैं वर्तमान में प्रकाशित आयुर्वेद की लगभग सभी पत्रिकाओं का ग्राहक हूँ और मुझे यह लिखने में बिल्कुल भी संकोच नहीं है कि सुधानिधि पत्रिका आयुर्वेद की वर्तमान में श्रेष्ठ पत्रिका है और उसमें आपके द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा साहित्य आयुर्वेद पत्रकारिता में स्वर्णाक्षरों में लिखा जावेगा।

मैं ईश्वर से कामना करता हूँ कि वह आयुर्वेद सेवा के दिव्यपथ पर चलने की आपको प्रेरणा और साहस प्रदान करते रहें।" आपके शतायु होने की कामना के साथ!

हम जब सुधानिधि पत्रिका द्वारा अपनी प्रकाशक संस्था को निरंतर घाटा प्रदान करने से दुखी हो जाते हैं तो इसी तरह के पत्र हमें आयुर्वेद सेवा में जुटे रहने के लिए साहस प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत विशेषांक

प्रस्तुत विशेषांक वनौषधि रत्नाकर श्रृंखला का अष्टम भाग है और हमारी प्रारम्भिक योजना के अनुसार इस श्रृंखला का अन्तिम भाग। क्योंकि इस श्रृंखला प्रकाशन के प्रारम्भ में हमने तथा इसके सम्पादक-लेखक वैद्य गोपीनाथ जी ने आपसी परामर्श से यह निर्णय लिया था कि इस श्रृंखला में केवल उन वनौषधियों का विशद रूप से वर्णन किया जावेगा जो प्रायः सर्वत्र उपलब्ध हैं और चिकित्सकीय उपयोग में जिनकी विशेष महत्ता है। इस तरह अकारादिक्रम से 'अकरकरा' से प्रारम्भ होकर 'हिंगु' तक की 151 वनौषधियों का विशद वर्णन इन आठों भागों में समाहित हो चुका है। इस वनौषधि रत्नाकर श्रृंखला के प्रारम्भिक कई भागों का प्रकाशन हो चुका तो हमें पाठकों के सुझाव मिलने लगे कि इस श्रृंखला में अन्य उपयोगी वनौषधियां छूट रही हैं जिनका भी वर्णन किया जाना आवश्यक है। पाठकों के पत्रों का ध्यान रखते हुये हमने पहले पूर्व में निर्धारित वनौषधियों के प्रकाशन के बाद इस विषय पर निर्णय लेने का मन बनाया। अब जव निर्धारित वनौषधियों का विशद वर्णन हो चुका है तो हमने वैद्य गोपीनाथ जी को विजयगढ़ बुलाकर इस विषय पर विचार विमर्श करके यह निर्णय लिया कि कुछ अन्य छूटी हुयी प्रमुख वनौषधियों का पुनः अकारादि क्रम से प्रकाशित करने के लिए इसके 2 अन्य भागों का प्रकाशन कर इस श्रृंखला को 10 भागों में पूर्ण किया जावे। इन आगामी 2 भागों में किन-किन वनौषधियों का उल्लेख किया जावे उस पर वैद्य गोपीनाथ जी विचार कर रहे हैं। सुधानिधि के सुयोग्य पाठक भी इस सम्बन्ध में उन्हें अपने सुझाव प्रदान कर सकते हैं। अब इस श्रृंखला के 9 वें भाग का प्रकाशन वर्ष 2007 में किया जावेगा।

आगामी विशेषांक

गत वर्ष की प्रकाशकीय में हमने आगामी वर्ष 2006 में 'बालरोग अनुभवांक' प्रकाशित करने के सम्बन्ध में पाठकों के सुझाव आमंत्रित किये थे। अब पाठकों के परामर्श पर हमने आगामी वर्ष 'बालरोग अनुभवांक' प्रकाशित करने का निर्णय ले लिया है। इस विषय पर वर्ष 1975 में सुधानिधि द्वारा आचार्य रघुवीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में 'शिशु रोग चिकित्सांक' नाम से एक विशेषांक प्रकाशित किया गया था। अब इस विषय पर 31 वर्ष बाद पुनः विशेषांक प्रकाशित कर इस विषय पर उपयोगी एवं अनुभवयुक्त साहित्य प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगें। इस विशेषांक का सम्पादन हम स्वंय करेंगे। इसके सम्पादन में सहयोग के लिए हम कुछ अन्य सम्पादकों की भी नियुक्ति करना चाहते हैं जिसके लिए इस विषय के मर्मज्ञ विद्वानों से हम शीघ्र सम्पर्क करने जा रहे हैं। जो महानुभाव इस कार्य में हमें सहयोग प्रदान करना चाहें वह हमें पत्र लिख सकते हैं।

इस वर्ष के लघु विशेषांक

वर्ष 2005 में सुधानिधि के 4 लघु विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है—

(1) मुख एवं कण्ठ रोग चिकित्सांक—मुख एवं कण्ठ (गले) के रोगों के सम्बन्ध में एक

उपयोगी लघु विशेषांक इस वर्ष मई माह में प्रकाशित किया जावेगा। इसके सम्पादन के लिए लेखकों से सम्पर्क किया जा रहा है।

(2) चूर्ण गुणधर्म अंक—शास्त्रीय औषधियों के गुणधर्म सम्बन्धी लघुविशेषांकों की श्रृंखला पिछले 5 वर्षों से चलाई जा रही है। इस वर्ष में 'चूर्ण गुणधर्म अंक' प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। इसका सम्पादन हम स्वंय करेंगे। यह अंक जौलाई में प्रकाशित होगा।

(3) श्वित्ररोग निदान चिकित्सांक—श्वित्र (श्वेतकुष्ठ) समाज का अत्यन्त प्रचलित रोग है इस रोग के निदान एवं उपचार सम्बन्धी एक उपयोगी लघु विशेषांक अक्टूबर माह में प्रकाशित किया जावेगा। इसके सम्पादन के लिए भी योग्य सम्पादक की शीघ्र नियुक्ति की जावेगी।

(4) मधुमेह उपद्रव मीमांसा अंक—यह विशेष अंक गत वर्ष प्रकाशित नहीं किया जा सका था। इस वर्ष दिसम्बर माह में इस उपयोगी लघु अंक का प्रकाशन सुनिश्चित किया गया है। इसके सम्पादक डा. जहान सिंह चौहान पहले ही नियुक्त किये जा चुके हैं।

उपरोक्त सभी लघु अंकों को उपयोगी बनाने में हम सतत प्रयत्नशील हैं। सुधानिधि के सुयोग्य लेखकों से अनुरोध है कि वह इन लघु विशेषांकों एवं सुधानिधि के साधारण अंकों में प्रकाशित होने हेतु अपने उपयोगी लेख हमें प्रेषित कर सहयोग प्रदान करें। सुधानिधि के ऐसे अनेक पाठक हैं जो अपने क्षेत्र के अत्यन्त प्रसिद्ध वैद्यराज हैं लेकिन समयाभाव वश अपने अनुभव हमें प्रेषित नहीं कर पाते उन्हसे भी हमारा अनुरोध है कि वह अपने चिकित्सकीय अनुभव अवश्य प्रेषित कर सहयोग करें।

सहयोग प्रदान करते रहें

सुधानिधि को उपयोगी बनाने में हम रात दिन परिश्रम करते हैं। हम सुधानिधि के पाठकों से भी हमेशा यही आशा रखते हैं कि उन्हका सहयोग हमें मिलता रहे जनवरी माह के अंक में प्रकाशित हमारे अनुरोध पर ध्यान देते हुये इस वर्ष अनेक पाठकों ने सुधानिधि के नवीन ग्राहक बनाकर हमें सहयोग प्रदान किया है। उन्हके हम हृदय से आभारी हैं। अभी जो पाठक नवीन ग्राहक बनाकर हमारा सहयोग नहीं कर सके हैं उन्ह से अनुरोध है कि वह हमारा सहयोग अवश्य करें। इसी आशा के साथ प्रभू से इन पंक्तियों में समाहित कामना करते हुये आपसे विदा लेता हूँ—

मिटे कलुश अन्तरमना खिले हृदय जलजात।
वहे स्नेह सौहार्द की ऐसी सुरभित वात।।
नव सर्जन साधना में जुड़ जावें सब हाथ।
नई उम्मीद उमंग ले आशाओं के साथ ।।

12 मार्च 2005
वसन्त पंचमी

विनयावनत
वैद्य गोपालशरण गर्ग

वनौषधि रत्नाकर

(अष्टम भाग)

की

विषयानुक्रमणिका

● सम्पादकीय टिप्पणी–



प्रस्तावना

वृन्दावृन्दमरन्दविन्दुनिचयस्पन्देन सन्दीपिता-
द्वन्धाद्यस्य सनन्दनादिरमृतानन्देऽपि मन्दादरः।
मोक्षानन्दथुनिन्दिसेवनसुखस्वाच्छन्द्यसंदोहदे
तद्वन्देमहि नन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविन्दं मुहुः।।

(श्री हरिमोहन प्रामाणिकस्य कोकिलदूतात्)

आयुर्वेद का विधिपूर्वक अध्ययन कर उसे जीवन में उतारने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (चरक व्याख्याकार आचार्य गंगाधर ने आरोग्यता से प्राप्त चरम सुख के साक्षात्कार को मोक्ष की संज्ञा दी है) चारों पुरुषार्थों के साथ ही दीर्घायु, यश और उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है—

दीर्घमायुर्यशः स्वास्थ्यं त्रिवर्गं चापि पुष्कलम्।
सिद्धिं चानुत्तमां लोके प्राप्नोति विधिना पठन्।।

—चरक. सि. 12-35

त्रिवर्गमिति धर्मार्थकामान्। पुष्कलमिति मोक्षं, किंवा पुष्कलमिति त्रिवर्गविशेषणम्। एतत् सविंशमध्यायशतं पठतः दीर्घायुर्लाभादयश्च एवं भूतपाठजनितधर्मवशादेव तथा पाठजनित शास्त्रावबोध पूर्वकशास्त्रानुष्ठानाच्च भवन्ति। *—चक्रः*

आचार्य चरक के अनुसार उपनयन संस्कार के बाद वेदाध्ययन करने से जो द्विज कहे जाते हैं वे आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर "त्रिज" कहे जाते हैं—विद्यासमाप्तौ भिषजः तृतीया जातिरूच्यते।

आज सभ्यता के विकास तथा औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप पर्यावरण में जो गंदगी निरन्तर फैल रही है, इसे रोकने के लिए पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। यह शिक्षा हमें बहुत कुछ आयुर्वेद से प्राप्त हो सकती है।

प्रकृति से प्रेम ही पर्यावरण की सुरक्षा का मूलमन्त्र है। आचार्य चरक ने जनपदोध्वंस प्रकरण में देश, काल, जल एवं वायु के प्रदूषण का अत्यन्त ही वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। कहा गया है कि अधर्म किंवा अपराध कर्म भी विकार श्रृंखला को जन्म देकर पर्यावरण प्रदूषण सहित अनेक विकारों को उत्पन्न करते हैं। आज की इस विनाशपरक प्रवत्ति पर विचार कर प्रकृति से मानव को अधिकाधिक जोड़ने की महती आवश्यकता है।

मेरे पूज्य जेष्ठ भ्राता ने हमारे घर के सामने बाल्यकाल में एक नीम का पेड़ लगाया था। वे नित्य उसकी सुरक्षा में लगे रहते थे। उसे समय पर वे पानी देते और उसकी वृद्धि को देखकर बड़े प्रसन्न होते। जब वे उच्च शिक्षा पाने के लिए गाँव छोड़कर गये तो यह सब कार्य हमें सौंप कर गये थे। इस विशाल पेड़ को देखकर आज भी वे दिन याद आते हैं। वृक्षों के प्रति प्रेम का यह पाठ हमें बचपन में ही सिखाया जाता था और यह प्रेम आज भी यथावत् है। भारतीय परम्परा में वृक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके बिना हमारा अस्तित्व अधूरा है। भोजपुरी के एक सोहर की पहली पंक्ति है—एक सइ अमवा लगवली सवा सइ जामुन हों—अपने हाथ से लगाये गये पेड़ की याद हमेशा आती है। यह हमारी जड़ों को मिट्टी में रोपता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला के जीवन में पेड़ों के प्रति यही लगाव देखने को मिलता है। पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी "उसने कहा था" में लहनासिंह जब अपनी अन्तिम सांसे गिन रहा था तो उसे अपने हाथों से लगाया हुआ वह

आम का पेड़ याद आ रहा था, जो उसने अपने भतीजे के जन्म के समय लगाया था। कविवर अज्ञेय का सपना था कि पेड़ों पर उनका घर हो जहाँ बैठ वे साहित्य सृजन करें। राजस्थानी भाषा (डिंगल) के महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण तो पेड़ पर ही अपना आसन बनाकर कविता किया करते थे। जीवित वनौषधियाँ सरस एवं क्रियाशील होने से हमें सतत प्रेरणा प्रदान करती हैं। छान्दोग्य उपनिषद् (6-11) में कहा गया है कि वृक्ष रस का पान करता है और आनन्द से खड़ा रहता है—"पेपीयमान: मोदमानस्तिष्ठति"। जीवन में जब भी ऊर्जा की हमें आवश्यकता होती है यह ऊर्जा हम पेड़ों से प्राप्त करते हैं। अच्छे साहित्यकार प्रकृति प्रेमी होते हैं। अन्य कवियों की भाँति कवि गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर भी बेहद प्रकृति प्रेमी थे। प्रकृति की चारों ओर बिखरी इस हरीतिमा को पाकर वे पुलकित हो उठते थे। सन् 1902 में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी और अगले दो वर्ष के अन्दर ही उनकी बड़ी बेटी का भी स्वर्गवास हो गया था। इससे वे टूट से गये थे। गीताजंलि की एक कविता इस ओर संकेत करती है—"मुझे लगा कि मेरी जीवन यात्रा अब पड़ाव पर आ गई है और मेरी शक्ति जबाव दे रही है। मेरे आगे सभी दरवाजे बन्द हो चुके हैं और अब मुझे परम शान्ति की खोज में किसी गुमनाम सी जगह पर शरण लेनी चाहिये"। बस टैगोर उसी परम शान्ति की खोज में हिमालय की गोद में बसे सिक्किम के एक छोटे से गांव रिचेनपोंग पहुँच गये थे। अनेक रूप-रंगों के फूल पत्तियों वाले पौधे और देवदार के ऊँचे वृक्ष इस गांव को घेरे हुये हैं। इस गांव की प्राकृतिक शोभा अनुपम है। यहाँ बिताये गये कुछ दिनों में ही कविगुरू रिचेनपोंग में फैली प्राकृतिक सुषुमा से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने कुछ यादगार कविताओं की रचना कर डाली जिन्हें आगे चलकर उनके विश्व प्रसिद्ध संकलन गीतांजलि में स्थान मिला।

पेड़े-पौधों से अपने को जोड़ने की यह प्रेरणा हमें प्रारम्भ से ही मिलती रही है। पेड़-पौधों का मानवजीवन पर पड़ने वाले प्रभाव से हमारे महर्षिगण भलीभांति परिचित थे। तब ही तो वे वनों में निवास करते थे। पेड़-पौधे हमें न केवल जीवनी ऊर्जा ही देते हैं अपितु ब्रह्माण्डीय ऊर्जा भी संग्रह कर प्रदान करते हैं। इसी कारण आध्यात्मिक साधक इनके सानिध्य में रहकर अपनी साधना में सफलता प्राप्त करते हैं। आज भी इसी जीवनी ऊर्जा को पाने के लिए सूर्योदय के समय उपवनों में भ्रमणार्थ लोग जाते हैं। सुबह सैर करने वालों का मानना है कि सूर्योदय के पहले कई जाति-प्रजातियों की हवाएँ बहती हैं जो रोगों को भगाती हैं किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य के उदय होने से पहले अधिक अन्धेरे में पेड़ पौधे कार्बनडाईआक्साइड उगलते हैं और सूर्य के प्रकाश में आक्सीजन छोड़ते हैं। अत: रात्रि में घूमना ठीक नहीं है।

हमारे 'स्वास्थ्य स्वास्थ्यरक्षणम्' का आधार आहारद्रव्य हैं तो 'आतुरस्य विकार प्रशमनम्' का आधार औषधि द्रव्य हैं। ये दोनों ही हमें वनौषधियों से प्राप्त होते हैं। जीवन निर्वाह तथा रोगमुक्ति के लिए हम इन वनौषधियों के ऋणी हैं। यद्यपि "नानौषधिभूतं जगति किंचिद् द्रव्यमुपलभ्यते" कहकर आचार्य चरक ने समस्त द्रव्यभूत को ही औषधि की संज्ञा दी है तो भी प्रकृति व चेतना सामीप्य तथा निर्भरता की दृष्टि से वनौषधियाँ ही मनुष्य के अधिक समीप हैं। शुद्ध भूमि पर उत्पन्न औषधि ही फलप्रद होती हैं। कृत्रिम रूप से उगायी गयी क्षेत्रौषधियों की अपेक्षा प्राकृतिक रूप से उत्पन्न वनौषधियाँ अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होती हैं। शुद्ध किंवा श्रेष्ठ औषधियों के लिए हमें वनों की ओर निहारना पड़ेगा। इन वनों में उत्पन्न औषधियों की श्रेष्ठता के कारण ही यह वनौषधि शब्द अधिक प्रचलित है जो उपयुक्त के कारण ही यह वनौषधि शब्द अधिक प्रचलित है जो उपयुक्त भी है। किन्तु बढ़ती आबादी, घटती जमीन, सुविधाभोगी जिन्दगी और बदलती परम्पराओं के कारण आज हमारे ये वन नष्ट होते जा रहे हैं। वनों के नष्ट होने के साथ वनौषधियों का नष्ट होना स्वाभाविक है।

ज्ञानकारों का कहना है कि भारत में औषधीय और सौन्दर्य हेतु उपयोग में लाये जाने वाली औषधियों में से 90 प्रतिशत वनों से प्राप्त की जा रही हैं। इसके बावजूद यह तथ्य है कि अब यहाँ वन शनै:-शनै: समाप्त होते जा रहे हैं। अनेक श्रेष्ठ परम्पराओं में इससे बाधा उत्पन्न हो रही है। निरंतर बढ़ रही बस्तियों के लिए वन काटे जा रहे हैं। उपयुक्त वर्षा के अभाव में भी ये समाप्त हो रहे हैं। हरे वृक्षों की अवैध कटाई को हमें रोकना

होगा। जोधपुर (राजस्थान) के खेजड़ली गांव में सामन्ती राज्य के अत्याचारों को रोकने के लिए अमृता देवी विश्नोई ने सर्वप्रथम विरोध प्रदर्शन किया और पेड़ों के कटने के साथ स्वयं भी बलिदान हो गई फिर क्या था पेड़ों की रक्षा के लिए 363 लोग शहीद हो गये। विश्व के इतिहास में केवल पेड़ों की रक्षा के लिए 363 लोगों का शहीद हो जाना एक मात्र घटना है। आज भी इन शहीदों की स्मृति में भाद्रपद शुक्ला दशमी को शहीदी मेला खेजड़ली गांव में पूर्ण श्रद्धा एवं सम्मान के साथ प्रतिवर्ष आयोजित किया जाता है। जिसमें दूर-दूर से जनगन आकर शहीदी स्मारक पर अपनी आहुतियां देकर श्रद्धांजलि व्यक्त करते हैं। यह बलिदान इस धरती की अदभुत घटना है। इससे हम सबको प्रेरणा लेनी चाहिये।

वनों की यथाशक्य रक्षा के साथ ही हमें अपने घरों के आसपास पेड़-पौधे लगाने का भी अभियान चलाना चाहिए। कुछ वृक्ष ऐसे हैं जो गांव-नगर के मध्य या जहाँ भी स्थान मिले लगाने चाहिये तथा कुछ ऐसे वृक्ष जो घरों के आसपास लगाने चाहिये। छोटे-पौधे घरों के भीतर लगाये जा सकते हैं। इमली, वट, पीपल, सिरस, कदम्ब, अशोक, आंवला, हरीतकी आदि के पेड़ गांवों और नगरों के लिए शुभ माने गये हैं। अनार, केला, जामुन, आंवला, नारियल, बेल आदि फलदार वृक्ष घरों के आसपास लगाना शुभ माना गया है। घर के पास लगाये जाने वाले ये वृक्ष दिशा के अनुसार शुभाशुभ फल देते हैं। नारदसंहिता में लिखा है कि आम, नीम, गूलर एवं कांटों वाले वृक्ष घर के निकट शुभ नहीं हैं। इमली और ताड़वृक्ष भी शुभ नहीं है। यदि ये वृक्ष घर के दक्षिण या पश्चिम में होते हैं तो विशेष अशुभ हैं। अत: गांव-नगर एवं घर के निकट वृक्ष लगाते समय इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिये। ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी इस पर विस्तार से वर्णन किया गया है।

जिन व्यक्तियों के मकान के भीतर पर्याप्त जगह होवे उस स्थान पर बहुत सी उपयोगी जड़ी-बूटियाँ उगा सकते हैं। किन्तु जिनका मकान छोटा है और वहाँ बागवानी के लिए स्थान नहीं है, वे मिट्टी के बने गमलों में इन्हें लगा सकते हैं। शहरों में रहने वालों को ऐसा ही करना चाहिये। आजकल बहुत से कांटेदार एवं विविध फूल-पत्तियों वाले विदेशी पौधे भी लोग लगाते हैं। इनके स्थान पर उपयोगी जड़ी-बूटियों को लगाना चाहिए। घर में तुलसी अवश्य लगानी चाहिये। मकान में पहले तुलसी लगाकर ही उसमें निवास करना चाहिये। घर के भीतर लगाई हुई तुलसी धन, पुत्र प्रदान करने वाली और पुण्यदायिनी होती है। प्रात: काल तुलसी के दर्शन करने से सुवर्णदान का फल प्राप्त होता है। इसकी आरोग्यदायिनी विशेषताओं का वनौषधि रत्नाकर (भाग 4) में हमने विस्तार से वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त भी बहुत सी जड़ी-बूटियों को लगाया जा सकता है। सौंफ, अजवायन, अदरक, पुदीना आदि नित्य उपयोग में आने वाले हैं, इन्हें अवश्य लगाना चाहिये। पुदीना, अदरक ये चौड़ाई में फैलते हैं अत: इन्हें चौड़े पात्र में लगाना चाहिये। इसके लिए बाथरूम के पुराने बेसिन उपयोग में लाये जा सकते हैं। कई पुष्पों वाले पौधे भी लगाना चाहिये जिनसे मकान की शोभा बढ़ती है तथा वातावरण सुवासित होता है। पूजा विधियों में, षोडशोपचार हेतु बहुत वनौषधियाँ उपयोग में आती हैं। अर्ध्य और पुष्पांजलि में बहुत से पुष्प उपयोग में आते हैं।

जड़ी-बूटियों के चयन के अनुसार ही गमलों का चयन करना चाहिये। इसी हिसाब से गहरे, उथले या चौड़े गमले लाने चाहिये। गमलों में मिट्टी भरने से पहले नीचे छेद पर एक पत्थर का टुकड़ा रख देना चाहिये। इससे वह छेद बन्द नहीं होगा तथा उस छेद से पानी ही बहेगा साथ में मिट्टी नहीं बहेगी। गमलों में डालने के लिए उपयुक्त मिट्टी नर्सरी से लाई जा सकती है। यह मिट्टी हल्की नमी वाली हो, किन्तु चिपचिपी न हो। खुली हुई भुरभुरी मिट्टी ही खरीदें। इससे पहले यह अवश्य जानकारी कर लें कि उस मिट्टी में खाद मिली हुई है या नहीं।

बीज बोने या कलम रोपने के तुरंत बाद गमलों में पानी अवश्य दें। पानी धीरे-धीरे डालें। प्रतिदिन सुबह इनमें पानी अवश्य दें। इन गमलों को हमेशा सूर्य की रोशनी के लिए पूर्व या उत्तर-पूर्व दिशा में रखें। इन जड़ी-बूटियों के पौधों को प्रतिदिन 4-6 घन्टे धूप अवश्य मिलनी चाहिये। इन पर सीधी धूप न गिरे। तेज किरणों से ये पौधे झुलस जाते हैं। इन्हें हल्की धूप में रखें। कीड़े-मकोड़े एवं दीमक का अवश्य ध्यान रखें। यदि ये दिखलाई दें तो तंबाखू वाला पानी छिड़कें, इससे ये नष्ट हो जायेंगे। इन पौधों में बाजार में मिलने वाले रासायनिक कीटनाशकों को न डालें, क्योंकि इनमें रहने वाले जहरीले तत्त्व जड़ी-बूटियों को झुलसा देते हैं तथा इनके गुणों को भी हानि पहुँचाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी यह स्वीकार किया है कि आनेवाले समय में चिकित्सा की वैकल्पिक विधियों के प्रयोग पर अधिक जोर रहेगा। इससे औषधी पौधों की मांग उत्तरोत्तर बढ़ेगी। वनौषधियों की प्राप्ति के लिए वनों पर निर्भरता से कई वनौषधियां नष्ट होने को हैं अत: अब हमें खेती कर इन्हें बचाना चाहिये। इन सारी समस्याओं पर कुछ समय पूर्व हर्बल बायोमेड फाउन्डेशन नामक गैर सरकारी संस्था ने हरियाणा के छोटे से कस्बे बझेरा में एक सम्मेलन का आयोजन किया था। इसमें संस्था के अध्यक्ष डा. रतन सी. पालीवाल ने बताया था कि हमारे देश में लाखों हैक्टेयर भूमि बंजर है, जो किसी काम नहीं आ रही है। खासतौर से राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तरांचल, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में ऐसे भूभाग हैं जिन पर किसी न किसी कारण से कृषि कार्य संभव नहीं हो पा रहा है। ये जमीनें अनुपयोगी या परती पड़ी हुई हैं। राजस्थान में रेतीली जमीन की समस्या है तो हरियाणा में कुछ जगहों की मिट्टी में नमक का अंश अपेक्षित मात्रा से अधिक है। इसी जमीन का उपयोग अगर जड़ी बूटियां उगाने में किया जाए तो सारी समस्याएं सुलझ सकती हैं। इनमें कई जड़ी-बूटियां ऐसी हैं, जिन्हें शुष्क, गर्म और पानी की कमी वाले इलाकों में उगाया जा सकता है। इनमें कौंच, अश्वगन्धा, गुड़मार, सोनामुखी आदि प्रमुख हैं।

जड़ी-बूटियों की खेती का रूझान बहुत पुराना है। संस्कृत के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में कृषि सम्बन्धी बहुत सी ऋचायें मिलती हैं। ऋषिपाराशर लिखित कृषिसंग्रह, कश्यपसंहिता, वृक्षायुर्वेद आदि में खेती-बाड़ी के बारे में विस्तार से पूरी जानकारी दी गई है। नाथद्वारा (राजस्थान) की वल्लभ वैष्णव मठ लाईब्रेरी में 'मानव वृक्षायुर्वेद' नामक पाण्डुलिपि मिली है। इसमें 1600 श्लोकों में कृषि, बागवानी और वनौषधियों का विवरण मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी यह वर्णन है। बराहमिहिर ने बृहत्संहिता में अधिक फूल और फल प्राप्त करने के लिए कई मिश्रण बतलाये हैं।

आजकल फिर जैविक कृषि या प्राकृतिक कृषि की चर्चा होने लगी है, जिसे वैदिक कृषि या ऋषि खेती भी कहा जा रहा है। इसी को टिकाऊ खेती भी माना जा रहा है। वस्तुत: बढ़ती आबादी के लिए धरती से अन्न मिलता रहे और स्वास्थ्यप्रद जड़ी-बूटियां मिलती रहे इसके लिए परंपरागत और आधुनिक वैज्ञानिक कृषि के बीच सामंजस्य बिठाना होगा। इस तरह के प्रयोग मद्रास के तारामणि इंस्टीट्यूशनल एरिया में स्थित डा. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन द्वारा चलाने जा रहे हैं। अन्य कृषिसंस्थान भी इस दिशा में प्रयास कर रहे हैं।

"नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी हैदराबाद द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार केवल पिछ्ले सात वर्षों में पूरे भारतवर्ष के जंगलों में चौदह से सतरह प्रतिशत की कमी आई है इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पिछ्ले सौ वर्षों में कितने जंगल कट गये हैं और धरती उजड़ हो गई है। जंगल जो जीवन का

आधार है इन्हें हम भोग विलास की वस्तु समझ बैठे हैं और हम प्राकृतिक संपदाओं के मालिक बन बैठे हैं। हमें यह समझना आवश्यक है कि ये भी पर्यावरण के एक मुख्य अंग हैं। राष्ट्रीय मापदंड के अनुसार पर्यावरण संतुलन के लिए कुल भौगोलिक क्षेत्र के 33 प्रतिशत भाग में जंगल सुनिश्चित करना आवश्यक है और संभवतः यही मापदंड विश्व के अन्य देशों द्वारा भी अपनाये गये हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि भारत में, जो ऋषि-मुनियों का भूखंड माना जाता था, जहाँ 80 प्रतिशत भाग में जंगल, वहीं 33 प्रतिशत भाग में भी जंगल बचाना मुश्किल हो रहा है।

जंगलों के पर्यावरण प्रभाव को एस.बी.राम ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

1. जैसा कि पता है जंगलों से बारिश होती है। वर्षा के पानी का एक बड़ा भाग वनौषधियाँ ग्रहण करती हैं और इसका 75 प्रतिशत भाग वाष्प के रूप में वायु मंडल में छोड़ देती है। इसी से हवा में नमी, बादल और मौसम चक्र प्रारम्भ होता है।

2. वर्षा का पानी जंगल और जमीन पर वनौषधियों के अभाव में नदी-नालों के माध्यम से सीधे समुद्र में चला जाता है। पानी रूकने का कोई माध्यम नहीं होने से जमीन की भीतरी सतह में पानी नहीं पहुंच पाता है। भूगर्भीय जल स्तर नीचे जाने का यही कारण है।

3. जंगल-झाड़ नहीं होने से सतह पर वर्षा का पानी रूक नहीं पाता है। उसका तेजी से बहाव होता है। इस कारण मिट्टी के ऊपरी भाग में उपजाऊ मिट्टी का कटाव एवं भूस्खलन होता है। इस कारण से नदी तल औरा जलाशयों में भारी मात्रा में गाद जमा हो जाता है, जिससे नदी व जलाशयों की जलधारणा क्षमता घट जाती है। इसका दुष्परिणाम सूखा, भुखमरी और बीमारियाँ हैं। ***—प्रभात खबर 26 जून 2004***

''कोटा (राजस्थान) से 30 किलोमीटर दूर बोराबास नामक गांव है। यहाँ के 200 परिवारों ने तीन साल पहले प्रण लिया था कि वृक्षों को अब कटने नहीं देंगे। कुल्हाड़ी पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। देखते ही देखते गांव हरियाली से आच्छादित हो गया। उस गांव ने तो एक मुहिम शुरू की थी। आज उसने आंदोलन का रूप ले लिया है। इससे प्रभावित होकर आस-पास के अन्य सात गांवों ने भी पर्यावरण को बचाने की कसम ले ली और कुल्हाड़ी चलाने पर रोक लगा दी। ये गांव वाले अच्छी तरह से जान चुके हैं कि वृक्षों से ही जीवन है क्योंकि अब इन्हें मवेशियों के लिए चारे की चिन्ता नहीं रहती और फलदार पेड़ों से इनकी रोजी-रोटी की गाड़ी भी दौड़ने लगी है। तीन साल पहले इस गांव में एवं इसके आस पास अंधाधुंध पेड़ों की कटाई शुरू हो गई थी। पेड़ कटते गये तो एक साल इन्हें भीषण गर्मी से जूझना पड़ा और मवेशियों के लिए चारा भी नहीं बचा। तभी गांव वालों ने संकल्प लिया कि अब पेड़ों को कटने नहीं देंगे। गांव की एक कोर समिति बनाई गई जिसमें गांव के बुजुर्ग व सामाजिक लोगों को स्थान दिया गया। साथ ही जुर्माने का प्रावधान भी तय किया गया। मौजूदा सरपंच और पूर्व सरपंच निरन्तर वन क्षेत्र का दौरा करते रहते हैं। कोई एक टहनी काटते भी मिल जाता है तो उस पर एक बोरी ज्वार का जुर्माना किया जाता है जिसे देवनारायण मन्दिर पर बैठे कबूतरों को खिलाया जाता है क्योंकि यह मन्दिर साक्षी है इनके संकल्प का। आज भी वृक्ष काटने के आरोपी को इसी मन्दिर पर सजा दी जाती है और समिति की बैठक भी यहीं होती है। तीन साल में अब तक पांच लोगों को एक-एक बोरी ज्वार का दंड दिया जा चुका है। सरपंच पांचूलाल और पूर्व सरपंच रंगलाल बताते हैं कि हरियाली बढ़ने से क्षेत्र में बारिश खूब होने लगी है। पशुओं के लिए चारे की भी अब कमी नहीं रहती है। रंगलाल ने बताया पहले इसी गांव में पेड़ों को काटने पर गुर्जुर और भीलों में अक्सर तनाव बन जाया करता था। आज आपसी सौहार्द ने गांव की तस्वीर बदल दी है और गांव में फैली यह महक अब दूसरे गांवों में भी फैलने लगी है। ***—भास्कर न्यूज कोटा 5 जुलाई 04***

वनौषधियों की सहानुभूतिपूर्वक सुरक्षा के लिए मनुष्य का दयार्द्र होना आवश्यक है। मेरा मानना है कि जो मनुष्य मांसाहारी नहीं है वह ऐसे कार्यों में अधिक प्रवृत्त हो सकता है। जो व्यक्ति जीव-जन्तुओं पर क्रूरता बरसाता है वह वनौषधियों किंबा पेड़-पौधों कैसे स्नेह कैसे कर सकता है।

मैं सदैव से शाकाहार का पक्षपाती रहा हूँ। अवसर मिलते ही इसकी उपादेयता को सिद्ध करने का प्रयास करता हूँ। आज हमें सच्चरित्र और नैतिक समाज की महती आवश्यकता है इसमें शाकाहार भी अपना योगदान देने में सक्षम है। एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी में मनोविज्ञान विषय के प्रोफेसर रिचर्ड स्टीन और कैराल नेमराफ द्वारा किये गये एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारी की तुलना में अधिक नैतिक और सच्चरित्र होता है।

विचारों की शुद्धता के लिए आहार की शुद्धता परमावश्यक है। यद्यपि आयुर्वेद के ग्रन्थों में मद्य-मांस का वर्णन मिलता है फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से इनसे विमुख रहने की ही बात कही गई है। मांसभक्षण से विरत होना आचार्य चरक का वास्तविक सम्मत पक्ष है। क्योंकि हम देखते हैं कि आचार्य चरक ने वैद्य को अमांसभक्षी बनने का गुरूपदेश (चरक. वि. अ. 8-13) दिया है और 'अहिंसा प्राणवर्धनानामुत्कृष्टतमा' कह कर मनु के इस वचन का समर्थन किया है—

ना कृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।।

—मनुस्मृति 5-48

आयुर्वेद की मान्यता है कि निष्पाप व्यक्ति ही यथार्थ में सुखोपभोग कर सकता है। आस्तिक्य के अवलम्बन से केवल यश और स्वर्ग की ही प्राप्ति नहीं होती अपितु इसके अवलम्बन से या तो औषधिसेवन की आवश्यकता ही नहीं होती, क्वचित् होती है तो शीघ्र एवं अभीष्ट लाभ मिलता है। आचार्य चरक ने (चरक. चि. 1-4-37) में कहा है कि आयु दीर्घ करने वाले, जरारोगनाशक रसायन योग शुद्ध शरीर और शुद्ध मन वाले संयमी व्यक्तियों में ही सफल होते हैं।

मांस के चयापचय में यकृत और वृक्कों को अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे वृक्करोग, रक्तचाप वृद्धि की स्थिति बनती है। कैन्सर, मधुमेह, मेदोवृद्धि, हार्मोन सम्बन्धी रोग, ई. कोली जीवाणु, मैड काऊ नामक बहुत से दारूण रोग मांसभक्षण से हो सकते हैं। शाकाहार से इन रोगों से बचाव के साथ ही आयु वृद्धि भी होती है।

यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि अब बहुत से लोगों के लिए मांस एक अरूचिपूर्ण एवं अस्वास्थ्यकर व्यंजन बनता जा रहा है। विदेशों में भी करोड़ों लोग शाकाहार अपना रहे हैं। ''मांसाहार त्यागो और किसी का जीवन बचाओ'' कह कर शाकाहारी होना अधिक मानवीय समझा जाने लगा है। पैनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय के पाल रोजिन कहते हैं कि एक शताब्दी पूर्व तक अधिकाधिक मांसाहार को स्वास्थ्यवर्धक माना जाता था। वर्तमान समय के बच्चे वह पहली पीढ़ी है, जिसके समय में शाकाहार आम है और इसे स्वास्थ्य और पर्यावरण जैसे मुद्दों के आधार पर सार्वजनिक रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है।

अतः इन सभी बिन्दुओं पर विचार करते हुये हमें येन-केन प्रकार से वनौषधियों को बचाना है; पेड़-पौधों की सुरक्षा करनी है और नये औषधपादप लगाने हैं। हमारी निरापद चिकित्सा प्रक्रिया को पूर्ण बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक भी है। फंगस उत्सर्जित आधुनिक तीव्र औषधियां जहां रोग के जीवाणुओं को नष्ट करती हैं, वहीं लाभकारी सहजीवी जीवाणुओं एवं जीवकोशों को भी नष्ट कर देती हैं किन्तु ये

वनौषधियां रोग से लड़ती हैं रोगी से नहीं। इन वनौषधियों के सेवन से अवांछनीय परिणाम नहीं पनपते हैं। आयुर्वेद के योगों में भी विषोपविषों द्वारा विनिर्मित योग उग्र हैं जबकि वनौषधियों के योग सौम्य हैं। ये वनौषधियां अपनी सौम्यता, सुरूचिपूर्णता एवं दुष्प्रभवामुक्तता के कारण ही चिकित्सकों को विशेषतया आकर्षित करती हैं। आधुनिक चिकित्सक इन वनौषधियों को तद्रूपता (Crudopathiy) में प्रयुक्त नहीं करते अत: ये सौम्य नहीं कही जाती। द्रव्य प्रयोगार्थ तद्रूपता आयुर्वेद की मौलिकता है। तद्रूप प्रयोग से वनौषधि सौम्य होती है। उदाहरणस्वरूप आधुनिक भेषज वैज्ञानिकों ने अपनी सतत शोध प्रक्रिया से सर्पगन्धा से अनेक क्षाराभों के अतिरिक्त रिसर्पिन नामक क्षाराभ भी पृथक् किया जिसकी मात्र 0.25 मि.ग्रा. की मात्रा उच्च रक्तचाप को कम समय में सामान्य कर देती है किन्तु अनेक घातक पार्श्वप्रभावों को भी साथ में उत्पन्न करती है। ऐसा सर्पगन्धामूल चूर्ण के सेवन से नहीं होता है। इसके तद्रूप प्रयोग से उपद्रवों की आशंका प्राय: नहीं रहती।

प्रस्तुत अंक एवं आगामी अंकों की रूपरेखा—

विस्तृत विवेचना युक्त वनौषधि रत्नाकर के इस अष्टम भाग के साथ ही विवेचना का प्रथम अकारादि क्रम समाप्त हो गया है। ये आठों भाग अनेकों मनीषियों के सहयोग से एवं गुरूजनों के आशीर्वाद से लिख दिये गये हैं। "सूत्रे मणिगणा इव" इन मणियों को एक सूत्र में पिरोने का इस अकिंचन ने प्रयास किया है। इसमें जो भी सुष्ठु हैं वह सब सहृदयों की कृपा का परिणाम है और जो कुछ भी दोष है वह सब मेरी अज्ञता का द्योतक है।

प्राय: सभी आवश्यक बिन्दुओं पर इन आठ अंकों में विस्तृत विवेचना की गई है। इसके बाद में भी इन पर बहुत कुछ लिखा जाना शेष रह गया है। एक एक वनौषधि को लेकर छोटे-मोटे पृथक विशेषांक तैयार किये जा सकते हैं। इन आठ अंकों में इन वनौषधियों का वर्णन किया जा चुका है—

1. प्रथम भाग—1. अकरकरा, 2. अंकोल, 3. अगर, 4. अग्निमंथ, 5. अर्जुन, 6. अतीस, 7. अपामार्ग, 8. अमरूद, 9. अम्लवेतस, 10. अमलतास, 11. अर्क (आक), 12. अलसी, 13. असगन्ध, 14. अशोक, 15. अहिफेन, 16. आमलक, 17. आम्र, 18. इसबगोल, 19. इन्द्रायण।

2. द्वितीय भाग—20. उदुम्बुर, 21. उलटकम्बल, 22. उशीर, 23. उस्तखुद्दुस, 24. एरण्ड, 25. एलासूक्ष्म (छोटी इलायची), 26. एला वृहत् (बड़ी इलायची), 27. कट्फल (कायफल), 28. कटुका (कुटकी), 29. कण्टकारी क्षुद्रा (छोटी कटेरी), 30. कण्टकारी वृहती (बड़ी कटेरी), 31. कपिकच्छू (कौंच), 31. कर्पूर, 33. करंज, 34. चिरविल्व, 35. कण्टकी करंज, 36. कर्कट श्रृंगी, 37. कांचनार, 38. किराततिक्त (चिरायता), 39. कुचेलक।

3. तृतीय भाग—40. कुटज, 41. कुमारी, 42. कुलिंजन, 43. कुष्ठ (कूठ), 44. केसर-कुंकुम, 45. खर्जूर, 46. खदिर, 47. गुग्गुल, 48. गुडूची, 49. गुलाब, 50. गोक्षुर, 51. चक्रमर्द, 52. चन्दनश्वेत, 53. चन्दनरक्त, 54. चव्य, 55. चित्रक।

4. चतुर्थ भाग—56. जटामांसी, 57. जातीफल, 58. जीरकश्वेत, 59. जीरक कृष्ण, 60. कलवञ्जिका, 61. अरण्यजीरक, 62. ज्योतिष्मती (मालकांगनी) 63. ताम्बूल, 64. तालीस, 65. तुवरक, 66. तुलसी, 67. तेजोवती, 68. त्रिवृत्त् (निशोथ), 69. त्वक् (दालचीनी), 70. दन्ती, 71. द्रवन्ती, 72. दन्तीबीज (जयपाल), 73. दाडिम, 74. द्राक्षा।

5. पंचम भाग—दुरालभा, 76. दूर्वा, 77. देवदारू, 78. द्रोणपुष्पी, 79. धत्तूर, 80. धातकी, 81. धान्यक, 82. काण्डीर (जल धनियाँ), 83. नागकेशर, 84. सुरपुन्नाग (नागकेशर लाल), 85. पुन्नाग

(सुलतानचंपा), 86. निम्बूक (नींबू), 87. निम्ब, 88. महानिम्ब (बकायन), 89. निर्गुण्डी, 90 पटोल, 91. पर्पट, 92. पलाश, 93. पलाण्डु, 94. वनपलाण्डु, 95. पाषाणभेद, 96. पाटला, 97. पाठा, 98. पिप्पल (पीपल)।

6. षष्टम भाग—99. पार्श्व पिप्पल (पारस पीपल), 100. पिप्पली, 101, पुनर्नवा, 102, पुष्करमूल, 103. पृष्णिपर्णी, 104. बकुल, 105. बला, 106. अतिबला, 107. महाबला, 108. नागबला, 109. बाकुची, 110. बिभीतकी, 111. बिल्व, 112. ब्राह्मी, 113, भंगा, 114. भृंगराज, 115. भल्लातक।

7. सप्तम भाग—116. भारंगी, 117. मंजिष्ठा, 118. मदनफल, 119. मरिच, 120. मुस्तक (नागरमोथा), 121. यष्टीमधु (मुलेठी), 122. यवानी (अजवायन), 123. अजमोदा, 124. पारसीक यवानी (खुरासानी अजवायन), 125. रसोन, 126. रास्ना, 127. लवंग, 128. लोध्र, 129. वचा, 130. द्वीपान्तर वचा (चोपचीनी), 131. वट।

8. अष्टम भाग—132. वत्सनाभ, 133. वरूणं, 134. वासा, 135. विडंग, 136. शंखपुष्पी, 137. शतावरी, 138. शालपर्णी, 139. शिरीष, 140. शुण्ठी, 141. शोभाञ्जन, 142. सप्तपर्ण, 143. सर्पगन्धा, 144. सारिवाद्वय, 145. हरिद्रा, 146. आम्रगान्धि हरिद्रा, 147. अरण्य हरिद्रा (वन हल्दी), 148. कृष्णहरिद्रा (काली हल्दी), 149. दारूहरिद्रा (दारूहल्दी), 150. हरीतकी, 151. हिंगु (हींग)।

वनौषधि के भेद किंवा जाति का वर्णन प्रायः उस वनौषधि के साथ ही कर दिया गया है, वहाँ अकारादि क्रम का निर्वाह नहीं किया गया है।

सुधानिधि के धर्मप्राण यशस्वी संपादक श्री गोपालशरण जी से प्रत्यक्ष विचार-विमर्श के बाद यह निर्णीत हुआ है कि इन अंकों में वर्णित वनौषधियों के अतिरिक्त शेष वनौषधियों पर भी संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की जाय। शेष रही वनौषधियों की यह विवेचना इतनी विस्तृत नहीं होगी। इनका संक्षिप्त परिचय तथा रोगानुसार उपयोगिता का ही वर्णन आगामी अंकों में हो इस हेतु सभी विद्वान लेखकों का सहयोग वांच्छनीय है। जिसकी रूपरेखा का वर्णन आगामी लघु अंक में कर दिया जायेगा। वनौषधि विषयक विवेचना का यह दूसरा चरण दो-तीन अकों में संभवतः पूरा हो सकेगा।

इन आठ अंकों के लेखन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जिन विद्वानों का मुझे सहयोग मिला है उनका मैं हृदय से मुहुर्मुहु आभार व्यक्त करता हूँ। इस अंक हेतु जिन महानुभावों ने शुभकामना संदेश प्रेषित कर मुझे उत्साहित किया है उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अन्त में सभी गुरूजनों को पुनः पुनः नमन करते हुये ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि—

मैत्रीभाव जगत में मेरा सबजीवों से नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे उर से करूणा स्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।।

मकर संक्रान्ति सं 2061

विदुषामनुचरः
वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
सरस्वती सदन
21 रामेश्वरधाम कालोनी मुरलीपुरा स्कीम
जयपुर-23

वत्सनाभ
(Aconitum Ferox)

जल अमृत भी है और विष भी। जल से उत्पन्न सात्विक शक्ति अमृत है और उसी का तामसी रूप विष हो जाता है। देवता और असुर दोनों ने अमृत चाहा। समुद्र मंथन द्वारा दोनों ने जल तत्त्वों का मंथन किया। दैवी विधान यही है कि केवल देवता ही अमृत पी सकते हैं, असुर नहीं। परन्तु इस से पूर्व कि देवताओं को अमृत मिल सके, यह आवश्यक है कि कोई विष को अपने शरीर में पचाले। अमृत से पहले जो विष निकला योगिराट् शिव ने उसका पान कर लिया। सर्वभूत हितैषी शिव नीलकंठ हो गये। सबके विविध कष्ट हरने के कारण वे प्रथम वैद्य कहलाये–"अध्यवोचदधि वक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्"। विषपान करते समय कुछ अंश पृथ्वी पर गिर गया जिससे कई विषौषधियां भी उत्पन्न हुई– (ततोवशिष्टमभवन्मूल-रूपेण तद्विषम्) उनको देखने से ही सभी अत्यन्त दुखी हुए। दृष्टवैतद् यद् विषीदन्ति जनास्त स्माद्विषं मतम्)। इनमें कंद विष अठारह प्रकार के हुये जिनमें आठ सौम्य और दश उग्र। सौम्य विषों में से एक वत्सनाभ है। इसे ही रस क्रिया तथा रसायन प्रयोग में सर्वोत्तम माना जाता है–रसे रसायनादौ च वत्सनाभ: प्रशस्यते। आयुर्वेदाचार्यों ने इस विष को अमृत बनाने के लिए प्रयास किया और इसे अमृत बना दिया। तब से यह विष अमृत कहलाने लगा–"अमृतञ्च तदेवोक्तं रसतन्त्रविशारदै:"। विष से अमृत बने इस वत्सनाभ की सम्पूर्ण गाथा का हम यहाँ बखान कर रहे हैं। "विषं प्राणहरं किन्तु युक्तियुक्तं रसायनम्"–इस युक्ति का यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है, जैसा कि आचार्यों ने वर्णन किया है।

आचार्य भाव मिश्र ने इसका धातुवर्ग के अन्त में वर्णन किया है आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने एक मात्र इसका स्वेदजनन द्रव्य के रूप में वर्णन किया है। भगवान् चरक ने स्वेदवहस्रोत का उत्पत्ति स्थान और प्रकाश स्थान निर्दिष्ट किया है– "स्वेदवहानां स्रोतसां मेदो मूलं लोमकूपाश्चौ स्वेद को मेद का मल कहा गया है अत: मेद ही इसका मूल है। उष्ण तीक्ष्ण, रूक्ष द्रव्य स्वेदजनन होते हैं। रसोन, अकरकरा, शोभाञ्जनत्वक्, अर्क, तुलसी, पिप्पलीमूल, मल्ल, कस्तूरी, स्वर्ण, नवसादर आदि द्रव्य स्वेदजनन कहे गये हैं किन्तु इनमें वत्सनाभ प्रमुख है। प्राय: ज्वर में इसका उपयोग अधिक होता है जहाँ यह पसीना लाकर ज्वर को उतार देता है।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह वत्सनाभ कुल (रैननकुलेसी) की वनौषधि है।

नाम–

संस्कृत–वत्सनाभ, वत्सनाग, विष, अमृत, क्ष्वेड

हिन्दी–बछनाग, मीठा तेलिया, मीठा विष

गुजराती–बछनाग

मराठी–बचनाग

बंगला–काठविष मीठाविष

तेलगू–वसनूभि

तामिल–वसनवि

अरबी–विस

फारसी–विशनाग

अंग्रेजी–एकोनाइट, मौक्सहुड

लैटिन–एकोनाइटम फेरोक्स (Aconitum Ferox)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय प्रदेश में सिक्किम से गढ़वाल तक 10 से 14 हजार फुट की ऊँचाई पर उत्पन्न होता है। विशेषत: दार्जिलिंग के पहाड़ों पर होता है।

दक्षिण भारत में खानदेश व सतपुड़ा के जंगलों में भी यह पाया जाता है। राजस्थान में बड़ी सादड़ी के पहाड़ों में यह पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—इसमें एकोनाइट के समान स्यूडो एकोनाइटिन नामक एक विषाक्त तत्व पाया जाता है। यह आधा किलोग्राम में लगभग चार ग्राम निकलता है। इसके अतिरिक्त एकोनाइटिन 0.97-1.23 प्रतिशत पिक्रो-एकोनिन, बेन्जोइल एकोनिन और होमोनेपेलिन् नामक तत्व भी अल्पमात्रा में पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—

सिन्धुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा।
यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिः वत्सनाभः स उच्यते।।

—भा० प्र०

यः कन्दो गोस्तनाकाशे न दीर्घः पंचमांगुलात्।
न स्थूलो गोस्तनादूर्ध्वं।

—र० र० स०

सिन्दुवारदलः पार्श्वे तरूवृद्धिविवर्जितः।
नीलपुष्पः कन्दविषो क्षुपो हस्तद्वयोच्छितः।।
वत्सनाभ इति ख्यातो रसतन्त्रविचक्षणैः।
गढ़पाले च काश्मीरे नेपालादौ च जायते।।
देर्घ्ये तु पञ्चांगुलतः परं सप्तांगुलोन्मितः।
व्यासे चैकांगुलात् सार्द्धद्वयंगुल प्रमितस्तथा।।
आमूल चूलं क्रमशः स्थूलञ्च पाण्डुर प्रभः।
कन्दोऽस्य विषजां वर्यैर्वत्सनाभ इति स्मृतः।।
दीर्घमूलं स्थूलकन्दं वत्सनाभविषक्षुपम्।
उत्पाटय शीत समये वसन्तेवा समाहरेत्।।

—र० त०

प्राचीन ग्रन्थकारों ने कहा है कि वत्सनाभ के पौधे के पत्ते सम्भालू के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं। ये पांच पांच के झुण्ड में जुड़े होते हैं। इस क्षुप के आसपास के अन्य वृक्ष बढ़ने नहीं पाते हैं। इसके पुष्प नीले रंग के निकलते हैं।

इसके कन्द प्रायः पांच अंगुल से सात अंगुल लम्बे होते हैं। इसकी मोटाई एक अंगुल से ढाई अंगुल होती है। यह मूल की तरफ से शिखा की तरफ मोटा है। वर्ण में पाण्डुर होता है। बछड़े की नाभि के आ का होने से इसे वत्सनाभ कहा जाता है।

इस वर्णन से वत्सनाभ के पूर्णस्वरूप का ज्ञान हो पाता है अतः आधुनिक आयुर्वेदाचार्यों ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है—

वत्सनाभ का क्षुप 3-6 फुट ऊँचा होता है। तरबूज की तरह 3-6 इंच लम्बे व खण्डित होते हैं

अण्डाकार, दन्तुर एवं कटे होते हैं। पुष्प म 6-12 इंच लम्बी, सरल या नीचे शाखाओं में वि रोमश होती है। **पुष्पदंड**-एक-दो इंच लम्बा, शीर्ष पर स्थूल होता है। **पुष्प**—बड़े हलके मलिनाभ नीले के होते हैं। पुष्प छत्र ऊँचाई से दुगना लम्बा होता **फल**—पाँच, सीधे प्रायः सघन रोमश होते **बीज**-कृष्णवर्ण और पक्षयुक्त होते हैं। मूल-एक से इंच लम्बे, चौथाई इंच से एक इंच मोटे, बाहर धूसर तथा भीतर की ओर किंचित् श्वेत, स्निग्ध और चमक होते हैं।

—द्रव्यगुणविज्ञान भाग

भेद—आधुनिक वनौषधि शास्त्रियों ने वत्सनाभ लगभग 110 वानस्पतिक जातियां खोज निकाली इनमें से लगभग 24 भारत में उगती हैं। इनमें कई वि नहीं है। ये सभी प्रजातियां हिमालय के दक्षिणी ढला प्रायः पाई जाती हैं। व्यापारिक दृष्टि से बाजार में जो वत्सनाभ के नाम से मिलता है। इनमें इसकी अ प्रजातियां मिश्रित रहती हैं। ब्रिटिश फार्माकोपिया निर्धारित A. Nepallus प्रजाति भारत में नहीं हो वर्णभेद से बाजर में वत्सनाभ दो प्रकार का मिलता सफेद और काला। वस्तुतः इसका वर्ण धूसर पाण्डुर है। इसी को सफेद बछनाग कहते हैं और इसे ही कृ विधि से काला बना देते हैं जो काला बछनाग होता है।



वत्सनाभ (Aconitum Ferox)

नाम–सं०–वत्सनाभ, हि०–बछनाग; गु०–बछनाग; म०–बचनाग; अं०–एकोनाइट; लै०–एकोनाइटम फेरोक्स।

प्राप्तिस्थान–दार्जिलिंग, खानदेश आदि।

उपयोगी अंग–मूल।

रोगोपयोग–ज्वर, शोथ, अग्निमांद्य, सन्निपात।

मुख्ययोग–हिंगुलेश्वर रस, कफकेतुरस, मृत्युञ्जय रस, त्रिभुवनकीर्ति रस।

रंगने की यह प्रक्रिया गोमूत्र और तैल से की जाती है। इस कृत्रिम संस्कार से इसमें कीड़े नहीं लगने पाते। गुणों की दृष्टि से यह हेय नहीं प्रत्युत लाभकारी है।

सचित्र वनस्पति गुणादर्श के लेखक वैद्य श्री हिरामण मोतीराम जंगले ने लिखा है कि "इस समय मीठा तेलिया नाम से जो वत्सनाभ बम्बई आदि के बाजार में पंसारियों के यहां प्राप्त होता है वह सारा अमृतसर से आता है। वहाँ पर यह चंबा पांगी, कस्टवाल, भद्रवा, कुल्लू आदि हिमालय के पर्वतीय भागों से असली रूप में आता है। इसी को वहां के बड़े-बड़े वनस्पतियों के व्यापारी एक बड़ी कढ़ाई लेकर उनमें गोमूत्र किंवा महिषमूत्र भरकर उसमें एक मन पीछे तीन चार सेर कसीस घोल डालते हैं। जिस समय कसीस बिलीन हो जाता है तब दो-तीन दिन के पश्चात् इस पानी का वर्ण काला हो जाता है। उस समय उसमें वत्सनाभ के छोटे बड़े टुकड़े डाले जाते हैं। और उसी में 8-10 दिन पड़ा रहने देते हैं। बाद में तोड़कर देखने से भीतर-बाहर एक जैसा काला रंग हो जाने पर बड़ी-बड़ी देग अथवा कढाई में छोड़कर उसको उबाल देते हैं और उबालते समय उसमें मन (चालीस किलो) आध सेर (500 ग्राम) तैल डालते हैं। चार-पांच घन्टे पका लेने के बाद सारा बछनाग निकालकर धूप में सुखाया जाता है। जब वह पूर्ण रूप से सूख जाता है तब बेचने के लिए दुकान पर लाकर मीठा तेलिया अथवा काला बचनाग कहकर बेचा जाता है। यह क्रिया सन् 1924 में मैंने अमृतसर रहते हुए प्रत्यक्ष देखी है।"

कई व्यक्ति काले वत्सनाभ को मीठा तेलिया तथा सफेद को सींगिया कहते है। ठा0 श्री बलवन्त सिंह के अनुसार "एकोनिटम चास्मन्थम" ही श्रृंगी विष है। यह चित्राल और हजारा से कश्मीर तक सात हजार और बारह हजार फीट के बीच पश्चिमी हिमालय के प्रान्त में पाया जाता है।

इतिहास—भारतीय चिकित्सकों ने औषधि के रूप में वत्सनाभ का उपयोग ईस्वी सन् से 1000 वर्षों पूर्व करना प्रारम्भ कर दिया था। भारतीय चिकित्सक अच्छी तरह से जानते थे। जिसका वर्णन यत् किं संहिताग्रन्थों में तथा विस्तृत वर्णन रस ग्रन्थों में मिलता इसके अशुद्ध प्रयोग से किंवा अधिक मात्रा में सेव होने वाले आठ वेगों का उन्होंने भली भांति अध्ययन लिया था। आधुनिक चिकित्सक इसे मध्ययुग में पाये और 18वीं शताब्दी में ये इसकी उपयोगिता को स सके। चिकित्सा में प्रथम बार 1762 में स्टोर्क ने कि में इसका प्रथमबार प्रयोग किया था। किन्तु इससे भारतीय जंगली जातियां भी इससे पूर्ण परिचित थीं इसे विष की तरह अपने तीरों में लगाती और जानवरों शिकार करती थी।

—*क्रियात्मक औषधि परिचय वि*

शार्ङ्गविष (तच्च श्रृंगाकृतिविद् वत्सनाभसंज्ञक के नाम में इसका विष्णु धर्मसूत्र में उल्लेख है।

रस—मधुर

गुण—रूक्ष, तीक्ष्ण, लघु, व्यवायि, विकाशि

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोषकर्म—यह रूक्ष, तीक्षण और लघु होने से क का, मधुर होने से पित्त का तथा उष्ण होने से वात का श करता है। विशेषतया यह वातकफ शामक है।

गुण प्रकाशक संज्ञा—अमृत (युक्ति पूर्वक प्र करने पर हितकर होने से विष की भी अमृत संज्ञा हु वस्तुतः अमृत के समान जीवन देता है।)

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग मुख्यतः मूत्र से तथा अं लाला आमाशय रस, पित्त एवं स्वेद से होता है।

प्रयोज्य अंग—मूल।

मात्रा—15 मि0ग्रा0।

विषं भवति पीयूषं मात्रया विनियोजितम्।
तदेवामात्रया युक्तं द्रुतं मुष्णाति जीवितम्॥

तस्मात्पूर्वन्तु रोगाणां रोगिणां च बलाबलम्।
वीक्ष्य देशादिकञ्चापि विषमात्रां प्रकल्पयेत्।।

प्रयोग निषेध—बालक, अत्यन्त वृद्ध, गर्भवती, अतिक्षीण शरीर, राजयक्ष्मा के लक्षणयुक्त अवस्था में, क्रोधित मनुष्य को और अतिभ्रान्त मनुष्य को हृदय की दुर्बलता में विशेष रूप से जहां तक हो सके वत्सनाभ का अन्तः प्रयोग न करें। यदि अल्प वयस्कों को बिना विष प्रयोग किये हुए कार्य नहीं चलता हो अर्थात् यह देना ही आवश्यक हो तो बड़ी सावधानी से बहुत अल्पमात्रा में और बहुत थोड़े समय के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

विषलक्षण—वत्सनाभ की अधिक मात्रा सेवन से कुछ क्षणों के बाद ही मुख, गले, अन्नप्रणाली में तीव्र झुनझुनाहट एवं दाह होता है। तीव्रदाह आमाशय में भी होने लगता है और वमन होता है। अत्यधिक स्वेद आता है जिससे त्वचा आर्द्र शीत, झुनझुनाहटयुक्त तथा शून्य हो जाती है। नाड़ी मन्द तथा अनियमित (विषम) हो जाती है। नेत्र स्तब्ध होजाते हैं तथा आंखों की पुतलियां फैल जाती हैं। श्वास कठिनता से आने लगता है। अवसाद और मूर्च्छा होने लगती है। रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है। कभी-कभी आक्षेप भी आते हैं और अन्त में श्वास या हृदय की गति रुक जाने से मृत्यु हो जाती है।

कभी-कभी क्षतयुक्त त्वचा पर लेप अथवा मरहम के रूप में लगाने से भी इसका विष शोषित होकर शरीर में व्याप्त हो जाता है जिससे भी उपर्युक्त विषलक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

विष चिकित्सा—

विष चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त में तीन बातें सामने आती हैं—

1. **विष का निर्हरण**—वमन, विरेचन, बस्ति और आमाशय प्रक्षालन द्वारा।

2. लाक्षणिक चिकित्सा।

3. ऐसे द्रव्यों का प्रयोग करना जो विष को विनष्ट कर निष्क्रिय कर दे। ऐसे द्रव्य किंवा योगों को अगद अथवा प्रतिविष कहा जाता है।

इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये यह चिकित्सा संपादित करें—

यदि विष की घातक मात्रा के सेवन करते ही 10-12 मिनट के अन्दर तीव्र वामक विरेचक औषधियों के द्वारा अथवा स्टामक टयूब से विष निकाल दिया जाय तो ठीक है अन्यथा विष शीघ्र गामी होने से शरीर में शीघ्र फैल जाता है। बकरी का दूध बार-बार पिलावें कि वमन हो जाय। जब बकरी का दूध उदर में स्थिर रह जाय तो समझना चाहिये कि विष नष्ट हो गया है। आमाशय प्रक्षालन और वमन कराने के बाद 30 ग्राम गरम घी के साथ कच्चा सुहागा 500 मि0ग्रा0 मिलाकर रोगी को पिलावें। यदि सुहागा फुलाया हुआ (शुद्ध) हो तो 750 मि0ग्रा0 को घी में मिलाकर दें। यदि इससे भी वमन होता है तो ठीक है अन्यथा सुहागा वत्सनाभ का प्रतिविष होने से उसके प्रभाव को भी कम करने में सहायक बनता है। विष आंत्र में चला गया हो तो विरेचन हेतु एरण्ड तैल पिलावें। इसमें अफीम की बस्ति भी दी जाती है। हृदय को सबल बनाने के लिए कस्तूरी या जदवार (निर्विषी) को पानी में घिसकर चटावें। जदवार को वत्सनाभ विषहर कहा गया है। एक ग्राम जदवार को दूध के साथ भी पिलाया जा सकता है। सि0 भै0 मञ्जूषा में कथित ये प्रयोग भी बड़े उपयोगी है—

हृदि त्रस्तेऽपि च ग्रस्ते समस्तेऽङ्गे मलोरगैः।
मुक्तासूताभ्रकस्तूरीहिरण्यजरजो भजेत्।।
मृगमदपारद विष्णु पदसम्मिलितानि च तानि।
शीतकायता कवलने विद्यन्तेऽनुपमानि।।

अनार, मौसम्बी, द्राक्षा स्वरस दें। गुलाब अर्क में ताम्बूल पत्र स्वरस में कपूर मिलाकर दें। अर्जुन की छाल का चूर्ण गोघृत एवं मधु के साथ दें। आवश्यकता पड़ने

पर कृत्रिम श्वास क्रिया अथवा आक्सीजन की व्यवस्था करनी चाहिये। हाथ-पैरों को गर्म रखें एवं शरीर को अच्छी तरह से मलते रहें। शास्त्रों में वर्णित अजेय घृत आदि का प्रयोग विषापह होता है।

वत्सनाभ शोधन प्रकार—

अशुद्ध वत्सनाभ विष के सेवन से दाह, मूर्च्छा, हृदयगति अवरोध आदि घातक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिससे मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। अतः इसको सदा शुद्ध करके ही प्रयोग में लाना चाहिऐ।

1. वत्सनाभ के चने के बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। इन टुकड़ों को किसी पत्थर के पात्र या मिट्टी के पात्र में डालकर उसमें ताजा गोमूत्र भर दें और पात्र को तेज धूप में रख दें। प्रतिदिन प्रातःकाल पुराना गौमूत्र निकालकर फिर उसमें नया गोमूत्र भरकर धूप में रख दें। इस प्रकार तीन दिनों तक नया मूत्र डाल धूप में रखने के बाद इसे गोमूत्र से बाहर निकाल कर इसकी बाहरी त्वचा को धीरे-धीरे किसी चाकू आदि से छिल कर अलग कर दें और भीतर के शुद्ध विष को धूप में रखकर सुखा लें।

2. वत्सनाभ विष के चने के बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें एक स्वच्छ कपड़े में बांधकर पोटली बना लें। अब इस पोटली को दोलायन्त्र में गाय का या बकरी का दूध भरकर उसमें लटका दें। दोलायन्त्र को चूल्हे पर रखकर छः घन्टों तक पकावें। दोलायन्त्र में स्वेदन करने के पश्चात् विष को गरम जल से धोकर सुखाकर उपयोग में लेना चाहिये। कई गोमूत्र से शोधन कर दूध से भी कर उपयोग में लाते हैं।

शोधन करने के बाद भी वत्सनाभ के योगों में टंकण (सुहागा) का संमिश्रण किया जाता है। टंकण को "स्थावरादि विषापहः" कहा गया है। विशेषतः वत्सनाभ और संखिया के योगों के साथ यह हितकारक है। इन विषों के दुष्प्रभाव न हों इस हेतु से टंकण को साथ लिया जाता है। वत्सनाभ के विषैले किंवा दुष्प्रभाव को नष्ट करने के लिए प्रायः सभी, विशेषतः ज्वरघ्न योगों में वत्सनाभ के साथ टंकण को मिलाया जाता है।

वैसे आयुर्वेदीय शोधन विधान से शोधित विषों का सेवन किसी भी प्रकार की हानि की आशंका से मुक्त है। वत्सनाभ जैसे हृदयावसादक द्रव्य शोधित हो जाने पर हृदयोत्तेजक हो जाते हैं। तब ही तो कविराज श्री गौरीलाल चानना वैद्य वाचस्पति ने ये वाक्य कहे हैं कि "पारद के समान मानव मात्र के कल्याणार्थ वत्सनाभ जैसे विष के अमृत तुल्य सफल उपयोग में जितनी दूर तक पहुँच आयुर्वेद ने की है, अनुसन्धान के सम्पूर्ण अर्वाचीन साधनों के रहते हुए भी पाश्चात्य चिकित्सा न केवल वहाँ तक पहुंच ही नहीं सकी प्रत्युत उससे कहीं पिछड़ी हुई है। चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेद की कुछ ऐसी ही विशेषताएं प्रगति और वैज्ञानिक क्रान्तिक इस युग में भी ध्रुवतारा के समान अपने स्थान पर निश्चल रूप से खड़ी हैं। इस पर प्रत्येक भारतीय विशेषकर वैद्य समाज को गर्व होना चाहिये। परन्तु जहां हम पीछे हैं, वहां अपने में सुधार करने में संकोच हमें और भी पीछे ले जायेगा। सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिए सदा हमें तत्पर रहना चाहिये।

मारण विधि—शुद्ध वत्सनाभ को अत्यन्त सूक्ष्म पीस लेना ही इसका मारण है। इसे खरल में डालकर सूक्ष्म बनाने हेतु जब पीसा जाता है तो इसके सूक्ष्म कण उड़कर आंखों में लग जाने से आंखें लाल हो जाती है। नाक द्वारा मस्तिष्क में कण जाने से भ्रम-मूर्च्छा-दाहादि होने लगते हैं। अतः इसे पीसते समय इसमें कुछ जल डाल देना चाहिये जिससे इसके कण उड़कर पीसने वाले को कोई नुकसान न पहुंचावे।

ऐलोपैथिक में विष का शोधन मारण रेक्टीफाइड स्प्रीट द्वारा किया जाता है।

विशेष रोगों का नाश करने के लिए इसके साथ

विशेष-विशेष औषधियों का संमिश्रण भी कर लिया जाता हैं। ये मिश्रण कुछ इस प्रकार है—

1. टङ्कणमात्र समभाग मिलाकर पीसकर रखलें। यह मिश्रण सर्वाधिक उत्तम रहता है। इससे विष का मारण भी हो जाता है। कहा गया है—"समटंकणसंपिष्टं तद् विषं मृतमुच्यते। योजयेत् सर्वरोगेषु न विकारं करोति तत्।।

2. काली मिर्च समभाग, द्विगुण अथवा चतुर्गुण मिला कर भी रखी जा सकती है। यह वत्सनाभ को अधिक प्रभावी बना देती है। इसे श्वास, कास, ज्वर, शिर:शूल आदि रोगों में उपयोग में लाया जा सकता है। इस मरिचयुक्त मिश्रण में अन्य भी उपयुक्त द्रव्य मिलाकर प्रयुक्त किया जा सकता है।

3. वत्सनाभ को दालचीनी के साथ भी मिलाकर पीसकर रखा जा सकता है। यह दालचीनी के गुणों से युक्त वत्सनाभ तत्तद् रोगों में उपयोग में लाया जा सकता है। वत्सनाभ स्वयं योगवाहि द्रव्य है। जिससे मिश्रित द्रव्यों के गुणों में वृद्धि करता है।

4. वत्सनाभ को शुद्ध गन्धक के साथ पीसकर भी रखा जा सकता है। यह पाचन संस्थानगत रोगों में तथा कुष्ठादिरोगों में उपयोग में लाया जा सकता है।

5. इसी प्रकार शुद्ध वत्सनाभ को शुद्ध पारद गन्धक की समभाग कज्जली के साथ भी भली प्रकार से मिश्रण कर रखा जा सकता है। यह मिश्रण अनेक रोगों में प्रभावशाली सिद्ध होता है। इस मिश्रण से परस्पर दोनों के गुणों में वृद्धि होती है क्योंकि पारद एवं वत्सनाभ दोनों ही योगवाहि द्रव्य कहे गये हैं।

सेवन विधि एवं सेवनकाल में पथ्यापथ्य—

1. वत्सनाभ का सेवन विशुद्ध शरीर वाले को एवं जिसने भली भांति घृत का सेवन किया है, करना चाहिये।

2. इसका सेवन विशेष कर शीत और वसन्त ऋतुओं में करना चाहिये।

3. ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में इसका सेवन उपयुक्त नहीं है।

4. पैत्तिक प्रकृतिक को एवं व्याधि की गम्भीर अवस्था में इसे सेवन न करावें।

5. सेवन काल में कटु, अम्ल लवण, तैल, दिवास्वप्न, रात्रिजागरण, अग्नि और धूप का सेवन वर्जित है।

6. सेवन काल में गाय का दूध, घृत, गेंहूं, चावल, शीतल जल और मधुर पदार्थों का सेवन करना चाहिये—

गव्येक्षीरघृते पेये शाल्यन्नं गोधुमं तथा।
शीतलं च पिबेत्तोयं मधुराणि च सेवयेत्।।

—र० र० स०

7. रोगहर प्रयोगों में घृतयुक्त हिताहार तथा रसायन प्रयोगों में केवल क्षीराशन हितकारी है—

दातव्यं सर्वरोगेषु घृताशिनि हिताशिनि।
क्षीराशिनि प्रयोक्तव्यं रसायनरते नरे।।

—र० चि० म०

8. ***ब्रह्मचर्य प्रधानं हि विषकल्पं समाचरेत्।***
पथ्यैः सुस्थमना भूत्वा तदा सिद्धिर्न संशयः।।

—र० चि०

9. विषकल्प (र०स०स०) अजीर्ण रोगी को न करावें।

संग्रह एवं संरक्षण—वत्सनाभ की कन्दाकार जड़ों का द्विवर्षायु पौधों से किया जाता है, जिनमें दो-दो जड़ें ऊपर आपस में जुड़ी रहती हैं। पहले वर्ष की जड़ दूसरे वर्ष की जड़ की अपेक्षा बड़ी तथा मोटी होती है। शीतऋतु अथवा वसन्त ऋतु में इसे पूर्णवीर्य शक्ति प्राप्त हो जाती है अतः वसन्त या शीत में वत्सनाभ क्षुप को उखाड़कर सञ्चय करना चाहिये। इन्हें शोधित कर अनार्द्र तथा शीतल स्थान में कार्कयुक्त शीशियों में रखना चाहिये तथा शीशी पर विष का संज्ञापक लगा देना चाहिये।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष (कृमि भक्षित न होने पर अधिक वर्ष)

घातक मात्रा—4 ग्राम (500 मि0ग्रा0 से भी मृत्यु संभव)

घातक काल—आधा से चार घंटों तक

यूनानी शब्द 'अक्नीतून' से अंग्रेजी नाम एकोनाइट और लैटिन नाम एकोनाइटम व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है बिना मिट्टी के पैदा होने वाला क्योंकि यह ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर उगता है। फैरोक्स का अर्थ है अति विषमय क्षुप। अत: इसकी विषमयता का इसका नाम ही द्योतक है।

गुणधर्म विवेचन—

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च।
आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम्।।
तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम्।
योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्धनम्।।

—भा0 प्र0 नि0

वत्सनाभोऽति मधुरः सोष्णो वातकफापहः।
कण्ठरुक् सन्निपातघ्नः पित्त संशोधनोऽपिच।।

—रा0 नि0

विषं तु कटुकं तिक्तमुष्णं चैव कषायकम्।
योगवाहि परं चैतन्महोत्कृष्टं रसायनम्।।
त्रिदोषघ्नं विशेषेण मतं वातबलासनुत्।
दीपनं शीतशमनं बृंहणं बलवर्द्धनम्।।
अग्निमान्द्य प्रशमनं प्लीहोदर निबर्हणम्।
वातरक्तापहं चैव श्वास कास विधूननम्।।
गुदामयग्रहणिकागुल्मनिर्दलनं परम।
कुष्ठपाण्डुज्वरहरं त्वामवात प्रणाशनम्।।
विनिहन्ति विशेषेण तिमिरं च निशान्धताम्।
अभिष्यन्दं नेत्रशोथं कर्णशोथं च दारूणम्।।
कर्णशूलं शिरः शूलं गृध्रसीं कटिवेदनाम्।
आखुवृश्चिकसर्पाणां विषं चैवाविलम्बितम्।।

—र0 त0

विषं रसायनं बल्यं बातश्लेष्मविकारनुत्।
कटु तिक्तं कषायं च मदकारि सुखप्रदम्।।
व्यवायि च शिरोद्राहि कुष्ठवातास्रनाशनम्।।
अग्निमांद्यं श्वासकासप्लीहोदर भगंदरम्।।
गुल्म पाण्डुव्रणार्शांसि नाशयेद्विधि सेवितम्।

—वनस्पति गुणाद

वत्सनाभोभवेदुष्णो वातश्लेष्मामयापहः।
पित्त संशोधनश्चापि योगवाही मदावहः।।
व्यवायी शोथनुत् स्वेदजननो वेदनापहः।
अग्निमान्द्यो ज्वरे कासे सन्निपाते च युज्यते।।

—प्रि0 नि

वत्सनाभ का चिकित्सा में विशेष महत्व है। इसके प्रयोग में तुलसी की यह उक्ति सर्वांश में सत्य है—

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ सुयोग कुयोग।
होहि सुवस्तु कुवस्तु जग लहहिं सुलक्षण लोग।।

इसका बाह्य लेप वेदना स्थापन एवं शोथहर है। अपने इस प्रभाव के कारण गृध्रसी, विश्वाची, शिरःशूल सन्धिवात, आमवात, सन्धिशोथ आदि रोगों में लेप एवं मर्दन के रूप में इसका प्रयोग होता है। क्षतपूर्ण त्वचा पर इसे न लगावें, क्षतपूर्ण त्वचा पर लगाने से रक्त में यह शोषित होकर विषैले लक्षण उत्पन्न कर सकता है। अतः बाह्य प्रयोग के समय पूर्णतः अक्षत एवं स्वस्थ त्वचा पर ही इसे लगावें। केवल वत्सनाभ को त्वचा पर लगाने से इसका प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि इस प्रकार यह शोषित ही नहीं होता है। किन्तु स्नेह के योग से इसे त्वचा पर लेपन या मर्दन करने से यह अपना प्रभाव दिखाता है। सस्नेह इसकी मालिश से संज्ञावह नाड़ियों के प्रान्त भाग उत्तेजित होते हैं उस स्थान पर चुनचुनाहट होती है और शून्यता मालूम होती है। पीड़ा, स्पर्श और ताप की संवेदना का वहन बन्द हो जाता है। यह संक्षोभक होने से उस स्थान में रक्त संचार को बढ़ा देता है जिससे संचित विष विलीन होने में सहायता मिलती है।

श्लैष्मिक कला के लिए यह तीव्र संक्षोभक है और वहां से इसका शोषण भी बहुत शीघ्र होता है। अत: नस्य लेने पर तीव्र छींकें आती हैं, नासास्राव होने लगता है। नासा के अन्दर तीव्र संक्षोभ का अनुभव होता है और नाक बरफ की मानिन्द ठण्डी हो जाती है।

व्यवायि और विकाशि होने के कारण इसके सेवन से संज्ञावह नाड़ियों के प्रान्तभाग पहले उत्तेजित होते हैं और बाद में अवसादित होते हैं। चेष्टावह नाड़ियों पर भी बहुत कुछ ऐसी ही क्रिया होती है। मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं होता है। शुद्ध वत्सनाभ का प्रयोग मस्तिष्क में बढ़ी हुई रक्त संचारण क्रिया तथा मस्तिष्क में होने वाले रक्तसंचय को शीघ्र ही दूर अवश्य कर देता है—

मस्तिष्कदेशे संवृद्धां रक्तसंचरण क्रियाम्।
नाशयत्याशु मस्तिष्के जातं वां रक्त सञ्चयम्।।

—र0 त0

पक्षाघात एवं अन्य नाड़ी दौर्बल्य की अवस्थाओं में यह उपयोगी है। विविध कारणों से उत्पन्न होने वाली विभिन्न लक्षणों वाली, असहनीय, रात्रि में होने वाली शारीरिक वेदना को वत्सनाभ शीघ्र शान्त कर देता है। तब ही तो कहा गया है—

"विषं विशेषतो वातवेदनाहरमुत्तमम्।" इससे युक्त "महावात विध्वंसन रस" उत्तम वातहर योग है। पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, कम्पवात, पृष्ठशूल, त्रिकशूल, स्तब्धता, सारे शरीर का टूटना एवं सर्वाङ्गग्रहण (सारे शरीर की अकड़ाहट) आदि सभी प्रकार की वातिक वेदना को दूर करने के लिए विषगर्भ तैल की मालिश करना लाभदायक है।

यह पूर्व में कहा गया है कि यह विकाशि (ओज: क्षय कर शरीर में शिथिलता एवं अवसाद उत्पन्न करे) है अत: इसे मात्रायुक्त एवं सावधानी से देना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह व्यवायि (जठराग्नि के संपर्क में आये बिना सारे शरीर में रक्त के साथ मिलकर फैल जाय) है—

जठराग्निं विना गत्वा व्याप्नोति सकलां तनुम्।
रक्ते न सह संवर्त्य तद् व्यवायि यथा विषम्।।

वत्सनाभ को रसायन प्रयोगों में सम्मिलित किया गया है।

चरक संहिता में चिकित्सास्थान रसायनाध्याय तृतीय पाद में एक ऐन्द्री रसायन का वर्णन मिलता है। यह रसायन जराव्याधिप्रशमन, स्मृतिमेधाकर, आयुष्य, पौष्टिक, स्वर वर्ण प्रसादन एवं परमोजस्कर कहा गया है। इसके अतिरिक्त यह कुष्ठ, श्वित्र, गुल्म, उदररोग, विषमज्वर, एवं वातरोगोंको भी दूर करने वाला है। परन्तु इस रसायन में वर्णित ऐन्द्री, मत्स्याक्षिक तथा ब्रह्म सुवर्चला नामक विशिष्ट औषधियों के आज तिरोहित होने से इसके निर्माण में बाधा उपस्थित हो गई है। चरक के जल्पकल्प तरू टीका कार कविराज गंगाधर ऐन्द्री से इन्द्रायण की जड़ ग्रहण करते हैं। और ब्रह्म सुवर्चला से सूर्यभक्ता (हुलहुल) ग्रहण करते हैं। अष्टांगसंग्रह के टीकाकार इन्दु, ब्रह्म सुवर्चला का अर्थ मण्डूकपर्णी करते हैं। यह एक मेध्य रसायन है अत: ये द्रव्य भी मेध्य ही होने चाहिये। इस ऐन्द्री रसायन के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि संहिताकाल में भी वत्सनाभ को रसायन प्रयोगों में स्थान दिया गया था। ऐन्द्री रसायन का वत्सनाभ भी एक घटक द्रव्य है।

चिकित्सा में स्वेदन द्रव्य के रूप में वत्सनाभ की विशेष उपयोगिता प्रकट की गई है। यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि आचार्य श्री प्रियव्रत जी ने स्वेद जनन द्रव्यों में इसका वर्णन किया है। स्वेदन द्रव्य की परिभाषा में आचार्य महोदय कहते हैं—

स्वेदनं स्वेदजनन मुष्णतापादनेन यत्।
स्तम्भगौरवशीतघ्नं तोयमुष्णं यथा विषः।।

—प्रि0 नि0

द्रव्यगुण सिद्धान्त के लेखक डा0 श्री शिवचरण ध्यानी ने स्वेदन की परिभाषा को भली-भांति से समझाया है। विद्यार्थियों के लिए इसे यहां उद्धृत किया जा रहा है—

" जो शरीर की गुरूता, जड़ता और शैत्य का नाश करे तथा स्वेद की प्रवृत्ति करे उसे स्वेदन कहते हैं। स्वेदन से दोष और स्रोतस् मृदु हो जाते हैं, स्रोतस् विस्फारित हो जाते हैं और इसी लिए अवरूद्धदोष अपने स्थान से गति करते हैं। स्नेहन-स्वेदन ये पूर्वकर्म भी होते हैं, जिनके पश्चात् पंचकर्म किया जाता है। स्वेदन उपक्रम में रूक्ष और स्निग्ध इन दोनों गुणों को गिनाया हैं क्योंकि प्रायः आमाशयोत्थ व्याधियों में रूक्ष स्वेद और पक्वाशयोत्थ व्याधियों में स्निग्ध स्वेद करते हैं। वत्सनाभ सर्वोत्तम स्वेदन द्रव्य (डिफोरेटिक) है। स्वेदन और स्तम्भन एक दूसरे के पूर्णतः विपरीत हैं। स्वेदन अपतर्पक है और स्तम्भन संतर्पक।"

बहुत से सान्निपातिक रोगों में वत्सनाभ लाभ पहुंचाकर रोगियों के प्राणबचाता है। सूतराज रस, प्रताप लंकेश्वर रस, शीतभजीरस, लक्ष्मीनारायण रस आदि महत्वपूण रस योगों द्वारा वत्सनाभ अपनी कार्मुकता प्रकट करता है। मंजूषाकार कहते हैं—

श्लेष्मके वा श्वसनके सन्धिके दण्डके पुनः।
एका संजीवनी शस्ता किं पुनर्गगनान्विता।।

इस संजीवनी वटी नामक शार्गधरोक्त प्रसिद्ध योग का भी वत्सनाभ मुख्य घटक है।

ज्वर की यह प्रसिद्ध औषधि है। विशेषतः शोथ वेदना युक्त ज्वर में यह प्रयुक्त होता है। इसके सेवन से पसीना आता है, मूत्र आता है और नाड़ी की गति कम होती है तथा शोथ, पीड़ा और ज्वर कम होते हैं। जिन ज्वरों में वात और कफ की प्रधानता से इसे उपयोग में लाना चाहिये। मियादी ज्वरों में इसे नहीं देना चाहिए। विभिन्न कारणों से उत्पन्न होने वाले शीतपूर्व और दाहान्तज्वरों में यह लाभप्रद है। जिस ज्वर में भीतर अधिक गर्मी मालूम पड़ती हो, नाड़ी बहुत तेज चलती हो, अत्यधिक प्यास और हृदय की गति बहुत तेज हो, पेट में आफरा और अजीर्ण हो, पसीना न आता हो और शारीरिक तापांश बहुत बढ़ा हुआ हो, रोगी कास, हस्तपादकम्प और शिरःशूल से बहुत बेचैन हो और रोगी को किसी तरह शान्ति, चैन न आता हो उसे बहुत घबराहट और मृत्यु का डर हो सारे शरीर में वातिक वेदनायें होती हों, मुखमण्डल लाल हो रहा हो, त्वचा खुश्क और गर्म हो और गाढ़े रंग का मूत्र आ रहा हो ऐसी स्थिति में वत्सनाभ को विधिपूर्वक सेवन कराने से शीघ्र ही सब लक्षण और उपद्रव शान्त हो जाते हैं। मृत्युञ्जय रस, त्रिभुवनकीर्ति रस, आनन्दभैरव रस, हिंगुलेश्वर रस आदि अच्छे वत्सनाभयुक्त ज्वरहर रस योग है, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। वातप्रधान ज्वर में इसे पिप्पली, शुद्ध हिंगुल, अदरखस्वरस एवं मधु के साथ देना श्रेयष्कर है—

पिप्पली विषसंयुक्तं दरदं परिशीलितम्।
मध्वार्द्रकरसेनेह हन्ति वातज्वरं द्रुतम्।।

दुर्जलज्वर एवं सान्निपातिक ज्वर में शुद्ध वत्सनाभ को शुद्ध हरताल, कज्जली एवं काली मिरच के साथ देना हितकर है—

मरिचंकज्जलीयुतं विषान्वितं च तालकम्।
समं विमर्द्य वारिणा वटी तु गुञ्जसंमिता।।
कृता निषेविता ततः प्रलापमोहसंयुतम्।
निहन्ति दुर्जलज्वरं ज्वरं च सान्निपातिकम्।।
—र०त०

सन्निपात में शिवताण्डव रस लाभप्रद है। इस महत्वपूर्ण रस का आगे विविध कल्प स्तम्भ में वर्णन है। फुफ्फुसशोथ (निमोनिया) में प्रारम्भ के दो दिनों में जब ज्वर बहुत तीव्र हो और रोगी का मुखमंडल लाल दिखाई देता हो और भयंकर कष्टदायक कास के साथ श्वास की अधिकता हो तो वत्सनाभ के प्रयोग से रोग का प्रभाव कम हो जाता है। इस रोग में इसे त्रिकटुचूर्ण, शु0 टङ्कण एवं रस सिंदूर के साथ देना हितावह है। जीर्णज्वर में बच, चन्दन और लोध्र के साथ यह लाभप्रद कहा गया है—

वचा चन्दन लोध्राढ्यं विषं क्षौद्रेण शीलितम्।
समाख्यातं विशेषेण जीर्णज्वर विनाशनम्।।

—र० त० 24

वत्सनाभ कफघ्न है और अल्पमात्रा में श्वासकेन्द्र को उत्तेजित करता है अतः श्वास कास में दिया जाता है। इसके द्वारा बनाया गया "अमृत रसायन" (र०त०) योग कास श्वास एवं क्षय में लाभ करता है। प्रतिश्याय युक्त श्वास में कफकेतु रस लाभप्रद कहा गया है। वातेभसिंहरस (सि० भै० मञ्जूषा) कास श्वास बलास नाशन में दक्ष है जिसका वर्णन आगे है।

अशुद्ध वत्सनाभ हृदयावसादक है किन्तु शोधित वत्सनाभ हृदयोत्तेजक है। डा० केस तथा म्हासकर के अध्ययन के अनुसार गोमूत्र के द्वारा वत्सनाभ का हृदयावसादक प्रभाव नष्ट होकर यह हृदय के लिए बलदायक हो जाता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा के कथनानुसार गोदुग्ध में शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ हृदय को बल देता है तथा रक्तभार को बढ़ाता है। अतः कहा जा सकता है कि वत्सनाभ का हृदयावसादक गुण अवश्य हानिकारक है किन्तु आयुर्वेदीय शोधन विधान से यह हृदयावसादक गुण बहुत कम अथवा नष्ट हो जाता है।

कंठ (गला), श्वास नलिका, फुफ्फुस, हृदय आदि शरीर में कहीं भी शोथ हो यह उसे कम करता है। उपद्रव युक्त शोथरोग का इसके योग से बना पञ्चामृत रस पुनर्नवाकषाय किंवा आर्द्रकस्वरस के साथ सेवन करने से शमन होता है—

पुनर्नवाकषायेण रसोऽयं वार्द्रकद्रवैः।
विविधोत्थानसंस्थानं शोथं हन्त्याशु सर्वगम्।।

यह दीपन-पाचन, शूलप्रशमन, रुचिकारक, एवं यकृदुत्तेजक होने से अग्निमांद्य, शूल, यकृत, प्लीहा विकार आदि बहुत से उदर रोगों में हितावह है। जयावटी, रामबाणरस, आनन्द भैरव रस आदि योग पाचन संस्थान के रोगों में उपयोग में लाये जाते हैं। कुछ अन्य भी प्रयोग हैं—

व्योषताप्रसमायुक्तं विषं तु परिशीलितम्।
वातशूलं तथा गुल्मं विनिहन्ति सुदारूणम्।।
सर्जिकाक्षारसंयुक्तं सव्योषं परिशीलितम्।
विषं खलु समाख्यातं परं गुल्मप्रणाशनम्।।
जन्तुघ्न दाडिमशिफाशतपुष्पायुतं विषम्।
शीलितं नाशयत्याशु कृमिरोगं सुदारुणम्।।
त्रिक्षारशरपुंखाढ्यं कणामूलयुतं विषम्।
शीलितं मात्रया नित्यं मतं प्लीहनिषूदनम्।।
सकफां बहुरक्तां वा स्वल्परक्तामुपक्रमे।
प्रवृद्धमलवेगाढ्यां विनिहन्ति प्रवाहिकाम्।।

—र० त०

यह मूत्रजनन है तथा मूत्र में शर्करा की मात्रा को कम करता है। नाड़ी दौर्बल्य के कारण उत्पन्न बहुमूत्र, शय्यामूत्र आदि विकारों को यह दूर करता है। जयावटी को प्रमेहहर कहा गया है—

जयावटी विशेषतः प्रमेहकासपाण्डुनुत्।

अश्मरी मूत्रकृच्छ्रहर अन्य प्रयोग हैं, जो इस प्रकार है—

रजनीगोक्षुरद्राक्षायुतं युक्तं विषंद्रुतम्।
गोक्षुरस्य कषायेण मूत्रकृच्छ्रप्रणाशनम्।।
पाषाणभेदाश्मजतु यवक्षारसमन्वितम्।
अमृतं शीलितं हन्ति त्वश्मरीमतिदारूणाम्।।

कुष्ठ चिकित्सा में रसरत्नसमुच्चयकार ने वत्सनाभ युक्त कई योग कहे हैं। कतिपय कुष्ठघ्न योग हैं जो सदानन्द शर्मा ने कहे हैं—

त्रायन्तीवायसीमूल गायत्रीराजपादपैः।
श्रृतैर्विषं शीलितं तु ख्यातं कुष्ठ निषूदनम्।।

—र० त०

त्रायन्ती त्रायमाणा। वायसीमूलं- काकाह्वा चैव वायसीं इति निघन्टु। गायत्री खदिरः, राजपादपः आरग्वधः।

—प्रसादनी व्याख्या

करवीर करञ्जार्क निम्बपत्रनिशायुतम्।
रक्तचन्दन मंजिष्ठासप्तपर्णवचान्वितम्।।
मालतीपत्र संयुक्तं विषं तालशिलायुतम्।
प्रलेपेन निहन्तीह व्रणान् कुष्ठसंमुद्भवान्।।
—र० त०

इस महाव्याधि में इसका सेवन निरन्तर एवं दीर्घकाल तक करना चाहिये। आचार्य वाग्भट ने तीन माह तक इसके नियमित सेवन के लिए कहा है—

मासत्रयप्रयोगेण कुष्ठान्यष्ट हरे द्विषम्।
—र० र० स०

शुक्र स्तम्भक होने से इसके विषय में कहा गया है—

षण्मासस्य प्रयोगेण कामरूपो भवेन्नरः।
संवत्सर प्रयोगेण सर्वरोगान् व्यपोहति।।
—र०र०स०अ० 29

"अमृत रसायन" नामक इसके प्रयोग के विषय में कहा गया है—

क्लैव्यापहं विशेषेण शुक्रतारल्यनाशनम्

और "विषरसायन" की प्रशस्ति इस प्रकार गाई गई है—

कर्त्तुं जीवनसाफल्यं विहर्तुं ललनाकुले।
यौवनानन्दमाहर्तुमिदं सेव्यं रसायनम्।।
—र० त०

अल्प मात्रा में यह बल्य एवं बृंहण भी है। विष रसायन के विषय में कहा गया है—

प्राणाचार्यैः समाख्यातं नाम्ना विषरसायनम्।
बल्यं वर्ण्यं परं वृष्यं नानारोगनिषूदनम्।।

और अमृत रसायन के विषय में भी—

रसायनमिदं रम्यं दीपनं बृंहणं परम्।
बलसञ्जननञ्चैव रतिशक्तिविवर्धनम्।।

यह आर्तवजनन होने से नष्टांर्तव में भी दिया जाता है। "विषस्य विषमौषधम्" के अनुसार इसकी विषघ्नता के लिए कहा गया है—

कुष्ठैलावाकुचीमांसीदेवदारूसमन्वितम्।
विषं पानेन लेपेन विषं नश्यति दारुणम्।।

शुद्ध वत्सनाभ को तत्तद् रोगनाशक औषधियों के साथ मिलाकर प्रयोग करने से यह योगवाहि धर्म के कारण सब प्रकार के भयंकर रोगों को नष्ट करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से वत्सनाभ चौथे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। शुद्ध वत्सनाभ थोड़ी मात्रा में देने से कुष्ठ, श्वित्र को दूर करता है। यह कामशक्ति को बढ़ाता है, आमाशय, यकृत् और मस्तिष्क को ताकत देता है, खून को साफ करता है, कफ को निकाल देता है और वायु को बिखेरता है। अर्द्धांगवात, जलोदर, जवान का तुतलाना, दांतों का दर्द और आंख की बीमारियों में भी यह लाभप्रद है। मगर इनमें इसका उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये।

आधुनिक मत—डा० मुडीनशरीफ का कथन है कि यह बनस्पति ब्रिटिश और भारतीय फारमाकोपिया में सम्मत मानी गई है। कुछ साल पहले मैंने स्वयं बच्छनाग की सफेद जाति का थोड़ी मात्रा में उपयोग किया। मैं यह कह सकता हूँ कि इसका भीतरी प्रयोग इतना खतरनाक नहीं है जितना कि यूरोप में पैदा होने वाले वच्छनाग का है। मैं यह कहने में नहीं हिचकिचाऊंगा कि यह भारत की अत्यन्त उपयोगी औषधियों में से एक है। मधुमेह में इससे बहुत लाभ होता है। जिस दिन से इस को उपयोग में लाया जाता है उसी दिन से अधिक मूत्र का आना बन्द हो जाता है और शक्कर भी कम हो जाती है। अनैच्छिक वीर्य स्राव और अनैच्छिक मूत्रस्राव पर भी इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव होता है। पक्षाघात और कुष्ठ रोगियों पर भी यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। एकोनाइट फेरोक्स के गुण इस औषधि की अन्य जातियों के गुणों से उत्तम होते हैं और इसका प्रभाव भी निश्चित और एक सरीखा होता है।

बोस, महस्कर और केस के मतानुसार यह वनौषधि पेट में जाकर सबसे पहले हृदय की गति को धीमी करती है फिर रक्त के दबाब को कम करती है। इसके पश्चात् यह परिवर्तीय रक्त बहाव को तेज करती है। इसके बाद हृदय की गति कुछ तेज होती है और रक्तभार भी बढ़ता है। इसे गोमूत्र में शुद्ध कर लेने पर यह हृदय की गति को घटाने के बजाय बढ़ाती है और रक्तभार को बढ़ाती है। अगर गोमूत्र के बजाय गाय के दूध में इसको शुद्ध किया जाय तो यह परिवर्तन और भी साफ रूप से दृष्टिगोचर होता है।

डा० वा० ग० देसाई के अनुसार यह रक्त में शीघ्र ही प्रवेश करता है तथा रक्ताभिसरण पर इसकी प्रबल क्रिया होती है। डिजिटेलिस के समान यह हृदयपेशी का और हृदय में जाने वाली वातनाड़ियों का उत्तेजक है। प्रारम्भ में वात नाड़ियों को अधिक उत्तेजना मिल जाने से हृदय की गति मन्द होती है। हृदय का विश्राम काल बढ़ता है फिर रक्त दबाब कम हो जाता है। तत्पश्चात् (मात्रा अधिक हो तो) हृदय अनियमित कार्य करने लगता है तथा नाड़ी बिगड़ती है और श्वासोच्छवास क्रिया मन्द होती है।

इसके एलोपैथिक योगों के लिए मेटीरिया मेडिका देखना चाहिये।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—(मर्मस्थानों पर लेपन करें)

1. गलगण्ड—वत्सनाभ को नीम पत्र स्वरस में घिसकर लेप करने से गलगण्ड, गण्डमाला, कर्णमूलशोथ, सन्धिवात आदि रोगों में लाभ होता है।

2. शोथरोग—(क) वत्सनाभ, बहेड़ा, पुनर्नवामूल तथा सोंठ के चूर्ण को गोमूत्र में पीस लेप करने से शोथ का शमन होता है।

(ख) वत्सनाभ और अकरकरा 2-2 भाग और सेंधानमक 5 भाग सबको पानी के साथ पीस गरम कर लेप करने से हाथ पैरों के सन्धिशोथ में लाभ होता है। जीर्ण आमवात में भी यह उपयोगी है।

3. वृश्चिकदंश—वत्सनाभ को शुद्ध तिल तैल में घिसकर लेप करने से बिच्छू के काटने से उत्पन्न पीड़ा शान्त होती है। इसे दंश स्थान पर तत्काल लगाना चाहिये।

4. लूताविष—सब प्रकार के लूता (मकड़ी) विष को नष्ट करने के लिए थोड़े से वत्सनाभ को आक के दूध में घिसकर लेप करना चाहिए।

5. सर्पविष—वत्सनाभ को कदलीकन्द स्वरस में पीसकर उसमें थोड़ा घृत मिलाकर विष निकालने के बाद लेप करना चाहिये। इससे लाभ होता है।

6. दद्रु—वत्सनाभ, कुचिला और नीलाथोथा को दही में घिसकर या पीसकर लेप करने से दाद मिटता है। यह विसर्प में भी लाभप्रद है। किन्तु इन दोनों रोगों में यह लेप दो सप्ताह तक बराबर प्रतिदिन लगाते रहना आवश्यक है।

7. कर्णशूल—(क) वत्सनाभ को अदरख के स्वरस में घिस कर तत्काल कान में डालने से दर्द नष्ट हो जाता है। वत्सनाभ को गोमूत्र में घिसकर कान में डालने से भी लाभ होता है।

(ख) वत्सनाभ के छोटे टुकड़े को कान में रखने से भी कान का दर्द मिटता है। वात का शोषण होकर कान में उष्णता की वृद्धि होने से कर्णशूल मिटता है तथा बहिरापन भी दूर होता है। जब चाहे तब टुकड़े को निकाल कर पुनः आवश्यकतानुसार इसे कान में रखा जा सकता है।

8. वातशूल—(क) वत्सनाभ विष 30 ग्राम को जौकुट कर 500 मि०लि० अलसी के तैल में विधिवत पाक कर मर्दन करने से सब प्रकार की बातज वेदना का शमन होता है।

(ख) वत्सनाभ यवकुट किया हुआ 12 ग्राम और

गन्धक 12 ग्राम को 250 ग्राम तिल तैल में अच्छी तरह उबाल लेना चाहिये जब दोनों द्रव्य जल कर काले हो जावे तब समझ लेना चाहिये कि तैल सिद्ध हो गया है। फिर इस तैल को छानकर बोतल में भरकर व्यवहार करना चाहिये। यह तेल सन्धिशोथ, सन्धिशूल, आमवात, पक्षाघात, हनुस्तम्भ, शोथ आदि में मालिश के लिए लाभदायक है। यह तैल आंख में न लगने पावे।

9. नेत्ररोग—(क) नूतन मोतियाबिन्द में अर्थात् मोतियाबिन्द उतरने के प्रारम्भ में शुद्ध वत्सनाभ को बिजौरा नीबू के स्वरस में घोटकर उसमें विष के बराबर शक्कर मिलाकर आंखों में अंजन करने से मोतियाबिन्द बढ़ने नहीं पाता है।

(ख) शुद्ध वत्सनाभ, हल्दी, दारूहल्दी, पिप्पलीचूर्ण और शुद्ध काला सुरमा एकत्र बारीक पीसकर अंजन बनालें। इस अंजन को नेत्रों में लगाने से नया मोतियाबिन्द नष्ट हो जाता है।

(ग) वत्सनाभ में इक्कीसबार आंवलों के स्वरस की भावना देकर उसमें विष के बराबर शंखचूर्ण मिलाकर आंखों में आंजने से तिमिर नामक नेत्ररोग में लाभ होता है।

(घ) वत्सनाभ चूर्ण में गोमूत्र की सात बार भावना देकर उसके बराबर पिप्पली चूर्ण मिलाकर अंजन करने से काचरोग नष्ट होता है।

(ङ) सात बार गोमूत्र से भावित वत्सनाभ चूर्ण को स्त्री दुग्ध में पीसकर नेत्रों में लगाने से भी काचरोग नष्ट होता है।

(च) वत्सनाभ को भृंगराज स्वरस की भावना देकर कदलीकन्द के स्वरस में घिसकर नेत्र में डालने से नया फूला नष्ट होता है।

(छ) वत्सनाभ को भांगरा के स्वरस में घिसकर डालने से रतौंधी (रात्र्यन्ध) रोग मिटता है।

वत्सनाभ युक्त इन अंजनों को लगाने के बाद नेत्र को बार-बार शुद्ध जल से धोना चाहिये।

10. कर्णमूल शोथ—वत्सनाभ को नीबू के रस में घिसकर कर्णमूल स्थान पर लेप करें। इससे कर्णमूलगत शोथ का शमन होता है।

11. कुष्ठ—(क) बछनाग, बरने की छाल, हल्दी, चित्रक, गृहधूम, कालीमिर्च और दूर्वा इनका चूर्ण तथा आक और डंडा थोहर का दूध समभाग एकत्र पीस लें। इसके लेप से समस्त प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं।

(ख) वत्सनाभ, लालचन्दन, मंजीठ, सप्तपर्ण, बच, कनेर पत्र, करञ्जपत्र, आक के पत्ते, निम्बपत्र, हरिद्रा चूर्ण, चमेली के पत्र, हरताल और मैनसिल इन सबको मिलाकर पीसकर लेप करते रहने से कुष्ठजन्य व्रण शान्त होते हैं।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

1. उदरशूल—कढ़ाई में 10 लिटर जल में 24 ग्राम वत्सनाभ के टुकड़े और आक के पत्र, पुष्प और मूल के छोटे टुकड़े कर पकावे, 6-7 लिटर जल रह जाने पर कड़ाई से नीचे उतार कर वत्सानाभ के टुकड़ों को निकाल लें इन्हें सुखाकर चूर्ण बनालें। यह चूर्ण 125 मि0ग्रा0 गरम जल से दें। सभी प्रकार के उदरशूल को दूर करता है।

2. विविध ज्वर—(क) शुद्ध वत्सनाभ, श्वेतवच, चन्दन तथा लोध का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ सेवन करने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है। यह योग उचित पथ्य के सांथ निरन्तर कुछ समय तक सेवन करने से लाभ होता है।

(ख) शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण 15 मि0ग्रा0 पिप्पली चूर्ण 500 मि0ग्रा0 और शुद्ध हिंगुल 60 मि0ग्रा0 को अदरख स्वरस और मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से वात प्रधान ज्वर शान्त होता है।

(ग) शुद्ध वत्सनाभ, कालीमिर्च, कज्जली, तथा शुद्ध हरताल प्रत्येक समान भाग लेकर खरल में जल के

साथ घोटकर 120 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें इन गोलियों के सेवन से प्रलाप और मोहयुक्त सन्निपातिक ज्वर तथा दुर्जलज्वर आदि ज्वरों का शमन होता है।

(घ) शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध टंकण, पीपरामूल, त्रिफला, कपूर एवं जायफल का चूर्ण कफजन्य ज्वर या वातकफ ज्वर, प्रतिश्याय कास आदि में उपयोगी है। इससे अंगमर्द, स्त्यैमित्य, जाडय आदि लक्षणों का उपशम होता है।

(ङ) शुद्ध वत्सनाभ एक भाग, कालीमिर्च चूर्ण तीन भाग और अरने उपलों की भस्म सोलह भाग एकत्र अच्छी तरह खरल कर रखें। यह 500 मि0ग्रा0 की मात्रा में अदरख रस के साथ देने से लाभ होता है। सन्निपातज्वर में यह उपयोगी है।

(च) शु0 वत्सनाभ, सुहागा खील, पांचों नमक, त्रिफला, त्रिकटु, अभ्रक भस्म, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गन्धक समभाग लेकर सभी द्रव्यों का खरल में महीन चूर्ण कर 500 मि0ग्रा0 की गोलियां जल के संयोग से बनालें। यह जीर्ण हठी ज्वर को शीघ्र नष्ट करने वाला योग है।

(छ) शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, जवाक्षार, सज्जीक्षार बंगभस्म और काली मिर्च का चूर्ण समभाग लेकर एकत्र नीबू के रस में खरल कर 250 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें। यह रस कामधेनु का सर्वज्वरहर रस है। यह समस्त ज्वरों का नाशक है।

3. कास-श्वास—(क) शु0 वत्सनाभ 10 ग्राम, हल्दी 140 ग्राम, सुहागे का फूला और पिप्पली 100-100 ग्राम सबको एकत्र मिला सूक्ष्म चूर्ण कर लें। दिन में तीन बार 125 मि0ग्रा0 चूर्ण ताम्बूल के बीड़े के साथ लेने से कफ सरलता से बाहर निकल जाता है और नई उत्पत्ति रुक जाती है। यह कास-श्वास के रोगियों के लाभप्रद योग है।

(ख) शु0 वत्सनाभ एक भाग, सुहागा की खील दो भाग और काली मिर्च 12 भाग एकत्र खरल कर रखें। शहद के साथ 250 मि0ग्रा0 से एक ग्राम तक सेवन से कफ का नाश होता है, भूख बढ़ती है।

(ग) शु0 वत्सनाभ 2 भाग, त्रिकटु 5 भाग, चित्रक 2 भाग, हरड़ 12 भाग और शु0 गूगल 24 भाग लेकर गूगल में अन्य सभी द्रव्यों का महीन चूर्ण मिलाकर खूब खरल कर 500 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें। एक-एक गोली मुख में रख चूसने से कफ नष्ट होता है और कास श्वास में लाभ होता है।

4. गुल्म रोग—शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण और सज्जीखार मिलाकर सेवन करने से गुल्मरोग मिटता है।

5. कृमिरोग—शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण और विडंग चूर्ण मिला कर सेवन करने से उदरकृमियों का नाश होता है।

6. मूत्रकृच्छ्र—शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण और हरिद्रा चूर्ण को गोखरू के क्वाथ से सेवन कराने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

7. अश्मरी—वत्सनाभ विष चूर्ण, पाषाण भेद चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत तथा यवक्षार को मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करने से अश्मरी समाप्त होती है। शुद्ध विष 15 मि0ग्रा0 पाषाण भेद दो ग्राम शु0 शिलाजीत एवं यवक्षार 500-500 मि0ग्रा0 की एक मात्रा होनी चाहिये।

8. प्लीहोदर—शु0 वत्सनाभ चूर्ण में पिप्पलीमूल चूर्ण, सरसों का चूर्ण और यवक्षार, सज्जीक्षार, टंकण क्षार मिलाकर सेवन करने से बढ़ी हुई तिल्ली ठीक होती है।

9. कुष्ठ—शु0 वत्सनाभ को त्रायमाण, मकोयमूल, खैर तथा अमलतास की फली के कषाय के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के कुष्ठों में आराम होता है।

10. वाजीकरणार्थ—(क)—शु0 वत्सनाभ चूर्ण, शतावरी, विदारीकन्द कौंच के बीजों का चूर्ण और द्राक्षा को शहद के साथ चाटने से शुक्र धातु की उत्पत्ति होती है तथा वृद्धि होती है।

(ख) शुद्ध वत्सनाभ, लौंग, जायफल, जावित्री को पान के रस में घोटकर 60 मि0ग्रा0 की गोलियां बनाकर

सेवन करें तो उत्तम स्तम्भन होता है। इसमें सोंठ द्वारा भावित यदि कुछ अहिफेन मात्रा युक्त मिलाकर उपयोग में लाया जाय तो अत्यधिक स्तम्भन होता है। परन्तु इन प्रयोगों के सेवन से पूर्व इनकी पात्रता अपात्रता का पूरा ध्यान रखने की आवश्यकता है।

11. अर्धावभेदक—वत्सनाभ को भांग के साथ सेवन करने से अर्धावभेदक नामक शिर:शूल मिटता है।

12. वातशूल—(क) शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण, (सोंठ, मिर्च, पीपल) और ताम्र भस्म क्रमशः 15 मि0ग्रा0, 3 ग्राम एवं 30 मि0ग्रा0 मिलाकर सेवन करने से वातिक शूल मिटता है। इसके सेवन से गुल्म में भी लाभ होता है।

(ख) शु0 वत्सनाभ, यवक्षार, कपर्दभस्म, सैन्धव और त्रिकटु समभाग का चूर्ण पान के रस में खरल कर 120 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें। एक-दो गोलियां देने से लाभ होता है।

(ग) धनुर्वात में शुद्ध वत्सनाभ की पूर्ण मात्रा बार-बार देने से मांसपेशियों की उग्रता का दमन होकर वे शिथिल बनती हैं और रोग के शमन में सहायता मिलती है।

विविध कल्प—

कतिपय वत्सनाभयुक्त रस रसायन—

1. अमृत रसायन—गोमूत्र से शुद्ध वत्सनाभ, आंवलों के स्वरस के सौ पुट दिया हुआ कान्तलौह, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण सिन्दूर, रजत भस्म और वंगभस्म प्रत्येक 20-20 ग्राम लेकर तथा कत्था सोंठ चूर्ण 30-30 ग्राम लेकर सबको एकत्र खरल में घी कुआर के स्वरस में अच्छी तरह मर्दन करने के बाद गोली बनाने योग्य होने पर 240 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें। इसे अमृत रसायन कहा जाता है। यह अमृत रसायन अनेक रोगों को नाश करने वाला उत्तम रसायन है। यह दीपन गुणयुक्त बृंहणयोग है। इसके सेवन से बल की वृद्धि होती है तथा स्त्री संभोग शक्ति बढ़ती है। इसके सेवन से वीर्य की दुर्बलता और दोष दूर होकर वह सन्तानोत्पादन करने के योग्य हो जाता है। इसके सेवन से प्रमेह, अतिसार, ग्रहणी, अग्निमांद्य, कास, श्वास, क्षय, कुष्ठ, स्मृतिमांद्य आदि रोग नष्ट होते हैं। इस दिव्य रसायन को गोघृत, मिश्री और शहद के साथ मिलाकर एक-एक गोली निरन्तर एक वर्ष तक सेवन करने से बुढ़ापा तथा अतिवृद्ध कफ प्रकोप शान्त हो जाता है।

—र0 त0

2. विष रसायन—गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ, रससिन्दूर, शुद्ध हिंगुल, रजतभस्म, पारद गन्धक योग से बनी हुई ताम्रभस्म प्रत्येक 10 ग्राम, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर तथा चित्रकमूल चूर्ण प्रत्येक 5-5 ग्राम लेकर एकत्र खरल में जल के साथ पीस कर 240 मि0ग्रा0 की गोलियां बनाकर सुखालें। यह विष रसायन बल्य, वृष्य, वर्ण्य तथा अनेक रोगों को नष्ट करने वाला है। अग्निमांद्य, उदरशूल, अजीर्ण, आध्मान, यकृत् प्लीहोदर आदि रोग नष्ट होते हैं। युवावस्था का आनन्द लेने वाले और अधिक स्त्रियों से रमण स्त्री से अधिक रमण की इच्छा वाले मनुष्य को इसका सेवन अवश्य करना चाहिये।

—र0 त0

3. वातेभ केशरी रस—शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध सोमल, कालीमिर्च, लौंग, जायफल, छुहारे की गुठली, करीर की कोंपलें प्रत्येक 10-10 ग्राम, अफीम और मिश्री 20-20 ग्राम सबको एकत्र खरल में बड़के दूध में मर्दन कर सरसों के बराबर गोलियां बनालें। एक से तीन गोली दिन में दो-तीन बार दें। इसके सेवन से श्वसनक सन्निपात ज्वर (निमोनिया) मिटता है। इस रोग में इसे मिश्री के साथ दें। कास, श्वास और कफ प्रधान सन्निपात में शहद के साथ दें। मरणासन्न बेहोशी की अवस्था में 125-125 मि0ग्रा0 सफेद कत्था और अकरकरे के साथ

देने से कफप्रकोप शान्त हो कर रोगी होश में आ जाता है और उसकी रूकी हुई जबान खुल जाती है। हिचकी में मूली के बीजों के साथ, अतिसार में छोटी हरड़, सौंफ और जीरे के साथ, रक्तप्रदर में मधु या घृत के साथ, पित्तज्वर में शक्कर के साथ, नपुंसकता में दूध की मलाई के साथ, सुजाक में गुलकंद के साथ और बाजीकरण के. लिए जायफल और कस्तूरी के साथ देने से यह अच्छा काम करता है। *—सि0 भै0 मञ्जूषा*

4. कफ केतु रस—शुद्ध वत्सनाभ, पिप्पली चूर्ण, शंख भस्म और शुद्ध टंकण सभी समान मात्रा में लेकर अदरख के स्वरस में तीन दिनों तक मर्दन करें। फिर 60-60 मि0ग्रा0 की गोलियां बनाकर सुखाकर रखलें। यह कफकेतु रस प्रतिश्याय, कास, तथा कण्ठ के रोगों को नष्ट करता है। यह वात प्रकोप जन्य किंवा कफवात प्रकोप जन्य प्रतिश्याय में जब ज्वर, कास, पीड़ा एवं स्तब्धता हो इसे अदरख के रस एवं मधु के साथ देना चाहिए। *—र0 त0*

5. हिंगुलेश्वर रस—शुद्ध वत्सनाभ शु0 हिंगुल और पिप्पली चूर्ण समान मात्रा में लेकर खरल में जल के साथ मर्दन कर 60 मि0ग्रा0 की गोलियां बनाकर रखलें। यह हिंगुलेश्वर रस आमवात, आमवातिक ज्वर तथा वातिक ज्वर में लाभप्रद है। नवज्वर, जीर्णज्वर एवं सविराम ज्वर में भी यह लाभप्रद है। *—र0 त0*

6. पञ्चामृत रस—शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक 10-10 ग्राम, काली मिरच तथा शुद्ध टंकण 30-30 ग्राम लेकर एकत्र खरल में जल से पीस लें। जब गोली बनने योग्य हो जाय तो 120-120 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें। यह पंचामृत रस कहलाता है। विविध कारण जन्य और विविध लक्षण युक्त शरीर के विविध भागों में होने वाले ज्वरातिसार सहित शोथ को यह नष्ट करता है। जलोदर, शिरःशूल, पीनस, गलग्रह, नासारोग एवं कण्ठरोग भी इसके सेवन से मिटते हैं। शोथ एवं शिरःशूल अदरख के स्वरस के साथ सेवन से मिटते हैं। *—र0 त0*

7. शिवताण्डव रस—शुद्ध वत्सनाभ, रससिंदूर, शु0 पारद, शुद्ध गन्धक, शु0 हरताल प्रत्येक 10-10 ग्राम और काली मिर्च चूर्ण 40 ग्राम लेकर सबको एकत्र खरल में अदरख के स्वरस में अच्छी तरह मर्दन कर गोली बनने योग्य होने पर 120-120 मि0ग्रा0 की गोलियां बनाकर सुखाकर रख लें। यह शिवताण्डव रस सन्निपात की उत्तम औषधि है। *—र0 त0*

8. मृत्युंजयरस—शुद्ध वत्सनाभ एक भाग में दो भाग शुद्ध हिंगुल मिलाकर खरल में तीन दिनों तक अदरख के रस में खूब मर्दन कर रखें। अब इसमें वत्सनाभ के बराबर भाग शुद्ध गन्धक, पिप्पलीचूर्ण, कालीमिर्च चूर्ण और सुहागा खील प्रत्येक मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर जल के संयोग से 60-60 मि0 ग्राम की गोलियां बनालें। इसको मृत्युंजय रस कहा जाता है। यह रस वातज्वर, श्सनक ज्वर (न्युमोनिया), आध्मान अजीर्णयुक्त सन्निपात ज्वर, विषमज्वर आदि को दूर करता है। इसके अतिरिक्त सुजाक की प्रथम अवस्था में जब शोथ, लालिमा और वेदना अधिक हो तब भी यह लाभ पहुंचाता है। *—र0 त0*

वत्सनाभ युक्त अन्य रस योग—

क्र0	नाम	आधार ग्रन्थ	रोगानुपान
1.	समीरपन्नग रस	यो0 र0	अदरक के रस में वातरोगों में दें।
2.	श्वास कुठार रस	भै0 र0	कण्टकारी क्वाथ से श्वास कास में दें।
3.	लक्ष्मीनारायण रस	र0. यो0 सा0	धातुगत ज्वर में मधु से
4.	प्रतापलंकेश्वर रस	यो0 र0	सूतिका रोग में दशमूल क्वाथ से

5.	त्रिभुवन कीर्ति रस	यो0 र0	ज्वर में मधु, आर्द्रक स्वरस से
6.	आनन्द भैरव रस	र0 सा0 सं0	अदरक रस व मधु से ज्वर अतिसार प्रतिश्याय में दें।
7.	रामबाण रस	भै0 र0	आम विकार में उष्ण जल से
8.	महाज्वरांकुश रस	शा0 सं0	आर्द्रक स्वरस से विषम ज्वर में
9.	अग्निकुमार रस	भै0 र0	अग्निमांद्य में तक्र के साथ दें
10.	अजीर्ण कण्टक रस	भा0 प्र0	अग्निमांद्य में तक्र के साथ दें
11.	अश्वकंचुकी रस	सि0यो0 सं0	ज्वर, कास, श्वास, क्षय, वातशूल आदि में आर्द्रक स्व से
12.	वातगजांकुश रस	र0 सा0 सं0	वात रोगों में रास्नादि या दशमूल क्वाथ से दें।
13.	महावात विध्वंसन रस	र0 च0	वात रोगों में सुखोष्ण जल से या आर्द्रक स्वरस मधु साथ दें।
14.	सूतराज रस	र0यो0सा0	ज्वरातिसार में मुस्तक क्वाथ से ज्वर में आद्रक स्वरस वात रोगों में चित्रक त्रिकटु क्वाथ (निर्बल हृदय वालों न दें)
15.	कस्तूरी भैरव रस	र0 रा0 सु0	आन्त्रिक ज्वर में ब्रह्मी क्वाथ से सूतिका रोगों में दश क्वाथ से दें।
16.	रत्नगिरि रस	आ0नि0मा0	धातुगत ज्वर में सिताधान्यक फाण्ट से
17.	दुर्जल जेता रस	यो0 र0	दुष्ट जलवायुजनित ज्वर में जल के साथ
18.	ज्वरमुरारि रस (गदमुरारि रस)	नि0 र0	आमप्रधान जीर्ण ज्वर में तुलसी स्वरस से विषम ज्वर में सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ के साथ दें।
19.	नित्योदित रस	र0 रा0 सु0	अर्श में घृतयुक्त दें।
20.	कृमिकुठार रस	नि0 र0	कृमि रोग में मधु के साथ तीन दिन देकर विरेचन दें

अन्य भी कई योगों का अवलोकन रस ग्रन्थों में करना चाहिये।

वटी—

1. संजीवनी वटी—शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध भिलावा, विडंग, शुण्ठी, पिप्पली, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, बच, गुडूची समस्त द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें और गोमूत्र की भावना देकर 120 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें। संजीवनी वटी एक गोली अदरख के रस के साथ सेवन करने से अजीर्ण व गुल्म रोग, दो गोली सेवन विषूचिका, तीन गोली सेवन से सर्पविष और चार गो सेवन से सन्निपात में लाभ होता है। "वटी संजीवनी ना संजीवयति मानवम्"।

—शा0

2. सूर्य प्रभावटी—शुद्ध वत्सनाभ, त्रिकटु, पीपलामूल, बच, चित्रक, हींग, जीरा, काला जीरा सबका समभाग चूर्ण को नीबू के रस और अदरख के रस की एक एक भावना देकर काली मिर्च जैसी गोलियां बनालें। यह सूर्य प्रभावटी प्रात: मन्दोष्ण जल के साथ सेवन करने से आठों प्रकार के शूल नष्ट होते हैं।

—यो० र०

3. हब्ब मुफीद—शुद्ध वच्छनाग 9 ग्राम और श्वेत मिर्च 9 नग दोनों के चूर्ण को एक बारीक कपड़े में पोटली बनाकर बकरी के एक लिटर 250 मि०लि० दूध में लटका कर पकावें। दूध का खोया हो जाने पर ज्वार की बराबर गोलियां बना लेवें। प्रात: सायं चार चार गोली बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से यक्ष्मा, कास एवं ज्वर में लाभ होता है। *—यू० चि० सा०*

4. जयावटी—शुद्ध वत्सनाभ, हरिद्रा, चूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, विडंग चूर्ण, निम्बपत्र चूर्ण, नागरमोथा चूर्ण, जयन्तीमूल चूर्ण सभी समभाग में लेकर एकत्र खरल में जल के साथ मर्दन करें। गोली बनाने के योग्य हो जाने पर इसकी 240–240 मि०ग्रा० की गोलियां बनालें। यह जटावटी कहलाती है जो प्रमेह, कास और पाण्डुरोग नाशक है। नवज्वर में तथा रक्तपित्त में भी यह लाभप्रद है। *—र० त०*

5. जयन्ती वटी—शु० वत्सनाभ, पाठा, रसगन्ध, वच, तालीसपत्र काली मिर्च, पीपल और नीम की छाल का समान चूर्ण लेकर सबको बकरी के मूत्र में घोटकर चने के बराबर (250 मि०ग्रा०) गोली बनाकर छाया में सुखा लें। एक-एक गोली सुबह शाम दें। यह सन्निपात ज्वर, विषम जवर, कास, कुंष्ठ, प्रमेह, भगंदर आदि रोगों में लाभप्रद है। *—र० सा० सं०*

6. दुग्धवटी—शुद्ध वत्सनाभ 12 भाग, शुद्ध अफीम 1 भाग, लौह भस्म 5 भाग, अभ्रक भस्म 60 भाग लेकर सबको एकत्र मिला गोदुग्ध के साथ अच्छी तरह मर्दन कर 100 मि०ग्रा०की गोलियां बनालेंऔर सुखा लें। एक-एक गोली सुबह-शाम दूध के साथ दें। शोथ में जब किसी दवा से आराम नहीं हो यह दें लाभ होगा। संग्रहणी, मन्दाग्नि, पाण्डु और विषमज्वर में भी यह लाभप्रद है।

—भै० र०

कुष्ठहर तैल—वत्सनाभ और सफेद कनेर की जड़ 160-160 ग्राम दोनों का चूर्ण गोमूत्र में पीसकर कल्क करें। फिर एक लिटर 280 मि०लि० सरसों का तैल और 5 लिटर 120 मि०लि० गोमूत्र तथा उक्त कल्क एकत्र मिलाकर मंद आंच पर पकावें।पाक होने पर नीचे उतारकर तुरन्त तैल निकाल लेवें। इस तैल के मर्दन से किट्टिभकुष्ठ, सिध्य, पामा, चर्मदल, विस्फोट कृमि आदि का नाश होता है। *—र० त० सा०*

ध्वजभंगहर लेप—1. वत्सनाभ, हड़ताल तबकी, सुहागा प्रत्येक 3 ग्राम 500 मि०ग्रा०, कूठ कडवी 12 ग्राम, तिल तैल 25 मि०लि०। चूर्ण योग्य द्रव्यों का महीन चूर्ण कर एकत्र मिला चमेली के ताजे पत्र स्वरस 250 मि०लि० में इतना खरल करें कि स्वरस शुष्क हो जावे। इसे शिश्न पर (मुण्ड तथा नीचे सीवन का भाग छोड़कर) रात्रि के समय लेप कर ऊपर से बंगला पान या एरण्ड पत्र बांध दिया करें। इससे शिश्न में दृढ़ता पैदा होती है।

—यू० चि० सा०

2. वच्छनाग, अकरकरा, गुजराती सिन्दूर 10-10 ग्राम आक का दूध 40 ग्राम गाय का मक्खन 100 ग्राम लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का चूर्ण कर आक के दूध और मक्खन के साथ एकत्र कड़ाई में डाल कर नीम की लकड़ी में तांबे का पैसा लगाकर उससे चार दिन तक खूब घोटकर फिर कुछ दिनों तक पड़ा रहने दें जिससे कि उसकी तेजी कम हो जाय। इसमें से दो ग्राम तक लेकर रात के समय शिश्न पर सीवन और सुपाड़ी को छोड़कर लेप करें और पान बांध दें। प्रात: गरम पानी से धो डालें। यदि शीत काल हो तो लेप को कुछ गर्म कर लगावें। इससे नपुंसकता मिटती है।

—ब० चन्द्रोदय

पेटेन्ट प्रयोगों में वत्सनाभ—

धूत पापेश्वर ने वातश्लैष्मिक ज्वर प्रतिश्याय एवं शिरःशूल के लिए एक बटीकल्प निकाला है जिसका नाम है ए फ्लू ओ सिल। इसमें त्रिकटु, पिपला मूल, शु0 हिंगुल, शु0 सुहागा, कज्जली आदि के साथ शु0 वत्सनाभ भी है।

हर्ब इण्डिया द्वारा निर्मित "त्वरित सीरप" मलेरिया रोधी और यकृत सुधारक योग है। इसमें कुटकी, चिरायता, नीम, सप्तपर्ण, पटोल पत्र आदि के साथ शु0 वत्सनाभ है।

झण्डु फार्मा के कोराजन कैपसूल महासुदर्शन चूर्ण, हिंगुल, टंकण, त्रिकटु, पिप्पलीमूल और वत्सनाभ से तैयार किये जाते हैं। एक-दो कैप0 दिन में तीन बार सेवन करने से जुकाम, शरीर दर्द व फ्लू में लाभ होता है।

शिल्पाकेम जो निमोनिया प्रकाश टेब0 एवं कैप0 का निर्माण करता है उसमें वत्सनाभ है। इसके अतिरिक्त जावित्री, जायफल, अकरकरा, लौंग, अद्रक आदि भी है। यह निमोनियां की हर अवस्था में लाभप्रद है।

डेप एफ-15 (डेप) बुखार एवं जुकाम की अच्छी दवा है। इसका वृक्क व यकृत पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। इसमें शु0 वत्सनाभ के अतिरिक्त हरमल, जटामांसी, चिरायता, टंकण आदि हैं।

आर्य औषधि फार्मा0 इन्दौर द्वारा विनिर्मित एक्रीमीन" टेब्स्युल प्रति 6 घन्टों से देनी चाहिये। यह ज्वरघ्न, कफघ्न, स्वेदल, वेदनाहर है। अतः इन्फ्ल्यूएन्जा एवं न्युमोनिया में लाभप्रद है। वालाक्षेप में विशेष गुणकारी है। इसमें शु0 वत्सनाभ और लवंग, जायफल, अकरकरा, सुहागा आदि हैं।

गैस्ट्रेक्स टिकिया (निर्माता-बान) में वत्सनाभ, हिंगु, विषतिन्दुक 20-20 मि0ग्रा0, मरिच, पिप्पली, इन्द्रयव, शंख भस्म, नागर, कपर्द भस्म में सब 30-30 मि0ग्रा0 है। इसकी दो-तीन टिकिया भोजनोपरान्त जल से देने से आध्मान, गैस में लाभ होता है। इसे रक्तार्श रोगी को न दें।

गर्ग वनौषधि भंडार, हरीश फार्मा, ज्वाला आयु भवन, धन्वन्तरि कार्यालय आदि द्वारा जो नपुंसकत्व योग बनाया जाता है। इसमें भी वत्सनाभ डाला जाता इसके अतिरिक्त शिलाजीत, कुचला, रजत, ताम्र, हिंगु वैक्रान्त, ऐला केशर, अकरकरा आदि हैं। क्लैब्य उत्तम औषधि है। स्व0 श्री बी0 एस0 प्रेमी का योग इसकी एक-एक गोली के साथ बसन्त कुसुमाकर कामशक्ति केशरी की एक-एक गोली देने से बहुत होता है। ये योग शरद ऋतु में सेवनीय है।

ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़ द्वारा जो विबंध कैपसूल तैयार किये जाते हैं उनमें वत्सनाभ भी डाला है। जिससे यह अपचन जन्य एवं ज्वरोपरान्त विबन्ध भी लाभप्रद है।

अनुभूत प्रयोग—

1. वातशामक प्रयोग—वत्सनाभ, धतूरा अर्कजड़, तज, जायफल, अफीम, अजवायन, मालकां प्रत्येक समान भाग लेकर कल्क कर लें। कल्क से गुणा सरसों का तैल लेकर कलईदार, कढ़ाही में मन्द से तैल सिद्ध कर लें। इसके मर्दन से सन्धिवात से वाला दर्द शीघ्र मिटता है।

—वैद्य शास्त्री श्री ओंकारलाल

(धन्व0 दिस0 19

2. विषमज्वर की दवा—शुद्ध वत्सनाभ, रस 2-2 ग्राम करंज की गिरी 6 ग्राम, गिलोय सत्व 12 सब को एकत्र कर नीबू केरस में दो तीन दिनों तक कर 240 मि0ग्रा0 की गोलियां बनालें। ज्वर चढ़ने से एक-एक गोली थोड़ी-थोड़ी देर से (आवश्यकतानु शहद के साथ सेवन करने से विषमज्वर दूर हो जाता

—डा0 श्री रामप्रकाश अ

(वनौ0 रत्ना0 के लिए प्रे

3. **श्वासहर प्रयोग**—वत्सनाभ 10 ग्राम, सुहागा भूना हुआ 100 ग्राम, पिप्पली 100 ग्राम तथा हल्दी 140 ग्राम सबको महीन चूर्ण करलें। यह 250 मि0ग्रा0 चूर्ण और 250 मि0ग्रा0 शुभ्रा भस्म मिलाकर शहद के साथ दिन में तीन बार देने से प्रायः सभी प्रकार के श्वास (महाश्वास एवं जीर्ण तमक श्वास को छोड़कर) में लाभ होता है। रोगी को प्रातः 10 बजे बेसन (चने का) हल्दी, गुड़ या खांड तथा घृत समभाग का विधिवत हलुवा बना सेवन करावें। सायं 5 बजे हल्का एवं पुष्टिकर भोजन कर टहलना चाहिये। ध्यान रहे हलुवा खाने के बाद अथवा बीच में दो घन्टे तक जल नहीं पीना चाहिये। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रातः शौच जाने से पूर्व इच्छा से कुछ अधिक प्रमाण में जल पीवें इससे कोष्ठ साफ होकर हलुवा खाने के बाद प्यास भी नहीं लगेगी तथा रोग निवारण में भी सहायता मिलेगी। कोष्ठबद्धता हो तो मधुयष्ठयादि चूर्ण या पंचकोल चूर्ण देवें। जिसको पाचक पित्त की कमी से बराबर कोष्ठबद्धता बनी रहती है उसे भोजन के बाद द्राक्षासव या अग्नितुण्डी वटी देनी चाहिए।

—वैद्य श्री सुरेचन्द्र शर्मा गौड़ (अनु0 योगमाला)

4. **आमवातहर उत्तम प्रयोग**—शु0 वत्सनाभ 40 ग्राम, हिंगुल भस्म (भल्लातक वाली) 40 ग्राम, शु0 अहिफेन 40 ग्राम शुद्ध कुचला (एरण्ड तैल वाले) 200 ग्राम, असली केशर 20 ग्राम, जायफल, जावित्री, लौंग, पिप्पली, सोंठ, कालीमिर्च, अकरकरा सातों 50-50 ग्राम लेकर सबको बारीक पीसकर इन्द्रायण के फल के स्वरस से खूब घोटें और 120 मि0ग्रा0 की गोलियां बना लेवें। एक गोली प्रातः और एक गोली सायं गर्म दूध से देवें। यह आमवात की उत्तम औषधि है।

—श्री सन्त शरणदास वैद्य शास्त्री
(धन्व0 गु0सि0 प्र0 भाग 4)



● **सम्पादकीय टिप्पणी—**

वत्सनाभ घटित कफ केतु रस का कफज विकारों पर अप्रतिम प्रभाव-एक अनुभव

शुद्ध वत्सनाभ, पिप्पली, शंखभस्म तथा टंकण भस्म कुल चार द्रव्यों के समभाग मिश्रण को अदरक के रस में घोटकर बनाई गयी गालियां कफकेतु रस के नाम से आयुर्वेद के कई ग्रन्थों में वर्णित है। हमें अपनी चिकित्सा में इस योग का अप्रतिम प्रभाव देखने को मिला है। यह श्वास प्रणाली से सम्बन्धित सभी कफज विकारों में श्रेष्ठ कार्यकर है। प्रतिश्याय, कास, ज्वर, हड़कल, शिरदर्द आदि की अवस्था में किसी भी एलोपैथिक औषधि के समकक्ष कफकेतु रस की 2-2 गोलियां 4-4 घन्टे पर गुनगुने पानी से देने से इसका चमत्कारिक लाभ देखा जा सकता है।

शुष्क कास की अवस्था में अदरक के रस तथा शहद के साथ 6-6 घन्टे पर दिन में 4 बार चटाने से फेंफड़ों तथा गले में चिपका हुआ कफ बाहर निकलने लगता है। पाठकों को वत्सनाभ युक्त इस शास्त्रीय योग का प्रयोग कर चिकित्सा में यश अर्जित करना चाहिये।

—वैद्य गोपालशरण गर्ग

वरुण

(Crataeva Nurvala)

वरुण देवता की द्वादश आदित्यों में गणना होती है। वेद ने इन्हें प्रकृति के नियमों का व्यवस्थापक माना है। ऐसा वर्णन आता है कि वरुण देवता के विधान के कारण ही द्युलोक और पृथ्वी लोक पृथक्-पृथक् हैं। वे आदित्यरूप से दिन में तो प्रकाश देते ही हैं, रात में भी चाँद और तारों को प्रकाशित कर प्रकाश देते हैं और इस प्रकार जगत् के प्राणियों को अन्धकार से बचाते हैं (ऋक्. 1-24-10)। पृथ्वी पर और अन्तरिक्ष में जितने भी जल रूप हैं, सबके स्वामी वरुण देवता है। देवताओं ने इन्हें जलेश्वर के पद पर अभिषिक्त किया (महा. शल्य. 47-9)। यही बात अथर्ववेद में वरुण देवता के लिए "अपामधिपतिः" शब्द का प्रयोग कर स्पष्ट की गई है (5-24-4)। इनके पर्यायों में अप्पति (अमरकोष) भी एक नाम कहा गया है। ये पश्चिम दिशा के स्वामी कहे गये हैं—

इन्द्रो वन्हि पितृपति नैर्ऋतो वरुणो मरुत्।
कुवेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रयात्।।

निरुक्त ने एक ऋचा उद्धृत कर यह बताया है कि वरुण देवता मेघमण्डल के जल में विचरण करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर पृथ्वी पर जल बरसाते हैं। ये निरन्तर मनुष्यों के कल्याण में लगे रहते हैं।

जल का एक नाम जीवन है। यह प्राणी के जीवन का आधार है वैसे ही वनौषधियों के भी जीवन का आधार है। वनौषधियों के वर्णन के प्रसंग में इस जल के अधिपति वरुण देवता के सम्बन्ध में पाठकों को संक्षिप्त सी जानकारी कराना समीचीन समझा गया है। वरुण देवता के नाम से ही व्यपदिष्ट इस वनौषधि का विशेष महत्व है। यह वनौषधि मूत्रल है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने कहा कि मूत्रोत्सर्ग की मात्रा को बढ़ाकर यह वनौ[षधि] अपने नाम वरुण = जल देवता को सार्थक करती है

परिवर्ध्य तु मूत्रसर्जनं
सततं सिध्यति नामसार्थकः। —प्रि[यव्रत]

"वरुणस्तिक्तकः" कह कर आयुर्वेदज्ञों ने इसमें [ति]क्त रस की प्रधानता व्यक्त की है। सभी रस पाञ्च भौतिक [हो]ते हुये भी "व्यपदेशस्तु भूयसा" के आधार पर तिक्त[रस] में जल और पृथ्वी तत्व की प्रधानता होती है। इस [दृष्टि] से भी यह वरुण वनौषधि जल देवता से अधिक सन्नि[कट] सम्बन्ध रखती है। सुतरां वरुण देवता से करबद्ध नि[वेदन] है—

दूर करे यह वरुण नित यह कष्टों का भार।
सुनो हमारी देव यह करुणाभरी पुकार।।

चतुर्थ मास में गर्भ की रक्षार्थ द्वादस आदित्यों को [बलि] देने का विधान है—

आदित्या द्वादशः प्रोक्ता प्रगृह्णीध्वं बलिं त्विम[म्]
युष्माकं तेजसा वृद्धया नित्यं रक्षत गर्भिणी[म्]

इस वरुण नामक वनौषधि का सुश्रुत संहिता में [वि]वर्णन मिलता है। सूत्रस्थान के अष्टत्रिंशत्तम् (3[8]) अध्याय का नाम द्रव्यसंग्रहणीय अध्याय रखा [गया] है—"द्रव्याणां सग्रहः संक्षेपः, तमधिकृत्य कृतो[ऽध्याय] इत्यर्थः, विस्वरस्तु चिकित्सितेकथ्यते। इस अध्या[य में] एक वरुणादि गण कहा गया है—

वरुणार्तगलशिग्रुमधुशिग्रु तर्कारीमेषश्रङ्गी पूतीक[-] मालमोरटाग्निमन्थ सैरेयकद्वयबिम्बीवसुकवसिरचि[-] शतावरीबिल्वाजशृङ्गीदर्भा वृहतीद्वयं चेति।

वरुणादिर्गणो ह्येष कफमेदोनिवारणः।
विनिहन्ति शिरःशूलगुल्माभ्यन्तर विद्रधीन्।।

इसके अतिरिक्त चिकित्सा स्थान के सप्तम अध्याय में वाताश्मरीनाशन और कफाश्मरीनाशन जो गण कहे हैं उनमें वरुण को लिया गया है।

वाताश्मरीनाशनगण—

पाषाण भेदो वसुको वशिराश्मन्तकौ तथा।
शतावरीश्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका।।
कपोतवङ्कार्तगलः कच्च को शीरकुब्जकाः।
वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम्।।
यवाः कुलत्था कोलाग्नि कतकस्य फलानि च।
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथैघृतं कृतम्।।
भिनत्ति वात संभूता मश्मरीं क्षिप्रमेव तु।।

कफाश्मरीनाशनगण—

गणो वरुणकादिस्तु गुग्गुल्वेलाहरेणवः।
कुष्ठभद्रादिमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः।।
एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणे न च।
भिनत्ति कफसं भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु।।
क्षारान् यवागूर्यषांश्च कषायाणि पयांसि च।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् कफनाशने।।

—सु. चि. 7-14-16

अजासर्पि केचिन्नपठन्ति, ते प्रकरणात् पूर्वोदितात् सामान्येन गव्यघृतमेव ददति। कफाश्मरीचिकित्सि तेनैव शुक्राश्मरीचिकित्सितमुक्तं मन्तव्यं, तुल्यगुणत्वात्क फशुक्रयोरिति। *—डल्हण*

भावप्रकाश निघन्टु में वटादि वर्ग में वरुण का वर्णन मिलता है। आचार्यप्रियव्रत शर्मा लिखित द्रव्यगुण विज्ञान (द्वितीय भाग) में अश्मरीभेदन द्रव्यों में पाषाण भेद के पश्चात् इस वरुण का वर्णन मिलता है। अश्मरी भेदन द्रव्य शरीर में पथरी किंवा शर्करा को बनने नहीं देते हैं तथा शरीर में बनी हुई किंवा संचित हुई पथरी को पिघलाकर बाहर निकाल देते हैं। ये द्रव्य अंग्रेजी में एन्टिलिथिक्स (पथरी न बनने देने वाले) एवं लिथोन्ट्रिप्टिक्स (अश्मरी भेदन) कहलाते हैं।

प्राकृतिक द्रव्यों के वर्गीकरण के अनुसार यह वरुण वरुण कुल (कैप्परिडेसी-Capparidaceae) की वनौषधि है।

नाम—

संस्कृत—वरुण, तिक्तशाक, विल्वपत्र, वरण, कुमारक, सेतु।

हिन्दी—बरना, बरुना, बर्ना।

गुजराती—बरणो।

मराठी—हाडवर्णा

बंगला—वरुण।

तामिल—मारलिंगम्।

तेलगू—डरूमत्ति।

कन्नड़—नरूबेली

मलयालम—नीरमथलम।

अंग्रेजी—थ्रीलीव्ड केपर (Three Leaved Caper)

लैटिन—क्रेटिवा नुर्वला (Cratava Nurvala)

उत्पत्ति स्थान—यह भारत वर्ष में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। उत्तरी भारत, बंगाल, आसाम में विशेष होता है। जलाशयों के किनारे यह दक्षिण भारत में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—वरुण की छाल में सैपानिन तथा टैनिन पाये जाते हैं। टेनिन अल्प मात्रा में पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—वरुण का वृक्ष शाखा प्रशाखाओं से युक्त मध्यमाकार 25-30 फुट ऊँचा होता हे। इसकी छाल धूसर वर्ण की और लगभग आधा इंच मोटी होती है। इस पर अनुप्रस्थ दिशा में चीरे से लगे रहते हैं। इसकी शाखाओं पर सफेद चिन्ह होते हैं। पत्र-लगभग 3-5 इंच लम्बे और बेलपत्र के समान त्रिपत्रक होते हैं। इसी कारण इसे त्रिपर्णक एवं विल्व पत्र कहा जाता है।

पत्रोदर गाढे हरे और पत्रपृष्ठ श्वेताभ होते हैं। पत्रक–लट्वाकार से भालाकार तक लम्बाग्र होते हैं तथा उन्हें मसलने से एक प्रकार की तीव्र गन्ध निकलती है। पुष्प–दो तीन इंच व्यास के श्वेत या पीताभ, बैंगनी पुंकेशरयुक्त, सुगन्धित, अन्त्यमंजरियों में लगते हैं। फल–नीबू के समान या छोटे बिल्व (बेल) के समान होते हैं। पकने पर ये लाल हो जाते हैं। बीज–कत्थई रंग के, अधिक संख्या में होते हैं।

जनवरी से मार्च तक वृक्ष पत्र रहित रहता है। वसन्त में नव पल्लवों के साथ या कुछ पूर्व में पुष्प आते हैं। फल जून में लगते हैं।

वरुणस्तिक्तशाकः स्यात् त्रिपर्णोऽरुणपुष्पकः।
फलं निम्बुकवद्रक्तं पक्वेसति प्रजायते।।

—प्रि. नि.

वसन्त वर्णने—

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणवरुणकृतहासे।

—गीतगोविन्दकाव्यम्

रस—तिक्त, कषाय
गुण—लघु, रुक्ष।
वीर्य—उष्ण।
विपाक—कटु
प्रभाव—अश्मरीभेदन।

वरुणो हृदि पाति चोष्णतां
निजवीर्येण निहन्ति चाश्मरीम्।

—प्रि. नि.

दोषकर्म—कफवात शामक।
उपयोगी अंग—त्वक् (छाल), पत्र, मूल।
मात्रा—क्वाथ—50–100 मि.लि.
स्वरस—10–20 मि.लि.
चूर्ण—3–6 ग्राम

गुणधर्म विवेचन—

वरुणः पित्तलो भेदीश्लेष्मकृच्छ्राश्ममारुतान्।
निहन्ति गुल्म वातास्रकृमींश्चोष्णोऽग्निदीपनः।
कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षकोलघुः।।

—भा. प्र.

वरुणः शीतवातघ्नः तिक्तो विद्रधि जन्तुजित्।
तथा च कटुरूश्ष्णश्च रक्तदोषहरः परः।।

—ध.

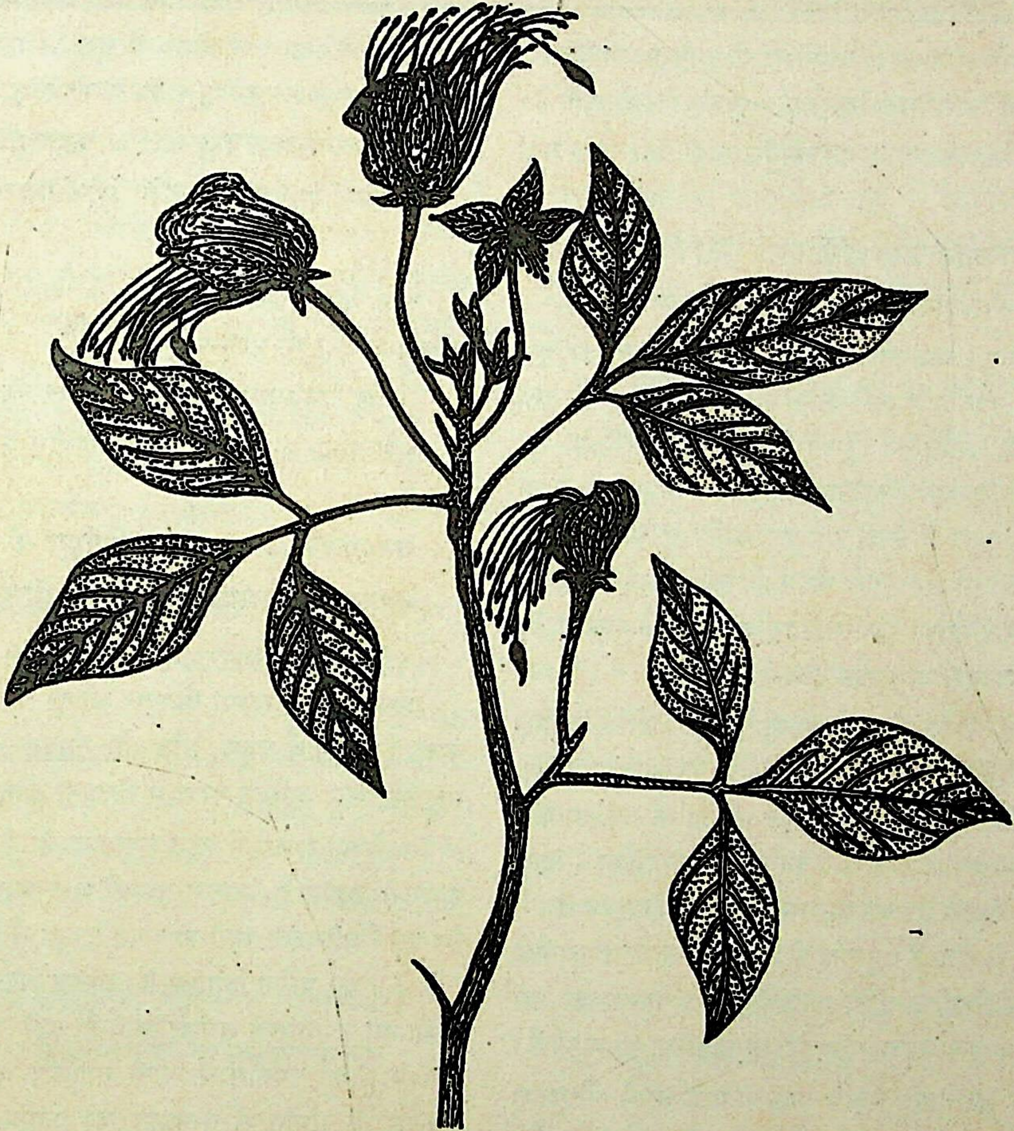
वरुणस्तिक्तकश्चोष्णः कफभेदोनिवारणः।
भेदी निहन्ति कृच्छ्राश्मगुल्माभ्यन्तरविद्रधीन्।

—प्रि.

यह मूत्रवह संस्थान की प्रसिद्ध औषधि है। अश्मरीभेदन, मूत्रल होने के साथ संक्रमणप्रतिरोधी होने से मूत्रमार्गसंक्रमण (U.T.I.) में लाभदायक सिद्ध हुआ। इसमें जीवाणुनाशन गुण पाया जाता है। यह पूर्व में कहा जा चुका है कि महर्षि सुश्रुत ने इसे वाताश्मरी और कफाश्मरी में प्रशस्त कहा है। वाताश्मरी नाशन और कफाश्मरीनाशन जो गण कहे हैं उनमें वरुण का उपयोग हुआ है। वरुण पित्तवर्धक होने से पित्ताश्मरी में लाभप्रद नहीं है अतः अश्मरी की चिकित्सा में वरुण को उपयोग में लाने से पहले निदानोक्त लक्षणों के अनुसार किस दोष की प्रधानता है, यह अवश्य निश्चय कर लेना चाहिए। चक्रदत्त के इस श्लोक में भी इसे वाताश्मरी में लाभप्रद कहा गया है—

वरुणस्य त्वचां श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम्।
यवक्षार गुडं दत्वा क्वाथमित्वा पिवेद्धिताम्।
अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम्।

महर्षि सुश्रुत ने वाताश्मरी नाशन जो वर्ग कहा है उसके साथ उषकादि गण का भी उल्लेख किया है। गण में निम्नाङ्कित द्रव्य हैं—



वरुण (Crataeva Nurvala)

नाम—सं०—वरुण, हि०— बरना, गु०—बरणो, म०—हाड़वर्णा, अं०—थ्रीलीव्ड केपर, लै०—क्रेटिवा नुर्वला।

प्राप्तिस्थान—उत्तरी भारत, बंगाल, आसाम।

उपयोगी अंग—छाल, पत्र, मूल।

रोगोपयोग—अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विद्रधि।

मुख्ययोग—वरुणादि क्वाथ, वरुणादि घृत, वरुणादि लौह।

"ऊषकसैन्धवशिलाजतुकासीसद्वयहिङ्गूनि तुत्थकं चेति।" ऊषक से खारीनमक या लोनिया ग्रहण किया जाता है।

इस ऊषकादिगण की कार्मुकता के लिए कहा गया है—

ऊषकादि कफ हन्ति गणो भेदो विशोषणः।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रगुल्म प्रणाशनः।।

आचार्य चक्रपाणिदत्त ने इस ऊषकादिगण का चूर्ण बनाकर उपयोग में लाने के लिए कहा है और इसमें उक्त द्रव्यों के अतिरिक्त गूगल को भी ग्रहण किया है। "ऊषकादि कफं हन्ति" के अनुसार इसे कफाश्मरी में भी लाभप्रद कहा है अतः यह ऊषकादिगण वाताश्मरी में वाताश्मरी नाशन गण के साथ और कफाश्मरी में कफाश्मरी नाशन गण के साथ लाभप्रद हो सकता है। ऊषकादि चूर्ण के घटक द्रव्य हैं—

खारी नमक, सेंधानमक, शु. हींग, शु. दोनों काशीस (धातुकाशीस और पुष्पकाशीस), शु. भैंसहवा गूगल, शु. शिलाजीत, शु. तूतिया। सुश्रुत संहिता के व्याख्याकार आचार्य डल्हण ने ऊषक का अर्थ क्षारमृतिका (खारी मिट्टी) किया है। यह वाराणसी के समीप बड़हर क्षेत्र में बाहुल्य से होती हैं। पुष्पक से जहाँ तूतिया लिया जाता है वहाँ कई खपरिया ग्रहण करते हैं क्योंकि पुष्पक का अर्थ कपर्दिका तुत्थ किया गया है जिसे खपरिया भी कहते हैं।

जो शुण्ठयादि क्वाथ कहा गया है उसमें भी वरुण लिया गया है। यह क्वाथ मूत्रकृच्छ्र, कोष्ठ, लिंग, कटि, उरूगतवात में भी लाभप्रद है—

शुष्ठचग्निमन्थपाषाण शिग्रु वरुणगोक्षुरैः।
अभयारग्वधफलैः क्वाथं कुर्याद्विचक्षणः।।
रामरुक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः।
अश्मरी-मूत्रकृच्छ्रघ्नं पाचनं दीपनं परम्।
हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कट्यूरूगुदमेढ्रगम्।।

—च. द.

वरुण की छाल के क्वाथ में गुड़ मिलाकर पीने से पथरी तथा मूत्राशय के शूल का शमन होता है—

वरुणत्वक्कषायं तु पीतं च गुड़संयुतम्।
अश्मरीं पातयत्याशु बस्ति शूलनिवारणम्।।

—च.

तथा वरुण छाल के क्वाथ में वरुण का कल्क मिलाकर पीना भी प्रशंस्त कहा गया है—

पिबेद् वरुणमूलत्वक् क्वाथं तत्कल्कसंयुतम्

इसी प्रकार वरुणादिक्वाथ के उपयोग के लिए कहा गया है—

वरुणत्वक् शिलाभेदशुण्ठीगोक्षुर कैः कृतः।
कषायः क्षारसंयुक्तः शर्करां च भिनत्यपि।।

—च.

शर्करा तथा अश्मरी के शूल को दूर करने तथा कृच्छ्र निवारणार्थ वरुण, सोंठ और गोखरू के क्वाथ में मधु मिलाकर अधिक मात्रा में पिलाना ठीक है।

वातिक अश्मरी में बहुत शूल होता है और पैत्तिक में जलन बहुत होती है। कफज अश्मरी प्रायः बालकों में होती है। इसमें बस्तिक्षेत्र भारी हो जाता है। इसमें वरुणाद्य (भै. र.) का प्रयोग हितावह है। वातज अश्मरी में बस्ति की उपयोगिता समझी जाती है, वहाँ वरुणाद्य (भै. र.) को उपयोग में लाना चाहिये। वाताश्मरी में यवक्षार के संयोग से वरुणादि की कार्मुकता और प्रभावी दृष्टिगोचर होती है, सुतरां प्राणाचार्य सदानन्द ने लिखा है—

शुण्ठी गोक्षुरवरुणक्वाथनिपीतो यवक्षारः।
सगुडक्षेपं त्वचिरान्नियतं वाताश्मरीं जयति।
पाषाणभेद वरुण गोक्षुर क्वाथ संयुतम्।
शीलितं यवजं हन्ति बस्तिशूलं तथाश्मरीम्।

—र. त.

वरुण मूत्रवह संस्थान की एक उत्तम औषधि है। यह केवल अश्मरी में ही नहीं अपितु मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्राशय प्रदाह, मूत्राशयशूल, शिश्न,-कटि-उरुगत-वात, मूत्रशर्करा आदि विभिन्न इस संस्थानगत व्याधियों में पुनर्नवा, गोक्षुर, यष्टीमधु, कुलत्थ, पाषाणभेद, यवक्षार, तिलक्षार, भूम्यामलकी, नारिकेलजल, शिलाजीत, अपामार्ग (क्षार), पुरानागुड़, नींबू, मधु एवं गोदुग्ध आदि द्रव्यों में से एक या एक से अधिक के संयोग से लाभ पहुंचाता है।

रसेन्द्रसारसंग्रह कार ने "श्रृङ्गबेरादि को ह्येष गणः श्लेष्मगदापहः" कहा है उसमें वरुण की भी गणना है। महर्षि सुश्रुत ने कफ जन्य मूत्रकृच्छ्र प्रतिषेध में एक श्लोक कहा है—

सुरसोषकमुस्तादौ वरुणादौ च यत् कृतम्।
तैलं तथा यवाग्वादि कफाघाते प्रशस्यते।।

—सु. उ. त. 59-23

इसमें वरुणादिगण निर्दिष्ट द्रव्यों से कफजन्य मूत्रकृच्छ्र का उपचार प्रदर्शित किया है। इसी प्रकार वातजन्य में भी वरुण की उपादेयता (श्लोक 17-18) प्रकट की गई है। वरुणादि क्वाथ के साथ शिलाजीत का उपयोग मूत्राघात में भी लाभप्रद है—

वरुणादिकषायेण शीलितस्तु शिलामयः।
विनिहन्त्यचिरादेव मूत्राघातमथाश्मरीम्।

—र. त. 21

वरुण मूत्रल होने से शोथहर भी है। वैद्य पं. श्री हरिदत्त शास्त्री ने वरुणादिगण द्रव्यों की घनवटी बनाकर शोथ रोगियों को दी जिसके लाभालाभ का उल्लेख इन्होंने अपने शोधपरक ग्रन्थ "देहधात्वाग्निविज्ञानम्" में किया है—"वरुणादिवटी' यह वरुणादिगण के घन क्वाथ का योग मूत्र-यंत्र का शोधक है। इसका 37 रुग्णों पर प्रयोग किया गया जिनमें 7 को उत्तम लाभ, 17 को साधारण लाभ तथा 13 को लाभ नहीं मिला। वस्तुतः ये 13 शोथ के रोगी असाध्यावस्थापन्न ही थे।"

अश्मरी के अतिरिक्त यह विद्रधि की भी प्रशस्त औषधि कही गई है। महर्षि सुश्रुत ने निदान स्थान अध्याय नवम में विद्रधियों का निदान कहा है। वहाँ पर 6 प्रकार की विद्रधि कही गई है। इसके अतिरिक्त अन्तर्विद्रधि का भी वर्णन किया है। इन विद्रधियों के स्थानों का उल्लेख किया है—

गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा।
वृक्कयोर्यकृति प्लीन्हि हृदये क्लोम्नि वातथा।

यहाँ कुक्षिविद्रधि से आजकल अधिकतर होने वाली अन्त्रपुच्छविद्रधि अभिप्रेत है। इसमें वात की प्रधानता प्रकट की है—"कुक्षौ मारुतकोपनम्"। इन बाह्य एवं आभ्यन्तर विद्रधियों में वरुण को उपयोगी कहा है। विद्रधि में जो इसका उपयोग बतलाया गया है वह इसके जीवाणु नाशक गुणके कारण है (देखिये वा. अनु. द.- डा. श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर)। साथ में यह रक्तशोधक भी है।

विद्रधि चिकित्सा में (विशेषतः आभ्यन्तर विद्रधि चिकित्सा) में भी वरुणादिगण एवं ऊषकादिगण के क्वाथ को लाभप्रद कहा है—

वरुणादिगण क्वाथमप क्वेऽभ्यन्तरस्थिते।
ऊषकादि प्रतिवापं पिबेत् सुखकरं नरः।।

—सुश्रुतः चि. 16-28

इसके अतिरिक्त इन्हीं गणों से एवं विरेचन गण से सिद्ध घृत के पान और इन्हीं गणों के क्वाथ में तैल मिलाकर आस्थापन एवं अनुवासन बस्ति देने का भी निर्देश दिया है। वातकफ दोष की प्रधानता में वरुणादि गण के साथ शिलाजतु के प्रयोग को भी हितावह कहा गया है।

अन्य आचार्यों ने भी विद्रधि चिकित्सा में वरुण का वर्णन किया है—

श्वेतवर्षामुवोर्मूलं मूलं वरुणकस्य च।
जलेन क्वथितं पीतमपक्वविद्रधिं जयेत्।।

—वृन्द

त्रिफलाशिग्रुवरुण दशमूलाम्भसा पिबेत्।
गुग्गुलं मूत्रयुक्तं वा विद्रधौ कफ सम्भवे।।
स्रुतेऽप्यूर्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लसुरासवैः।
पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुरसौऽथवा।।

—च. द.

यद्यपि ऊर्ध्वमार्ग अर्थात मुख से पूय निकलना घातक लक्षण है और इसे असाध्य कहा गया है किन्तु अधोमार्ग अर्थात् गुद से पूय निकलना उतना घातक नहीं है। ऐसी स्थिति में सर्वेश्वर पर्पटी (रसरत्नसमुच्चय) एवं रत्न भागोत्तर रस (रस संहिता) दोनों 125-125 मि.ग्रा. शहद के साथ देकर अनुपान रूप में वरुणादिगण क्वाथ पिलाया जा सकता है। वैद्य जीवन के रचयिता लोलिम्बराज ने सहजने की छाल, अजवायन, वरुण छाल, दारुहरिद्रा, पीपल वृक्ष की छाल के क्वाथ में रक्त बोल चूर्ण डालकर पीना अन्त विद्रधि में हितकारी कहा है—

शिग्रुदीप्यकवरुणद्वियामिनी-
कुंजराशनकृतः कषायकः।
बोलचूर्ण सहितोऽन्तरस्थितं
विद्रधिं प्रशमयेदसंशयम्।।

वरुणादि गण क्वाथ के साथ कज्जली का सेवन बाह्याभ्यन्तर विद्रधि मेंअधिक लाभप्रद होने का भी वर्णन रसतरङ्गिणी में मिलता है—

वरुणादिकषायेण कज्जली परिशीलिता।
बाह्यन्तर्विद्रधि घोरां विनिवारयति द्रुतम्।।

पूतिकर्ण में वरुणादि तैल (वृ. मा.) तथा गण्डमाला में वरुण छाल का लेप हितकर कहा गया है। शहद के साथ इसका क्वाथ गण्डमाला के रोगी को पीना चाहिये। कहा गया है—

माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः
गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम्।।

—

गण्डमाला के अतिरिक्त व्रण शोथ, विद्रधि आदि भी इसकी छाल या पत्र का लेप किया जाता है। प इसका बाह्य प्रयोग सावधानी से करें क्योंकि इसका राई के समान रक्तोत्क्लेशक है।

यह अश्मरी भेदन के अतिरिक्त रक्त शोधक, ज्वर दीपन, अनुलोमन, पित्तसारक, भेदन, कृमिघ्न तथा पौष्टिक होने से रक्त विकार, ज्वर, अग्निमांद्य, उदरशू गुल्म, यकृद् विकार, कृमिरोग तथा दौर्बल्य में भी लाभ है।

वरुण वृक्ष से जो गोंद निकलता है वह विष वि एवं रक्तदोषनाशक कहा गया है। किसी विष के का यदि नेत्रों में दाहादि लक्षण हों तो इस गोंद को जल घिसकर आंजने से लाभ होता है। महाराष्ट्र की ओर ग्री ऋतु में वरुण के कोमल पत्तों का तथा फूलों का श बनाकर खाया जाता है। इसमें तिक्तता अधिक होने से प का संमिश्रण किया जाता है। पत्तों का शाक मेदोघ्न है तथा फूलों का शाक रक्तदोष नाशक कहा गया है।

यूनानी मतानुसार वरुण तीसरे दर्जे में गरम और रू है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—(बाह्य प्रयोग सावधानी से करें। के पश्चात ठण्डे पानी से धोकर तैल लगा दें)

1. व्रणशोथ—नवीन पत्र का लेप करना लाभप्रद पत्र राजिका (राई) की तरह रक्तोत्क्लेषक (त्वचा लाल करने वाला) है।

2. विद्रधि—वरुण पत्र और अलसी क्रमशः भाग व दो भाग लेकर पीस उष्ण कर, विद्रधि पर ब कर दें। यह पक जावेगी और उसका शोधन होगा।

3. गण्डमाला—वरुण और कचनार की छाल को पीसकर गण्डमाला पर लेप करें यह लेप नियमित कई बार करें तथा साथ में दोनों ही औषधियों के क्वाथ सेवन करें।

4. पादतल दाह—वरुण पत्र और बहेड़ा चूर्ण को पीसकर पादतल पर लेप करें। सूजन होने पर गर्म पानी में मिला लेप करें।

5. पूतिनासा—पत्र का धूम्रपान कर धूम्र को नाक से निकालें।

6. शोथ—वरुणमूल छाल और सरसों को पीस लेप करें।

7. आमवात—कपड़े में वरुण पत्र बाँधकर सन्धि स्थानों पर परिषेक करें। इससे शूल व शोथ का शमन होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

1. अश्मरी—(क) वरुण की छाल के क्वाथ में वरुण छाल का कल्क मिलाकर सेवनकरें। वरुण वातज कफज अश्मरी में लाभप्रद है।

(ख) वरुण, गोखरू तथा पाषाणभेद का क्वाथ बनाकर पिलावें।

(ग) वाताश्मरी में कुलथी के क्वाथ के साथ तथा कफाश्मरी में विजौरा नींबू की जड़ की छाल के क्वाथ के साथ इसका सेवन हितावह है।

2. मूत्रकृच्छ्र—(क) वरुण छाल, पुनर्नवा, गोखरू और मुलैठी के क्वाथ में यवक्षार, पपीता की जड़ और गोखरू की जड़ का क्वाथ मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी में लाभदायक है।

3. बस्तिशूल—वरुण छाल के क्वाथ में गुड़ मिलाकर पीने से वस्ति (मूत्राशय) में होने वाला दर्द शान्त होता है। इसके प्रयोग से अश्मरी में भी लाभ होता है।

4. मूत्रमार्ग संक्रमण—वरुण छाल और शोभांजन की छाल का क्वाथ बनाकर पिलाने से मूत्र मार्ग संक्रमण मिटता है। साथ में चन्दनादिवटी (सि. यो. सं.) देवें।

5. ज्वर—वरुण छाल ज्वरघ्न होने से दशमूल के साथ इसे मिलाकर क्वाथ बनाकर वातकफजन्य ज्वर के रोगी को पिलाना हितकारी है।

6. दौर्बल्य—वरुण एक कटु पौष्टिक द्रव्य होने से दुर्बलता को दूर करता है। इसे घृत दुग्ध के साथ सेवन करना चाहिये। वरुणछाल चूर्ण को अश्वगन्धा घृत तथा ब्राह्मी घृत के साथ सेवन करने से शारीरिक और मानसिक दुर्बलता दूर होती है।

7. अग्निमांद्य—(क) वरुणादि क्वाथ में सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से अग्निमांद्य दूर होता है।

(ख) वरुण, सोंठ और जीरे के क्वाथ में अदरख का स्वरस मिलाकर या काला नमक मिलाकर सेवन करें।

8. उदरशूल—वरुण और सोंठ के क्वाथ में शु. हींग, काला नमक और सेंधानमक मिलाकर रोगी को पिलाने से उदर शूल शान्त होता है।

9. गुल्मरोग—वरुण, अजवायन और छोटी पीपल का क्वाथ बनाकर उसमें यवक्षार मिलाकर गुल्मरोगी को पिलावें।

10. यकृद् विकार—वरूण, पित्तपापड़ा के क्वाथ में कुमारी स्वरस तथा मधु मिलाकर सेवन करें तथा इसके थोड़ी देर बाद 50 मि.लि. गोमूत्र छानकर पीवें।

11. कृमि रोग—वरुण, नागरमोथा, अजवायन और बड़ी हरड़ का छिलका लेकर क्वाथ बनाकर उसमें मधु डालकर सेवन करें।

12. वातरक्त—वरुण, गिलोय और पीपल की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें मधु मिलाकर सेवन करने से वातरक्त में लाभ होता है। साथ में शिलाजीत का प्रयोग अधिक हितकारी है।

13. अन्तर्विद्रधि—वरुणादि गण क्वाथ का क्वाथ सेवन अन्तर्विद्रधि में लाभप्रद है। अपक्व विद्रधि में इस क्वाथ में रेह मिट्टी डालकर पीने का विधान है। कफजन्य में त्रिफला और दशमूल क्वाथ के साथ सेवन करें।

14. गण्डमाला—वरुण के क्वाथ में शहद मिलाकर पीना गण्डमाला के रोगी के लिए हितकर कहा गया है। अधिक लाभ के लिए वरुण के साथ में कचनार की छाल भी मिलानी चाहिये।

15. मेदो रोग—वरुण के पत्तों का साग बनाकर खिलाना मेदो रोग में लाभप्रद है साथ में वृ. पंचमूल का क्वाथ भी पिलावें।

16. आमवात—वरुण पत्र स्वरस 10-20 मि.लि. में घृत और दूध मिलाकर आमवात के रोगी को दें। इसके साथ साथ में नारियल को घियाकस से कस कर मिलाकर सेवन करना भी साथ में हितकर है।

17. जलोदर—बरना की छाल, गोखरू और सोंठ का क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करनाजलोदर में लाभप्रद कहा गया है।

18. व्रणशोथ—वरुणछाल और पुनर्नवा का क्वाथ बनाकर व्रणशोथ के रोगी को दें। इससे लाभ होगा।

19. पादतल शोथ—वरुण छाल का क्वाथ बनाकर सेवन करना पैरों के तल (पगतली) के शोथ और जलन में लाभदायकहै।

20. आन्त्रपुच्छ विद्रधि—वरुणादि गण क्वाथ में तैल मिलाकर वस्ति दें, साथ में वरुणादिगण क्वाथ को शिलाजीत के साथ दें।

21. छर्दि—वरुण क्वाथ में घृत (वातजन्य में) या मधु (कफज में) मिलाकर सेवन करावें।

विविध कल्प—

वरुणाद्य लौह—वरुण 80 ग्राम, आंवला 40 ग्राम, धाय के फूल 10 ग्राम, हरड़ 10 ग्राम, पृश्णिपर्णी (पिठवन) 10 ग्राम, लौह भस्म 10 ग्राम और अभ्रक भस्म 10 ग्राम। सबको एकत्र कर, चूर्ण करें। इसमें से चार ग्राम प्रात: काल भक्षण करें तो घोर मूत्राघात, दारुण मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, विषम ज्वर इनको दूर करें। यह बल और पुष्टि करने वाला योग वृष्य और आयुष्य (आयुवर्धक) है। यह वरुणाद्य लौह चरक ने कहा है।—रसराज सुन्द

लघुवरुणादि क्वाथ—बरना की छाल, पाषाण भेद गोखरू, कुलथी के बीज सभी द्रव्य बराबर लेकर जौ कु कर रखें। इसमें से दस-बारह, ग्राम का यथाविधि क्वाथ बनाकर उस क्वाथ में एक ग्राम यवक्षार मिलाकर पियें यह अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र में लाभप्रद है। —भै.

बृहद्वरूणादि क्वाथ—बरना की छाल, पाषाणभेद गोखरू बीज, कुलकी बीज, कुश, कास, दर्भ, मूंज और ऊँख की जड़, पाषाणंभेद, मुसली इन द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनाकर उसमें यवक्षार और शक्कर मिलाकर पियें। यह पथरी को फोड़ता है और निकालता है। मूत्र को साफ लाने वाला क्वाथ है। —भै.

वरुणफाण्ट—वरुण के ताजे शुष्क पत्र का चूर्ण एक भाग में दस भाग उबलता हुआ जल मिलाकर ढंक देवें। ठंडा होने पर इसे छान लेवें। यह फाण्ट कड़वा एवं सुगन्धित होता है। मात्रा—50 से 100 मि.लि.। यकृत प्लीहा वृद्धि में तथा अजीर्ण में दिन में दो तीन बार सेवन करने से अपचन, आध्मान दूर होते हैं और छर्दि बन्द होती है। अन्तर्विद्रधि में उक्त प्रकार से ही इसकी जड़ या जड़ की छाल का फाण्ट बनाकर दिन में तीन बार पिलाने से विशेषत: अपक्व विद्रधि दूर हो जाती है।

—*धन्व. वनौ. वि.*

क्षार वरुण—वरुण की शाखाओं को या पत्र और छाल को जलाकर राख होने पर उसे जल में घोलकर तीन दिनों तक रखा रहने दें। फिर ऊपर से जल निथारकर कढ़ाई में पकावें। जलीयांश के दूर हो जाने पर कढ़ाई में लगे हुये क्षार को शीशी में रख लें। यह क्षार एक ग्राम की मात्रा में घृत के साथ सेवन करने से बस्ति की अश्मरी, बस्तिशूल, जलोदर, प्लीहोदर, मूत्र विकार तथा गर्भाशय के विकारों पर विशेष लाभदायक है।

—*धन्व. वनौ. वि.*

इसकी राख को पानी में घोलने की अपेक्षा इसकी छाल के क्वाथ में उबालें। पूर्ववत् जलीयांश सूख जाने पर उतार कर क्षार को खुरचकर शीशी में भर लें। इस प्रकार का बनाया हुआ क्षार अधिक उत्तम होता है।

—गां. औ. र.

वरुणादि अर्क—1. वरुणपत्र एक किलो ग्राम, वरुण की जड़ की छाल, मुण्डी, चिरायता एवं सत्यानाशी मूल प्रत्येक 500-500 ग्राम लेकर कूटकर रात्रि में 30 लिटर जल में भिगो प्रात: 30 बोतल अर्क खींच लेवें। दिन में तीन बार 50-60 मि.लि. अर्क पिलाने से सब प्रकार के रक्त दोष, विबन्ध, कंठमाला आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

—धन्व. वनौ. विशे.

2. छाया शुष्क वरुण की छाल व पत्र चार किलोग्राम, गिलोय 2 किलो 500 ग्राम, वनफ्सा, पुष्प एक किलो 125 ग्राम, साहतरा, चिरायता व गाजवां पुष्प 125-125 ग्राम, मुलेठी 450 ग्राम, खूबकला 150 ग्राम इन सबको कूटकर एकत्र मिलाकर तीन भाग कर लें। प्रथम इसमें से एक भागको 30 लिटर जल में रात्रि में भिगो प्रात: भवके से 30 बोतल अर्क खींच लें। फिर इस अर्क में उक्त दूसरा भाग रात्रि के समय भिगो प्रात: 20 बोतल अर्क खींच लें। अब इस अर्क में उसी प्रकार तीसरा भाग मिलाकर प्रात: 15 बोल अर्क निकाल कर सुरक्षित रखें। यह अर्क यक्ष्मा के रोगी के लिए बहुत लाभप्रद है। दिन में चार बार 50-50 मि.लि. अर्क 15 दिनों तक निरन्तर पिलावें।

—धन्व. वनौ. विशे.

वरुणक गुड़पाक—उत्तम स्थान में उत्पन्न, कृमियों से न खाये हुए, तरुण एवं स्निग्धता युक्त बरना वृक्ष की छाल, शुभ दिन, शुभ मुहुर्त में लाकर जौकुट कर 20 लिटर जल में पकावें। पाँच लिटर जल शेष रहने पर छानकर उसमें पांच किलो ग्राम गुड़ मिलाकर पकावें। गाढ़ी चासनी हो जाने पर उसमें सोंठ, ककड़ी के बीज, गोखरू, पिप्पली, पाषाणभेद, दूर्वा, पेठे के बीज, खीरे के बीज, कमल गट्टे, धनियां, बथुआ के बीज (अभाव में बथुआ का मूल), सहजने की छाल, मुनक्का, छोटी इलायची, शिलाजीत हरड़ बायविडंग प्रत्येक 40-40 ग्राम मिलाकर पाक जमा देवें या मोदक बनालें।

10 ग्राम से 50 ग्राम तक की यथोचित मात्रा में प्रतिदिन पथ्यपूर्वक सेवन करने से समस्त दोषजन्य अश्मरी शीघ्र ही निकल जाती है।

—भा. प्र.

वरुणादि घृत—1. वरुणादि गण के कल्क और क्वाथ के साथ सिद्ध किया हुआ घृत प्रात: भोजन के समय और रात्रि के समय (अथवा दिन में तीन बार) 5 से 10 ग्राम तक की मात्रा में सेवन करने से अन्तर्विद्रधि, शिरोवेदना, अग्निमांद्य और पाँच प्रकार के गुल्म नष्ट होते हैं।

—भै. र.

2. वरुणादि गण के द्रव्य तथा गूगल, इलायची, रेणुका, कूठ, नागरमोथा, कालीमिरच, चित्रक, देवदारू समभाग मिश्रित एक किलोग्राम लेकर सबका कल्क बनाकर सात लिटर बकरी के दूध में यह कल्क तथा इन्हीं उक्त सब द्रव्यों का क्वाथ बनाकर मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत कफ जन्य अश्मरी को नष्ट करता है।

—भै. र.

3. वरुण की छाल 5 किलोग्राम को जौकुट कर 12 लिटर 775 मि.लि. जल में पकावें चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमें बरुण की छाल, केले की जड़ वृण पंचमूल (कुस, कास, शर, दर्भ व ईख इन पांचों की जड़ें), गिलोय शिलाजीत, खीरे के बीज, बांस कीजड़, तिलक्षार, पलासक्षार और जूही की जड़ प्रत्येक 10-10 ग्राम सबको पीसकर बनाया हुआ कल्क मिलाकर एक किलोग्राम घृत में मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेष रह जानेपर छानकर रख लें। इसे देश तथा काल आदि की विवेचनापूर्वक 5 से 10 ग्राम तक की मात्रा में सेवन करने से अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं। इसे सेवन करने के बाद उसके पच जाने पर अन्य किसी पदार्थ को खाने

से पूर्व मस्तु (दही के घन भाग को अलग करने पर जो पतला पानी सा भाग निकलता है उसे मस्तु या दही का तोड़ कहते हैं) के साथ पुराना गुड़ खाना चाहिये। *—भै. र.*

वरुणासव—वरुणपत्र 5 किलो ग्राम लेकर उन्हें आठ गुने जल में भिगोकर प्रातः भवके द्वारा 40 बोतल अर्क निकालकर उसमें इसके हरे ताजे पत्र व फल एक एक किलो, वनफ्सा, 250 ग्राम तथा बांसा पत्र, वांसापुष्प, धायपुष्प 225-225 ग्राम, चीनी 2 किलो, मुनक्का 500 ग्राम, शहद 2 किलो सबको एकत्र मिला एक चीनी मिट्टी के बड़े पात्र में भरकर मुख बन्द कर रख दें। तीस दिनों बाद खोल कर छानकर बोतलों में भर रख दें। दिन में तीन बार 20-20 ग्राम बराबर पानी मिलाकर सेवन करने से हर प्रकार की खांसी, ज्वर, श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं। *—धन्व. वनौ. विशे.*

वरुण पानक (शर्बत)—वरुण के ताजे फलों को कूट कर रस निकालकर उसमें समभाग खांड मिलाकर आग पर रख शहद के समान शर्बत बनालें। पांच ग्राम शर्बत में 50-60 मि. लि. गरम जल मिलाकर प्रातः सायं पीने से श्वास कास में लाभ होता है। यह राजयक्ष्मा में भी लाभ करता है। *—धन्वन्तरि वनौ. विशे.*

वरुणादि तैल—1. वरुणछाल, पत्र, पुष्प व जड़ तथा गोखरू एकत्र सात किलोग्राम को 64 लिटर जल में पकावें 16 लिटर शेष रह जाने पर छानकर इसे चार लिटर तिल तैल में मिला मन्द अग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रह जाने पर छान लेवें। इस तैल का प्रयोग बस्ति द्वारा करने पर शर्करा, अश्मरी, शूल व मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं। *—भै. र.*

2. वरुण पत्र, आक, कैथ, आम और जामुन के पत्र सम भाग एक एक किलोग्राम लेकर एकत्र कूटकर 40 लिटर जल में पकावें। दस लिटर शेष रहने पर छान लें। इसमें उक्त पांचों प्रकार के पत्र 50-50 ग्राम लेकर पीस कर कल्क बनाकर डाल दें तथा 2 लिटर 500 मि.लि. तैल मिलाकर मन्द आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने छानकर रख लें। इस तैल को कान में डालने से कान पूय स्राव होना बन्द हो जाता है। *—वृ.*

3. वरुण की जड़ की छाल का रस निकाल कर समान भाग मीठे तैल (तिल तैल या अलसी तैल) मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रह जाने पर रखलें। मलने से साधारण दर्द और शोथ या वेदनायुक्त शोथ लाभ होता है। *—धन्व. वनौ. वि*

4. इसके ताजा पत्तों को कूटकर निकाले हुए रस लिटर में 500 मि.लि. मीठा तैल मिलाकर पकाकर मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। निमोनिया में रोगी छाती पर इस तैल को मल कर ऊपर रुई को गर्म बांध देना चाहिये। इससे रोगी को आराम मिलता है। कम हो जाता है। *—धन्व. वनौ. वि*

उक्त तैल निर्माण करते समय तैल पाक विधि का ज्ञान कर लेना आवश्यक है।

वरुणादि स्वेद—वरुण की छाल, दोनों प्रकार एरण्ड की छाल, गोरखमुंडी, सेंहजना की छाल, शता गोखरू और सरसों इनको समान मात्रा में एक मिला क्वाथ बनावें। इस क्वाथ का वात रोगी बफारा (वा देने से वात रोग शान्त होते हैं। रोग से आक्रान्त स्थान विशेष भाप देनी चाहिये। *—ग*

पेटेन्ट प्रयोगों में वरुण—आर्य औषधि फार्मास्यु कल इन्दौर द्वारा बनाई गई मूत्रल, शोथहर, दाह शा "मोनान्टी टिकी" (टेव.) में पाषाण भेद, एला, आंव पुनर्नवा, गोखरू, चन्दन, कबाब चीनी आदि के स वरुण भी है। यह पूयमेह, उष्णवात, अश्मरी, पौ ग्रन्थिवृद्धि में लाभप्रद है। दो-दो टिकी दिन में तीन दी जाती है। प्रायः इन्हीं रोगों को दूर रखने के गोस्वामी ड्रग्स (रतनगढ़ राजस्थान) ने एक "यूरी सीरप" का निर्माण किया है। इसमें वरुण, पुनर्न मकोय, गोखरू, कुल्थी, पाषाण भेद आदि हैं। इ

दो-दो चम्मच दिन में तीन बार दिये जाते हैं। 'स्टोनेक्स सीरप' (निर्माता भारतीय महौषधि संस्थान अनूपशहर) भी उक्त रोगों में लाभप्रद पहुंचाने वाला पेय है। इसमें वरुण, पुनर्नवा, गोखरू, खीरे के बीज के जलीय सत्वों का संमिश्रण किया जाता है। ''क्रिस्टेन सीरप'' (आयुर्वेद लैब का उत्पादन) के सेवन से भी मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह, वस्तिशूल, मूत्राश्मरी का निवारण होता है। इसें वरुण छाल, गोखरू, सारिवा, मुस्ता आदि हैं। चरक फार्मा द्वारा निर्मित ''कलकुरी टेब.'', अजमेरा फार्मास्युटिकल्स द्वारा निर्मित ''डाययूरिस्टोन टेब.'' तथा अनुजा फार्मास्यूटिकल्स द्वारा निर्मित ''कासटोन टेब'' मेंभी वरुण छाल डाली जाती है। ये सभी प्रयोग मूत्रवह संस्थान विशेषतः अश्मरी के लिए उपयोगी है। ''स्टोन क्योर कैपसूल'' जो हरीश फार्मा द्वारा बनाये जाते हैं उनमें वरुण घनसत्व के साथ श्वेत पर्पटी, गौक्षुरादि गुग्गुलु, कुलथी आदि हैं।एक-दो कैपसूल दिन में 3 बार पर्याप्त पानी के साथ देने चाहिये। ये अश्मरी में लाभदायक हैं। बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक यूनानी फार्मेस्युटिकल वर्क्स झांसी द्वारा ''वरुण'' नाम से इन्जेक्शन भी तैयार किया जाता है। जो मूत्राश्मरी के अतिरिक्त गंडमाला ग्रन्थि शोथ तथा रक्त विकारों में भी लाभ करता है।

महर्षि आयुर्वेद द्वारा ''लिवोमेप'' टेब., सीरप और पेन्डोट्रिक ड्रोप्स का निर्माण किया जाता है। इन तीनों कल्पों में अन्य यकृत के रोगों में लाभदायक द्रव्यों के साथ वरुणत्वक् का भी संमिश्रण किया जाता है। क्योंकि यह अश्मरी भेदन के अतिरिक्त पित्त सारक, दीपन एवं अनुलोमन भी है अतः यकृद् विकारों में हितकर है।

अनुभूत प्रयोग—

1. कास और आन्त्र शोथ पर अनुभूत प्रयोग— वरुण की ताजी छाल 20 ग्राम कूट कर एक लिटर जल में पकावें। चतुर्थांश जल शेष रह जाने पर उसमें एक ग्राम सेंधानमक या 20 ग्राम खांड मिलाकर प्रातः सायं रोगी को पिलाने से हर प्रकार की खांसी में लाभ होता है। निमोनिया (श्वसनक ज्वर) में इसके पत्तों को उपयोग में लावें। इसके 20 ग्राम ताजा हरे पत्तों को या 10 ग्राम शुष्क पत्तों को 400 मि.लि. जल में पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर नीचे उतार छानकर उसमें 250 मि.ग्रा. सेंधानमक मिलाकर पिलावें। इसी प्रकार दिन में तीन बार पिलाने से लाभ होता है।

आन्त्रशोथ पर इसके पत्तों के साथ पुनर्नवा (विषखपरा) के पत्र समभाग दोनों 10-10 ग्राम लेकर कूटकर 400 मि.लि. जल में पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर रोगी को पिलाने से आंतों की सूजन दूर होती है।

—डा. श्री महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य

(धन्व. वनौ. विशे. भाग 5)

2. मेदोरोगहर, प्रयोग— बरना की छाल, मौलश्री के पुष्प, बेलगिरी, लटजीरा, चित्रकमूल, बड़ी अरनी, छोटी अरनी, संहजने की छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, तीनों कटसरैया (श्वेत, पीत, नील), मूर्वा, मेंढासिंगी, चिरायता, काकड़ासिंगी, कुन्दरू, कंजा और शतावरी इनका क्वाथ पीने से मेदोरोग दूर होता है।

—मोटापा दूर करें पुस्तक से

3. वृक्क सन्यास के रोगी के लिए क्वाथ— वरुण की छाल, गोखरू, नीम गिलोय,कुलथी, पुनर्नवा, पित्तपापड़ा, शंखपुष्पी, जटामांसी, ब्राह्मी, सौंफ, धनियां और मुनक्का। सभी समान मात्रा में लेकर 15 ग्राम क्वाथ द्रव्य को एक लिटर जल में मिलाकर 5-7 बार उबाल देकर शीतल होने पर जल के स्थान पर उक्त औषध क्वाथ दें। साथ में अन्य उपयुक्त औषधियों की व्यवस्था करें।

—वैद्य श्री विष्णुदत्त शर्मा

(स्वास्थ्य जुलाई 1986)

विद्वान् चिकित्सक ने उक्त रोग का एक रोगी विवरण

उक्त अंक में प्रकाशित करवाया था जिसमें अन्य औषधियों के साथ उक्त क्वाथ भी दिया। इस व्यवस्था से रोगी को अभूतपूर्व लाभ मिला। जिज्ञासु पाठकों को उक्त रोगी विवरण अवश्य पढ़ना चाहिए। *—वि. सम्पादक*

4. पाण्डुहर उत्तम प्रयोग—वरुणा, शिग्रु, गुडूची, कुटका, किरात तिक्त, रक्त रोहीतक, देवदारू, निम्ब, हरिद्रा, पुनर्नवा, गोक्षुर, नागरमोथा और त्रिफला समान भाग लेकर अधकचरा (स्थूल) चूर्ण बनाकर रख लें। इसमें से 20 ग्राम चूर्ण + चार कप पानी डालकर एक कप रहे तब तक उबालें। निथरने के बाद कपड़े से छानकर आधा कप सुबह और आधा कप सायं काल पीवें। गुण-पांडु, ल्यूकीमिया, मधुमेह, मेदोरोग, मूत्र रोग में बहुत लाभ करता है। *—वैद्य श्री हरिदास श्रीधर कस्तुरे*

(सुधा. अनु. प्र. संग्रह)

5. पौरुष ग्रंथिहरं प्रयोग—वरुण छाल 100 ग्राम, गोखरू 50 ग्राम, कौंच बीज 50 ग्राम, शीतल मिर्च ग्राम, कांचनार छाल 50 ग्राम, कदलीक्षार 50 ग्राम, बीज 50 ग्राम, शिरीष छाल 50 ग्राम, शिलाजीत 50 ग्राम, स्वर्ण बंग। प्रथम काष्ठादिक का महीन चूर्ण कर सभी औषधियों को मिलाकर शोभांजन छाल के क्वाथ की तीन भावनाएं देते हुए खरल करें। इसकी 360 मि. की गोलियां बनालें। दो-दो गोली दिनमें तीन बार से सेवन करें। एक दो माह में आशातीत लाभ होता, शल्य क्रिया की आवश्यकता नहीं होती।

—वैद्य श्री बालकृष्ण गोस्वामी

(सुधा. अनु. प्र.

● **सम्पादकीय टिप्पणी—**

मूत्र संस्थान के रोगों पर बहुउपयोगी औषधि 'वरुण'

सम्बन्धित लेख में पारीक जी ने वरूण का विशद वर्णन देकर इसे अनेक रोगों की बहुउपयोगी औषधि बताया है। हमने में 'वरूण' का प्रभाव मूत्र संस्थान के रूप में विशेष रूप से अनुभव किया है। इसकी छाल में मूत्रल एवं अश्मरी भेदन गुण पाये जाते हैं इसलिए यह मूत्रकृच्छ, मूत्र की जलन, प्रोस्टेट ग्रन्थि वृद्धि आदि रोगों में विशेष रूप से प्रभावकारी है। मूत्रमार्ग के संक्रमण में भी इसके आशातीत लाभ देखने को मिलता है। वरूण की छाल तथा गोखरू का समभाग चूर्ण 1-3 ग्राम की मात्रा में लाने से मूत्र का प्रवाह बढ़ जाता है जिससे मूत्रकृच्छ आदि रोगों में विशेष लाभ होता है। इसकी छाल का क्वाथ 50 मि.लि. से 100 मि.लि. तक देने से भी विशेष लाभ देखने को मिलता है। इसी पृष्ठ पर वैद्य बालकृष्ण गोस्वामी द्वारा दिया गया पौरूष ग्रन्थि हर प्रयोग जिसमें वरूण छाल प्रधान से है। विशेष लाभकर योग है पाठक इसका प्रयोग कर लाभ उठा सकते हैं।

—वैद्य गोपालशरण गर्ग

वासा
(Adhatoda Vasica)

आशावान् व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं सुखमवाप्नुयात्।
—सुश्रुत सू. 19-26

आरोग्य के प्रति सदैव आशान्वित रहने वाला व्यक्ति रुग्ण होकर भी शीघ्र व्याधि से छुटकारा पा लेता है जबकि निराशा से ग्रस्त मनुष्य रोग के जाल में फँसता जाता है। जीवन के प्रति आशावान् व्यक्ति की जिजीविषा बनी रहती है। रोग की जटिलता में परिजन उसके स्वस्थ होने की आशा लगाये रहते हैं। आशा में अच्छे फल की आशक्ति होती है। आशा मनुष्य का शुभ संकल्प है। जब तक आशा रहती है सासा (श्वास) जारी रहते हैं और जब सासा जारी रहते हैं तो जीवन की आशा बनी रहती है। ऐसी स्थिति में रोगी के लिए उपयुक्त औषधि की आवश्यकता होती है। उपयुक्त औषधि के अभाव में जीवन की आशा निराशा में बदल जाती है। रक्तपित्त से श्वास से या क्षय से ग्रस्त व्यक्ति के जीवन की यदि आशा है अर्थात वह साध्यावस्था में है, उसके किसी प्रकार के अरिष्ट लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं तो उसे स्वस्थ बनाने के लिए जिस उपयुक्त औषधि द्रव्य की आवश्यकता होती है वह है-"वासा"। इस वासा को देकर चिकित्सक प्रफुल्लित हो उठता है वह रोगी से कहता है कि-"किमर्थमवसीदसि"। वासा माता की भाँति हितकारी है। यह वैद्य को अपना अभीप्सित प्रदान करता है। चिकित्सक को यह माता तुल्य वनौषधि (भिषड्माता) अतुल पुण्य यंश एवं श्री प्रदान करती है। हमी इस वनौषधि को नमन करते हुए इसके गुणों का बखान किया जा रहा है—

वासा तेरी करें प्रशंसा पाकर नित हरसाते हैं,
कृपा तिहारी पाय आतुरों को हम स्वस्थ बनाते हैं।
मात वनौषधि रैन दिवस चरणों में शीष नवाते हैं,
आज पाठकों के समक्ष हम तेरे गुणगण गाते हैं।

यह वासाकुल (एकैन्थेसी) की वनौषधि है। भावप्रकाशनिघन्टु के गुडुच्यादि वर्ग में इसका वर्णन मिलता है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने छेदन द्रव्यों के अन्तर्गत विभीतक के बाद इसका वर्णन किया है। जो द्रव्य संचित एवं चिपके हुए कफादिक दोषों को अपने गुणकर्मों के द्वारा शक्तिपूर्वक छेदन कर अर्थात् पृथक कर पतला करके निकाल देते हैं वे छेदन किंवा कफच्छेदन (Expectorants) कहलाते हैं। इन छेदन किंवा श्लेष्महर वनौषधि द्रव्यों में इस वासा का महत्व पूर्ण स्थान हैं।

नाम—

संस्कृत—वासा, वासक, वासिका, भिषड्माता, सिंहास्य (सिंह के मुख के समान पुष्प वाला), आटरूषक, वृष, वाजिदन्त आदि।

हिन्दी—अडूसा, अरूसा, बाँसा, वाकस (बिहार)
मराठी—अडूलसा,
बंगला—वाकस
पंजाबी—वांसा, बिहकड़, बिसूरी
राजस्थानी—अलडुसो
तामिल—एधाडड
तेलगू—आदासरा
अरबी—हशीशतुस्मु आल
फारसी—बाँस, ख्वाजा
अंग्रेजी—मलावारनट, अधाटोड़
लैटिन—अधटोड़ा वासिका

प्राप्ति स्थान—समस्त भारत में चार हजार फुट की ऊँचाई तक कंकरीली-पथरीली भूमि में इसके स्वयं जात समूह बद्ध पौधे उगते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें गन्धयुक्त उड़नशील तैल, वसा, राल, एक तिक्त क्षाराभ (वासिकिन), एक कार्बनिक अम्ल (अधाटोडिक ऐसिड़) शर्करा,गोंद, रंजक द्रव्य और लवण पाये जाते हैं। इसकी औषधीय क्रिया मुख्यत: वासिकिनक्षाराभ तथा सुगन्धित तैल के कारण होती है।

वानस्पतिक परिचय—वासा के सदा हरित क्षुप या गुल्म होते हैं जो चार से आठ फुट ऊँचे होते हैं। कहीं इसके 20 फुट तक ऊँचे वृक्ष भी देखे गये हैं। ये समूह के रूप में उगते हैं। इसकी जड़ के ऊपर पृथ्वी के समीप ही प्राय: शाखा प्रशाखा में निकलती रहती है जिससे झुन्ड के झुन्ड बनते चले जाते हैं। इसके पत्ते चार इंच से आठ इंच लम्बे तथा 2-3 इंच चौड़े होते हैं। ये पत्ते दुर्गन्ध युक्त, रोमश एवं नोकदार होते हैं। पत्रवृन्त सूक्ष्म एवं एक इंच लम्बे होते हैं। इसकी शाखाओं के अग्रभाग में गुच्छ के रूप में पुष्प लगते हैं जो आकार में सिंह के खुले हुए मुख की भाँति लगते हैं। इसलिए इसका सिंहास्य नाम है। इनका रंग श्वेत होता है। अधरोष्ठ पर बैंगनी रंग की दो तिरछी धारियाँ तथा आभ्यन्तर कोष के भीतर भाग पर कुछ लाल रंग के धब्बे पड़े रहते हैं। पुंकेशर मूलभाग में रोमश होते हैं। इसकी फली 3/4 इंच लम्बी रोमेश एवं मुद्गराकार होती है। जिसमें चार बीज होते हैं। ये बीज छोटे, चिकने, ग्रन्थिमय तथा सिकुड़नयुक्त होते हैं। इसे कलम के रूप में भी लगाया जा सकता है। ये वसन्त और शरद में फूलते हैं।

भेद—आयुर्वेद के पूर्वाचार्यों ने रक्तपुष्प किंबा ताम्रपुष्प वासा का उल्लेख किया है किन्तु आजकल यह दुर्लभ है। श्वेतपुष्प वासा ही सर्वत्र प्राप्य है। इसमें एक श्वेत छोटा वासा (जसटिसिया पिकटा) भी पाया जाता है। कृष्णवासक (कालाउडूसा) जिसका लैटि[न] जस्टिसिया गेन्डेरेंसिया है-यह बंगाल में पाया जा[ता] वर्षा ॠतु में मार्गों के इधर-उधर और बाग-ब[गीचों] मिल जाते हैं। ये अत्यधिक उष्ण होते हैं। उष्णवी[र्य] से ये तीव्र वामक विरेचक भी हैं। इसी प्रकार के "आधाटोड़ा बेडोमिया" जाति का वासा पाया जा[ता] यह सामान्य वासक से अधिक गुणकारी माना ग[या]

रस—तिक्त, कषाय

(तिक्त होने से यह वायव्य द्रव्य कहा जाता)

गुण—रूक्ष, लघु

वीर्य—शीत

विपाक—कटु

दोषकर्म—यह लघु रूक्ष गुणयुक्त एवं तिक्त र[स] रस युक्त होने से कफ का शमन करता है। उक्त र[स] शीत वीर्य होने से पित्त का भी शमन करता है।

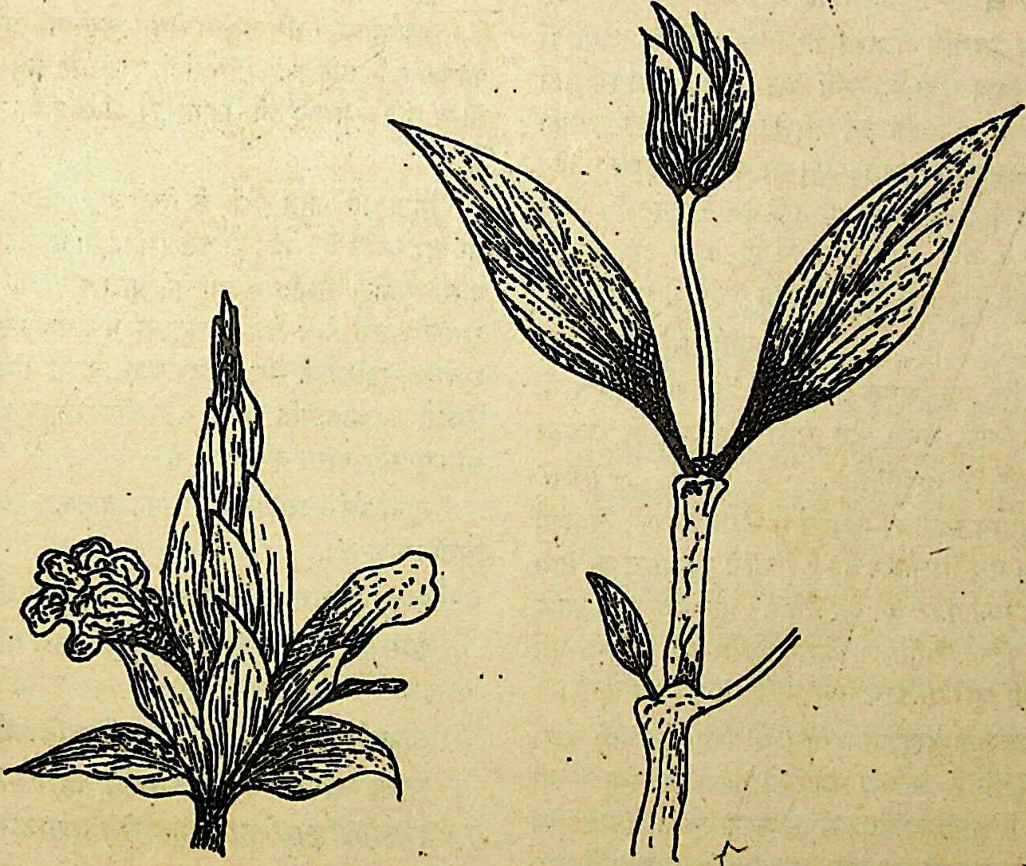
वातकृत्कफपित्तघ्नं वासाभूनिम्बपर्पटा:॥

—सिद्धमं[त्र]

उपयोगी अंग—मूल, मूलत्वक्, पत्र, पुष्प पंचाग।

मात्रा—पत्रस्वरस—10-20 मिली.।

पुटपाक विधि से स्वरस निकालने की वि[धि] वासा के अर्धपक्व पत्तों को लेकर कुचल कर बनाकर पिण्ड सा बना लें फिर इस पर ढाक के लपेट कर सने हुए आटे का मोटा लेप लगा दें। ऊपर गीली मिट्टी का एक और लेपकर सुखाकर कीअग्नि में पिण्ड के लाल होने तक पकाया जा[ये।] वासापिण्ड के लाल होने पर आग से निकाल[कर] स्वांगशीत होने दें। बाद में कल्क को निकाल कर निकालें। इस प्रकार रस अधिक निकलता है जो उपयोगी होता है। इस स्वरस की मात्रा 5 मि.ली. मिली. है।



वासा (Adhatoda Vasica)

नाम—सं०—वासा, हि०—अडूसा, गु०—अरडुसो, म०—अडुलसा, अं०—मलाबार नट, अधाटोड़ा, लै०—अधाटोड़ा वासिका।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत (कंकरीली–पथरीली भूमि में)।

उपयोगी अंग—पंचांग। **दोषशमन**—कफपित्त शामक।

रोगोपयोग—कास, श्वास, रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, कुष्ठ आदि।

मुख्ययोग—वासावलेह, वासारिष्ट आदि।

पुष्पस्वरस—10-20 मि.ली.

मूल क्वाथ—40-80 मिली.

मूलत्वक चूर्ण—250 मि.ग्रा.-650 मि.ग्रा.

पुष्प चूर्ण—500 मि.ग्रा., 1.25 ग्राम

एक सम्मति—वासा जिन रक्तपित्तादि रोगों में उपयुक्त कहा गया है, उनमें अल्प मात्रा में कार्य नहीं करती। प्रायः चिकित्सक छोटी-छोटी मात्रा में उसका उपयोग कर फल श्रुति के अनुसार परिणाम प्राप्त न होने पर शास्त्र के प्रति शंकित दृष्टि से देखने लगते हैं। वासा का कार्मुक वीर्य बड़ी मात्रा में ही, यथा एक छटांक (60 मिली.) स्वरस में ही पर्याप्त अंश में आता है।

—कवि श्री प्रताप सिंह

उपर्युक्त एक सामान्य मात्रा है रोग की स्थिति के अनुसार स्थान, समय, देह आदि को ध्यान में रखकर मात्रा बढ़ाई जा सकती है। ***—वि.स.***

अनुपान विशेष—स्वरस में सैंधव लवण, पिप्पली चूर्ण तथा मधु मिलाकर देते हैं। फूलों को शहद के साथ अथवा इनका फांट बनाकर देते हैं। मूलत्वक् चूर्ण शहद के साथ दिया जाता है। विशेष परिस्थिति में पुष्प एवं मूल त्वक् चूर्ण दो ग्राम तक भी दिया जा सकता है।

संग्रह एवं संरक्षण—वासा के सदाहरित पौधे प्रायः सर्वत्र सुलभ है अतएव पत्रों को ताजी अवस्था में भी व्यवहार में लाना चाहिए। संग्रह करना ही हो तो पत्र पुष्प आदि को छाया में सुखाकर अनार्द्र शीतल स्थान में मुख बन्द कर पात्र में रखना चाहिए।

अहितकर—शीतप्रकृति के लिए

निवारण—(दर्पनाशक)—कालीमिर्च एवं मधु

गुण प्रकाशक संज्ञा—वासा के सभी संस्कृत नाम सार्थक हैं। "वासयति" आच्छादयति" यह सघन होने से बहुत दूर तक धरती पर फैल जाता है अतः वासिका, वासक, वासा आदि नामों से पुकारा जाता है। आचार्य श्रीप्रियव्रत शर्मा ने वासा की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—

वासापसार्य विविधान् विधिना प्रदत्ता
व्याधीन्, निवासयति रोगजुषां शरीरे।
स्वास्थ्यं समस्तमलदोषसुधातुसाम्य
मूलं ततो ह्यभिहिता विबुधैस्तु वासा।।

अर्थात् यह विधि पूर्वक सेवन करने पर अने[क] को बाहर निकाल कर रोगियों के शरीर में दोष धा[तु] साम्य मूल स्वास्थ्य को बैठाता है। अतः इसे वासा हैं।

माता की भाँति वैद्यों के लिए यह हितैषी (र[ोग] रोग दूर करने में) होने से इसे भिषङ्माता कहा [ग]या वासा सुआल अर्थात् खांसी की प्रसिद्ध औषधि इसका अरबी भाषा में हशीशतुल्सआल कहते हैं अर्थ है—खाँसी के रोग को दूर करने वाली प्रसिद्ध "वस्ते आच्छादयति कास श्वासादीन रोगान् इति भी व्युत्पत्ति वासा की जाती है।

गुणधर्म विवेचन—वासको वातकृत् स्वर्[यः] पित्तास्रनाशनः।

तिक्त स्तुवर को हृद्यो लघुः शीतस्तृ[ड्]
श्वास कास ज्वर छर्दि मेह कुष्ठ क्षय प[ह]

—भा[वप्रकाश]

वासातिक्ता लघुःशीता कफपित्तविनाशि[नी]
स्वर्या ज्वरहरी वर्ष्या कास श्वासहरी मता।
रक्तपित्ते क्षये कासे कुष्ठरोगे प्रशस्यते।।

वासकः कास वैस्वर्यरक्त पित्तक फापह[ः]

—राज[निघण्टु]

वासा का सामयिनां श्रवासासृक् पित्तरोगि[णाम्]
तिक्ता कफपित्तहरी शस्ता शोषे ज्वरे [च]

—षोडशा[ङ्ग]

वृषपुष्पं...कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु [वि]

—चरक

वृषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटुवि[पाकानि]
-क्षयकासापहानि च।

—सुश्रुत

वासा प्राणवहस्रोतस् के रोगों की एक प्रशस्त औषधि है। पंचतिक्त द्रव्यों में से यह एक है—

गूडूची, निम्बमूलत्वक् भिषड्माता निदिग्धिका।
पटोलपत्रमित्येतत् पंचतिक्तं प्रकीर्तितम्।।

—र.त.

ये पाँचो द्रव्य कफज एवं पित्तज रोगों में विशेषतः रक्तदुष्टि जन्य विकारों में लाभदायक कहे गये हैं। एक अन्यत्र वर्णित पंचतिक्त में कष्कारी एवं पटोलपत्र के स्थान पर कुटकी एवं चिरायता लिया गया है। यह भी कफपित्तजन्य रोगों में उत्तम योग है। प्राणवहस्रोतस् में जहाँ कफ एवं पित्त की दुष्टि पायी जाए वहाँ वासा का प्रयोग हितावह है। इससे कफ पतला होकर आसानी से निकल जाता है। यह श्वास नलिकाओं का भी प्रसार करता है जिससे कास का आने वाला निरन्तर वेग कम होता है और दम फूलना भी कम हो जाता है। यदि कफ के साथ या खांसी के बाद मुंह में रक्त आया है तो वह भी इसके प्रयोग से बन्द होता है। इस प्रकार यह कास श्वास, क्षय आदि की सर्वोत्तम औषधि सिद्ध होती है। यह धात्वग्नियों को उद्दीप्त कर धातुनिर्माण क्रिया को ठीक करता है जिससे यह क्षय रोगी के लिए उपयोगी है। इसके साथ यह ज्वरघ्न भी है। कास, श्वास, ज्वर, क्षय आदि रोगों में इसके बहुत से लाभ प्रद प्रयोग शास्त्रों में वर्णित हैं—

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः।
मधुमिश्रः श्वास कास रक्तपित्त निवर्हणः।।

—चरक.चि. 4-63

वासा हरिद्रा धनिका गुडूची
भार्ङ्गीकणानागर रिङ्गिणीनाम्।
क्वाथेन मारीचरजोन्वितेन
श्वासः शमं यातिन कस्य पुंसः।।

—यो.र.

वृषौषधाभ्यां वृषपिप्लीभ्यां
वृषोषणाभ्यां क्वथितः कषायः।
क्रमेण वातादिसमुद्भवेषु
श्वासेषु भैषज्यमुदाहरन्ति।।

—क्वा.म.मा.

वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना।
पित्तश्लैष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः।।
बलाद्विवृहतीवासाद्राक्षाभिः क्वथितं जलम्।
पित्तकासापहं पेयं शर्करामधुयोजितम्।।

—च.द.

वासा द्राक्षामयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः।
निहन्ति रक्तपित्तार्तिश्वास कासान्सुदारूणान्।।
रक्तपिंत क्षयं कासं श्लेष्मपित्तज्वरं तथा।
केवलो वासकक्वाथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत्।।
वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा।।

—शा.सं.

सिंहास्यरससंसिद्धहरिद्राखण्ड चूर्ण कम्।
दुग्धसंतानिकालीढ़ं शुष्ककास निबर्हणम्।।
चूर्णं पंचास्य पुष्पाणां विशुष्काणामनातपे।
लीढ़ं क्षौद्रेण पित्तास्रशोषकासान् व्यपोहति।।

—सि.भ.म.मा.

वासापंचाङ्गलशुनामृतवल्लीबलाश्रृतः।
उरोधातं क्षतं हन्ति कासश्वासादिसंयुतम्।।

—क्वा. म.मा.

वृषावत्सकारिष्टवत्सादिनीभिः।
श्रृतं वारि सश्लेष्मपित्तपहारि।

—त्रिशती

क्षुद्रावासा कृष्णाविश्वैः कुष्ठजाजीशक्रोन्मिश्रैः।
शाम्यत्येतैर्धात्वापन्नः श्लेष्पोत्पन्नस्तापः किन्न।।

—सि.भै. मन्जूषा

सपत्रपुष्पवासायाः रसः क्षौद्रसितायुतः।
कफपित्तज्वरं हन्ति साम्रपित्तं सकामलम्।।

—च.द.

वासाद्यात्रीस्थिरादारूपथ्यानागरसाधितः।
सितामधुयुतः क्वाथः चातुर्थक निवारणः।।
—च.द.

वासां गुडूची त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम्।
पक्त्वा तेन कषायेण पयसा द्विगुणेन च।।
पिप्पली मुस्त मृद्वीका चन्दनोत्पल नागरैः।
कल्की भूतैश्च विपचेत् घृतं जीर्णज्वरापहम्।।
—चरक.चि. 3-212-213

हस्तपादांगदा हेषु ज्वरे रक्तं तथोर्ध्वगे।
वासासर्पिश्शतावर्या सिद्धम्बा परमं हितम्।।
—चरक. चि. 8-103

गुडूच्या रसकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च।
मृद्वीकाया बलायाश्च स्नेहाः सिद्धाज्वराच्छिदः।।
—अ.हृ.चि. 1-93

हृदय के लिए लाभप्रद द्रव्य को हृद्य कहते हैं। वासा एक उत्तम हृद्य द्रव्य है। इसकी कुछ अधिक मात्रा हत्पेशी एवं उस की प्राणदा नाड़ी को अवसादित कर रक्त भार को कुछ कम कर देती है। सुतरां यह हृदय रोगों में उपयोगी होता है। यह छोटी रक्त वाहिनियों को संकुचित करता है जिससे उत्तम रक्तस्तम्भन है। रक्तपित्त की यह सर्वोत्तम औषधि होने के साथ ही रक्त निष्ठीवन, रक्तार्श, रक्तप्रदर आदि रक्तस्राव प्रधान रोगों में लाभप्रद है। इन रोगों में इसकी उपयोगिता के बहुत से कथन वर्णित हैं—

"वृषोस्रपित्ते" —अ.हृ.उ.त. 40

अटरूषकनिर्य्यूहे प्रियंगुं मृत्तिकाञ्जने।
विनीय लोध्रं क्षौद्रं च रक्तपित्तहरे पिबेत्।।
—चरक.चि. 4-64

मध्वाटरूषकरसैः सितशर्करां च
चूर्णीकृतां समधुकां कृततुल्य भागाम्।
यो वैनरः पिबति पथ्यरतः प्रभाते
तद्रक्त पित्तंमतिदारूणमेति नाशम्।
—रा.मार्तण्ड

वासां सशाखां सपलाशमूलां
कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्य।
प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतं तत्
सक्षौद्रमा श्वेव निहन्ति रक्तम्।।
—च.चि.

स्वरसं समाक्षिकं पिबेत्
सिता क्षोद्रयुतं वृषस्य वा।
—सुश्रुत. उ.

पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः।
मधुयुक्तो जयेद्रक्त पित्त कास ज्वरक्षयान्
—शा.स.म.

पित्तास्रदाहकसनश्वसनव्यथा वा
येन प्रयाति कृतगाढतराधिवासा
तद्भेषजं बहुगुणं भज देशदास
यद्वै विभर्ति गदराजविनाशकत्वम्।।
—सि.भै.

कृत्स्ने वृषे तत्कुसुमैश्च सिद्धं
सर्पि पिबेत् क्षौद्रयुतं हिताशी
यक्ष्माणमेतत्प्रबलं कासं
श्वासञ्च हन्यादपि पाण्डुतां च।।
—सुश्रुत. उ. 41

सकलमुनिकुलसम्मतं किल वाविस दलजामृतम्।
पिब रक्तपित्तविनाशकं मधुशर्करामधुरीकृत
—सि.भै.

यह रक्त शोधक, स्वेद जनन और कुष्ठघ्न है रक्तविकार और कुष्ठ आदि चर्म विकारों में लाभदायक है। कुष्ठ में इसे वमन हेतु भी उपयोग में हैं—

वासावचापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः।
कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः।

वासा, त्रिफला, बड़ी कटेरी, सुगन्धबाला, पटोलपत्र, अनन्तमूल और कुटकी पीने, नहाने, उबटन करने तथा प्रलेप में कुष्ठ रोग में प्रयोक्तव्य है—

वासा त्रिफला पाने स्नाने चोद्वर्तन प्रलेपे च।
वृहतीसेव्य पटोला स सारिवा रोहिणी चैव।।

शरीर की दुर्गन्ध नष्ट करने के लिए—

वासा दलरसो लेपाच्छंखचूर्णेन संयुतः।
विल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः।।

—च.द. 36-35

रक्त विकारों एवं चर्म विकारों में वासा, गिलोय आदि से बनाया गया वज्रकघृत बहुत लाभप्रद कहा गया है—

वासामृतानिम्बवरापटोलव्याघ्री करंजोदककल्कपक्वम्।
सर्पिर्विसर्पज्वर का मलासृक् कुष्ठापहं वज्रकमामनन्ति।।

—अ.हृ.चि. 19-18

वासापत्र का लेप कुष्ठघ्न, जन्तुघ्न, वेदनास्थापना होने के अतिरिक्त शोथहर भी है इसका अन्तः प्रयोग भी शोथहर कहा गया है—

सिंहास्यामृतभष्ठा की क्वाथं कृत्वा समाक्षिकम्।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं विमिम्।।

—च.द. 39-20

कच्छु में—

कोमलसिहांस्य दलं सनिशं सुरभिजलेन पिष्टम्।
दिवसत्रयेण नियतं क्षपयति कच्छुं विलेपनतः।।

—च.द.

गुदकील में—

रूगार्त्त कफवातेन अत्यर्थं गुदकीलकम्।
स्वेदयेद् वा वृषः पिण्डैः।

—वंगसेन

वातरक्त में—

वासागुडूचीचतुरंगुलानां वातारितैलेन पिबेत्कषायम्।
क्रमेण सर्वाङ्गजमध्यशेषाञ्जयेदसृग्वात भवान् विकारान्।।

—क्वा.म.मा. 381

पाण्डु कामला में—

वासागुडूची त्रिफला कद्वीभू निम्बनिम्बजः।
क्वाथः क्षौद्रयुतोहन्ति पाण्डुपित्तास्रकामलाः।

—अ.हृ.चि. 16-13

यह कषाय शीत होने से स्तम्भन है अतः अतिसार प्रवाहिका में हितकारी है। विशेषतः उस अतिसार, प्रवाहिका में हितकर है जिसमें रक्त आता हो। इसके अतिरिक्त अम्लपित्त, गुल्म आदि पाचन संस्थानगत रोगों में भी यह हितकारक है। कहा गया है—

वासामृतापर्पट कनिम्बभूनिम्बमार्कवैः।
त्रिफला कूलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा।।

—क्वा.म.मा.

निस्तुषयववृषधात्री क्वाथस्त्रिसुगन्धि मधुयुतः पीतः।
अपनयति चाम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुग्दयूषेण।।
वासानिम्बपटोलत्रिफलाशनयासयोजितो जयति।
अधिककफमल्पपित्तं प्रयोजितों गुग्गुलुःक्रमतः।।

—च.द. 52

वृषं समूलमापोथ्य पचेदष्टगुणे जले।
शेषेष्ट भागे तस्यैव पुष्पकल्के प्रदापयेत्।।
तेनसिद्धं घृतं शीतं सक्षौद्रं पित्तगुल्मनुत्।
रक्तपित्तज्वर श्वासकास हृद्रोग नाशनम्।।

—चरक चि. 5

इसके पुष्प मूत्रजनन होने से मूत्रकृच्छ, मूत्रदाह एवं पैत्तिक प्रमेह में प्रयुक्त होते हैं। मूत्राघात के लिए इसे उपयोगी कहा गया है—

रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य वा।

—शोढल

नेत्र रोगों में उपयोगी—

वासाहरीतकीनिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः।
रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम्।।

—क्वा.म.मा.

सुखप्रसवार्थ—

वासाशिफा पृथक् पृष्ठा नाभेरधोलिप्ता
गर्भ निषक्रामणप्रदा। —वैद्य मनोरमा
नाभिवास्तिभगालेपः आटरूषकमूलतः
गर्भापकर्षणम्।। —च.द.

यह पूर्व में कहा गया है कि यह प्रदर में उपयोगी है। यह तिक्त कषाय शीत और स्तम्भन होने से तथा दोष पाचन करने के कारण लाभदायक है। इसमें वासापानक और वासा स्वरस अधिक हितावह कहा गया है—"वासास्वरसं पैत्ते" (भै.र.) प्रदर–रिपुरस (भै.र.) में भी वासा स्वरस की भावना दी जाती है। इसके अतिरिक्त पारद भस्म का प्रयोग वासा कषाय के साथ प्रदर में लाभदायक कहा गया है—

वासाकषाय सहितं रस भस्म प्रयोजितम्।
प्रदरं हन्ति वेगेन सक्षौद्रं नात्रसंशयः।।

—भै.र.

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार वासा की जड़, कफ पित्त से उत्पन्न खांसी, सांस, मूत्र की जलन और खून की कमी को दूर करने में श्रेष्ठ है। "वासा के फूल प्रथम दर्जे में शीतल होते हैं। रक्तपित्त और क्षयरोग में यह बहुत लाभदायक है। इससे हृदय की दुर्बलता भी दूर होती है।

आधुनिक मत—डा.आर.एन.खोरी के मतानुसार वासक कफनिःसारक, आक्षेपनिवारक व रसायन है। इसके फूल और जड़ सोंठ व सिताब के साथ कफ, कास, जीर्णकास, श्वास, क्षय एवं अन्य उरोगत श्लेष्म में सेव्य हैं। वासकमूल सैनेगा की उत्तम प्रतिनिधि।

मेजर बसु और डा. कीर्तिकर के मतानुसार वातनलिका प्रदाह, रक्तविकार, कुष्ठ, हृदयरोग, ज्वर, श्वास, वमन, स्मृतिमांद्य, क्षय पाण्डु, मुख मूत्रकृच्छ और श्वेतप्रदर में लाभदायक हैं इसके ऋतुस्राव को और फूल रक्तगति को नियमित करते

डा. वा.ग.देसाई के मतानुसार अडूसा एक उतेजक, संकोच विकास प्रतिबन्धक और कफनिस्सा है। शरीर में इसकी क्रिया इपिकेकोना के समान होती इपिकेकोना से जिस प्रकार छोटी रक्त वाहिनियों संकोचन होता है। और रक्तस्राव रूक जाता है। प्रकार अडूसा से भी छोटी रक्तवाहिनियों का संको होकर रक्त स्राव रूक जाता है। इसलिए रक्त रक्तमिश्रित दस्त, खूनी बवासीर, अत्यर्तव और क्ष कफ के साथ गिरने वाले रक्त में इसका स्वरस दें लाभ होता है। इसके पत्ते, फूल और जड़ के गुण कुछ अन्तर होता है। इसके फूल कड़वे, कसैले, नाशक, मूत्रल और रक्त की गर्मी को शांत करते इसके फूलों का ज्वर नाशक धर्म चढ़ने–उतरने वाले में उत्तम रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसकी जड़ें नाशक, मूत्रल, कफ निस्सारक, पर्यायिक ज्वरों को करने वाली और कृमीनाशक हैं। इसके पत्तों और की अपेक्षा इसके फूलों में संकोच विकास प्रतिबन्धक धर्म अधिक होता है। इसके पत्तों की अपेक्षा इसकी में कफनिस्सारक धर्म अधिक है। इसके पत्तों की त्वचा पर विशेष रूप से होती है। अडूसा में ज्वर ना और पसीना लाने का धर्म थोड़ी सी मात्रा में होता किन्तु कफ को पतला करने और खाँसी को दूर करने धर्म इसमें प्रधानरूप से रहता है। पुराने कफ रोग हृदय के अन्दर बहुत शिथिलता आ जाती है, वह इस

जड़ के सेवन से कम हो जाती है। नवीन कफ रोगों की अपेक्षा पुराने जीर्ण कफ रोगों में यहं विशेष रूप से लाभदायक है।

डा. चोपड़ा के मतानुसार इसके ताजा सुखाये गये पत्तों के चूर्ण को सेवन से श्वास नली के शोथ (एक्यूट ब्रोकाइटिस) से ग्रस्त रोगियों को तुरन्त आराम मिला। वे रोग मुक्त हो गये व उनकी जीवनी शक्ति में अत्यधिक वृद्धि (एन्टीबाडी स्तर बढ़ने के रूप में) पायी गई क्रानिक ब्राकाइटिस (पुरानी खांसी) में भी इसने लाभ पहुंचाया। रोगियों का कफ पतला हो गया तथा आराम मिलने लगा। वेगस नाड़ी पर अपने तीव्र प्रभाव के कारण रोगी सांस भी आराम से लेने में समर्थ हो सके।

डा. दत्ता जैसे वैज्ञानिकों ने वासा की उपयोगित। को जगत के समक्ष आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व रख दिया था। इन्होंने क्षय के रोगियों पर प्रयोग कर इसे लाभप्रद बताया था।

अध्ययन बताते हैं कि वासापत्र का सारभूत तैल (इसेन्शियल आयल) जीवाणुनाशक क्षमता रखता है। यह कफ निस्सारक भी है। वसिकिन नामक एल्केलाइड फेंफड़ों की श्वास नलियों को फैलाता है तथा इसका यह प्रभाव थोड़ी देर नहीं, काफी समय तक बना रहता है। इसका कारण संभवतः वेगस नाड़ी के प्रभाव के प्रतिकूल इस रसायन का प्रभाव होता है। वेगस के उत्तेजन से उत्सर्जित रसायन जहाँ श्वास नलियों को सिकोड़ते हैं वहाँ इस औषधि के एल्केलाइड इस प्रभाव को निरस्त कर देते हैं। एल्केलाइड व सारभूत तैल का कफ निस्सारक प्रभाव मिलकर श्वास के रोगियों के लिए इसे एक प्रभावशाली औषधि बना देते हैं। इण्डियन जनरल आफ फारमेसिटूकल साइन्स (416, 1979) के अनुसार वासा का यह मुख्य घटक है तैल श्वास नलिकाओं को फैलाता है तथा वासिकीन सहायक भूमिका निभाता है। "इण्डियन जनरल मेडिकल रिसर्च" में लिखा है कि यह वासिकीन खून की गति को ढीला करता है और हृदय की गति को सामान्य बनता है।

पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के विद्वान चिकित्सक ही नहीं, होम्योपैथिक भारतीय व जर्मन के विद्वान चिकित्सक भी वासा की खूब प्रशंसा करते हुए इसे उपयोगी सिद्ध करते हैं। इनके अनुसार एलर्जी (असहिष्णुता), अधिक छींके आना, सर्दी से खांसी हो जाना, गला बैठ जाना जैसी तकलीफों में तीसरी व ऊँची पोटेन्सी में वासा का प्रयोग बहुत लाभ पहुंचाता है। निष्णात हेम्योपैथी चिकित्सा वासा के मदरटिंचर को कुकरखांसी व साइनोसाइटिस जैसे रोगों में सफलता से प्रयुक्त करते हैं।

वासा की अन्य उपयोगिता—

1. प्राचीन काल में इसे मकानों के छप्पर में लगाया जाता था इसे कृमि-कीटों का भय नहीं रहता था। इसके साथ ही इसकी छाया भी शीतल होती है जो ग्रीष्मकाल में अधिक लाभ प्रद होती है।

2. कीटनाशक होने से इसके पत्तों को कपड़ों एवं किताबों के अन्दर रखा जाता था जिससे कृमि लगकर इन्हे खराब नहीं करते थे। कई व्यक्ति आज भी नीम की तरह इसके पत्तों को उपयोग में लाते हैं।

3. अमरूद, आम, केले, सीताफल का पाल इसके पत्तों से लगाया जाता है जिससे कोई कीड़ा फलों को विकृत नहीं कर पाता। इससे फल सड़ते नहीं है।

4. वासापत्र एक खाद का काम करते हैं। इससे खेत के हानिकारक कीड़े भी नष्ट हो जाते हैं और व्यर्थ की घास को भी ये उगने नहीं देते हैं।

5. जन्तुघ्न होने के कारण इसके पत्तों को जल में रखने से खराब नहीं होता है।

6. इसका मद्यसारीय अर्क मक्खी, पिस्सू एवं मच्छर आदि के लिए घातक होता है।

7. कहीं-कहीं चावलों के खेत में सबसे पहले इसके पत्ते फैला दिये जाते हैं। फिर हल चलाते हैं। इस प्रकार इन पत्तों को अच्छी तरह से मिट्टी में मिला दिये जाने से फसल अच्छी होती है। इसके साथ ही अन्य घातक पौधे भी नहीं उगते हैं जो फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। इसी प्रकार अन्य फसल के लिए भी इसके पत्ते उपयोगी समझे जाकर मिट्टी में मिलाने चाहिए।

8. इसके पत्तों को पानी में पकाने से एक प्रकार का पीला रंग निकलता है। यदि इसमें थोड़ी नील मिला दी जाये तो बहुत सुहावना नीला-हरा रंग तैयार हो जाता है।

9. इसकी लकड़ी श्वेत वर्ण की कोमल तथा हल्की होती है। इस लकड़ी में पानी नहीं घुसता, अत: यह पानी में डालने से सड़ती नहीं है। प्राचीन काल में इसकी लकड़ी का कोयला बारूद बनाने के काम में लाया जाता था।

10. वासा के बीजों को सुखाकर फिर सेंक लें। इन सिके हुए बीजों को बारीक पीसकर इनका चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को गरम दूध में मिलाकर काफी की तरह उपयोग में लावें। इसके सेवन से काफी पीने की लत छूट जाती है तथा वासा के वर्णित उपयोगी गुणों से लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

सामन्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. **आँखों के रोग**—आंखें दुखनें पर जब उन पर सूजन विशेष हो तब वासा के पुष्पों को पानी के साथ पीसकर पलकों पर लेप करना चाहिए। इसके पत्तों को भी पीसकर लेप करना चाहिये।

2. **मुखपाक**—वासा की जड़ की छाल का क्वाथ बनाकर छानकर, ठंडा होने पर उस क्वाथ जल से कुल्ला करें। यह मुखपाक हर है।

3. **दन्त रोग**—वासा पत्र जलाकर उसमें थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर मंजन करें तथा वासा पत्र क्वाथ तैयार कर कुल्ला करें इससे दन्तपीड़ा, मसूढ़ों से र[illegible] आना, दन्तकृमि, दाँतों का हिलना आदि ठीक होते हैं।

4. **खाज-खुजली**—वासा के पत्तों को हल्दी [illegible] गौमूत्र के साथ पीसकर शरीर पर मलने से शरीर [illegible] खाज-खुजली नष्ट होती है।

5. **बाह्य कृमि**—चर्म स्थित कृमियों को नष्ट क[illegible] के लिए इसके पत्तों का रस निकालकर निरन्तर [illegible] दिनों तक मालिश करनी चाहिये। पत्तों को उबाल[illegible] स्नान करना भी श्रेयस्कर है।

6. **भगन्दर**—(क) वासापत्र की टिकिया बना[illegible] बाँधने से भगन्दर में आराम मिलता है। बाँधने से प[illegible] इस टिकिया को घी में छोंक लेना चाहिए।

(ख) पत्तों को पीसकर थोड़ा नमक मिला[illegible] बांधना भी भगन्दर में लाभप्रद है।

7. **व्रणशोथ**—पत्र ताजा लेकर उसे हल्दी और [illegible] के साथ कुमारी स्वरस में पीसकर लेप करना व्रण[illegible] में उपयोगी है।

8. **कष्ट प्रसव**—कष्ट प्रसव में वासामूल [illegible] पीसकर नाभि के नीचे भाग पर लेप करने से सुखपू[illegible] प्रसव होता हे।

9. **बालकों का डब्बारोग**—वासा पत्र पीसकर [illegible] कर छाती पर लेप करने से छाती में चिपका हुआ [illegible] अलग हो जाता है।

10. **रक्तपित्त**—वासापत्र का स्वरस कान में डा[illegible] से नकसीर रोग में लाभ होता है।

11. **बालकों की खांसी**—फल बालकों के गले [illegible] लटकावें।

12. **राजयक्ष्मा**—(क) राजयक्ष्मा के रोगी [illegible] स्वच्छ वायु में वासा पत्र निर्मित झोंपड़ी में रखना चाहि[illegible]

(ख) रोगी के स्थान को वासाक्वाथ, तूतिया [illegible] चूना एकत्र मिलाकर पोतना चाहिये तथा उस स्थान [illegible] वासा पत्र की धूनी देते रहना चाहिए।

13. कर्ण रोग—वासा पत्र, अर्कपत्र तथा सम्भालु पीसकर तिलतैल में जला लें। इस तैल की दो-तीन बूंद कान में टपकाने से कान की पीप-फुंसी दूर होती है।

14. पार्श्व शूल—वासापत्र में आवश्यकतानुसार रोगन बबूना, डालकर पीस लें और लेप तैयार कर लगावें। इससे रोगी को शीघ्र आराम मिल जाता है। इसी प्रकार पत्र का कल्क बना कर लेप करने से नाड़ी शूल और आमवात के शूल को शान्त करने में भी श्रेष्ठ हैं।

15. संधि शोथ—इसके पत्तों को पानी में उबालकर कपड़े को भिगोकर संधि-शोथ के स्थान पर सेक करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

16. शरीर की दुर्गन्धता में—वासा पत्र स्वरस में शंखचूर्ण मिला कर लेप करने से शरीर की दुर्गन्ध मिटती है।

17. आमवात—वासा के पत्ते और एरण्ड के पत्ते लेकर उन्हें पानी में औटाकर इसका बफारा देने से आमवात, सन्धिशोथ एवं अन्य शोथ के रोगी को लाभ मिलता है। इससे सूजन दूर होकर दर्द का निवारण होता है।

18. गुदशूल—गुदा में कफ वात से पीड़ा हो या कठिन गुदकीलक रोग हो तो वासा के पत्तों की पोटली बनाकर पत्तों के क्वाथ में डुबो-डुबोकर हल्का सेक करने से शीघ्र लाभ होता है।

19. कुष्ठ—वासापत्र, कूड़ा छाल और सप्तपर्ण (छतिवन) के पत्तों का कल्क कर गोमूत्र मिलाकर लेप करने से तथा इसके क्वाथ के जल से स्नान करने से कुष्ठ रोगी को राहत मिलती है।.

20. विद्रधि—वासा पत्रों को पानी में पीसकर प्रारम्भ में ही विद्रधि पर लेप करने से वह शीघ्र बैठ जाती है और अधिक पीड़ा दायक नहीं होती है।

आभ्यन्तरीय सामान्य प्रयोग—

1. रसायन हेतु वासा प्रयोग—रसायन विधि के अनुसार वासामूल के क्वाथ में मीठा तैल पकाकर एक हजार गायत्री मंत्र जप करके और 100 मंत्रों से हवन कर इस तैल का सेवन करना चाहिये। इस तैल को शरीर पर लगाना भी चाहिए। यह प्रयोग बुद्धिबर्धक और आयुवर्धक भी है।

2. उपदंश—वासा के जड़ की छाल को चोबचीनी के क्वाथ में सात दिनों तक भिगो रखने के पश्चात्, शुष्क कर महीन चूर्ण कर लेवें। एक-एक प्रतिदिन सेवन करने से उपदंश रोग दूर हो जाता है।

3. कुष्ठ—वासामूल की छाल और गोरखमुण्डी दोनों की घोटकर छानकर शहद मिलाकर पिलाना कुष्ठ निवारणार्थ होता है।

4. कामला—इसके 12 ग्राम पत्र के साथ कलमी शोरा और कासनी 6-6 ग्राम मिलाकर घोटछान कर पिलाने से मूत्र अधिकता से आता है जिससे कामला रोग का निवारण होता है।

5. छर्दि—इसकी जड़ की छाल को जौकुट कर तथा जल में भिगोकर इस जल को घूंट-घूंट कर पिलाने से मतली आना और वमन में शीघ्र लाभ होता है।

6. प्रसूत रोग—वासापत्र स्वरस 6 मिली. में समान भाग घी मिलाकर दिन में एक बार पिलावें। इस प्रकार निरन्तर सात दिनों तक पिलाने से प्रसूत रोग किसी भी प्रकार का हो समूल नष्ट हो जाता है।

7. कांस (खांसी)—(क) वासा पत्र स्वरस में तालीस पत्र चूर्ण और मधु मिलाकर सेवन कराने से रोगियों के कफजन्य तथा पित्तजन्य कास, श्वास, स्वरभेद आदि रोगों का शमन होता है।

(ख) वासास्वरस की हरिद्रा चूर्ण में भावना देकर इसे मलाई के साथ चटाने से सूखी खांसी में अच्छा आराम मिलता है।

(ग) वासा के अर्क में नमक मिलाकर पीने से कास में लाभ होता है।

(घ) वासा पत्र, भारंगी, बहेड़ा के चूर्ण को शहद से सेवन करना चाहिए।

(ङ) वासा पत्र स्वरस में त्रिकटु चूर्ण मिलाकर उपयोग में लाना हितकर है।

(च) वासापत्र, भारंगी, बहेड़ा के चूर्ण को शहद से सेवन करना चाहिए।

(छ) वासा, दोनों कटेरी, मुनक्का, सोंठ और पीपल के क्वाथ में मिश्री व शहद मिलाकर सेवन करावें।

(ज) वासामूल 15 ग्राम, गिलोय 10 ग्राम को जौकुट कर 200 मि.ली. जल में पकावें। एक चौथाई रहने पर छान लें और इसकी दो मात्रा बनाकर सुबह-शाम शहद मिलाकर सेवन करावें।

(झ) वासा पत्र के क्वाथ में शहद और पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करें अथवा वासामूल की छाल के क्वाथ में सैन्धव मिलाकर सेवन करें इससे कास श्वास में कफ का शमन होकर लाभ होता है।

(ञ) वासा पत्र को छाया में सुखाकर बारीक चूर्ण बनाकर बराबर मिश्री मिला कर रखें। श्वास कास के रोगी को मात्रानुसार सेवन करावें अच्छा लाभ मिलेगा।

(ट) वासास्वरस एक चम्मच में आधा चम्मच तुलसी पत्र स्वरस और एक चम्मच शहद मिलाकर पिलाने से कास में लाभ होता है। बालकों के कूकर कास में यह बहुत उपयोगी है। वासा पत्र स्वरस में पिप्पली, इलायची और लोंग का चूर्ण मिलाकर भी दिया जा सकता है।

(ठ) वासा, सोंठ, पुष्करमूल, दालचीनी, छोटी कटेरी, पिस्ता के फूल, कुलिंजन और जूफिका के क्वाथ में खैरसार (कत्था) मिलाकर पीने से कास का विकास रूक जाता है।

(ड) वासा क्षार को बबूल के गोंद के साथ देने से कास-श्वास में लाभ होता है।

(ढ) वासा पत्र स्वरस (पुटपाक रीति से निकाला हुआ) 20 बूंद, टंकण क्षार 125 मिग्रा. और वंश लोचन 125 मिग्रा. मिलाकर एक ग्राम शहद के साथ चटाने से कफ प्रकोप से उत्पन्न घबराहट, अधिक सांस चलना, काली खांसी (कूकर कास) आदि बालकों के रोग दूर होते हैं।

8. **श्वास रोग**—(क) वासा के पत्तों का रस, बेल के पत्तों का रस और सरसों का तैल प्रत्येक 5-5 मिली. लेकर मिलाकर पीने से श्वास में लाभ होता है। यह प्रयोग सात दिनों तक निरन्तर चालू रखें।

(ख) वासापत्र, खिरैंटी की जड़ और पिठवन की जड़ तीनों 5-5 ग्राम लेकर इनका क्वाथ बनाकर पीने से श्वास रोग शान्त होता है। यह गर्भिणी को होने वाले श्वास, कास, ज्वर, शोथ, रक्तपित्त का शमन करने में श्रेष्ठ कहा गया है।

(ग) वासा के बीजों, नकछिंकनी और बंगलापान इन तीनों को बराबर की मात्रा में लेकर आग पर भून कर पीस-छान कर रख लें। इनमें से 500 मि.ग्रा. दवा लेकर इसे बंगला पान में रखकर नित्य सबेरे खाने से भी श्वास रोग नष्ट होता है।

(घ) वासापत्रस्वरस, आर्द्रकस्वरस और शुद्ध मधु 5-5 मिली. लेकर मिश्रित कर सेवन करने से श्वास में अच्छा लाभ होता है।

(ड.) वासा पत्र, द्राक्षा और हरीतकी (बड़ी) का क्वाथ बनाकर उसमें मधु मिलाकर उपयोग में लाने से श्वास, कास, रक्तपित्त आदि रोगों का शमन होता है। इससे विबन्ध भी दूर होता है।

(च) वासा की जड़ और पत्तों को घी में पकाकर प्रातः खाने से श्वास एवं क्षय में लाभ होता है।

(छ) वासा के सूखे पत्ते और धतूरे के सूखे पत्ते (धतूर पत्र से वासा पत्र दुगने हों) लेकर उन्हें चिलम में रख धूम्रपान करें।

(ज) वासा पत्र और पोहकर मूल का क्वाथ बनाकर पिलाने से श्वास रोगी को आराम मिलता है।

9. आध्मान—भोजन करने के बाद पेट में भारीपन आ जाता हो और थोड़ा रूक-रूक कर पेट में दर्द भी होता हो तो वासामूल की छाल का चूर्ण बनाकर इसमें चौथाई भाग अजवाइन का चूर्ण और अजवायन के चूर्ण से आधा भाग सेंधानमक मिलाकर नींबू के रस में खूब खरलकर एक-एक ग्राम की गोलियां बला लें। इन गोलियों को एक से तीन गोली तक भोजन के बाद सेवन करने से लाभ होता है।

10. उरःक्षत—वासा पंचांग, लहसुन, गिलोय और खरेंटी का क्वाथ पीने से कास-श्वास युक्त उरःक्षत रोग दूर होता है।

11. क्षय—(क) वासापत्र स्वरस सेवन करने से कफ निकलने लगता है और अंगदाह तथा चढने-उतरने वाला ज्वर कम हो जाता है।

(ख) वासा घृत को शतावरी के रस में मिलाकर पान करना क्षय में परम हितकारी है। इससे हाथ -पैरों की जलन, ज्वर एवं रक्त पित्त आदि लक्षण दूर होते हैं।

12. रक्तपित्त (खूनगिरना)—

(क) वासा पत्र स्वरस में शहद और शर्करा मिलाकर सेवन करना हितकर है।

(ख) वासा पंचांग के क्वाथ में नीलोफर, प्रियंगु, लोध्र, कमल के शर का चूर्ण तथा शहद मिलाकर सेवन करने से भी अच्छा लाभ मिलता है।

(ग) वासा पत्र, किशमिश, बड़ी हरड़ का छिलका, 5-6 ग्राम लेकर 250 मि.ली. पानी में पकायें जब 60 मि.ली. जल शेष रहे तब उतार मल छान शहद और शक्कर मिलाकर सेवन करने से नाक से गिरता खून, खांसी और श्वास मिटते हैं।

(घ) वासा, मुलेठी, चन्दन, धनिया, खस और सुगन्ध बाला का क्वाथ तैयार कर उसमें शक्कर और मधु मिलाकर सेवन करने से भी रक्त पित्त, अधिक प्यास लगना, बुखार और शरीर की जलन आदि रोग मिटते हैं।

(ङ.) वासापत्र, धाय के फूल और मिश्री बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण तैयार कर लें। यह चूर्ण 5-6 ग्राम, गाय के दूध के साथ सेवन करें। इससे भी इस रोग में अच्छा लाभ होता है।

(च) वासा पुष्पों को छाया में सुखाकर चूर्ण बनाकर शहद के साथ चाटना भी रक्तपित्त में हितकारी है।

(छ) वासा पत्र चूर्ण, हरड़चूर्ण, लाक्षाचूर्ण समान मात्रा में लेकर 3-4 ग्राम चूर्ण मधु के साथ सेवन करें।

(ज) वासा पत्र का हिम बनाकर मधु मिला सेवन करना हितकर है।

(झ) वासामूल की छाल 40 ग्राम, रक्त चन्दन, पित्तपापड़ा 10-10 ग्राम और खस 5 ग्राम लेकर सबको जौकुट कर 100 मि.लि. जल में भिगो दें। प्रातः पीसकर छानकर इसकी दो खुराक बना लें।

(ञ) वासामूल स्वरस 25 मि.ली. में 5 ग्राम मधु मिलाकर पिलावें।

13. रक्तातिसार—पत्र का ताजा स्वरस रक्तातिसार एवं आमातिसार में लाभदायक है। धनियां व सौंफ के साथ अधिक लाभ होता है।

14. रक्तप्रदर—(क) वासा और लोध्र का शीतकषाय इसमें हितकारी है।

(ख) वासापत्र स्वरस में शहद मिलाकर सेवन कराया जाए। रस में मिश्री मिलाकर भी दिया जा सकता है।

(ग) वासापत्र, राल, सोनागेरू, मोचरस समान भाग लेकर इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर 5-6 ग्राम चूर्ण गाय के दूध के साथ सेवन करना भी लाभदायक है।

15. श्वेतप्रदर—वासामूल की छाल का रस निकालकर उसमें शहद मिलाकर पिलाने से श्वेतप्रदर में लाभ होता है।

16. रक्तार्श—छाया में सुखाये पत्तों का चूर्ण तैयार कर उसमें बराबर सफेद चन्दन का चूर्ण मिलाकर रखें। प्रतिदिन 3 ग्राम चूर्ण जल के साथ सेवन करने से बवासीर का रक्तस्राव रूकता है। इसमें हीरादक्खन चूर्ण (तीनों बराबर) मिलाने से अधिक लाभ होता है।

17. अश्मरी (पथरी)—वासा की जड़, बड़ा गोखरू, पाषाण भेद और छोटी इलायची के काढ़े में शिलाजीत मिलाकर पिलाने से पथरी और मूत्राघात में लाभ होता है।

18. मूत्रकृच्छ—(क) वासा पंचांग और गोखरू का क्वाथ बनाकर पिलाने से मूत्र कृच्छ एवं मूत्राघात दूर होते हैं।

(ख) वासापत्र के क्वाथ में चन्दन तैल की 20-25 बूंद डालकर पिलाने से मूत्र कृच्छ, पूयमेह (सुजाक) आदि मिटते हैं।

19. वृक्कशूल (गुर्दे का दर्द)—वासापत्रस्वरस में मधु मिलाकर चाटने से वृक्क शूल कम होता है।

20. पूयमेह—वासा क्षुप की कौंपल 3-4 ग्राम पीसकर प्रतिदिन निराहार पीने से पूयमेह, मूत्रदाह, मूत्रावरोध, मूत्र में श्वेत पदार्थ आना आदि में लाभ होता है।

21. ज्वर—(क) वासा पत्र स्वरस में तुलसी और अदरक स्वरस मिलाकर सेवन कराना कफज्वर में लाभप्रद है। इसके साथ में मुलेठी चूर्ण और शहद मिलाकर देने से अधिक लाभ होता है। यह सन्निपात ज्वर में भी उपयोगी है।

(ख) वासापत्र एवं वासापुष्प स्वरस में मधु-मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तकफजन्य ज्वर का शमन होता है। यह प्रयोग कामला और अम्लपित्त के रोगी के लिए भी लाभप्रद है।

(ग) वासा, इन्द्रजौ, नीम की छाल और गि... इनका क्वाथ पित्तकफ जन्य ज्वर का नाश करता है...

(घ) वासा, त्रिफला, खरेटी, पटोलपत्र और मुलेठी... का क्वाथ भी कफपित्तज ज्वर को समाप्त करता है...

(ङ.) वासा, छोटी कटेरी और गिलोय के क्वाथ... शहद मिलाकर पान करने से ज्वर और कास मिटते...

(च) वासा, छोटी कटेरी, छोटी पीपल, सोंठ, ... सफेद जीरा और इन्द्रजौ का क्वाथ पीने से धातु... कफ ज्वर नष्ट होता है।

(छ) वासा, आंवला, सरिवन, देवदारू, हरड़... सोंठ के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से चातुर्थक... शान्त होता है।

(ज) वासा पत्र और आंवला समान मात्रा में ले... कूट लेवें। सायंकाल में मिट्टी के वर्तन में इन्हें भिगो... प्रातः इसे पीसकर स्वरस निकाल लेवें और इसमें 10-... ग्राम मिश्री मिलाकर सेवन करने से पैत्तिक ज्वर... होता है।

(झ) वासापत्र सात, सोंठ, भारंगी, बहेड़ा... छिलका, हल्दी और मुलेठी 2-2 ग्राम तथा छोटी क... की जड़ 4 ग्राम लेकर सबको 125 मि.लि. पानी... औटावें। जब पानी सूख कार गाढ़ा सा हो जाय तब... कपड़े में निचोड़ लें। फिर एक मात्रा में एक च... शहद मिलाकर सेवन कराने से बातश्लैष्मिक ज्वर... होता है।

22. रक्तविकार—वासापत्र, त्रिफला, खदिर... नीम की अन्तर छाल, पंटोलपत्र और गिलोय को सम... में लेकर यवकुट कर क्वाथ बना उसमें मधु या ... मिलाकर पिलावें।

23. शिरःशूल—(क) वासा पुष्पों को छा... सुखाकर इनका चूर्ण बना लें। फिर इस चूर्ण में ... गुड़ मिलाकर चने के बराबर गोलियां बना लें। ये गो... जल के साथ खाने से कफ पित्त जनित शिरःशूल... शान्त करती है।

(ख) वासा की जड़ 20 ग्राम लेकर 200 मिली. [जल] में पीस छान कर उसमें 30 ग्राम मिश्री तथा 15 नग [का]लीमिर्च का चूर्ण मिला कर सेवन करने से शिरोरोग, [हि]चकी, खांसी मिटती है।

24. **नेत्ररोग**—वासापत्र, हरड़, नीम की छाल, [आं]वला, नागरमोथा, बहेड़ा और परवल के पत्र का क्वाथ [पी]ना नेत्र रोगों के लिए हितकारी है। यह क्वाथ रक्तस्राव [को] रोकता है तथा कफ की अधिकता को कम करता है।

25. **शोथरोग**—वासामूल की छाल, गिलोय और [ब]ड़ी कटेरी का क्वाथ मधु मिलाकर पीने से सूजन, [का]स, ज्वर, श्वास और वमन दूर होता है।

26. **मुखपाक**—(क) इसके जड़ को मुख में [र]खकर चबाने या पत्रों को चबाकर रस चूसें और पत्तों [को] फोक थूक देवें। इससे लाभ हो जाता है।

(ख) वासाक्वाथ में स्वर्णगैरिक और शहद मिलाकर [मु]ख में धारण करने से मुखपाक में अच्छा लाभ होता है।

27. **वातरक्त**—वासा, गिलोय और अमलतास का [का]ढ़ा बनाकर उसमें 10–20 मि.लि. एरण्ड तैल मिलाकर [पी]ने से शरीर में फैला हुआ वातरक्त नष्ट होता है।

28. **गृध्रसी**—वासा, दन्ती और चिरायता का क्वाथ [बन]ाकर उसमें एरण्ड तैल मिलाकर पीने से गृध्रसी में [ला]भ होता है।

29. **आक्षेपक**—वासापत्र, वासामूल की छाल, पुष्प [औ]र सोंठ का क्वाथ बनाकर पीने से आक्षेपक वायु और [हा]थ पैरों में बांइटें आना ये रोग मिटते हैं।

30. **पाण्डु**—वासा, गिलोय, त्रिफला, कुटकी, [चि]रायता और नीम का क्वाथ बनाकर उसमें शहद [मि]लाकर सेवन करने से पाण्डु, कामला, रक्तपित्त आदि [रो]गों में लाभ होता है।

31. **अनिद्रा**—वासामूल तथा ताजे पत्रों का क्वाथ [शह]द के साथ पिलाना अनिद्रा में लाभकारी है।

32. **अम्लपित्त**—(क) वासा, गुडूची, पित्त पापड़ा, नीम की छाल, चिरायता, भृंगराज, त्रिफला, और परवल का क्वाथ मधु मिला कर पीने से अम्लपित्त शान्त होता है।

(ख) वासामूल की छाल, आंवला और भूसी रहित जौ के काढ़े में दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची का चूर्ण 400 मि.ग्रा. तथा एक चम्मच शहद मिला कर सेवन करें। इसके सेवन करते समय मूंग के सूप के साथ भोजन करें।

33. **तृष्णा (प्यास की अधिकता)**—वासा पत्रों का स्वरस पीने से अधिक प्यास का शमन होता है।

विविध कल्प—

क्वाथ—

1. वासा, इन्द्र जौ, पद्माख, पित्तपापड़ा, कुटकी, चिरायता नीम की छाल, परवल के पत्ते, अमलतास का गूदा, मोथा, जवासा, गिलोय और वनफ्सा इनका क्वाथ पित्त कफ ज्वर को नष्ट करता है। —त्रिशती

2. वासा पत्र, सोंठ, गिलोय, दारूहरिद्रा, लाल चन्दन, चित्रकमूल, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, परवल के पत्ते, त्रिफला, नागरमोथा, जौ, इन्द्र जौ, कुरैया की छाल, इन सतरह द्रव्यों के क्वाथ का पान करने से समस्त नेत्र व्याधियां नष्ट होती है। इससे स्वरभेद, पीनस, श्वास, उरःक्षत आदि रोगों में भी लाभ होता है। —शा.स.

3. वासा के पत्र, मूल–छाल और फूल प्रत्येक 2–2 किलो लेकर इन्हें 20 लीटर जल में पकावें। आधा जल शेष रह जाने पर मसलकर छान लें। इस छने हुए क्वाथ जल में तीनों वासा अंग, एक–एक किलो डालकर पुनः पकावें, आधा रह जाने पर मल छान कर पुनः पत्र, मूल छाल और फूल प्रत्येक 500–500 ग्राम डाल कर पकावें। आधा जल शेष रहने पर छान कर बोतलों में भर कर रखें। मात्रा 25 मि.लि. तक, दिन में तीन बार पिलावें।

यह खांसी, ज्वर, रक्तार्श, उर्ध्वग रक्तपित्त को दूर कर यह पाचन शक्ति को बढ़ता है। —*वनौ. विशे.*

हिम—वासा के 10 ग्राम ताजे पत्र को कूटकर 60 मि.ली. जल में भिगों रात को ओस में रख दें। प्रातः सूर्योदय के पूर्व मसलकर छाल लें। इसमें 10-20 ग्राम शहद और शक्कर मिलाकर अथवा मिश्री मिले 250 मि. लि. गाय के दूध को मिश्रित कर पीने से ज्वर एवं रक्तपित्त में लाभ होता है। —*वनौ. विशे.*

वटी—

1. एक किलोग्राम वासा पंचांग को कूटकर 16 लीटर पानी में पकावें, चौथाई शेष रहने पर छानकर, छने क्वाथ को पुनः मन्दाग्नि पर पकावें। जब गोली बनाने योग्य यह घनसत्व हो जाय तब 500 मि.ग्रा. की गोलियां बना सुखाकर रखें। दो-दो गोली दिन में दो-तीन बार दें। ये कास, श्वास, रक्तपित्त, आदि में लाभप्रद है। मन्दाग्नि पर क्वाथ को अधिक देर तक पका कर शुष्क चूर्ण रूप में घनसत्व तैयार कर भी उपयोग में ला सकते हैं। —*वनौ.वि.*

2. पूर्ववत् वासा पंचांग का अवलेह जैसा घन तैयार कर उसमें छोटी इलायची, पिप्पली, अतीस तथा वंशलोचन इनका चूर्ण प्रक्षेप करें। प्रत्येक प्रक्षेप द्रव्य वासा के अवलेह से षोडशांश मात्रा में डालें। फिर चतुर्थांश मात्रा में शुद्ध की हुई पुरानी अफीम भी इसमें अच्छी तरह से मिला दें। इसकी चने प्रमाण वटियां बांध लें। ये श्वास का उन्मूलन कर देती हैं —*सि.भै.म.मा.*

3. ताजा वासापुष्प को धूप में सुखाकर उसकी बराबर मात्रा में गाय का घी लेकर कड़ाही में वासापुष्प को भून लें। जब ये वासापत्र लाल हो जाय तब कड़ाही को उतार लेवें। पुनः सम मात्रा में गुड़ की चाशनी बना कर उक्त घृत भृष्ट वासापुष्प चूर्ण को उस चाशनी में डालें। जब उसमें चूर्ण भली-भाँति मिल जाय तो उतार कर बेर के बराबर गोली बना लें। कास के वेग के समय शहद के साथ या ऐसे ही चूसें। वातज, कफ पित्तज तीनों कास में यह लाभदायी है। वासापुष्प तिक्तता होने से कुछ अरूचिकर होते हुए भी व लाभकारी है। इसको गाय के घी में बनाने से उत्कर्ष अधिक होता है तथा अधिक लाभकारी है —*सचित्र आयु. ज*

4. वासामूल की छाल और नीम की छाल, के पत्ते, त्रिफला, विजयसार और जवासा बारीकचूर्ण बनाकर इस चूर्ण में चूर्ण के बरा गूगल मिलाकर थोड़ा गाय का घी डालकर इमा कूटकर 500 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। इमाम कूटने से वासादि औषधियों के चूर्ण और गूगल का उच्चकोटि का भौतिक मिश्रण तैयार होता है। ए गोली दिन में दो-तीन बार सेवन करने से अम्लपित्त शान्त हो जाता है। —न

चूर्ण—वासापत्र हरे 5 किलो लेकर इसके छो टुकड़े हाथ से कर लें। फिर इसे 30 लीटर जल में लें। इसमें 400 ग्राम सेंधा नमक, 400 ग्राम काला 100 ग्राम स्वर्जिका क्षार और 100 ग्राम यव पीसकर डाल दें। जब पत्ते पक कर पीले पड़ ज पानी जल जावे तो कड़ाही को आग से उतार क को सुखाकर शुष्क कर सबका चूर्ण तैयार कर भर लेवें। मात्रा 250 मि.ग्रा. से एक ग्राम तक चार बार शहद के साथ या विषम मात्रा में मक्खन के साथ सेवन कराने पर कफदोषजनित एवं वा जनित विकृति प्रतिश्याय के साथ जब अधिक दुर्गन्धित कफ कास के साथ आ रहा हो तब इसके से निश्चित रूप से लाभ होता है। इसमें सितोपला मिला कर एवं वासावलेह या च्यवनप्राश के साथ कराने से अधिक लाभ होता है। क्षय रोगी के लि उत्तम योग है। —*धन्वन्तरि मई*

शर्बत (पानक)—

1. वासा की मूल छाल एक किलो ग्राम (य

ल पूरी न मिले तो पंचाग जड़ की छाल, मुलायम ड़, पत्र, फूल, मुलायम पतली शाखायें सब मिलाकर क किलोग्राम को आठ लीटर स्वच्छ दोहरे कपड़े से नकर पुनः साफ स्टील के भगोने में डालकर चार लो बढ़िया पुरानी देशी खांड से या बिना पाउडर का ना देशी बूरा नं एक या मोटी दानेदार चीनी मिलाकर था विधि शर्बत 20 से 40 मि.लि. तक दिन में दो-तीन र समान जल मिलाकर दें। यह शर्बत खांसी, दमा, काम, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि रोगों में स्वतन्त्र प से अथवा अनुपान रूप में प्रयुक्त करने पर उत्तम ण करता है। *—धन्व. मई 81*

2. वासा पत्र 500 ग्राम छोटी कटेरी का पंचाग 500 म लें। इनको चार लीटर जल में मिलाकर मन्दाग्नि पर कावें। पकाते समय ऊपर ढक्कन बन्द रखें। लगभग न घन्टों तक अग्नि देवें। दो लीटर जल शेष रहने पर ार कर ठन्डा कर छान लेवें। फिर इसमें दो किलो क्कर मिला कर शर्बत तैयार कर लेवें। इसका उपयोग फस्राव कराने और रक्तस्रव को रोकने के लिए होता नई पुरानी खांसी, श्वास, क्षय में कफ को बाहर कालने के लिए प्रयोजित होता है। मन्द-मन्द ज्वर को यह दूर करता है। *—गांवो में औषधरत्न*

3. वासा की पत्तियों का स्वरस एक लीटर, आर्द्रक ग्राम, पिप्पली 12 ग्राम, सफेद चन्दन 12 ग्राम, मुलेठी र मिश्री एक किलोग्राम। प्रथम अदरख, पीपल, मुलेठी चन्दन का चूर्ण कर इसे 250 मि.ली. वाष्पजल में ाकर 125 मिली. जल रहने पर छानकर रखें। वासा हरी ताजा पत्तियों को साफ कर कुचलकर रस निकाल इस रस को एवं पूर्ण क्वाथ को अग्नि पर चढ़ाकर आंच पर मिश्री डाल कर शर्बत बना लें। ठंडा होने इसे छानकर बोतलों में भर दें। मात्रा 10-20 मि.लि. में या अकेले सेवन करें।

यह खांसी, जुकाम, गले में खराश होने पर तथा र खांसी में लाभप्रद है। *—धव. भैष. कल्पनांक*

4. वासा, सोमलता, धतूर। इन तीनों को बराबर मात्रा में लेकर क्वाथ बनावें। धतूरा का पंचांग, वासा के पत्र और सोम की शाखायें लें। एक किलो क्वाथ में एक किलो 250 ग्राम शक्कर डालकर चासनी बनाकर रख लें। तमक श्वास के रोगी को खांसी आने पर दो-दो चम्मच दवा चाटने को दें, खांसी तत्काल कम होगी। यह क्रमशः एक-एक घन्टे या आधे घन्टे पर चटावें, अधिक न दें। अन्यथा मुख सूखने लगता है व प्यास तीव्र होती है। लालास्राव कम हो जाता है। बहुत दुर्बलता की स्थिति में रोगी को 125 मि.ग्रा. मकरध्वज मिलाकर दें, तत्काल लाभ होता है। *—सुधानिधि मई 1982*

फाण्ट—वासामूल की छाल को सुखाकर बारीक चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में से 10 ग्राम चूर्ण लेकर उसे 160 मि.लि. उबलते हुए जल में मिलाकर तथा साथ में आवश्यकतानुसार मिश्री या शक्कर डालकर ढककर रख दें। लगभग 20 मिनट के बाद उसे छानकर गर्म कर ठन्डा किया हुआ दूध मिलाकर पिलावें। यह फाण्ट की विधि चाय बनाने की विधि के समान है।

यह वासा फाण्ट नित्य प्रातः 5-7 दिन पिलावें। गुर्दे निर्बल हो जाने से या रक्त में विषवृद्धि हो जाने से जब पेशाब थोड़ा-थोड़ा और पीला या लाल उतरता है तो इससे लाभ होता है। इसके पान से मूत्र की शुद्धि होती है और रक्त में संगृहीत विष सब निकल जाता है। यह फाण्ट कास, श्वास, प्रतिश्याय आदि में भी लाभदायक है। *—गांवों में औषधिरत्न*

घृत—1. वासामूल की छाल, गिलोय, त्रिफला, त्रायमाण और जवासा इन द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर इनसे चौगुने जल में क्वाथ तैयार करें। चतुर्थांश जल रहने पर उसमें क्वाथ से दुगना दूध तथा चतुर्थांश गाय का घी लेवें। पिप्पली, मोथा, मुनक्का, चन्दन, कमल और सोंठ ये समान मात्रा में लेकर घी से चतुर्थांश इन द्रव्यों का कल्क तैयार कर सब मिश्रित कर घृत सिद्ध

कर लें। यह घृत जीर्ण ज्वर को नष्ट करने में श्रेष्ठ है। *—चरक.चि.स्था.अ. 3*

2. वासा की जड़, शाखा और पत्तों को लेकर चौगुने जल में क्वाथ बनावें। इस क्वाथ से चतुर्थांश वासा के पुष्पों का कल्क डालकर घृत सिद्ध करें। यह घृत 10-15 ग्राम तथा 5-10 ग्राम शहद मिला कर सेवन करने से रक्तपित्त का शमन होता है। *—चरक. चि. स्थान अ. 4*

यह रक्तपित्त के अतिरिक्त ज्वर, कास, श्वास, पित्तजगुल्म, हृद्रोग आदि में भी हितकारी है।

—चरक. चि. स्था अ. 5

अवलेह—1. वासा की जड़ 2 किलो को जौकुट कर 16 लीटर पानी में औटावें और 2 लीटर पानी शेष रहने पर छानकर उसमें 2 किलो चीनी मिलाकर चासनी बनावें। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर पीपल का चूर्ण 250 ग्राम और ताजा घी 250 ग्राम मिलाकर पात्र में रख लें। मात्रा 5-10 ग्राम सुबह-शाम मधु या अन्य उचित अनुपान के साथ दें। यह सब प्रकार की खांसी, श्वास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त आदि रोगों को दूर करता है। पुरानी कफज कास की यह अचूक दवा है *—आ.सा.सं.*

2. वासा का मूल या ताजा पत्र चार किलो लेकर उसे जल से धो कूट अठगुने जल में डालकर पकावें। जब चौथाई जल शेष रहे तब ठंडा कर छान उसमें गुठली निकाली हुई बड़ी हर्रे का चूर्ण 2 किलो 560 ग्राम और शक्कर। किलो डाल कर पकावें। पकाते समय स्टील के बर्तन में स्टील के ही खोंचे से हिलाते रहें। जब लेह जैसा हो, तब नीचे उतारें। ठण्डा होने पर उसमें 320 ग्राम शहद तथा 160 ग्राम वंशलोचन, 20 ग्राम छोटी पीपल, 20 ग्राम दालचीनी, 40 ग्राम छोटी इलायची, 40 ग्राम नागकेशर और 40 ग्राम काकड़ा सिंगी इनका कपड़छन चूर्ण मिलाकर कांच या चीनी मिट्टी के बर्तन में भर लें। यह खांसी, श्वास, क्षय, रक्तपित्त और जुकाम में उपयोगी है। मात्रा 5-6 ग्राम यह लेह चटाकर ऊपर से गौ का गरम किया हुआ दूध पिलावें। *—सि.यो.सं.*

गुलकन्द—वासा के फूलों में दुगनी मिश्री या मिलाकर किसी कांच या घृत के चिकने मिट्टी के में रख कर एक मास तक बराबर धूप में रखा को वासापुष्पकन्द है। मात्रा-6 ग्राम से 12 ग्राम। यह कांस, श्वांस, पीनस, रक्तपित्त एवं राजयक्ष्मा का है। *—धन्व. क*

आसवारिष्ट—

वासा पंचांग जौकुट 10 किलो, जल 25 आधा जल शेष रहने पर उतार कर छान लेने चिकने मिट्टी के पात्र में भर कर निम्नलिखित द्रव्य डालकर संधान के लिए छोड़ दें। गुड़ 5 धातकी पुष्प 320 ग्राम, चातुर्जात, शीतल चीनी, सुगन्धवाला का चूर्ण 40-40 ग्राम। यूं तो आसवा 15 दिन से एक माह के अन्दर संधान आ जाता भी बनाने वाले चिकित्सक बीच-बीच में देखते जब भी संधान आजाय उसे छान कर रख लें। देश, काल और स्थानीय परिस्थिति पर भी संधान निर्भर करती है। यह कफ प्रधान शोष, का रक्तष्ठीवन आदि में विशेष लाभप्रद है। मात्रा 15 मि.लि. तक समान जल मिलाकर दें। —

अर्क—1. वासापत्र एक किलो, पुष्प 12 दोनों को कुचलकर चार लीटर जल में रातभर भी सबेरे एक जोश देकर उसमें चार लीटर गोदुग्ध मि नाड़ी यन्त्र (भवका) द्वारा पांच लीटर अर्क खींच मात्रा 60 मि.लि. तक। यह राजयक्ष्मा की प्रथ द्वितीय अवस्था में लाभदायी हैं। *—गौ.*

2. एक किलो वासा पंचांग, द्राक्षा, मु काकड़ासिंगी, छोटी पीपल, उन्नाव प्रत्येक 200 तालीस पत्र, तुलसी पत्र, धनिया, सौंफ, नाग वनफशा प्रत्येक 100 ग्राम। त्रिफला, त्रिकुट 5 ग्राम। दालचीनी, छोटी इलायची प्रत्येक 40 ग्राम। का दूध 10 लीटर और जल 10 लीटर। औषधियों को यवकुट कर दूध में भिगो दें। इसके

ानी मिलाकर भवके द्वारा 8-10 बोतल अर्क खींच लें। ात्रा 40-50 मि.ली.। यह क्षय, शोष, कास, रक्तपित्त, र:क्षत में उपयोगी है। *—धन्व. नव. 1972*

क्षार—वासा के पंचांग को जलाकर उसे एक चीनी मिट्टी या मिट्टी के पात्र में चौगुने जल में भिगो दें। ीच-बीच में इसे डंडे से चलाते रहें। तीसरे दिन पानी नथारकर मोटे कपड़े, से छाल लेवें, जिससे राख का ंश न आ सके। शेष बची हुई राख में दो गुना जल ालकर घोल दें और जल को निथार कर जीभ पर थोड़ा ख कर देख लें। यदि इसमें क्षार मालूम पड़े तो उस ल को भी प्रथम जल में मिलालें। इस प्रकार तीन या ार-वार चख लेवें। क्षार जब तक मालूम होता जाय ब तक जल को लेकर उक्त में मिलाते जायें। किन्तु ति बार आधे-आधे जल प्रमाण में जल मिलाया करें। िर सब एकत्र किये हुए जल को स्वच्छ कड़ाही में मंद ांच से जला लें। अन्त में तीव्र सफेद क्षार जो कड़ाही रहे उसे खरोंच कर निकाल लें।

मात्रा—100-300 मि.ग्रा तक। यह खांसी, दमा, र रक्त पित्त के लिए अमृत के समान है। इसे पान ड़े के साथ लेने से सब प्रकार की खांसी और श्वास में भ पहुँचता है।

तैल (वासाचन्दनादि तैल)—श्वेत चन्दन, रेणुका, टाशी, असगन्ध, गन्ध प्रसारणी, दाल चीनी, छोटी ायची, तेजपत्र, पीपरामूल, नाग केशर, अनन्त मूल, ठ, पीपल, मिर्च, रास्ना, मुलेठी, कूठ, छरीला, देवदारू, यंगु, बहेड़ा प्रत्येक द्रव्य 80 ग्राम लेकर कूट पीसकर ीक चूर्ण बनाकर 16 लीटर मूर्च्छित तिल तैल में लकर कुछ देर पकावें। उसके बाद अडूसे का क्वाथ लीटर, रक्तचन्दन, गुडूची, वमनेठी (ब्राह्मण टका), कण्टकारी प्रत्येक 2 किलो, दशमूल के प्रत्येक 160 ग्राम, इन सब को कूट कर 64 लीटर पानी में ाकर 16 लीटर बाकी रहने पर छानकर तैल में डालें। लाक्षारस 16 किलो, दधिमस्तु 16 किलो इन सबको मिलाकर मंद आंच पर धीरे-धीरे पकावें। जब केवल तैलमात्र शेष रहे तब छानकर बोतल में भर लें। इसके मर्दन से दुर्बल व कृश शरीर बल युक्त हो जाता है। ज्वर, कास इत्यादि दूर हो जाते हैं और शरीर में सदा दाह रहना भी इसकी मालिश से दूर होता है।

धूम्र—वासापत्र 100 ग्राम, धतूरपत्र 100 ग्राम (दोनों छाया में सुखाये हुए) कलमी शोरा 100 ग्राम, अलसी तैल जितने में इन दोनों का चूर्ण सिक्त हो जाय। आग के निर्धूम अंगारों पर इसकी एक चम्मच लेकर डालें। धूम मुख या नाक के श्वास पथ से सूघें। तत्काल श्वास केन्द्र अवसादित हो जाता है जिससे श्वासवेग कम हो जाता है।

—सुधा. मई 82

2. छाया में सुखाई हुई अडूसे की पत्ती चार भाग, छाया में सुखाई हुई धतूरे की पत्ती तीन भाग, भांग दो भाग और खुरसानी अजवायन की पत्ती दो भाग लें, सबका मोटा चूर्ण कर कलमी सोरे के तृप्तद्रव में (कलमी सोरे को जल में मिलाकर उसका घोल बनावें। जब उसमें अधिक सोरा न घुल सके तब उस घोल को 'तृप्तद्रव' कहते हैं) भिगो, छाया में सुखाकर रख लें। आवश्यकता पड़ने पर इसकी मोटे कागज में बीड़ी बनाकर धूम्रपान करने से दमे में तत्काल लाभ होता है। यदि रोगी को इससे खुश्की मालूम हो तो धूम्रपान कराने के थोड़ी देर के बाद गाय का दूध देना चाहिये। *—सि.यो.सं.*

पेटेन्ट प्रयोगों में वासा—एमिल फार्मास्युटिकल्स द्वारा खांसी के लिए "जुफेरस" एक्सपेक्टोरेन्ट तैयार किया गया है। इसमें जो सर्वाधिक मात्रा में है वह वासापत्र और भांर्गी ही है। इनके अतिरिक्त कण्टकारी, सोमलता, हंसराज, जूफा, अंजीर आदि भी हैं। खांसी का यह शर्बत एक-दो चम्मच दिन में चार बार गर्म जल के साथ देना चाहिए। इसी प्रकार प्रायः सभी औषधि निर्माण शालायें जो भी कफ-खांसी के लिए दवा तैयार करती

हैं। उनमें वासा अवश्य होता है। मेडिलिक्स लेबोरेटरीस के श्री काफ सायरप और 'श्रीकाफ कैप्सूल्स' में दीनबन्धु रसशाला के "कफरेमेडी सीरप में, लक्ष्मी कैमीकल इन्ड. के 'परटूमेक्स सीरप' में श्री रूद्रदेव आयुर्वेद भवन के "माधुरी कफ सीरप" में, शिल्पा के "शिल्पा कफ सायरप" शिल्पा एक्स पेक्टोरेन्ट और "शिल्पा कफ टेबलेट" में गर्ग वनौषधि भंडार के "जुकामहारी" और "श्वासान्तक कैपसूल" में, देशरक्षक के "काफोल सीरप" में, त्रिमूर्ति के "त्रिकफ सीरप में" कौशिक आयुर्वेद भवन के "अस्थफ्लेमक्योर सीरप" में, धर्मानी ड्रग्स के "कफटोन सीरप" में, हर्ब इण्डिया के "ब्रोंकिल सीरप" में, साण्डु के "वासा सायरप" और "एफिनिन टेब" में, आर्य औषधि फार्मास्युटिकल वर्क्स के "कफोरीन सायरप" में, प्राणाचार्य के "कासान्तक सीरप" में, महर्षि के "कासनी सीरप" में योगी फार्मेसी के "कफसीन टिकिया" में, मेडिकल इथिक्स आफ इण्डिया के "इथिकोफ सीरप" में, भारतीय महौषधि संस्थान के "कफनिल सीरप एक्सपेक्टोरेन्ट" में, पंकज फार्मा के "सोनौल सीरप" एवं "खांसनाश सीरप" में और सिद्धि फार्मेसी के "वासा सूचीबेध आदि बहुत से कास श्वास हर पेटेन्ट प्रयोगों में वासा प्रयुक्त होता है। जिसकी यहाँ संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

वासा कास श्वास, रक्तपित्त और क्षय रोग की प्रशस्त औषधि होने से इन रोगों में उपयोगी योगों में इसे उपयोग में लाया जाता है। हर्ब इण्डिया (कोटा) के द्वारा जो क्षयरोगोपयोगी "रूदन्ती कम्पाउन्ड कैपसूल" तैयार किये जाते हैं, उनमें वासासत्व, मधुयष्ठि सत्व और रूदन्ती सत्व की समान मात्रा है। ये कैपसूल क्षय, कास, श्वास एवं जीर्ण प्रतिश्याय में उपयोगी हैं।

अलारसिन के "मायरान टेब" (श्वेतप्रदर हर योग) में तथा छोटे बच्चों के लिए एक बाल टानिक के रूप में प्रस्तुत "बालशर सीरप" में भी वासापत्रों को उपयोग में लाया जाता है।

अनुभूत प्रयोग—

1. गर्भपातहर प्रयोग— मैं 1960 में गीताभवन के दातव्य चिकित्सालय में प्रमुख चिकित्सक के रूप में था। मई का महीना था। गंगा तट पर सत् संगार्थ बहुत यात्री गीता भवन तथा परमार्थ निकेतन में ठहरे हुए थे। दिन के ग्यारह बजे होंगे एक ब्राह्मण गिड़गिड़ाता हुआ मेरे पास आया कहने लगा–मेरा उद्धार करो मेरी पत्नी को पाँच माह का गर्भ है वह स्खलित हो रहा है। मैंने आश्वासन देते हुए कहा—घबराओ नहीं, यह जो भवन के ... अडूसा खड़ा है इसके पत्तों को कपड़े से पोंछकर ... तोला रस निकाल कर आधा तोला मधु मिला ... अभी रक्तस्राव बन्द हो जायेगा। अडूसे का रस ... 10 मिनट बाद ही रक्तस्राव बन्द हो गया।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर ...

(सुधानिधि जून ...

2. वातश्लैष्मिक ज्वर हर प्रयोग— वासा की छाल, गिलोय और मुनक्का 6-6 ग्राम लेकर 250 मि.लि. पानी में डालकर क्वाथ तैयार करें। ... पानी शेष रह जाने पर उसे उतार कर छानकर रखें। थोड़ा ठन्डा होने दें। फिर इसमें 5 ग्राम शहद डा... पिलावें। इन्फ्लुएञ्जा के लिए एक अनुभूत प्रयोग ...

—वैद्य श्री महावीर प्रसाद ...

(धन्वन्तरि दिसम्बर ...

3. श्वास कासहर प्रयोग— अडूसा 50 ग्राम, हरड़ का छिलका 6 ग्राम, मुलेठी 6 ग्राम, बबू... अन्तर्छाल 6 ग्राम, मुनक्का 10 ग्राम सबको कू... स्टील के भगोने में 500 मिली. लीटर पानी डा... पकावें। जब 50 मि.ली. शेष रहे छानकर कुछ ठ... जाने पर शहद 6 ग्राम मिलाकर पिलावें। इसके से... श्वास कास में शीघ्र लाभ होता है।

—वैद्य श्री ब्रज बिहारी ...

(धन्वन्तरि जन. ...

4. असहिष्णुता (एलर्जी) पर एक आशुकारी ...ाग—वासा के पत्ते 10 ग्राम, नीम के पत्ते 10 ग्राम एवं ...र्गुण्डी के पत्ते 10 ग्रांम तीनों को कूटकर 250 ग्राम ...नी में डालकर ओटावें, चौथाई पानी रहने पर छानकर ...समें दो चम्मच हल्दी मिलाकर रोगी को पिला दें। एक ...खुराक में रोगी को लाभ होता है। अवस्था के अनुसार ...न में 2-3 बार दिया जा सकता है।

एलोपैथी में एन्टीहिस्टेमिनिक और एन्टीएलर्जिक ...ई योग प्रचलित हैं। एलर्जी ग्रस्त रोगियों को निम्न ...ाथ दिन में दो-तीन बार देने से त्वरित लाभ होता है।

—वैद्य श्री गोपालशरण गर्ग

(सुधानिधि मई 2004)

5. रक्तपित्तहर प्रयोग—वासापत्र, धनिया, आंवला, ...क्षा और पित्तपापड़ा को समान मात्रा में लेकर यवकुट ... 20 ग्राम को 200 मि.लि. जल में 12 घन्टों तक ...ने दें। प्रातः इसे मसल छान कर उसमें दो चम्मच ...द मिलाकर सेवन करने से रक्तपित्त रोगी को अच्छा ...भ मिलता है। योग 8-10 रोगियों पर परीक्षित है। यह ...पान के रूप में भी कई बार प्रयोग में लाया गया है।

—आचार्य श्री बहोरीलाल शुक्ल

(धन्वन्तरि नव. 72)

6. श्वास रोग की अद्भुत औषधि वासापर्पटी—...ज से लगभग 17 वर्ष पूर्व सेवायोगी आश्रम बराड़ा ...म्बाला) में परमपूज्य श्री मनोहर योगी जी के शुभ ...र्क से यह साधुप्रदत्त योग मुझे प्राप्त हुआ। तभी से ...स योग को बना श्वास के रोगियों को मुफ्त वितरित ...ता रहा हूँ। अनेक शाश्व रोगियों पर इस वासापर्पटी ...ाश्चर्यचकित कर देने वाला प्रभाव दिखाया।

...प्रसिद्ध श्वेत पुष्प वाली वनौषधि वासा का पंचांग ... कर उसे छोटे-छोटे टुकड़े कर लेवें और किसी ...ई आदि लौहपात्र में डाल देवें। अब इसमें जल इतना डालें कि पात्र में जल वासा में चार अंगुल ऊपर तक रहे (अथवा वासा पंचांग से दुगना जल डाल दें। देश एवं ऋतु के अनुसार जल की मात्रा घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इस वासा वाले लौह पात्र को अब किसी ऐसे स्थान पर 21 दिनों तक खुला रखें कि जहाँ दिन में सूर्य की धूप और रात में ओस पड़ती रहे। मध्यकाल में कभी-कभी वासा को किसी लकड़ी आदि से हिला दिया करें। फिर 21 दिनों के बाद इस पात्र को ज्यों का त्यों ही चूल्हे पर रखकर इसके नीचे वासा की लकड़ियों अथवा बबूल की लकड़ियों की एक घन्टे तक मंद आंच और बाद में मध्यम आंच जलावें। यहाँ तक कि पात्र का समस्त जल सूख जावे किन्तु इस काल में पात्र में पड़े वासा को हिलावें नहीं। पात्र का सब जल सूख जाने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर साफ फर्श या लकड़ी आदि के किसी तख्ते पर उलट देवें। पात्र का सब वासा फर्श पर आ जावेगा और पात्र की पेंदी में काले रंग की पपड़ी लगी हुई मिलेगी। उस पपड़ी को खुरपे आदि से खुर्च कर खरल में खूब बारीक कर लेवें। बस यही वासा पर्पटी है। इसे शीशी में सुरक्षित रखिये। आवश्यकतानुसार इसकी मात्रा 60 मि.ग्रा. से 120 मि. ग्रा. तक मक्खन (नवनीत) या दही की मलाई में रखकर रोगी को प्रातः खाली पेट सेवन करावें और औषधि के तुरन्त बाद तक्र (फीका) का सेवन करावें। पथ्य में तक्र सेवन अधिक करना चाहिये। अपथ्य स्वरूप खट्टे और तैलादि में तले हुए पदार्थ न देवें।

वासा पर्पटी में वासा कफनिस्सारक होने से श्वास नलिका एवं फुफ्फुसों में से कफ को निकालता है जिससे श्वासवाही स्रोतों में श्वास का आदान प्रदान सुगम हो जाता हैं इस प्रकार लौह कषाय होने से उन स्रोतों को सिकोड़ कर संकुचित कर देता है जो निरन्तर कफ निकालने में अभ्यस्त हो चुके होते हैं। इसके अतिरिक्त वासा तिक्त होने से लौह का शरीर में सात्मीकरण करता

है जिससे रोगी में रोग निवृति के साथ-साथ उसकी शक्ति भी बढ़ती है, नवीन रक्त उत्पन्न होता है, भूख बढ़ती है और पाचन ठीक प्रकार से होता है।

—कविराज श्री प्राणनाथ शर्मा

(धन्वन्तरि मई 1960)

7. कास पर एक अनुभूत सरल योग—योग रत्नाकर के श्वास चिकित्सा प्रकरण में एक क्वाथ योग आया है—अडूसा, हल्दी, धनिया, गिलोय, भार्ङ्गी, छोटी पीपल का क्वाथ कर उसमें कालीमिर्च का चूर्ण मिला कर पीने से ऐसा कौन श्वास का रोगी है, जिसका श्वास रोग शान्त न हो। इस क्वाथ का अरिष्ट बनाया गया जिसकी विधि है—अडूसा 1½ भाग, हल्दी, धनिया, गिलोय, भार्ङ्गी, पीपल, सोंठ और छोटी कटेली एक-एक भाग लेकर उनका 16 गुने जल में अर्धावशिष्ट क्वाथ किया गया। क्वाथ को छानकर काष्ठ के ढोल में भरकर गुड़ मिलाया गया। एक भाग धाय के पुष्प डाले गये। कालीमिर्च एक भाग और बड़ी इलायची एक भाग को कूटकर प्रक्षेप रूप से उसमें मिलाया गया। आसव का उत्तम सन्धान होने पर छान कर बोतलों में भर लिया गया। इसका नाम रखा गया 'मधुवासक''। इसे स्वतंत्र रूप में तथा सहायक औषधि के रूप में कई रोगियों को दिया गया और अच्छा लाभ प्राप्त किया। इसका शार्कर भी बनाकर रोगियों को दिया गया—उपर्युक्त क्वाथ द्रव्यों को लेकर यवकुट कर क्वाथ बनाया गया। बड़ी इलायची उसमें से निकाल दी गई। कालीमिर्च को भी क्वाथ द्रव्यों में ही मिला दिया गया। सम्मिलित द्रव्य 250 मि.लि. जल शेष रखा गया। छानकर एक किलो ग्राम गुड डालकर शार्कर बनाया। तैयार होने के समय उसमें 10 ग्राम सोडियम बेन्जोएट मिलाकर दो-तीन मिनट और पकाया गया फिर बोलत में भर दिया गया। सोडियम बेन्जोएट सुरक्षा के लिए मिलाया गया कि इसमें फफूंद आदि न आवे। अब मधुवासक (आसव) के स्थान पर मधुवासक (शार्कर) तैयार किया गया। इसे भी उसी मात्रा में (15 मि.लि.) दिया जाने लगा। मधुवासक का आसव अथवा शार्कर रूप में प्रयोग करते हुए दो वर्ष के लगभग का समय हो गया है। इस अवधि में इस सैंकड़ों कास के रोगियों की चिकित्सा की गई है के रोगी भी बड़ी संख्या में आए हैं। इससे सर्वत्र हुआ। कास श्वास के कुछ उलझे हुए रोगियों सहायक औषधि के रूप में दिया गया। सामान श्वास के रोगियों को इससे अच्छा लाभ मिला।

—श्रीमती वैद्या स्नेहलता

(स्वास्थ्य मई

8. कास हर रसायन—यह हमारा अनुभूत यह योग स्वास्थ्य मासिक में छपा था, हमने चिकित्सा में इसे विशेष उपयोगी पाया, पाठकों के यहाँ दे रहे हैं—

वासा पंचांग 100 ग्राम, कन्टकारी पंचांग 10 भारंगी 30 ग्राम, बहेड़ा 50 ग्राम, मुलहठी 50 ग्रा 50 ग्राम, हरीतकी 50 ग्राम, हल्दी 50 ग्राम, चूर्ण 50 ग्राम, कालीमिर्च 10 ग्राम, जायफल 1 लवंग 10 ग्राम, अपामार्ग 10 ग्राम, इलायची ग्राम, नौसादर भुना 10 ग्राम सभी का चूर्ण बना लें। यह चूर्ण हम कासहर रसायन के नाम से इसका प्रयोग च्यवनप्राश में मिलाकर करने से लाभ होता है। हम एक किलो च्यवनप्राश में 10 यह चूर्ण मिलाकर उसमें 50 ग्राम वासा शर्बत मि तैयार करते हैं। किसी भी प्रकार की खांसी के लि रामबाण है। यदि रोगी को ईसोनोफीलिया भी अलग से समीरपन्नग रस 2-2 रत्ती सुबह शाम एक ग्राम हल्दी तथा रूदन्ती चूर्ण के साथ मिलाकर विशेष लाभ होता है।

—वैद्य श्री गोपालश

(सुधानिधि जुलाई 1

9. श्वास रोग की उत्तम दवा—यह दवा होते हुए अति लाभप्रद है। इसके प्रयोग से श्वास आराम मिल जाता है। घटक—वासापत्र और अकौआ के फूल 10-10 ग्राम लेकर सुखाकर चूर्ण करके रख लें। इसमें से 5-7 ग्रा. चूर्ण चम्मच में ताजा खोवे के साथ खावें। यदि श्वास

अधिक हों तो इस दवा के सेवन से पहले इन औषधियों का धूम्रपान भी करें—वासा के पत्ते, धत्तूरे के पत्ते, भांग के पत्ते, कलमी सोरा सभी समभाग लें। इन तीनों वनौषधियों के पत्तों का चूर्ण बनाकर, कलमी सोरा को पानी में मिला कर इससे चूर्ण को गीला कर सुखा कर रख लें। फिर इसमें थोड़ा सा यूकेलिप्टस का तैल भी मिलावें। श्वास के दौरे के समय इस पाउडर को थोड़ा से लेकर सिगरेट की तम्बाकू निकालकर उसमें भरकर सिगरेट की तरह धूम्रपान करें। इस धूम्र को 10 सेकेंड तक रोककर छोड़ें। इस श्वास इन्हेलर से तुरन्त लाभ मिलेगा।

—डा. श्री राम प्रकाश अग्रवाल
(वनौ. र. के लिए प्रेषित प्रयोग)

10. कासनाशक प्रयोग—अडूसा, पान, मुनक्का, मुलहठी, कटेरी छोटी, बड़ी कटेरी, बनफ्सा, खूबकला, उन्नाव सभी समान भाग। उन्हें जौकुट कर 20 ग्राम औषधियों को 250 मि.लि. पानी में उबालकर चौथाई भाग पानी शेष रह जाने पर छानकर पीवें। इस प्रकार सुबह-शाम पीने से भयंकर खांसी में भी लाभ होता है। साथ में थोड़ी-थोड़ी लऊक सपिस्ता भी चाटना चाहिये।

—कविराज श्री ओमप्रकाश राजवैद्य
(धन्व.स.सि.प्र.)

11. कास हर उत्तम शर्बत—छाया शुष्क वासा के पत्ते 60 ग्राम, मुलहठी 15 ग्राम, सोंठ 8 ग्राम, कालीमिर्च 4 ग्राम, छोटी पीपल 3 ग्राम, नवसादर (कत्तल का) 2 ग्राम, मिश्री 250 ग्राम, पिपरमेंट 250 मि.ग्रा.। नवसादर, मिश्री और पिपरमेन्ट को छोड़कर सबको कूटकर एक किलो जल में औटावें। जब चौथाई जल शेष रहे तब छानकर मिश्री और नवसादर पिसा हुआ डालकर मन्द अग्नि पर शर्बत बनावें। शर्बत (शहद के कुछ कम गाड़ी चासनी) चाटने योग्य होने पर पिपरमेन्ट खूब महीन पीसकर शर्बत (चासनी) में मिलाकर शीशी में भरकर रखें।

मात्रा—3-6 ग्राम (एक से 2 चम्मच, छोटी चम्मच चाय वाली) दिन में 2-3-6 बार दें। आवश्यकतानुसार वासारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, द्राक्षासव के साथ भी दे सकते हैं।

—वैद्य श्री गोवर्धनदास चागलानी
(धन्व.स.सि.प्र.)

12. कासनासक एक अन्य उत्तम प्रयोग—अडूसे के 100 पत्ते लेकर साफ करलें और उनको तोल लें उससे आठ गुना जल लेकर उसमें इन पत्तों को डालकर औटावें जब चतुर्थांश शेष रह जाय तब छान लें। लोंग 20 ग्राम, कालीमिर्च तथा पीपरछोटी काकड़ासिंगी 30-30 ग्राम का चूर्ण इसमें मिला दें। इसी में 160 ग्राम मिश्री डाल दें और अग्नि पर पकावें जब यह अवलेह जैसा हो जाय तब शीशी में भर कर रख लें। इसे प्रातः सांय 10-12 ग्राम चटाकर गरम जल पिला दें। यह सब प्रकार के कास विशेष कर कफज कास की अतिउत्तम औषध है। वर्षों से हमारे धर्मार्थ औषधालय में प्रयोग होती आ रही है।—वैद्य श्री देवीशकर जी गर्ग (सुधा. मई 1974)

13. वासा गुलकन्द—अनुभूत कल्प

घटक द्रव्य—वासा (अडूसा) के फूल 250 ग्राम
मिश्री (यवुकुट चूर्ण) 500 ग्राम
मधु 150 ग्राम

निर्माण विधि—सर्वप्रथम मिश्री एवं वासा पुष्पों को हथेली द्वारा मसल कर कांचपात्र (चौड़े मुख वाला) में भर कर रख दें। 4-5 दिन में मिश्रण भली प्रकार गुलकन्द के समान बन जाता है। तदनन्तर उसमें मधु को मिला कर सुरक्षित रख लें। ताजा निर्मित अधिक लाभ करता है।

मात्रा—5 से 10 ग्राम दिन में दो तीन बार।

उपयोग—यह कल्पना श्वास, कांस रक्तपित्त एवं क्षयज कास (रक्तोष्ठीवन युक्त) पुराना पीनस प्रतिश्याय आदि पित्त श्लैष्म दोषों पर उत्तम प्रभावी है। निरन्तर कुछ समय प्रयोग करते रहने पर फुफ्फसों को शक्ति प्रदान कर क्षय रोग में लाभ करती है। इससे दूषित कफ भी बिना कष्ट सहज रूप से निकल जाता है।



विडङ्ग
(Embelia Ribes Bur)

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है। अथर्व वेद के काण्ड 5 और सूक्त 3 के तीसरे मंत्र से तेरह मन्त्रों तक कृमियों का ही वर्णन है। अथर्ववेद के अतिरिक्त सूर्यपुराण और गरूड़पुराण में इन कृमियों का बड़ा रोचक एवं ऐतिहासिक वर्णन मिलता है। आयुर्वेद में इसका विशद वर्णन उपलब्ध है। आचार्य चरक के अनुसार ये कृमि दो प्रकार के हैं सहज कृमि और वैकारिक कृमि। सहज कृमि जन्म से शरीर में पाये जाते हैं। और ये स्वास्थ्य का अनुवर्तन करते हैं किन्तु वैकारिक कृमि शरीर में व्याधियों को उत्पन्न करते हैं। वैकारिक के पुनः दो भेद हैं—बाह्य कृमि एवं आभ्यन्तर कृमि। बाह्य कृमियों के दो भेद हैं (यूका एवं लीक्षा) और आभ्यन्तर कृमियों के 18 भेद हैं। कारण भेद से अभ्यन्तर कृमियों के 18 भेद हैं—कफज कृमि 7 और पुरीषज कृमि 5, और रक्तज कृमि 6 कफज कृमि और पुरीष कृमि को आंत्रज कृमि भी कहते हैं। इन दोनों का स्थान महास्रोतस् है। इनमें कफज कृमि आमाशय में तथा पुरीषज कृमि पक्वाशय में उत्पन्न हाते हैं। कफज कृमियों की गति, मस्तिष्क, हृदय एवं फुफ्फस आदि में भी हो सकती है। आचार्य चरक ने "रक्तजानां स्थानं रक्तवाहिन्यः" कहकर रक्तज कृमियों का स्थान निदर्शित किया है। "सौक्ष्म्यात् के चिद् अदर्शनाः" कहकर बहुत से कृमियों की अति सूक्ष्मता प्रकट की गई है। संस्कृत व्याकरण का एक सूत्र है—'अदर्शनं लोपः' जिसका भाष्य है।-'प्रसक्तंस्य अदर्शनं लोप संज्ञ स्यात्' अर्थात् जो विद्यमान हो, पर देखा न जाए उसे लोप कहते हैं। इस लोप के लिए ही लोपदर्शन यंत्र (सूक्ष्मदर्शी यंत्र) का निर्माण हुआ है।

इन कृमियों पर अत्यन्त प्रभावी, निरापद, सुलभ, सस्ती औषधि है—विडङ्ग। इसकी प्रयोग विधि भी अत्यन्त सरल एवं सुगम है। विडङ्ग की उक्त क्रियाशीलता व मान्यता आधुनिक सर्वमान्य वैज्ञानिक परीक्षण कसौटि पर भी खरी उतरी है, तब ही तो आचार्य कहते हैं—'विड़ कृमिघ्नानाम् (च.सू. 25)। द्रव्यगुणविज्ञान में कृमि द्रव्यों में श्री प्रियव्रत शर्मा ने सर्वप्रथम विडङ्ग का वर्ण किया है क्योंकि यह कृमिघ्न द्रव्यों में श्रेष्ठ है—

विडङ्ग सङ्गं समवाप्य जन्तवो-
ऽचिराद् विमूंच्छन्ति पतन्ति चान्त्रतः।
किमत्र चित्रं यदि चित्रतण्डुलं
स्वतः कृमिघ्नेषु गतं वरिष्ठताम्।। —प्रि.

भावप्रकाश निघन्टु के हरीतक्यादिवर्ग में इसका वर्ण हुआ है। यह विडङ्ग कुल (मर्सिनेसी) की वनौषधि है।

अचार्य चरक ने इसे कृमिघ्न के अतिरिक्त कुष्ठ तृप्तिघ्न एवं शिरोविरेचन कहा है। सुश्रुत संहिता में वर्णि सुरसादि एवं पिप्पल्यादि गण में इसका उल्लेख मिल है। अष्ठांग हृदय सूत्र स्थान अध्याय 15 में विडङ्ग व वामक एवं शिरोविरेचन कहा है। आचार्य गोविन्ददास एक त्रिमद नामक वनौषधिगण का भी उल्लेख कि है। इस त्रिमद् की तीन औषधियाँ है—विडङ्ग, मुस्त और चित्रक। इनके सेवन से मन में आह्लाद उत्प होता है, मन को खुशी होती है अतः इन्हें मद कहा ग है। यहाँ मद का अर्थ मद्य समान मदकारी से नहीं है इसमें तीनों की मात्रा बराबर हो "विडङ्गादिभिः मिलित समैस्त्रिमदः" रत्नोज्ज्वला

नाम—

संस्कृत—विडङ्ग, कृमिघ्न, चित्रतंडुल (बीजों सफेद चिन्ह होने से)

हिन्दी—बायबिंडग, वायभिरंग, भाभिरंग, वाभिरंग
गुजराती—बावडिंग
मराठी—बावडिंग
बंगला—बिडंग
पंजाबी—बावडींग
तामिल—वायुविलंग
तेलगू— ''
कन्नड़— ''
मलयालम—विझल
अरबी—विरंक काबुली
फरसी—विरंग काबुली
अंग्रेजी—इम्बेलिया (EMBELIA)
लैटिन—इम्बेलिया रिब्स (EMBELIA RIBES)

वस्तुतः इसके फलों को ही वास्तविक विडंग मानना चाहिये— ***श्री डा. बलवन्तसिंह***

प्राप्ति स्थान—भारत के पार्वत्य प्रदेशों में पांच हजार फीट की ऊँचाई पर इसके गुल्म पाये जाते हैं। ये विशेषतः मेघालय, उत्तरी बंगाल एवं अन्य उत्तरपूर्वी प्रदेशों में होते हैं। ये गुल्माकार क्षुप इन स्थानों में स्वयं जात रूप में पाये जाते हैं।

रासायनिक संघठन—विडङ्ग में एम्बेलिक एसिड (विडंगाम्ल) पाया जाता है, जो सुनहले पीले रंग के क्रिस्टल्स (मणिभ) के रूप में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में एक उड़नशील तैल, स्थिर तैल, रालदार पदार्थ, टैनिन क्रिस्टेम्बिन नामक क्षाराभ, वसीय पदार्थ तथा क्वसिटाल होता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका बड़ा मृदुशाखी गुल्म होता है। इसकी शाखायें खुरदरी तथा अनेक ग्रन्थियों से युक्त होती हैं। छाल चमकीली होती है जिसका भीतरी भाग घूसर वर्ण होता है। इसके पत्ते अण्डाकार, तीक्ष्णाग्र 2-5 इंच तक लम्बे, ऊपरी भाग में चमकीले तथा सूक्ष्म रोमों वाले होते हैं।

इसके पुष्प कछ हरिताभ सफेद, छोटे, घूसर-रोमश, 3-4 लम्बी शाखाओं से युक्त मंजरियों में होते हैं। पुष्पवृन्त पुष्पों और फलों से बड़े होते हैं। इसके फल काली मरिच के समान गोलाकार होते हैं। इसका उपरितन भाग श्याव गाढ़े लाल रंग का होता है। ध्यानपूर्वक देखने पर यह ऊपर की रचना जालीदार दिखाई पड़ती है। किसी किसी में यह झुर्रीदार दिखाई देती हैं किसी किसी में यह रचना पाई भी नहीं जाती। ये फल गुच्छों में लगते हैं। फल का बाहरी भाग भंगुर होता है, जिसके भीतर एक झिल्लीदार बीज होता है। जिस पर सफेद चिन्ह होते हैं।

भेद—इम्बेलिया की लगभग 100 जातियाँ (Species) विश्व में पायी जाती हैं। इनमें से भारत में 18 जातियाँ प्रायः उपलब्ध होती हैं, जिनमें दो ही औषधि रूप में प्रयुक्त होती हैं। इम्बेलिया रिब्स के अतिरिक्त इम्बेलिया रोबस्टा ये दो प्रसिद्ध उपयोगी जातियाँ हैं। दोनों के फल विडङ्ग के नाम से चलते हैं। प्रायः दोनों के फल मिले-जुले मिलते हैं।

इ. रोबस्टा के वृक्ष हिमालय के पूर्व की ओर, बंगाल और दक्षिण भारत में न्यूनाधिक पाये जाते हैं। इसका फल इ. रिब्स के फल की अपेक्षा बड़ा होता है तथा फल पर लम्बाई में धारियां तथा तैल ग्रन्थियाँ होती हैं। इ. रिब्स का फल ललाई लिये काला (खाकस्तरी) होता है जबकि रोबस्टा का फल लालिमा लिए होता है। दक्षिण भारत में इ. रोबस्टा ही प्रायः उपयोग में लाई जाती है। भारत के अधिकतर औषधि निर्माता ए. रोबस्टा के फल ही उपयोग में लाते हैं। यूनानी चिकित्साकविडङ्ग के चीनी, काबुली, हिन्दी व सिंध में चार प्रकार मानते हैं।

इसका एक भेद मिरसीन अफ्रीकाना है। इसके फल लगभग गोल तथा हल्के भूरे रंग के अथवा गहरे बैंगनी रंग के होते हैं। इसे बायविडंग के अतिरिक्त, चप्रा, चुप्रा,

गुवैनी भी कहते हैं। आकार में इसका फल इ. रिब्स के समान होता है। इसके क्षुप हिमालय में कशमीर से नेपाल तक पाये जाते हैं। इसका यह फल कृमिनाशक एवं तीव्र विरेचक होता हैं। मिरसीना अफ्रीकाना के फल भी ए. रोबस्टा की भाँति स्फीत कृमि (टेप वर्म्स) कष्टार्तव में उपयोगी हैं।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि विडंग के ताजा फलों को तोड़ने पर जो लाल रंग का एक प्रकार का आवरण सा होता है उसे ही कई व्यक्ति कमीला मान लेते हैं, यह ठीक नहीं है। कमीला (माल्लोटुस फिलिप्पेंसिस) विडंग से पृथक् है। कमीला का मध्यमा कार वृक्ष होता है। इसके फलों के पकते समय उन पर लालिमा युक्त चमकदार, धूलि सी जमी हुई सूक्ष्म ग्रन्थियां या फल पराग उत्पन्न होता है। इसी धूलि को कमीला कहते हैं। फलों के पक जाने पर उन्हें मोटे कपड़े में रखकर रगड़ते हैं और इस निर्गन्ध स्वादरहित रज (धूलि) को पृथक कर लेते हैं।

कई व्यक्ति डीकामाली (नाड़ीहिंगु) को भी वायविडंग कहते हैं जो उपयुक्त नहीं है। तब ही तो श्री आर्यदास कुमार सिंह ने अपने महौषध निघण्टु में लिखा है कि-"बायविडंग धनिये के आकार का गोल-गोल थोड़ी लालिमा लिए हुए बीजयुक्त द्रव्य बाजार में (भाभीरंग के नाम से) मिलता है उसी को वैद्य लोग प्रयोग करते हैं। इस समय में यह सन्दिग्ध द्रव्य हो गया है। इसके विषय में अनेक मतभेद हैं। कोई नाड़ी हिंगु को तथा कोई कम्पिल्लक के फल को बायविडंग कहते हैं। वस्तुतः विडङ्ग और डीका माली के गुणों में प्रायः समानता हैं किन्तु डीकामाली के वृक्ष होते हैं जिनका गोंद उपयोग में लाया जाता है अतः दोनों द्रव्यों में बहुत अन्तर हैं, दोनों पृथक् हैं। दोनों पृथक् कुल की वनौषधियाँ हैं और अन्य भी कई भेदों के कारण इन दोनों को एक मानना उचित नहीं है। शास्त्रों में डीकामाली और कमीला के वर्णन को देखकर इस अन्तर को स[...] में ही समझा जा सकता है। डीकामाली उतनी कृमि[...] नहीं है जितनी विडंग। आचार्य श्री कृष्णप्रसाद त्रि[...] के मतानुसार विडङ्ग विशेषतः भीतरी कृमियों का न[...] करती है तथा डीकामाली विशेषतः बाहरी कृमियों [...] मारने वाली है।

इतिहास—वैदिक साहित्य में कृमियों के बारे में खूब वर्णन मिलता है किन्तु इस वनौषधि के बारे [...] वर्णन नहीं मिलता है। अथर्ववेद में अपामार्ग, कूठ, गु[...] पृश्निपर्णी आदि का तो उल्लेख मिलता है किन्तु [...] विडङ्ग का उल्लेख नहीं मिलता है। औषधि इतिहास [...] विडङ्ग का प्रथम उल्लेख चरक एवं सुश्रुत संहिता [...] प्राप्त होता है जिनका समय लगभग 78'101 ई. 200-500 ई. तक माना जाता है चरकसंहिता में अपेक्षा[...] अधिक वर्णन मिलता हैं। श्री निरंजन चन्द्र शाह [...] मतानुसार "इसका मूल स्थान अफ्रीकाद्वीप रहा है [...] इतिहास साक्षी है कि यहाँ पर रहने वाली जातियों [...] अपनी सुरक्षा हेतु अपना स्थान त्याग कर पूर्व की [...] बढ़ना आरम्भ किया। ये जातियाँ दक्षिण भारत, लंका [...] आस्ट्रेलिया आदि स्थानों पर जा बसी। ये जातियाँ अ[...] साथ औषधि ज्ञान भी लेती गई। ये जातियाँ पूर्व द्र[...] जाति कहलाती थी और इनका आगमन लगभग 120[...] ई. पूर्व हुआ। दूसरी संभावना यह हो सकती है, द[...] भारत, लंका और मलेशिया में यहाँ की जातियों [...] स्वतंत्ररूप से इस औषधि की खोज की। धीरे-धीरे [...] ज्ञान उत्तरी भारत की ओर बढ़ता गया।" आच[...] रामसुशील सिंह ने भी यह स्वीकार किया है कि "ल[...] है प्राचीन उत्तर पश्चिमी भारतीय सीमा क्षेत्र में [...] प्राग्वैदिक काल से ही सुविज्ञान एवं व्यवहार प्रचलि[...] थी। पाणिनि के अष्टाध्यायी के अर्धर्चादिगण पाठ में [...] इसका उल्लेख किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र [...] भी शिरोविरेचन एवं अन्य व्यवहारोपयोगों के लिए इस[...]



विडंग (EMBELIA RIBES)

नाम—सं०—विडंग, हि०—बायविडंग; गु०—बावडींग; म०—बावडिंग; अं०—इम्बेलिया; लै०—इम्बेलिया रिब्स।

प्राप्तिस्थान—भारत के पार्वत्य प्रदेश।

उपयोगी अंग—फल। **दोषशमन—कफवात शामक।**

रोगोपयोग—कृमिरोग, अग्निमांद्य, उदरशूल, रक्तविकार, पाण्डु, मेदोरोग।

मुख्ययोग—विडंगादि चूर्ण, विडंगारिष्ट, विडंग तैल आदि।

उल्लेख मिलता है। अनागतबाधाप्रतिषेध की भावना से भी विडंग का व्यवहार प्रचलन था क्योंकि बुद्ध पालीसाहित्य से ज्ञात होता है, कि बाजारों में बिकने वाली यवागू आदि खाद्यकल्पों में विडंग भी मिलाया जाता था। मालवा के क्षेत्र में आज भी मातायें, शिशुओं के दूध में यह विडङ्ग मिलाकर पकाती हैं। जिससे वे स्वस्थ्य रहें, उन्हें कृमिरोग आदि न सतायें।"

रस—कटु, कषाय

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

प्रभाव—कृमिघ्न

दोषकर्म—यह उष्ण वीर्य होने से कफवातशामक है।

उपयोग अंग—फल (पक्व)

मात्रा—3-5 ग्राम

संग्रह-संरक्षण—पके हुये फलों को सुखाकर अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखना चाहिये।

अहितकर—अन्त्र के लिये

निवारण (दर्पनाशक)—कतीरा और मस्तंगी

गुणबोधक संज्ञा—कृमिघ्न, कृमिकंटक, क्रिमिरिपु, जन्तुघ्नी, जन्तुहन्त्री।

अपमिश्रण (मिलावट)—बाजार में व्यापारी वर्ग असली विडङ्ग के स्थान पर इसके समान अनेक फलों की मिलावट करके या स्वतन्त्र रूप से बेच देते हैं। विडंग के फलों का कालीमिर्च में भी अपमिश्रण कर दिया जाता है।

परीक्षण—असली विडङ्ग का विनिश्चय करने के लिए यह परीक्षण करना चाहिये—

एक परखनलिका में 5 मि.लि. ईथर लें। इसमें 0.2 ग्राम विडङ्ग का चूर्ण डालकर खूब हिलावें और छान लें। इस छने हुये विलयन में एक-दो बूंद अमोनिया [illegible] मन्द बोल घोल (Dilute Solution of Ammonia) डा[illegible] पर नीलापन लिए बैंगनी रंग का अद्यःक्षेप (तलछ[illegible]) नीचे होता है जो असली विडङ्ग का परिचायक है।

प्रतिनिधि—कमीला।

वीर्यकालावधि—अधिक पुरानी वनौषधियाँ [illegible] हीन हो जाती हैं अतः इन्हें नवीन रूप में लेने का परा[illegible] दिया गया है परन्तु विडंग के लिए ऐसा नहीं है। [illegible] पुरानी होने पर भी गुणहीन नहीं होती है अतः इस[illegible] वीर्यकालावधि अन्यों की अपेक्षा अधिक होती है। [illegible] गया है—

सर्वाण्येव चाभिनवानि, अन्यत्र मधुघृत[illegible] पिप्पली- विडङ्गेभ्यः। —सुश्रुत. सू. 37

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिल कर्मसु।
बिना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः।।
—शा[illegible]

विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम्।
—भा[illegible]

गुणधर्म विवेचन—

विडङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वन्हिकरं लघु।
शूलाध्मानोदर श्लेष्मकृमिवातविबन्धनुत्।।
—भा.प्र.

विडङ्गमुष्णं तीक्ष्णञ्च रसे पाके तथा कटु।
दीपनं कफवातघ्नं शूलाध्मानविबन्धनुत्।।
—प्रि.

विडंगा कटुरूष्णा च लघुः वातकफार्तिनुत।
अग्निमांद्यरूचिभ्रान्तिकृमिदोषविनाशिनी।।
—रा.

कटुत्वरूक्षत्वलघुत्वतैक्ष्णान्युरी करोति प्रति[illegible] वन्हिम्।

आध्मानकोष्ठा क्रिमिबन्ध वायु बलास शूलादिहरं विडङ्गम्।।
—सि.भे.म.मा.

विडङ्ग...... तैलानि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिकफ कृमिकुष्ठ प्रमेह शिरोरोगापहराणि च।
—सुश्रुत सू.45

आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य सुश्रुत ने अपनी संहिता के चिकित्सा स्थान अध्याय 27 का नाम रखा है सर्वोपघातशमनीय रसायन। इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा है कि—

शरीरस्योपधाता ये दोषजा मानसास्तथा।
उपदिष्टाः प्रदेशेषु तेषां वक्ष्यामि वारणम्।।

शरीर को हानि पहुँचाने वाली दोषज (वात, पित्त, कफज) तथा मानस (रज, तम जन्य विकृति) सभी प्रकार की विकृतियों के उन्मूलन के लिए जो उपाय एवं द्रव्य कहे हैं उन द्रव्यों में विडङ्ग को प्रमुख स्थान दिया है। विडङ्ग एक रसायन द्रव्य है इसकी उत्तेजक क्रिया शरीर के सब अंगों पर होती है। शरीर की वृद्धि के लिए, विशेषत दुर्बल और क्षयग्रस्त शिशुओं के हित यह बहुत लाभप्रद औषधि है। यह मस्तिष्क और नाड़ियों के लिए बल्य है। इसका कृमिघ्न प्रभाव सर्वविदित है। किसी के शरीर में एक बार कृमि पहुंच जाने पर धीरे-धीरे ये बहुत सी विकृतियाँ कर देते हैं। शरीर में कृमियों का जीवनचक्र प्रारम्भ होने पर कई वर्षों तक उदर में रहकर विषाक्त तत्वों की उत्पत्ति करते रहते हैं। ये रक्त चूसते हैं और विषाक्त पदार्थ छोड़ते हैं। इन कृमियों का मल रक्त के साथ मिलकर विभिन्न विकार उत्पन्न करता है। इन कृमियों के सबसे अधिक शिकार बालक होते हैं। इनसे सारे शरीर में विकृति फैलने से रोगी दिन प्रतिदिन निर्बल होता जाता है। अधिक दिनों तक उचित चिकित्सा के अभाव में रोगी मृत्यु का शिकार हो जाता है। इस रोग की भयानकता का इस आलेख के प्रारम्भ में ही कुछ वर्णन किया गया है। इन कृमियों के प्रभाव से अपस्मार, अपतंत्रक आदि मानस रोगों की उत्पत्ति की संभावना भी रहती है। तब ही तो शरीर मानस दोष जन्य विकृति से बचने के लिए विडंग को उपयोगी कहा गया है। रसायन के रूप में विडङ्ग और मुलेठी का संयुक्त सेवन हितकारी कहा गया है। वृहण हेतु इसके साथ अश्वगन्धा का संयोग अधिक उपयोगी है।

चरक संहिता के प्राणकामीय रसायनपाद में विडङ्ग के साथ में पिप्पली का संयोग कर सेवन करने के लिए लिखा गया है। इन दोनों के साथ तिल तैल, घृत और मधु (वातेपित्ते श्लेष्मशांतौ च पथ्यं तैल सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण) मिलाकर विडङ्गावलेह का वर्णन किया गया है। आचार्य वाग्भट ने विडङ्ग के साथ आमलकी, असनसार, लौह, भल्लातक आदि को रसायन हेतु उपयोगी कहा है। रोग रूपी तरंगो वाली वृद्धावस्था रूपी नदी को पार करने के लिए कितना रोचक छन्द आचार्य ने लिखा है—

विडङ्गभल्लातक नागराणि
येऽश्नंति सर्पिर्मधुसंयुतानि।
जरानदीं रोगतरंगिणी ते
लावण्ययुक्ताः पुरूषास्तरंति।।
—अ.हृ.उ.स्था 39

अब इसके कृमिघ्न प्रभाव पर विचार करें। चरक संहिता में इसे श्रेष्ठतम कृमिघ्न द्रव्य कहा गया है। तदनुसार सभी परवर्ती आचार्यों ने इसका अनुमोदन किया है। यथा हि—

विडङ्गसैन्धव क्षार कम्पिल्लकहरीतकी।
पिबेत् तक्रेण सम्पिष्य सर्वकृमिनिवृत्तये।।
—च.द.

त्रिवृत्पलाश्बीजानिपारसीक यवानिका।
कम्पिल्लकं विडङ्गं च गुडश्च समभागकः।
तक्रेण कल्कमेतेषां पिवेत् क्रिमिगणापहम्।।
—शा.सं.

विडङ्गशिग्रुमरिचग्रन्थिकैस्तक्रम संस्कृतैः।
सुसाधिता यवागुः स्यात् क्रिमिघ्नी ससुवर्च्चला।
—चिकित्सार्णव

विडङ्ग सयवक्षारः शिग्रुमुस्ताखुकर्णिकाः।
क्वाथः कोष्ठगतं सर्वं क्रिमिदोषं प्रशाम्यति।।
—क्वा.म.मा.

विडङ्गगर्भमृद्वीका भुक्ता कीटावपातनी।
—सि.भै.मन्जूषा

"मेरे निर्देशन में शोध छात्रों द्वारा किये गये अध्ययन में भी आधुनिक सर्वमान्य वैज्ञानिक मानदण्डों के अनुसार विडङ्ग की कृमिघ्न क्रिया केंचुआ (राउन्डवर्म) अंकुशमुखकृमि (हुक वर्म) तथा स्फीतं कृमि (टेप वर्म) पर पायी गई। बल्कि केंचुओं पर तो विडंग की क्रियाशीलता आधुनिक मान्य कृमिघ्न औषधि सेन्टोनिन से भी श्रेष्ठतर पायी गई। अनुलोमन होने से आधुनिक चिकित्सा क्रम की भाँति कृमिनिर्हरण हेतु रोचक औषधि भी नहीं देनी पड़ती। कृमियों को निकालने के साथ साथ विडंग कृमिरोग के सभी उपद्रवों का भी शमन करता है।"

—प्रोफेसर श्री रामसुशील सिंह (वनौ. निदर्शिका)

आधुनिक मान्य परीक्षण विधियों तथा क्रिमिरोग कृमिघ्न क्रिया का परीक्षण किया गया। इसके लिए विडङ्ग का कांढ़ा तथा केंचुओं पर परीक्षण करने से यह दोनों पर प्रबल कृमिनाशक प्रभावित हुआ। रोगियों पर मौखिक प्रयोग से यह केंचुआ तथा हुकवर्म के रोगियों पर सफल सिद्ध हुआ और कृमिनाशक क्रिया के साथ-साथ रोगी के सभी लक्षणों के शमन में भी उतना ही लाभदायक दिखाई दिया। विडङ्ग स्वयं अनुलोमन एवं स्रंसन (Laxative) होने से कृमियों के निर्हरण के लिए अलग से विरेचन औषधि देने की आवश्यकता भी नहीं होती। जीव परीक्षण में केंचुओं पर कृमिघ्न क्रिया में इसका तुलनात्मक मूल्यांकन आधुनिक मान्य औ सेन्टोविन से किया गया जिसमें विडङ्ग सेन्टोविन से श्रे पाया गया। अतः उदरकृमि रोग या पुरीषज कृमिरोग विडङ्ग एक आदर्श औषधि है।

—डा. श्री लालबहादुर सि
(स. आयुर्वेद मई 198

आन्त्रकृमियों को नष्ट करने के लिए विडङ्ग दे पहले रोगी को एक दिन पहले गुड़ अवश्य खिला चाहिए। गुड़ के उदर में पहुंचने पर कृमितीव्र गति उसकी ओर आकर्षित होते हैं। गुड़ के रस से चिपक कृमि अंधे हो जाते हैं। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने विड की 10 ग्राम की मात्रा खाली पेट देने के लिये लिखा विडङ्ग चूर्ण देने के पश्चात यदि खुलकर दस्त नहीं ल हो तो विरेचक औषधि देनी चाहिये। कई चिकित्स विडङ्ग के साथ ही हरीतकी, निशोथ, अमलतास, एर तैल आदि विरेचनों में से किसी को मिला कर देते एक दिन विडङ्ग देने के बाद भी कुछ दिनों तक थो मात्रा में विडङ्ग चूर्ण का इन्द्रयव, पलाश बीज, नीम छाल आदि के साथ सेवन कराया जाता है। दो-ती दिनों तक हल्का और सुपाच्य आहार ही रोगी को दि जाता है। आगे के पृष्ठों में कई सामान्य प्रयोग, शास्त्री प्रयोग, पेटेन्ट प्रयोग एवं अनुभूत प्रयोग लिखे गये रोगी के लिए उपयुक्त प्रयोग का चिकित्सक को चुन कर उपयोग में लाना चाहिए। मात्रानिर्धारण और अनु निर्णय भी विवेकी चिकित्सक को ही करना है। चिकि में "इदमित्थमेव" नहीं होता है "पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य यह संपादित की जाती है।

बालकों में कृमियों की अधिक शिकायत होती है, इनकी चिकित्सा में विशेष ध्यान देने की आवश्यक है। आचार्य चरक ने कृमिरोग की चिकित्सा के तीन कहे हैं—अपकर्षण, प्रकृतिविघात एवं निदान परित्या वमन-विरेचन अपकर्षण है। कटु-तिक्त-कषाय, क्षार,

यों का सेवन ही प्रकृति विधात है। विडंग कटुकषाय उष्ण होने प्रकृति विधात में सहायक है। निदान वर्जन के लिए शारीरिक एवं व्यवहारिक स्वच्छता निवार्य है। कृमिहरण के साथ शोणितवर्धन के उपाय करने चाहिये। क्योंकि कृमिरोग में बहुधा पाण्डु भी जाता है। केचुए (राउन्डवर्म) कैल्सियम से रहित जन के सेवन से अधिक होते हैं। अत: कैल्शियम के अवश्य देने चाहिये। बच्चों में विशेषत: सूत्रकृमि ने) पाये जाते हैं। ऐसे बच्चे जो आहार सेवन करते हों मूंग की दाल का पानी, विडंग चूर्ण हींग घी से बध कर दें और विडंग के क्वाथ में गाय का दूध मिलाकर लावें। विडङ्गादि तैल में दुगना दूध मिलाकर या डङ्गादि तैल अकेले की बस्ति दें।

विडङ्ग लौह, कृमिघ्न मण्डूर आदि ऐसे ही योग हैं कृमिरोग के अतिरिक्त तज्जन्य किंबा स्वतंत्ररूप से पांडुरोग, अर्श, शोथ, शूल, यकृद् विकार आदि को दूर करते हैं। रस शास्त्र में वर्णित कीटमर्दो कृमि मुग्दर रस, कृमिघांतनी गुटिका, कृमिका-लल रस, कृमिविनाशन रस, कृमि कुठार रस, कृमिघ्न आदि कृमिरोगाधिकारोक्त सभी योगों में न्यूनाधिक ङ्ग अवश्य डाली जाती है। बिना विडङ्ग के कृमिरोग दूर करने हेतु कोई योग तैयार होना ही असम्भव है। जन्तुघ्न होने से कृमिदन्त में भी गण्डूषार्थ उपयोगी

मुस्तामधुकनिर्गुण्डीखदिरोशीरदारूभिः।
समंजिष्ठा विडङ्गैश्च सिद्धं तैलं हरेत् कृमीन्।।
—च.द. 39

यही नहीं यूका, लिक्षा आदि को नष्ट करने हेतु भी ल बाह्य प्रयोग निर्दिष्ट है—

विडङ्गगोमूत्रमनः शिलाभिः
सगन्धकाभिः परिपाचितं यत्।
तैलं भवेत् सर्षपसंभवं तल्लिक्षाश्च यूकाश्च निहन्ति सद्यः।।
—रा.मा.

पाचन संस्थानगत केवल कृमिरोग ही नहीं अपितु अजीर्ण, अग्निमांद्य, छर्दि, उदरशूल, आध्मान, अर्श, विबन्ध आदि रोगों में भी यह दीपन, पाचन, अनुलोमन होने से हितकारक है—

विडङ्गभल्लातक चित्रकामृताः
सनागरास्तुल्य गुडेन सर्पिषा
लिहन्ति ये मन्द हुताशना नरा
भवन्ति ते वाडवतुल्यवन्हयः।। —च.द. 6
विडङ्ग त्रिफला विश्वाचूर्णं मधुयुतं जयेत्
विडङ्ग प्लवशुण्ठीनामथवा श्लेष्मजां वमिम्।।
—च.द. 15

विडङ्गाज्याग्नि सिन्धूत्थ शक्तून् दग्ध्वा वचान्वितान्।
पिवेत् क्षीरेण संचूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान्।
—च.द. 38

विडङ्गतण्डुल वरायावशूककणात्रिवृत्।
सर्वेभ्योऽर्द्धेन तल्लीढं मध्वाज्येन गुडेन वा।।
गुल्मं प्लीहोदरं कासं हलीमकमरोचकम्।
कफवात कृतांश्चान्यान्परिमार्ष्टि गदान् बहून्।।
—अ.हृ.क. 2

विडङ्गदि मणिभद्रो मोदक (च.द.) और विडङ्गदि कल्याणकगुड (अ.हृ.) आदि भी ऐसे योग हैं जो पाचन संस्थान के रोगों को दूर करने के साथ कास, क्षय, कुष्ठ, भगन्दर, कामला, प्रमेह आदि को दूर करते हैं। मणिभद्र मोदक मुख्यत: अर्श की औषधि है तो कल्याणक गुड मलावरोधक की औषधि है। लौह भस्म जन्य अजीर्ण शूल में भी यह उपयोगी है। विडङ्ग उत्तम रक्त शोधक होने से इसे रक्त विकारों में देते हैं। यह शोथहर है तथा

इसकी विशिष्ट क्रिया रसग्रन्थियों पर होती है। यह श्लीपद में भी लाभप्रद है—

विडङ्गार्दकवाटयालविल्वा जाज्य भयाश्रृतः।
वातारितैल संमिश्रः सर्वाङ्गश्वयथुं जयेत्।।

—क्वा.म.मा.

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा।
भद्रदार्वेलकाल्येषु सर्वेषु लवणेषु च।।
तैलं पक्वं पिवेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये।।

—च.द. 42

गुडूची कटुका शुंठी देवदारू विडंगकम्।
पिष्ट्वा गोमूत्रसंयुक्तो लेपः श्लीपदनाशनः।।

—र.र. समु.

त्वगामय किंबा चर्म विकारों की भी यह श्रेष्ठ औषधि है। इसके बाह्य प्रयोग से त्वचा का वर्ण ठीक होता है। कहा गया है—

विडङ्गादिजतु क्षौंद सर्पिष्मत्खदिरं रजः।
किटिभश्वित्रदद्रुघ्नं खादेन्मित हिताशनः।।

—अ.हृ.चि. 19

विडङ्गसैन्धवशिवा शशिरेखासर्षप करंजरजनीभि।
गोजल पिष्टो लेपः कुष्ठहरो दिवसनाथ समः।।

—च.द. 50

एला कुष्ठं दार्वी शतपुष्पा चित्रको विडङ्गश्च।
कुष्ठलेपनमिष्टं रसांजनं चाभया चैव।।

—चरक. चि. 7

भल्लातकाभया विडङ्गसिद्धं घृतं तैलं वा पानाभ्यङ्गयोर्विदध्यात्। —सुश्रुत. चि. 9

मनः शिलाले मरिचानि तैल
मार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः।
तुत्थं विडङ्गं मरिचानिकुष्ठं
लोध्रं च तद्वत् समनः शिलं स्यात्।।

—चरक

विडङ्गत्रिफलाव्योष चूर्णं गुग्गुलुना समम्
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः
दुष्टव्रणापचीमेह कुष्ठ नाड़ी व्रणापहः।।

—च.

इस प्रकार विडङ्ग का प्रयोग कुष्ठ किलासादि चर्मविकारों पर बाह्याभ्यन्तर रूप से होता है।

मेदोरोग (स्थूलता) की चिकित्सा में वातघ्न, उष्ण एवं रूक्ष-गुरू द्रव्य उपयोगी हैं। विडंग में गुण के अतिरिक्त उक्त सभी विशेषतायें हैं। संस्कार से लघु को गुरू भी बनाया जा सकता है। इस प्रकार सभी प्रायः विशेषताओं के साथ विडङ्ग रसायन भी है। आयुर्वेद में मेदोरोग में रसायन द्रव्यों का उपयोग किया गया हैं ये द्रव्य अन्तः स्रावों का नियमन करते हैं। कुछ द्रव्य मूत्रल होते हैं जो शरीर की विकृत जलीय धातु को कम करते हैं और शक्ति को स्थिर करते हैं। शिलाजीत, आमलक, गिलोय आदि ऐसे ही द्रव्य हैं जो मेदोरोग में हितावह कहे गये हैं। इनकी भांति विडंग भी एक मूत्रल होने से उपयोगी है। विरेचक औषधियां भी शरीर के मेद को कम करती हैं तीव्र विरेचन देना इसमें हानिकारक है। विडङ्ग एक सौम्य विरेचन (अनुलोमन) होने से मेद की वृद्धि को रोकने में सहायक होता है। इन विशेषताओं के कारण ही मेदोरोग को नष्ट करने में विडङ्ग को स्थान दिया गया है—

विडङ्गनागर क्षार काललोहरजो मधु।
यवामलक चूर्णन्तु प्रयोगः स्थूलनाशनः।।

—च.

इस विडङ्गादि चूर्ण के अतिरिक्त मेदोहर (विडंगयुक्त) विडङ्गादि लौह भी इस रोग में

ति हैं। चिकित्सक अपनी मति से अन्य भी योग तैयार र सकता है। मेदस्वी स्त्री-पुरूषों को हृदयरोग, प्रमेह, धुमेह आदि रोग होने की अधिक संभावना होती है। वडङ्ग के सेवन से यह संभावना भी समाप्त होती है। ायुर्वेद में हृदयरोग पाँच प्रकार के कहे गये हैं उनमें क प्रकार कृमिज हृदयरोग है। इस रोग में हृदयस्थान र तनाव, खुजली एवं तीव्र पीड़ा होती है। अरूचि, चली, शोथ होने के अतिरिक्त आंखों में मलिनता ंबा कालापन अधिक आता हैं। ऐसी स्थिति में यह पाय लाभप्रद है—

क्रिमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामय संयुतम्।
हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात् क्रिमयोनृणाम्।।
यवान्नं वित्तरेच्चास्मै सविडङ्गमतः परम्।।

—च.द. 3

विडङ्ग मूत्रजनन होने से मूत्रकृच्छ को दूर करता है। ससे मूत्र की अम्लता बढ़ती है। विडंगादि लौह जो ौल्य चिकित्सा में वर्णित है वह सर्वमेहहर भी है। इस कार विडङ्ग प्रमेहरोगी के लिए भी प्रशस्त है। रकसंहिता के सूत्र स्थान अध्याय 21 में स्थूलानां कर्शन त लंघनीय द्रव्य लिखे हैं उनमें विडङ्ग भी एक है। इस कार ये लंघनीय द्रव्य स्थूल प्रमेही के लिए भी उपयोगी। आचार्य चरक ने चि. स्था. के अध्याय 6 में जो फजमेहघ्न योग कहे हैं उनमें इक्षुमेह, सान्द्रमेह शुक्लमेह कित्सा में विडङ्ग को निर्दिष्ट किया है। इन योगों की का में चक्रपाणिदत्त ने लिखा है कि "हरीतक्यादयो यकासंख्यं कफमेहेषु, किंबा सर्वे सर्वकफमेहेषु" र्थात् हरीतक्यादि दश यथासंख्यं कफमेहेषु किंबा सर्वे र्वकफमेहेषु में उपयोगी हैं किन्तु इनमें से किसी योग किसी प्रकार के कफजमेह में भी दिया जा सकता अतः सामान्यतया विडंग सभी प्रकार के कफज ों में प्रयुक्त होता है।

यह पूर्व में कहा गया है कि कृमिरोग जन्य पाण्डु में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त मृत्तिका मक्षण जन्य पाण्डु में तथा अन्य प्रकारों में भी यह लाभप्रद है। पाण्डुरोग चिकित्सा में जो व्योषाद्य घृत (च.द.) वर्णित हैं, यह मिट्टी खाने से उत्पन्न सभी पाण्डु आदि विकारों में हितकारी है। इस घृत का विडंग भी एक घटक है। इसके अतिरिक्त एक योग यह भी वर्णित है—

कीटारित्रिफलाव्योषमेघक्वाथो मधत्कटः।
कामलापाण्डुरोगघ्नो नात्र कार्या विचारणा।।

—क्वा.म.मा.

विडङ्ग कफघ्न होने से सकफ, वातजकास में भी हितकारी है। कास चिकित्सा में आचार्य चरक ने इस विडङ्गादि चूर्ण को इस कास में उपयोगी कहा है—

विडङ्ग नागरं रास्नां पिप्पली हिंगु सैन्धवम्।
भार्गी क्षारश्च तच्चूर्णं पिवेद्वा घृतमात्रया।
सकफेऽनिलजे कासे श्वासे हिक्काहताग्निषु।।

—चरक. चि. 18

इसी योग को आचार्य बाग्भट ने भी कासचिकित्सा में लिखा है। पीनस रोग में विडङ्ग के क्वाथ में घृत, गुड़ मिलाकर या विडङ्गशष्कुली (पूड़ी) बनाकर सेवन करना हितकारक कहा गया है—

वेल्लगोधूमभोजी च निद्राकाले च शीतलम्।
जलं पिबतियो रोगी पीनसान्मुच्यते नरः।।

—शालाक्यतन्त्र

इसमें गर्भनिरोधक क्रिया पाई गई हैं। सुतरां, इसे अकेले एवं अन्य द्रव्यों के साथ इस हेतु दिया जाता है। विडङ्ग का सत्व बनाकर भी दिया जाता है। भावमिश्र ने एक योग लिखा है—

पिप्पलीविडङ्गटंकणसमचूर्णं या पिबेत् पयस्या।
ऋतुसमये नहि तस्याः गर्भः संजायते क्वापि।।

विडङ्ग, पिप्पली और टंकण तीनों बराबर मात्रा में लेकर दो ग्राम की मात्रा में मासिकधर्म के तीन या पाँच दिनों बाद यदि स्त्री सेवन करे तो गर्भ नहीं रहता है। स्टेट

इंडीजेनस मेडिसिन डिपार्टमेन्ट त्रिवेन्द्रम् ने विडङ्ग के योग से परिवार नियोजन हेतु गोलियां बनाई और इनका प्रयोग केरल की 300 औरतों पर सफलतापूर्वक किया जा चुका है।

विडङ्गादितैल का प्रयोग बहिः परिमार्जन रूप में श्वेतप्रदर में होता है। इसका एक चिकित्सकीय अध्ययन प्रस्तुत है—

"श्वेत प्रदर व्याधि स्त्रियों में सामान्यतः उपलब्ध होने वाली व्याधि है और आधुनिक विज्ञान सम्मत हेतु ट्राईकोमस बेजाइनेलस नामक जीवाणु भी अनेक श्वेतप्रदर रूग्णाओं में देखने को मिलता है।

आरग्वधादि क्वाथ से निर्मित उत्तरबस्ति के प्रयोग से श्वेत स्राव लक्षण में 80 प्रतिशत दुर्गन्धित स्राव में शत प्रतिशत रूग्णाओं में लाभ पाया गया। केवल विडङ्गादि तैल का पिचु के रूप में प्रयोग करने से श्वेतप्रदर के अधिकांश लक्षणों का शत-प्रतिशत शमन नहीं हो जाता किन्तु श्वेतस्राव में 79.23 प्रतिशत, योनिदाह 71.42 प्रतिशत पिच्छिल स्राव लक्षण में शतप्रतिशत आतुरों को लाभ हुआ। आरग्वधादि क्वाथ के साथ विडङ्गादि तैल के पिचु का प्रयोग कराने से दुर्गन्धित स्राव तथा गुलाबी रंग के स्राव में शतप्रतिशत लाभ प्राप्त हुआ तथा कटिशूल एवं श्वेत वर्ण स्राव में 75 प्रतिशत रूग्णाओं को लाभ मिला है। आरग्वधादि क्वाथ की उत्तर बस्ति स्वतन्त्र रूप से विडंगादि तैल के पिचु के साथ प्रयोग करने से दुर्गन्धित स्राव, श्वेतस्राव, रक्तवर्ण स्राव एवं योनिदाह में शतप्रतिशत लाभ होता है। अतः ऐसी योनि व्यापद् जो पैत्तिक हो एवं श्लैष्मिक हो तथा जिनमें इस तरह का स्राव एवं योनिदाह व्याधि के प्रधान लक्षण के रूप में उपलब्ध हो उनमें इन दोनों का प्रयोग करना चाहिए।

प्रयोग परीक्षण में 15 रूग्णाओं के योनिस्राव में वैक्टीरिया पाये गये जो चिकित्सा पश्चात् 3 में ही उपलब्ध रहे। इस तरह छः रूग्णाओं के योनिगत स्राव में ट्राईकोमोनस वेजाइनेलस भी देखा गया था जो चि[illegible] पश्चात् योनिगत स्राव में नहीं पाया गया। योनि ग[illegible] का स्मियर बनाकर यह परीक्षण किया गया था। इसके परिणाम असंदिग्ध हैं। योनि गत जीवाणु पर[illegible] जानने के लिए इस कार्य को इन्हीं औषधियों के [illegible] अधिक रोगियों में किये जाने की आवश्यकता है।

प्राप्त परिणामों के आधर पर कहा जा सकता [illegible] आरग्वधादि क्वाथ की उत्तर बस्ति एवं विडंगादि [illegible] पिचु से श्वेत प्रदर चिकित्सा शोधनात्मक एवं शमन[illegible] उभयविध प्रभाव रखती है।"

—डा. श्रीमती गीता[illegible]

(रा. आयु. सं. जयपुर बुलेटिन जन.-1[illegible]

यहाँ यह ज्ञात करा देना उपयुक्त होगा कि डा[illegible] राव देशमुख कृषि विद्यापीठ, कृषिनगर अको[illegible] (महाराष्ट्र) विडंग सम्बन्धी खेती एवं अन्य अनु[illegible] का कार्य संपादित कर रहा है। जिज्ञासुओं को यहाँ [illegible] करना चाहिये।

इस सम्पूर्ण विवेचन से यह सिद्ध हो गया [illegible] विडङ्ग आन्त्रकृमिरोग को नष्ट करने में एक [illegible] औषधि है। यह कृमियों को नष्ट करने के साथ ही [illegible] भी बहुत से रोगों को दूर करने में सहायक बन[illegible] इसका प्रयोग रोगनिषेध (Prevention) के लिए भी [illegible] जा सकता है इसके सेवन से कृमियों के संक्रमण [illegible] जा सकता है। इसमें अनेक स्वास्थ्य वर्धक गुण[illegible] होने से स्वास्थ्य का संरक्षण होता है। इसके सेवन में [illegible] अवांछित उपद्रवों की आशंका रहती है और न मा[illegible] न्यूनाधिक्य से कोई विशेष हानि होती है। सर्वसाधारण के लिए भी इसे निरापद रूप से सेवन [illegible] जा सकता है शिशुओं को दूध में इसके 10-15 [illegible] पकाकर छान कर पिलाया जा सकता है। बच्चों को [illegible] ग्राम चूर्ण शहद या गुड़ में मिलाकर दिया जा सकता [illegible] बड़ों को पूर्व वर्णित मात्रानुसार अकेले या अन्य उ[illegible]

द्रव्यों के साथ दिया जाना उचित है। इसे आवश्यकतानुसार रात में सोते समय अथवा दिन में दोनों समय दिया जाना चाहिये। किन्तु पूर्ण लाभ के लिए एक-दो माह तक निरन्तर सेवन कराना चाहिये।

यूनानी मत—यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। यूनानी चिकित्सा के प्रसिद्ध विद्वान हकीम शेखुर्रईस इब्नसीना (10 वीं शताब्दी) ने भी इसे अपने निघन्टु में समाविष्ट किया। अतरीफलदीदाल यूनानी चिकित्सा का प्रसिद्ध विडङ्ग घटित कृमिघ्न योग है। कृमियों को नष्ट करने के अतिरिक्त यह भूख पैदा करने वाला और पौष्टिक है। आमाशय और आंतों में होने वाले दर्द को यह मिटाता है। दूध में विडंग के दाने डालकर गरम कर छानकर छोटे बच्चों को पिलाने से उनका पेट फूलना बन्द हो जाता है। संधिवात और श्वास में भी यूनानी चिकित्सक इसे उपयोग में लाते हैं।

आधुनिक मत—विडङ्ग के प्रति आधुनिक भेषज वैज्ञानियों तथा चिकित्साविदों का भी ध्यानाकर्षण हुआ और ग्रन्थों में भी इसे स्फीत कृमिनाशक (टीनीसाइड) बताया गया है। किन्तु इधर वानस्पतिक द्रव्यों के केवल सक्रिय तत्वों की खोज की जो लहर चली आ रही थी वह भी वास्तव में इनके पूर्णतः उपयोग में बाधक ही रही है। कृमिघ्न औषध के रूप में विडङ्ग का समावेश इन्द्रियन फार्माकोपिआ में भी किया गया था किन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में सिन्थेटिक रासायनिक कृमिघ्न योगों ने बिना किसी वरीयता के इसे उपेक्षित कर रखा है—

—डा. श्री लाल बहादुर सिंह

—डा. श्री युधिष्ठिर सिंह

विडङ्ग रेचक एवं मूत्ररेचक हैं। बच्चों की चिरजात, कोष्ठबद्धता एवं तीव्रकास में यह सेवनीय हैं आध्मानहर एवं वायुनाशक होने से यह ग्रहणी, आध्मान में प्रयोज्य है। रसायन होने से यह वातरोग तथा विविध चर्मरोगों में प्रयुक्त है। दीर्घकाल तक इसका सेवन मूत्र को कड़वा एवं रक्तवर्ण का कर देता हैं इससे यूरिक एसिड़ की मात्रा बढ़ जाती है। *—डा. आर. एन. खोरी*

विडङ्ग क्रिया शरीर की सब ग्रन्थियों पर एवं प्रधानरूप से रसग्रन्थि पर होती है। यह शरीर की समस्त जीवन विनिमय क्रिया को उत्तेजना देता है। शरीर पर इसका प्रभाव पारद जैसे ही विलक्षण होता है। इसके सेवन से भूख लगती है, भोजन पचता है, दस्त साफ होता है, त्वचा की कांति दीप्त होती है, तेज का संचार होता है तथा मन में प्रसन्नता पैदा होती है। बालकों के लिये तो यह एक दिव्य औषधि है। जिन बालकों को सूखे का रोग हो गया, पेट बड़ा हो गया हो उनके प्राण बचाने वाली औषधि विडङ्ग ही है। इसे अनन्तमूल के साथ देना अधिक लाभदायक है। चर्म रोगों में इसके भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के प्रयोग होते हैं।

—डा. वा. ग. देसाई

इसका 10 ग्राम चूर्ण रात में सोते समय दही के साथ दिया गया तथा दूसरे दिन प्रातः एरण्ड तैल का जुलाब दिया गया। रोगी के चपटे कृमि (टेपवर्म्स) मल के साथ निकल गये। शरीर की वृद्धि के लिये विशेषतः दुर्बल और क्षय ग्रस्त शिशुओं के लिये यह अति उपयोगी है। *—डा. सखाराम अर्जुन*

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. दन्त रोग—(क) विडंग और त्रिफला के बारीक चूर्ण से मंजन करने के पश्चात् नीम के पत्तों के रस से कुल्ला करें।

(ख) विडंग, लवंग, सैन्धव, अजवायन और हींग समान मात्रा में लेकर पीसकर महीन चूर्ण तैयार करें। इसका मंजन करने से कृमि जन्य एवं दोषजन्य दन्त पीड़ा दूर होता है।

(ग) इसके चूर्ण की छोटी पोटली बनाकर इसे गरम

जल में डुबोकर दांतों के नीचे दबाकर रात्रि के समय रखें। प्रातः उसमें देखें उसमें कृमि निकलेंगे। इसके पश्चात् कृमिजन्य पीड़ा भी कम होगी।

(घ) विडंग चूर्ण में थोड़ी हींग मिलाकर दांतों की पोल में रखने से कृमिजन्य और वातजन्य दन्तशूल का निवारण होता है।

2. जीर्ण प्रतिश्याय—इसका बारीक चूर्ण बनाकर नस्य लेने से सारी विकृति दूर होकर प्रतिश्याय में लाभ होता है। इसके चूर्ण का यह नस्य कामला के रोगियों के लिए तथा शिरो रोगों में भी लाभदायक है।

3. कुष्ठ रोग—(क) विडंग, वावची के बीज, सरसों के बीज, करंज के बीज, हल्दी, हरड़ और सेंधानमक इनको सम मात्रा में लेकर गोदुग्ध में पीसकर गोलियां बना लें। इस गोली को पुनः गोदुग्ध में घिसकर लेप करने से कुष्ठ में लाभ होता है।

(ख) विडङ्ग, पंवाड के बीज, कूठ, हल्दी, सेंधानमक व सरसों इन्हें कांजी के साथ पीसकर लेप करने से कुष्ठ रोग (विशेषतः दाद) नष्ट होते हैं।

4. बाह्य कृमि—(क) विडङ्ग, गोमूत्र, मैनशिल, गन्धक इन औषधियों के साथ सरसों के तैल को सिद्ध कर लगाने से शिर की जुऐं और लीखें मर जाती हैं।

(ख) विडंग का पतला कल्क बनाकर बालों में लेप करने से भी यूका-लिक्षा आदि बाह्य कृमि समाप्त हो जाते हैं। थोड़ी देर बाद गर्म जल से शिर धो लेना चाहिए।

5. श्लीपद (हाथी पांव)—विडंग, देवदारू, सोंठ, कुटकी और गिलोय को गोमूत्र में पीसकर लेप करना श्लीपद में हितकारक कहा गया है।

6. शिरःशूल—(क) विडंग और काले तिल सम भाग में लेकर इन्हें बकरी के दूध में या पानी में पीसकर कपड़े में रख कर निचोड़ कर नाक में डालें और कल्क का शिर पर लेप भी करें। इससे विशेषतः अर्धा[illegible] शिरःशूल का शमन होता है।

(ख) विडंग चूर्ण को गाय के मक्खन [illegible] मिलाकर ललाट पर लेप करने से शिरःशूल [illegible] है।

7. श्वित्र—(क) विडंग, मनःशिला, [illegible] गोरोचन और सैन्धवलवण को पीसकर लेप करें।

(ख) विडंग चूर्ण को तुलसीपत्र स्वरस [illegible] पीसकर या गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करना [illegible] में लाभप्रद है। साथ में अन्य अन्तः सेवनीय औ[illegible] को भी उपयोग में लाना चाहिये।

अन्तः सेवनीय प्रयोग—

1. कृमिरोग—

(क) विडंग के चूर्ण को मधु के साथ देने [illegible] जुलाब देना चाहिये। इससे कृमि मर कर बाहर [illegible] जाते है।

(ख) विडंग के चूर्ण को बीज निकले मुनक्का [illegible] भरकर देना भी कृमियों को निकालने के लिए प्रश[illegible]

(ग) विडंग, कमीला, करंज, अजवायन औ[illegible] के बीजों को समभाग लेकर चूर्ण बनाकर गुड़ में मि[illegible] गोली बनाकर सेवन करने से उदर कृमि नष्ट हो[illegible]

(घ) विडंग, कुटकी और हरड़ का चूर्ण [illegible] कहा गया है। यदि इसमें मण्डूर भस्म मिला दी [illegible] यह योग अधिक प्रभावी होता है। इसका अनुपान [illegible] रखना चाहिये। इससे कृमि के अतिरिक्त पा[illegible] उदररोग और अर्शोरोग भी नष्ट होते हैं।

(ङ.) विडंग, यवक्षार, सहिजन, नागरमोथा [illegible] मूषाकानी का क्वाथ बनाकर पीने से उदरगत [illegible] कृमि नष्ट होते हैं।

(च) कवोष्ण अन्नमण्ड के साथ विडंग और [illegible] चूर्ण सेवन करने से सभी प्रकार के कृमि नष्ट होते [illegible] अग्नि की वृद्धि होती है।

(छ) विडंग, भिलावा, ढाक के बीज, चिरायता, नीम की छाल, इन्द्रजौ और पिप्पली इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर शहद के साथ सेवन करनें से सब प्रकार के कृमि एवं कृमिजन्य रोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण शूल, अतिसार, अरूचि, हृदयरोग एवं कुष्ठ रोगों में भी लाभप्रद है।

(ज) विडंग और तुलसी के पत्ते पीसकर गोलियां बनाकर सुखा लें। प्रति दिन सुबह-शाम एक-एक गोली पानी से खिलाने पर कुछ दिनों में सारे कृमिनष्ट हो जाते हैं।

(झ) विडंग और ढाक के बीज बराबर मात्रा में लेकर उसमें नींबू का रस और शहद मिलाकर सेवन करने से कृमि नष्ट होते हैं।

(ञ) विडंग, पलाश के बीज, नीम के फूल और बड़ी हरड़ की छाल बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर ग्राम की मात्रा में सेवन करने से कृमियों का नाश होता है।

(ट) विडंग, कमीला और मिश्री बराबर मात्रा में लेकर 6 ग्राम चूर्ण गाय के दूध के साथ सेवन करने से कृमि नष्ट होते हैं।

(ठ) विडंग और नारंगी के सूखे छिलके दोनों समान मात्रा में पीसकर रख लें। डेढ ग्राम की मात्रा में प्रातः सायं दें। अनुपान के रूप में गुनगुना पानी पिलावें। तीन दिनों तक बराबर दें।

(ड) विडंग, बड़ी हरड़ और कालानमक तीनों बराबर लेकर 3 ग्राम चूर्ण सेवन करें।

(ढ) विडंग, पलाशबीज निशोथमूल और कमीला समान लेकर चूर्ण 5-6 ग्राम शहद में मिलाकर लेवें।

(ण) विडंग से दुगना अमलतास लेकर क्वाथ बनाकर उसमें हरड़ तैल डालकर पिलाने से कृमि नष्ट होकर बाहर निकल जाते हैं।

(त) विडंग, डीकामाली, भुनी हींग, पलाशबीज, पीपल और कपूर समान लेकर नीमपत्र रस में घोट कर मूंग जैसी गोलियां बना लें। एक-दो गोली पानी के साथ दें, कृमि नष्ट हो जायेगे।

(थ) विडंग 20 ग्राम और बथुआ के बीज, अजवायन 10-10 ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर सेवन करने से भी लाभ होता है।

(द) विडंग, पिप्पलीमूल, सहिंजन छाल और काली मिरच के साथ तक्र में सिद्ध किया हुआ यवागु यवक्षार के साथ सेवन करने से कृमियों का विनाश होता है।

(ध) विडंग, यवक्षार, कमीला, सेंधानमक और बड़ी हरड़ के छिलके के चूर्ण को तक्र के साथ सेवन करने से भी ये नष्ट होते हैं।

(न) विडंग, दाडिम की छाल, नीम की अन्तर छाल और कुडे की छाल का चूर्ण बनाकर इस चूर्ण को राई चूर्ण मिलाये हुए तक्र के साथ सेवन करना भी कृमिरोग में हित कारक है।

2. बाल रोग—(क) विडंग और अतीस का समभाग चूर्ण बनाकर एक ग्राम चूर्ण शहद में मिलाकर चटाने से बालकों के कृमि रोग नष्ट होते हैं। पूर्व वर्णित योग भी मात्रायुक्त दिये जा सकते हैं।

(ख) विडंग, अनारदाना, कालानमक, कालाजीरा और छोटी हरड़ का बारीक चूर्ण बनाकर 100-200 मि. ग्रा. चूर्ण पानी या तुलसी पत्र स्वरस में मिलाकर सेवन कराने से बालकों के अपचन जन्य ज्वर आदि रोग दूर होते हैं।

(ग) विडंग चूर्ण को शहद के साथ चटाने से बालकों के कृमिजन्य कास श्वास का शमन होता है।

(घ) शिशु के जन्म के पश्चात् एक महीने तक प्रतिदिन एक-एक विडंग का दाना दूध में उबालकर चूर्ण बनाकर शहद के साथ चटाना चाहिये। दूसरे महीने में प्रतिदिन दो-दो दाने, तीसरे महीने में तीन-तीन दाने

इस प्रकार क्रमशः बढ़ाते हुए देते रहने से बालकों को कोई रोग सहसा नहीं सताता है। यदि रोग हो भी गया तो उस रोग का प्रभाव कम हो जाता है। इसके प्रभाव से कोई अनिष्ट परिणाम बालक के जीवन में नहीं होने पाता है।

3. पाण्डुरोग—(क) विडंग, आंवला, हरड़, बहेड़ा, सोंठ, मरिच, पीपल और नागरमोथा के क्वाथ में शहद मिला कर सेवन करने से पाण्डु-कामला रोग दूर होते हैं।

(ख) विडंग, त्रिफला, त्रिकटु, दारूहरिद्रा का चूर्ण और मण्डूर भस्म, लौह भस्म सभी एक-एक भाग लेकर एकत्र खरल करें। इसे विडंगादि लौह कहते हैं। एक ग्राम यह विडंगादिलौह लेकर इसमें असमान मात्रा में घृत और शहद मिलाकर सेवन करने से पाण्डु-कामला रोग दूर होते हैं।

4. सौन्दर्य वृद्धि हेतु—विडंग, सोंठ, केशर, क्रमशः 20, 10, 5 ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर एक-डेढ ग्राम चूर्ण दूध के साथ सेवन करें।

5. शोथ—(क) विडंग, अदरख, बला, बेल, जीरा और हरड़ का क्वाथ एरण्ड का तैल मिलाकर पीने से सर्वाङ्ग शोथ दूर होता है।

(ख) विडंग, अतीस, देवदारू, सोंठ, इन्द्रजौ, बच और कालीमिर्च समभाग लेकर चूर्ण बनाकर 5-7 ग्राम चूर्ण उष्ण जल से देवें।

(ग) विडंगमज्जा का चूर्ण 2-3 ग्राम में 125 मि.ग्रा. अभ्रक भस्म और 125 मि.ग्रा. लौह भस्म मिलाकर सेवन कराने से सभी प्रकार की सूजन दूर होती है। यक्ष्मा रोगी के पैरों का शोथ मिटता है।

6. हृदय रोग (कृमिजन्य)—(क) कृमिजन्य हृदयरोग में रोगी को घृत, दही और तिल चूर्ण के साथ भात तीन दिन खिलाने के बाद विरेचन हेतु विडंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सफेद जीरा, सेंधानमक और चीनी इन सबके चूर्ण का प्रतीवाय छोड़कर कांजी पीना चाहिये। शास्त्र में विडंगगाढम् लिखा है। अतः अन्य द्रव्यों की अपेक्षा विडंग की मात्रा अधिक लेनी चाहिये।

(ख) विडंग और कूठ क्रमशः चार ग्राम ती... लेकर इसे गोमूत्र में मिलाकर सेवन करना भी कृ... हृदय रोग में हितकर है। इस योग से कृमि नीचे... गुदमार्ग से बाहर निकल जाते हैं। इसे योग के से... अनन्तर भी विडंग के काढ़े में जौ की पेया बनाक... करनी चाहिये। इससे बचे-खुचे कृमि भी नष्ट हो... हैं।

(ग) विडंग 10 भाग, कालानमक 8 भाग, ... भाग, बच 4 भाग तथा घी में भुनी हींग 2 भाग ... महीन चूर्ण तैयार 2-3 ग्राम चूर्ण सुखोष्ण जल से ... सेवन करने से हृदयरोग, गुल्म, विसूचिका, आध्मा... वात की विलोम गति आदि विविध विकार दूर हो...

7. प्रवाहिका—विडंगचूर्ण को पानी से या ... मिलाकर देने से प्रवाहिका में लाभ होता है। चू... साबूदाना और मक्खन में मिला कर भी दिया जा...

8. मेदोरोग—(क) विडंगघनसत्व, हरड़ ... और विजयसार घनसत्व समान मात्रा में लेकर 300 ... ग्राम दिन में दो-तीन बार त्रिफलाक्वाथ को ठं... उसमें थोड़ा शहद मिलाकर इस अनुपान से लें।

(ख) विडंग, सोंठ, यवक्षार, आंवला के ... मधु मिलाकर सेवन करें। भोजन में जौ की रोटी ... का सत्तू खावें।

(ग) विडंग और अरनी का क्वाथ बनाकर ... 250 मि.ग्रा. शिलाजीत मिलाकर सेवन करने से ... कम होती है।

(घ) विडंग, नागरमोथा, हरड़ और अर्जुन छा... चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करना बड़ा हितकर...

9. प्रमेह—(क) विडंग, पाठा, अर्जुन के क्वा... मधु मिलाकर सेवन करने से इक्षुमेह में लाभ होता...

(ख) विडंग, हल्दी, दारूहल्दी और तगर के ... में मधु मिलाकर पीने से सान्द्रमेह दूर होता है।

(ग) विडंग, दारूहल्दी, कत्था और धाव के क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से शुक्ल मेह मिटता है। ये तीनों योग सामान्यतया सभी कफ जन्य प्रमेहों में लाभदायक होते हैं।

(घ) विडंग, हल्दी और गोखरू का क्वाथ भी हितकारी है।

10. गर्भनिरोध हेतु—विडंग, पिप्पली और सुहागा तीनों को समान मात्रा में लेकर रख लें। ऋतुस्राव के तीन या पांच दिनों के बाद 2-2 ग्राम सेवन कराने से गर्भस्थिति नहीं होती है। इसे निरन्तर 5-7 दिनों तक प्रातः पानी के साथ लेना चाहिये।

11. अशुद्ध लौहभस्म जन्य विकार—विडंग के चूर्ण को अगस्तिया के रस के अनुपान से सेवन कराकर अशुद्ध लौह भस्म खाये हुए रोगी को धूप में बिठायें। इससे अशुद्ध लौह भस्म का विकार पसीने द्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार कुछ दिनों तक सेवन करने से यह विकृति बाहर निकल कर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

12. भगन्दर—विडंग और त्रिफला का क्वाथ बनाकर पीना भगन्दर रोग में हितकारी है।

13. पीनस—(जीर्ण प्रतिश्याय)—(क) विडंग के क्वाथ में गुड और घी मिलाकर रोगी को पिलावें।

(ख) विडंग का चूर्ण 15 ग्राम को 100 ग्राम गेंहूँ के आटे में मिलाकर गोंदकर उसकी पूड़ी, रोटी या पराठा बनाकर खिलावें और सोते समय रात्रि में शीतल जल पिलावें। इससे पीनस रोग से छुटकारा मिलता है।

14. यक्ष्मा—(क) विडंग के 25 दाने, लहसुन की एक पुथी और नारियल की गिरी 6 ग्राम इनको दूध में पका मिश्री मिलाकर छानकर पिलाना चाहिये। हर पाँचवे दिन विडंग के 25 व एक पुथी लहसुन की बढ़ाते हैं। लहसुन 5 पुथी से अधिक नहीं और विडंग के दाने 200 से अधिक न लेवें। इसी क्रम से घटावें। इससे कास श्वास सहित यक्ष्मा का शमन होता है।

(ख) विडंग चूर्ण, हरड़ चूर्ण, शिलाजीत और लौह भस्म समभाग लेकर खरल करें। इसमें से एक-दो ग्राम मधु के साथ पथ्यपूर्वक सेवन करने से लाभ होता है।

15. वातरोग—मस्तिष्क दौर्बल्य तथा नाड़ी दौर्बल्य से उत्पन्न, आक्षेपक, अपस्मार, पक्षाघात आदि वातरोगों में विडंग और रसोन का क्षीरपाक (खीर) बनाकर सेवन करना लाभदायक होता है।

16. अर्श—विडंग, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, इलायची, नेपाली धनिया (तुम्बरू), धनिया और तिल सभी समभाग लेकर क्वाथ बनाकर छानकर उसमें हरड़चूर्ण, गुड़ तथा घी मिला कर सेवन करने से अर्श का नाश होता है।

17. कुष्ठ—(क) विडंग, त्रिफला व निशोथ इनका समभाग चूर्ण कर प्रति दिन प्रातः सायं गुड़ के साथ एक माह तक सेवन करें।

(ख) विडंग, त्रिफला और पिप्पली इन सबके समभाग चूर्ण को सेवन करने से कुष्ठ, कृमिरोग, प्रमेह, भगन्दर आदि में लाभ होता है। इस चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें।

18. गण्डमाला—विडंग चूर्ण, शु. गुग्गुल, शु. मैनसिल तथा मृगश्रृंग भस्म सब समभाग लेकर घोटकर रखें। इसे 250-300 मि.ग्रा. की मात्रा में लेकर घृत, मधु मिलाकर सेवन करते रहने से धीरे-धीरे लाभ होता है।

19. उदरशूल—(क) विडंग, अजवायन, चित्रक, सोंठ, छोटी हरड़ और सोंचर नमक, बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर तीन-तीन ग्राम चूर्ण उष्ण जल से सेवन करें।

(ख) 5-10 ग्राम विडंग चूर्ण रात्रि में सोते समय, माखन निकाले हुए दूध के साथ सेवन करें और प्रातः दूध में एरण्ड तैल डालकर पीवें। इससे आमाशय पक्वाशय का वातजशूल दूर होते हैं।

20. विबन्ध—विडंग, अजवायन समभाग लेकर चूर्ण बना 4-5 ग्राम चूर्ण उष्णजल से सेवन करें।

21. रक्तातिसार—विडंग के अधभुने बीज तीन ग्राम को अर्क गुलाब के साथ या मिश्री के शर्बत के साथ सेवन कराने से रक्तातिसार में शीघ्रलाभ होता है।

22. कृमिदन्त—विडंग और शुद्ध कुचला समान पीसकर रखें। आधा-आधा ग्राम चूर्ण गरम जल से दें, पीड़ा का शमन होकर कृमि नष्ट होंगे।

23. अतिसार—आमातिसार के रोगी की यदि अग्नि दीप्त हो और दोष अधिक हो तो विडंग, त्रिफला व पिप्पली के क्वाथ से विरेचन दें।

24. अरूचि—विडंगचूर्ण को शहद के साथ खरल कर छोटे बेर जैसी गोलियां बनाकर गोली को मुख में धारण करें।

25. पित्तज विकार—विडंग के चूर्ण को दूध के साथ सेवन करने से पित्तजन्य विकारों में शान्ति मिलती है।

26. छर्दि—(क) विडंग, त्रिफला और सोंठ का चूर्ण मधु के साथ चाटने से कफजन्य छर्दि (वमन) दूर होती है।

27. उदावर्त—विडंग 160 ग्राम, सज्जीखार 80 ग्राम, बच 40 ग्राम, कूठ 20 ग्राम और हींग 10 ग्राम लेकर चूर्ण बना लें। हींग को पहले घी में सेक लें। यह 3-4 ग्राम चूर्ण गरम जल से सेवन करें। इससे उदावर्त (मल-मूत्र वायु के अवरोध के कारण शूल) और गुल्म रोगों में लाभ होता है।

28. गुल्म—विडंग, चित्रक, सेंधानमक, सत्तू और वच इन में घृत मिलाकर हांडी में अन्तर्धूम पकावें। दूध के साथ इस क्षार को एक ग्राम की मात्रा में सेवन करें। इससे गुल्म, प्लीहा वृद्धि एवं अन्य उदर विकारों का शमन होता है।

29. प्लीहा वृद्धि—विडंग चूर्ण, रोहीड़ा की छाल का चूर्ण और हरड़ के चूर्ण को मिलाकर चार पाँच ग्राम की मात्रा में गोमूत्र अथवा पानी के साथ सेवन करने से प्लीहोदर, अर्श, गुल्म आदि का शमन करता हैं।

30. भस्मक रोग (तीक्ष्णाग्नि)—विडंग, त्रि नागरमोथा और ओंगा (अपामार्ग) के बीज इनका बनाकर सेवन करें।

31. मूत्रकृच्छ—विडंग के चूर्ण को गोखरू चूर्ण के साथ बराबर मात्रा में मिलाकर दोनों का मि चूर्ण चार-पाँच ग्राम सेवन करने से मूत्र खुलकर लगता है।

32. मिट्टी छुड़ाने हेतु—मिट्टी में विडंग की भावना देकर मिट्टी खिलावें। इससे बालकों यह आदत छूट जायेगी।

विविध कल्प—

क्वाथ—1. वायविडंग, निर्गुण्डी, हरड़, मूषाक लहसुन, सहिजन, सोंठ और नागरमोथा सभी को स मात्रा में लेकर इनका क्वाथ विधि से क्वाथ तैयार इस क्वाथ में हींग और काली मरिच का चूर्ण मिल लेने से समस्त कृमिरोग दूर होते हैं।

2. वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारू, इन्द्रजौ और कालीमिर्च समान लेकर क्वाथ तैयार इसे ठंडा कर पिलाने से शोकातिसार मिटता है। (इसे शोथातिसार में उपयोगी कहा है।)

3. विडंग, शालवृक्ष की छाल, अर्जुन की कायफल, कदम्ब वृक्ष की छाल, लोघ्र व असनवृक्ष छाल ये सभी द्रव्य समान मात्रा में लेकर जौकुट कर इसमें से 20 ग्राम लेकर 320 मि.लि. जल में पक चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर पिलावें। यह कफजन्य प्रमेह रोगी को लाभ पहुंचाता है।

चूर्ण—

1. विडंग, सोंठ, रास्ना, छोटी पीपल, घी में भुनी हींग, सेंधा नमक, भारंगी तथा जवाखार इन सबको स मात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण तैयार कर लें। चार- ग्राम चूर्ण को घृत में मिलाकर सेवन करते रहने से वातिक कास, श्वास, हिक्का और अग्निमांद्य आदि दूर होते हैं।

—*चरक संहिता चि.*

2. विडंग, पिप्पली, इलायची व दालचीनी 10-10 ग्राम, कालीमिर्च 30 ग्राम, सोंठ 160 ग्राम तथा इन सबके बराबर मिश्री लेकर चूर्ण बनाकर रखें। तीन-चार ग्राम चूर्ण शहद के साथ सेवन करने से कास, श्वास, ज्वर, प्लीहा वृद्धि, पाण्डु और क्षय का नाश होता है। —र.र.

3. विडंग, त्रिफला, यवक्षार और पिप्पली सभी समान भाग लें। इन सब द्रव्यों से आधा निशोथ का चूर्ण बनाकर मिश्रित कर लें। यह चूर्ण मधु व घृत के साथ या गुड़ के साथ सेवन करने से गुल्म, प्लीहा, कास, कामला, अरूचि तथा अन्य कफ वातज रोग नष्ट होते हैं।

—अ.हृ.कल्प 2

4. विडंग, हरड़ की बकला, अजमोद, छोटी पीपल, यवक्षार, सेंधानमक, सोंठ और घी में भुनी हुई हींग सभी द्रव्य बराबर मात्रा में लेकर कूट-पीसकर बारीक चूर्ण तैयार कर लें। एक-दो ग्राम चूर्ण गर्म जल के साथ भोजन के बाद सेवन करावें। इससे पेट के कीड़े नष्ट होते हैं। अग्निमांद्य, उदरशूल, आध्मान आदि रोगों में भी यह लाभप्रद है। —ध.शि.रो.

वटी-मोदक—

1. विडंग की गिरी, आंवला व हरड़ 40-40 ग्राम निशोथ 20 ग्राम इनका महीन चूर्ण कर 240 ग्राम पुराने गुड़ के साथ घोटकर 3 से 6 ग्राम के मोदक बना लें। इसे जल के साथ सेवन करने से उत्तम शोधन होता है। आंत्र में मलसंग्रह एवं आम के संग्रह से होने वाले अर्श, प्लीहा वृद्धि, उदरशूल, कृमि, गुल्म, कुष्ठ, कास-श्वास, प्रमेह, क्षय, भगन्दर में यह योग लाभप्रद है। ज़लोदर तथा कुष्ठ में अति कोष्ठ वद्धता में 4-5 मोदक भी सेवन किये जा सकते हैं। लवण का परित्याग कर पथ्यपूर्वक रहने से शीघ्र लाभ होता है। अर्श के निवारण हेतु यह मणिभद्र नामक यक्ष का बनाया हुआ योग है। —भै. र.

2. विडंग, बावची, पिप्पली, वाराहीकन्द, कलिहारी की जड़ एवं त्रिफला प्रत्येक द्रव्य समभाग ले चूर्ण कर सबके समान गुड़ के साथ घोटकर 6-6 ग्राम के मोदक बना लें। एक-एक मोदक जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। —बं.से.सं

3. विडंग, त्रिफला तथा त्रिकटु प्रत्येक द्रव्य समान लेकर चूर्ण कर सबके बराबर शुद्ध गूगल एकत्र मिला थोड़ा-थोड़ा घी मिलाते हुये कूटें। सबके अच्छी तरह मिल जाने पर एक ग्राम की गोलियां बना लें। एंक दो गोली जल के साथ सेवन करने से दुष्ट व्रण, नाडीव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठादि चर्म विकारों में लाभ होता है।

—वृ.मा.

4. विडंग 20 ग्राम, चित्रक मूल 10 ग्राम, शुद्ध गन्धक 10 ग्राम, शु. गूगल 40 ग्राम। गूगल में पहले थोड़ा घी डालकर मुलायम कर लें। इसके बाद शेष औषधियें का बारीक चूर्ण मिलाकर पानी की सहायता से खूब घोटकर एक-एक ग्राम की गोलियां बना लें। एक-एक गोली सुबह-शाम कोष्ण जल से दें। इसका प्रयोग दो-तीन मास तक चिकित्सक की देख-रेख में करावें। कृमियों को नष्ट करने के लिए यह उत्तम योग है। —धन्व. शि. रो.

कृमिघ्न विडंगादि मण्डूर—विडंग चूर्ण, हरड चूर्ण, कुटकी चूर्ण और मण्डूर भस्म समान मात्रा में लेकर भली-भांति खरल कर 500 मि.ग्रा. से एक ग्राम तक 10 मि.ली. गोमूत्र में 20 मि.लि. मिलाकर इस अनुपान के साथ सुबह-शाम सेवन करने से उदर कृमि, पाण्डु, बवासीर, यकृद् विकार और मलावरोध आदि रोगों में लाभ होता है। —धन्व. शि. रो.

अरिष्ट—विडंग (एक वर्ष पुराना) पीपलामूल, रास्ना, कुरैया की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, एलवालुक और आंवला प्रत्येक 200-200 ग्राम लेकर जौकुट कर 103 लीटर जल में क्वाथ करें। जब अष्टमांश जल शेष रह जाय उतार कर छान लें। इस छने हुये क्वाथ में मधु 15 लीटर, धाय के फूल एक किलोग्राम मिलाकर दाल चीनी, बड़ी इलायची, तेजपात प्रत्येक 80-80 ग्राम, प्रियंगु,

कचनार की छाल, लोध प्रत्येक 40-40 ग्राम, सोंठ, कालीमिर्च और पिप्पली प्रत्येक 100-100 ग्राम इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बना लें और पूर्व निर्मित क्वाथ में मिलाकर घृतलिप्त घड़े में भरकर मुख बन्द कर जमीन में अथवा जौ के ढेर में गाड़ दें।

एक माह बाद निकालकर ऊपर का स्वच्छ जलांश लेकर छाल लें और बोतलों में भरकर सुरक्षित रखें। इस विडंगारिष्ट नामक योग को यथाविधि सेवन करने से दारूण विद्रधि, उरूस्तम्भ, अश्मरी, प्रमेह, भगन्दर, गण्डमाला और हनुस्तम्भ रोग नष्ट होते हैं। *—शा.सं.*

घृत—विडंग, कालानमक, चव्य, चित्रक, त्रिकटु, सेंधानमक और जवाखार 50-50 ग्राम एकत्र पीसकर इस कल्क को घृत 2 लीटर और दूध 2 लीटर और जल 8 लिटर में मन्द आंच पर पकावें। घी मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। यह 10-12 ग्राम सेवन करने से ज्वर, यक्ष्मा में लाभ होता है। यह बाजीकरणार्थ भी सेवन किया जा सकता है। *—ग. नि.*

अवलेह—1. विडंग तण्डुल (छिलके हटाये हुये विडंग) का चूर्ण एक आडक (3 किलो 72 ग्राम) इसके बराबर ही पिप्पली के तण्डुलों का चूर्ण लेकर दोनों का चूर्ण मिलाकर इसमें एक आढक गोघृत, एक आढक तिल तैल, एक आढक मधु और डेढ आढक चीनी मिलाकर इन छहों को एकत्र मिलाकर घी के पात्र में पावस ऋतु में राख के ढेर में दवा देना चाहिए। एक माह बाद निकाल कर अग्नि बल के अनुसार मात्रा के सेवन से रसायनोचित लाभ मिलता हैं व्यक्ति स्वस्थ्य, सबल और बुद्धिमान होकर पूरी आयु प्राप्त करता है।

—च.स.चि।

2. विडंगसार (विडंग को 10 मिनट जल में भिगोकर फिर निकाल कर छाया में सुखा कर ऊखल में कूट ऊपर की भूसी हटाने के बाद जो विडंग है, उसे विडंग सार या विडंग तण्डुल कहा जाता है) की पिष्टी बनाकर उसके शीतल हो जाने पर सुखाकर पुनः चूर्ण बनाकर उसमें समान मात्रा में घी, शक्कर मिला कर सुगंधि द्रव्यों से लिप्त पात्र में तीनों के मिश्रण को रख अच्छी तरह पात्र का मुख बंद कर धान्य राशि में देना चाहिये। इसे बरसात के दिनों में रखना चाहिये बरसात के मौसम के निकल जाने के बाद इसे निका चाहिये। इस रसायन को सेवन करने से पहले शरी पंचकर्म द्वारा शुद्धि करनी चाहिये। और देवपूजा, आदि सत्कर्म संपादित करने चाहिये। तदनंतर इस र को प्रातः प्रतिदिन 12 ग्राम के प्रमाण से सेवन क चाहिये इसके जीर्ण हो जाने पर घी दूध युक्त अ ग्रहण करना चाहिये सेवन काल में तैलाभ्यंग, शरीर पर चन्दन लेप आदि करने चाहिये। स्वच्छ उपयुक्त भवन में निवास करते हुए इसका सेवन इस प्रकार एक माह तक करते रहने से उसका सुन्दर और स्वस्थ बन जाता है। *—कल्याण*

3. विडंग, त्रिफला, नागरमोथा, मुलैठी, कु हल्दी, दारू हल्दी व चित्रक इनका चूर्ण तथा लौह एक-एक भाग एकत्र खरल कर गुड़ और ग्यारह-ग्यारह भाग लेकर खैर के क्वाथ में चाशनी बना उक्त खरल किये हुये चूर्ण को मिलाकर थोड़ा पका रख लें। इसे यथोचित मात्रा में घृत और मधु के सेवन करने से जीर्ण कामला, पित्तजन्य शोथ एवं पा आदि रोग दूर होते हैं। *—ग*

सर्वोपघात विडंग तण्डुल रसायन—विडंगसार कूटकर चूर्ण कर लें। उत्तम मुलैठी लेकर उसको ऊप छीलकर कूट कर उसका भी चूर्ण बना लें। दोनों को बराबर मात्रा में भली-भांति मिलाकर सुरक्षित रखें इसे प्रथम चार दिनों तक 3 ग्राम फिर चार दिन तक 6 ग्राम इस प्रकार क्रमशः 3-3 ग्राम अपनी अग्निबलानु बढ़ाते हुये प्रतिदिन प्रातः शहद में मिलाकर लें रक्तविकार, रक्तपित्त, पित्तप्रधान अर्श में अनुपान शी जल रखें। वातज अर्श, भगन्दर, वातव्याधि में मधुमि

मिलावे के क्वार्थ से लेवें। कृमि प्रकोपज वातविकारों में कायाकल्प हेतु मधुयुक्त आमलकी रस से सेवन करें। कृमि प्रकोपज पित्तविकार में तथा जीर्ण कोष्ठबद्धता में मधुयुक्त मुनक्का क्वाथ से तथा वातरक्त, सन्धिवात, कुष्ठ, जीर्ण ज्वर आदि में गिलोय के क्वाथ से सेवन करें। रोगी की प्रकृति एवं रोग लक्षणानुसर समुचित अनुपान का चुनाव करना श्रेयस्कर है।

औषधि पच जाने पर लवणरहित आंवला चूर्ण मिश्रित मूंग का यूष दिन में एक-दो बार पथ्य में लेवें। इस यूष में पर्याप्त गोघृत मिलाकर लेवें। केवल यूष पर ही नहीं रह सकें तो सांठी चावलों का भात लिया जा सकता है। भात की मात्रा भी कम ही रखें। इसके अतिरिक्त अन्य कोई आहार न लेवें। इस रसायन को एक माह तक सेवन करें। इसे सेवन से पूर्व पंचकर्म द्वारा शरीर का शोधन हो जाने से अच्छा लाभ मिलता है। रसायनोचित सभी लाभ इससे प्राप्त होते हैं और उक्तरोगों का शमन होता है। मिष्ठान्न, दूध आदि भी इसके सेवन काल में उपयोग में नहीं लावें। मौसम्बी, पपीता आदि सात्म्य फल कुछ लिये जा सकते हैं। कई प्रसिद्ध चिकित्सकों ने यह रसायन सेवन कराकर अभीष्ट लाभ प्राप्त किया है।

—सुश्रुतसंहिता चि.श.

कल्याण गुड़—विडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनिया, चित्रक, कालीमिर्च, इन्द्रजौं, जीरा, पीपल, गजपीपल, अजमोद और पाँचों नमक इन सबको अलग-अलग 12-12 ग्राम लेकर चूर्ण तैयार कर लें। तिलतैल, निशोथ का चूर्ण 384-384 ग्राम, आंवले का रस 2 किलो 304 ग्राम, गुड़ 2 किलो 400 ग्राम लेकर मंद आंच पर सबको क्रमशः डालकर पाक तैयार कर लें। यह कल्याण गुड़ नामक अवलेह सभी ऋतुओं में सेवनीय है। अग्निबलानुसार उपयुक्त मात्रा में इसका सेवन करें। इसके सेवन से कुष्ठ, अर्श, कामला, गुल्म, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, ग्रहणी और पाण्डुरोग आदि में उत्तम लाभ होता है। *—अ.हृ.कल्प. 2*

विडंग लौह—शु. पारद, शु. गन्धक, कालीमिर्च, जायफल, लवंग, पीपल, तालभस्म, सोंठ और वंगभस्म और लौहभस्म समेत सबके बराबर विडङ्ग चूर्ण मिलाकर भली-भांति से खरल कर रखें। इसे 250 मि.ग्रा. से 500 मि.ग्रा. की मात्रा में सेवन कराने से उदरकृमि, अर्श, अरूचि, मन्दाग्नि, विशूचिका, शोथ, उदरशूल, कास, श्वास और हिचकी आदि रोग मिटते हैं।

—र. रा. सुन्दर

विडङ्ग युक्त अन्य लौह योग एवं रसयोग (जिनका नामोल्लेख पूर्व के पृष्ठों में किया गया है) बहुत से शास्त्रों में वर्णित है। विस्तारभय से यहां नहीं दिये जा रहे हैं। जिज्ञासुओं को भैषज्यरत्नावली, योगरत्नाकर, रस राजसुन्दर आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

तैल—

1. विडंग, एरण्डमूल, हरिद्रा, पटोलपत्र, त्रिफला, गिलोय, चमेली पत्र, सम्मालू, दशमूल, आखुपर्णी, निम्बत्वक्, पाठा, सहचर, अमलतास, करवीर कृत क्वाथ। मदन फल, विल्वत्वक्, निसोत, पीपर, रास्ना, चिरायता, देवदारू, सप्तपर्ण, वच, खस, दारू-हरिद्रा, कूठ, इन्द्रयव, मंजिष्ठा, हरिद्रा, सोया, चित्रक, कचूर, चोकर, पुष्करमूल कृत कल्क। इनके संयोग से सिद्ध तैल की अनुवासन वस्ति देने से कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, अर्श, विषमाग्नि और नपुंसकता आदि रोगों में लाभ होता है। इसे पान एवं अभ्यङ्गार्थ भी उपयोग में लाया जा सकता है।

—चरक. सि.4

2. विडंग, सज्जीखार, दन्तीमूल व हींग 50-50 ग्राम लेकर सबको एकंत्र थोड़े जल के साथ पीसकर कल्क कर उसके साथ 2 लीटर सरसों तैल और 8 लीटर गोमूत्र मिलाकर मंद आंच पर पकावें। मूत्र के जल जाने पर तैल को छान लें। इस तैल का नस्य लेने से शिरोगत कृमि नष्ट होते हैं। *—ग.नि.*

3. विडंग, सेंधानमक, मुलेठी, देवदारू, सोंठ, मरिच, पीपल, प्रत्येक द्रव्य 15 ग्राम लेकर एकत्र थोड़े जल के साथ पीसकर कल्क करें तथा क्वाथार्थ उक्त सातों द्रव्यों को 200-200 ग्राम लेकर जौ कुट कर 14 लिटर जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें उक्त कल्क और तिल तैल एक लिटर 600 मि.लि. मिलाकर मंद आंच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इसका नस्य लेने से नासाकृमि, नासापाक, नासादाह, नासाशोष आदि नासा रोगों में लाभ होता है। —ग.नि.

4. विडंग, गन्धक व मेनसिल 40-40 ग्राम जल के साथ पीसकर इस कल्क को एक लीटर 160 मि.लि. सरसों का तैल तथा तैल से चार गुना गोमूत्र मिल मन्द आंच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छा रखें। इस तैल को बालों में लगाने से जूं, लीख हमेश लिए नष्ट हो जाते हैं। —(

5. विडंग, कालीमिर्च, मदार के जड़ की सोंठ, चीते की जड़, देवदारू, एलुआ और पाँचों (सैन्धव, विड, सामुद्र, सांभर तथा कालानमक) समान मात्रा में लेकर इनका कल्क तैयार कर लें। कल्क एक किलोग्राम, कल्क से चौगुना तिल तैल तिल तैल से चौगुना जल लेकर विधिवत् तैल पाक इस तैल का पान करने से तथा इसकी मालिश क शलीपद रोग में लाभ होता है। —

पेटेन्ट प्रयोगों में विडंग—

कृमिरोगोपयोगी विडंग युक्त प्रयोग—

क्र.	नाम प्रयोग	निर्माणशाला	घटकदव्य	उपयोगी मात्रा
1.	कृमिघात टेब	गोस्वामी ड्रग्स रतनगढ़ (राज.)	विडंग, पलाशबीज शु. कुचला, एलवा अजवायन।	दो-चार टेब दिन में तीन बार
2.	बैटरपिल्स	शिल्पाकेम इन्दौर	विडंगसत्व, पलाशसत्व एलोज	2-4 गो. रात में सोते समय
3.	क्लीयर कैप.	बानमार्क	विडंग, कालीजीरी खुरा., अजवायन आदि।	एक-एक कैप. दिन में 3 बार
4.	कृमिघ्न कैप.	गर्ग वनौः विजयगढ़	विडंग, ढाक, के बीज, कमीला आदि।	एक-दो कैपः दिन में दो बार
5.	कृमिहारी कैप.	निर्मल आयु. अलीगढ़	विडंग, कमीला निशोथ आदि।	,,
6.	कृमिरिन कैप.	हरीश फार्मा. विजयगढ़	विडंग, अजवायन, शु. गन्धक, आदि।	,,

7.	सर्व कृमिरिपु कैप.	शर्मा मेडिको	विडंग, निशोथ हल्दी, अजमोद आदि।	एक-एक कैप. दिन में तीन बार।
8.	इथिल्मीन सीरप	मेडिकल इथिक्स	विडग, काकड़ा, सिंगी, कुटकी पुदीना आदि।	5 मि.लि. दिन में तीन बार।
9.	बोरमिट सीरप	कौशिक आयु. भवन, सालासर (राज.)	विडंग; वच कपीलक, कड़वी तुरई आदि।	दो-तीन चम्मच दिन में 2 बार।
10.	डीवर्म सीरप	हर्ब इण्डिया कोटा (राज.)	विडंग, सोमराजी, सीता फल बीज आदि।	तीन-चार चम्मच दिन में 2 बार।
11.	कृमिनिल सीरप	चरक फार्मा.	विडंग, अजमोद, डिकामाली, चिरायता आदि।	दो चम्मच दिन में तीन बार।

कृमिरोग के अतिरिक्त बहुत से योगों में विडंग का मिश्रण किया जाता है। गर्ग वनौषधि भंडार द्वारा मेदोरोग में उपयोगी "फैटकिल कैपसूल" का निर्माण किया जाता है। इसमें विडंग घनसत्व, हरड़ घनसत्व, विजयसार घनसत्व, मेदोहर गूगल और अरोग्य वर्द्धिनी वटी के मिश्रण में दारूहल्दी क्वाथ की भावना दी जाती है। रोगानुसार पथ्यापथ्य का ध्यान रखते हुए लगभग 6 माह तक एक-एक कैपसूल गुनगुने जल से दिया जाता है। इसी प्रकार के कैपसूल हरीश फार्मा द्वारा भी तैयार किये जाते हैं। इनमें विडंग घनसत्व, हरड़ घनसत्व, बेल की जड़, आरोग्यवर्द्धिनीवटी, त्रिमूर्ति रस और मेदो हर गूगल होते हैं। इसका सेवन भी उपर्युक्त प्रकार से ही किया जाता है।

यह पूर्व में कहा जा चुका है कि बालकों के लिए विडंग अति उपयोगी द्रव्य हैं। आचार्य शार्ङ्गधर ने जो शतपुष्पादिक्वाथ निर्दिष्ट किया है यह बालकों के लिए बहुत उपयुक्त जन्म घुट्टिका है—

शतपुष्पा विडंङ्गञ्च कृतमालो हरीतकी।
बचापलाश बीजानि यवानी टंकणं गुडः।।
श्रृंगी चातिविषा भार्ङ्गी मृद्वीका मुस्तकं कणा।
सौवर्चलयुतः क्वाथो बालानां जन्म घुट्टिका।।

इसी प्रकार विडंग के मिश्रण से बहुत से बालोपयोगी पेय तैयार किये जाते हैं। शिल्पा केम (इन्दौर) द्वारा "चिल्ड्रन टानिक" नामक एक आदर्श टानिक तैयार किया जाता है यह बच्चों के लिए उपयोगी है। इसमें विडंग, असगंध, शतावरी, पोदीना, सौंफ अर्क है। आयु के अनुसार यह टानिक पिलाना चाहिये। यह बच्चों में रोग प्रतिकारक क्षमता बढाता है। कौशिक आयुर्वेद भवन द्वारा 'न्यूब्रोन' ड्राप्स का निर्माण किया जाता है। यह नवजात शिशुओं के जन्म से ही प्रथम घुटी के रूप में उपयोगी है। इसमें सर्वाधिक मात्रा में विडंग है। इसके अतिरिक्त हरीतकी, कर्कट श्रृंगी, सोंठ आदि है। आयु

के अनुसार आधा चम्मच से एक चम्मच तक दिन में दो-तीन बार इसे पिलाना चाहिये। अन्य जो निर्माण शालायें जो जन्म घुटी तैयार करती हैं उनमें प्रायः विडंग होता है।

पाचन संस्थान विकृति में उपयोगी "गैसेक्स टेब" (हिमा.), "कालीकारमीन ड्राप्स-बान" (बालोपयोगी)", गैस्टोजाइम कैप. "(रूद्रदेव) आदि में भी विडंग का मिश्रण होता है। रक्तविकारोपयोगी "आयुरलब हीम केअर" (कैप. तथा साइरप), "गोस्वामी रक्त सालसा सीरप" आदि में विडंग समाविष्ट है।

महर्षि के "विद्यार्थी अमृत" में अन्य स्मृतिवर्धक बलवर्धक द्रव्यों के साथ विडंग भी मिलाया जाता है। यह पूर्व में कहा गया है कि विडंग कफघ्न है तो मेडिलिक्सं लेबोरेटरीस ने जो कास श्वास रोगों में उपयोगी "श्रीकाफ कैपसूल" तैयार किये हैं इनमें वासा, भारंगी, हरिद्रा के संग विडंग भी मिलाया गया है।

नवशक्ति के "रजोनाल प्रवाही" में विडंग, कलौंजी, कार्पासारिष्ट है। यह स्त्रियों में कष्टार्तव में उपयोगी है। दांतों तथा मसूड़ों की पीड़ा में लाभप्रद लेप है। "डेन्टील गम पेन्ट" गोस्वामी ड्रग्स द्वारा तैयार किया जाता है। इसमें बहुत से उपयोगी द्रव्यों के साथ विडंग घनसत्व भी है।

अनूभूत प्रयोग—

1. कृमिहर प्रशस्त प्रयोग—बायविडंग 100 ग्राम, बजवायन 50 ग्राम, कबीला 25 ग्राम, कपूर 15 ग्राम। सबको कूट कपड़छन कर रख लें। पूर्ण वयस्क रोगी को 6 ग्राम रात्रि में सोते समय गरम जल से दें। गर्भिणी स्त्रियों एवं बच्चों को अल्प मात्रा में दें। यह चूर्ण सभी प्रकार के उदरकृमियों को नष्ट करता हैं सूत्र कृमियों के कारण प्रायः बच्चों के पेट में दर्द रहता है। बिस्तर में मूत्रत्याग कर देते है तथा सोते समय दांत किटकिटाते हैं। ऐसी स्थिति में आधे से एक ग्राम तक दूध या जल के साथ देने से कीड़े शीघ्र नष्ट होकर मल के साथ निकल जाते हैं।

—प्राणाचार्य श्री पं. मन्नूलाल

(धन्वन्तरि अगस्त 19

2. आह्लादकारी विडंग और इसका एक प्रयोग—मैं एक चूर्ण बनाता हूँ। बायविडंग से काला नमक व दूनी अजवायन डालकर। इस चूर्ण हमेशा थैले में रखता हूँ, जो भी आदमी थोड़ा अप्रसन्न, खिन्न चित्त में मिले उसे तीन ग्राम चूर्ण फकां देता हूँ। थोड़ी देर में ही परिणाम सुधरने लगता चूर्ण फांकने वाले का चेहरा सुधरने लगता है और मन को आह्लाद मालूम होता है। यह वायविडंङ्ग है--

प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योपजाते।

विडंग शब्द विशेषता का द्योतक है। अपनी पहचान बनाने वाले को विडंग कहते हैं।

—वैद्य श्री गोपालप्रसाद

(स्वास्थ्य नव. 19

3. योषापस्मार हर प्रयोग—बायविडंग 160 कूठ और कालानमक, 40-40 ग्राम, जटामांसी, और घी में भर्जित हींग प्रत्येक 20-20 ग्राम। एकत्र कूट पीसकर कपड़छन चूर्ण बनाकर सुरक्षित एक से तीन ग्राम चूर्ण को ईषद् उष्ण जल के प्रतिदिन सेवन कराने से योषापस्मार में अच्छा लाभ है। इसके अतिरिक्त यह आक्षेप नाश्क, गर्भा विकारजन्य कम्पवात, अपस्मार तथा मस्तिष्क तनाव गुणकारी और अनिद्रानाशक है। स्वानुभूत चूर्ण है।

—डा. श्री महेश्वर प्रसाद उमाशं

(सुधानिधि जन. 19

4. मेदोहर उत्तम प्रयोग—विडंग 2 भाग, भाग सोंठ एक भाग, त्रिकटु एक भाग, कालानमक

भाग मिलाकर चूर्ण बना लें। चार-चार ग्राम चूर्ण भोजन के बाद जल से सेवन करावें। यह हमारा अनुभूत योग है। यह चूर्ण मेद वृद्धि दूर करने के लिए रामबाण है।

—श्री गोपालशरण गर्ग

(सुधानिधि सित. 1992)

5. हृदयशूल हर प्रयोग—एक रोगी को हृदय पर वायु के दबाव के कारण हृदयशूल रहता था। डाक्टरों के मत से वह रोग असाध्य था। मैंने उसे केवल विडंगचूर्ण देना शुरू किया। उसे एक बार में 6 ग्राम विडंग चूर्ण दिन में तीन बार जल से दिया गया। रोगी को 6 दिनों तक कोई प्रभाव नहीं हुआ किन्तु सातवें दिन उसे विरेचन शुरू हुआ और तीन बार वमन भी हुआ। इससे कफयुक्त विकार बाहर आया। इतने परिमाण में यह कहाँ से निकला इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। उसे आठ दिनों में मूंग के पानी के सिवाय आहार में कुछ भी नहीं दिया गया था। बस फिर विडंग देना बन्द कर दिया। वमन-विरेचन के बाद तुरन्त ही उसके हृदय का शूल चला गया जो फिर कभी नहीं हुआ।

—आचार्य श्री बल्लभराम विश्वनाथ वैद्य

(धन्व. वनौ. विशे.)

6. कृमिरोगोपयोगी प्रयोग—विडंग, पलाश के बीज, कबीला, दूधिया बच, राई, हल्दी, बकायन के बीज, खुरासानी अजवायन, निशोथ प्रत्येक 40-40 ग्राम। सबको कूट-पीस छानकर ग्वारपाठे के गूदे के साथ घोटकर एक-एक ग्राम की गोलियां बना लें। गर्म जल के साथ कृमिरोगी को एक-एक गोली सुबह-शाम 15 दिनों तक या आवश्यकतानुसार अधिक समय तक देवें।

यह योग वैद्य विश्वनाथ द्विवेदी की पुस्तक वैद्य सहचर से हमने ग्रहण किया है। कृमिघ्न वटी के नाम से इस योग का निर्माण कर हम वर्षों से प्रयोग कर रहे हैं। इस मूल योग में हींग की मात्रा 50 ग्राम है वह हमने घटाकर 20 ग्राम कर दी हैं मूल योग में पानी के साथ घोटकर गोली बनाने के लिए लिखा है जबकि हम इसे ग्वारपाठे के गूदे के साथ घोटकर बनाते हैं। हमने इस योग से अनेक कृमि रोगियों को लाभान्वित किया है। सामान्यतः इस योग की एक-एक गोली 15 दिनों तक देने से उदरकृमि समूल नष्ट हो जाते हैं। यदि आवश्यकता हो तो इसका प्रयोग अधिक समय तक भी कराया जा सकता है। पाठक हमारे इस अनुभूत प्रयोग का अपनी चिकित्सा में सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकते हैं।

—वैद्य श्री गोपालशरण गर्ग

(सुधा. अक्टूबर 1999)

7. कृच्छार्तवहर प्रयोग—

विडंग पिप्पली मूलं त्वक् कृष्णा कलवञ्जिका।
यवानी मेथिका शुण्ठी सौभग्यं शतपर्विका।।
एतानी सममात्राणि भेषजानि समाचरेत्।
गुडेन मधुरः क्वाथः पीतः प्रवति वैरजः।।

—विडंग, पीपलामूल, दालचीनी, पिप्पली, कलौंजी, अजवायन, मैथी, सौंठ, शु. सुहागा, बच इन सबको समान मात्रा में लेकर यवकुट कर लें। इसमें से 15 ग्राम लेकर क्वाथ तैयार कर उसमें थोड़ा गुड़ मिलाकर पीने से उदावर्तिनी योनिव्यापत् आदि स्त्रीगत व्याधियों की रजःकृच्छता दूर होकर मासिक स्राव नियमित होने लगता है। इस योग का सेवन तीन दिन लगातार करना चाहिये। रूग्णा एवं रोग की दशा के अनुसार क्वाथ की मात्रा बढाई जा सकती है। *—वै. गोपीनाथ पारीक*

(अनु. योगमाला जन. 74)

8. अपस्मार हर प्रयोग—विडंग 100 ग्राम, सेंधानमक 80 ग्राम, सौंठ 40 ग्राम, दुधवच 20 ग्राम, घी में भुनी हींग 10 ग्राम। सबको कूट कपड़छन कर रखें। ताजा जल के साथ 3-3 ग्राम चूर्ण प्रातः सायं सेवन कराने से अपस्मार में लाभ होता है।

—प्रयोगमणिमालांक

9. बालकों के कृमिरोग पर प्रयोग—विडंग, पलाशबीज, खुरासानी अजवायन, पीपल, त्रिफला पांचों समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर अवस्थानुसार 250 मि. ग्रा. से एक ग्राम तक शहद या माता के दूध के साथ सेवन कराने से बच्चों के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

—वैद्यराज श्री मनोहरदत्त

(धन्वन्तरि अनु. चिकि. अं.)

10. कृमिहर एक अन्य प्रयोग—40 ग्राम बायविडंग, 3 नग भिलावे। एक छोटे मिट्टी के बर्तन में बायविडंग भर दें, जिसके ऊपर भिलावे रखें। ऊपर मिट्टी का ढक्कन रखकर कपड़ मिट्टी कर दें। बाद में उसे गोबरी अग्नि में पुट दें जिससे बर्तन में काली भस्म बन जायेगी। इसको खरल कर शीशी में रख दें। मात्रा–125 मि.ग्रा से 250 मि.ग्रा. तक सुबह-शाम शहद से दें। तीन दिनों से 6 दिनों तक यह देना चाहिये। इसका 20 वर्षों से उपयोग कर रहे हैं।

—वैद्य भूषण श्री प्रभाकर भाई

(धन्व. स. सि. प्रयो.)

11. एक अनुभूत कृमिहर प्रयोग—विडंगघनसार 10 ग्राम, अजवायन घनसार 10 ग्राम, पलाशबीज चूर्ण 20 ग्राम, सनायपत्र घनसार 10 ग्राम, निशोथ घनसार 10 ग्राम, एरण्ड बीज पिष्टी 20 ग्राम। सब द्रव्यों को खरल में डालकर आक पत्र स्वरस की तीन भावना देकर 250 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। बच्चों को एक गोली तथा वयस्कों को 2 गोली मधु जल शर्करा या गोदुग्ध के साथ नित्य रात्रि में सोते समय एक-दो बार तीन दिनों त… इसके सेवन से आन्त्र के सभी कृमि नष्ट हो जाते… जीवित मल के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। इतना… कृमि के साथ आंतों के विजातीय तत्व भी बाहर… जाते हैं।

—पं. श्री हर्षुल…

(धन्व. अनुभ…

12. दंष्ट्रा शूलघ्न प्रयोग—वायविडंग 25… बढ़िया हींग, घुड़वच, कर्पूर प्रत्येक 20-20 ग्राम… सबको बारीक पीस लें।

एक-दो ग्राम जहाँ दर्द हो, थोड़ी रूई में र… डाढ या दांत के बीच में दबा लेवें। उसी समय… शान्त हो जायेगी और कृमि नष्ट हो जायेंगे। यह… 20 वर्ष का अनुभूत प्रयोग है।

—पं. श्री श्रीकृष्ण…

(धन्व. अनुभ…

13. कृमिघ्न कैपसूल—बायविडंग चूर्ण एक… क्रिमिघातनी वटी (भै.र.) 4 ग्रेन, कबीला चूर्ण… तीनों को कूट पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर तुलसी पत्र स… की भावना देकर उक्त एक मात्रा कैपसूल में भ… एक-एक कैपसूल दिन में चार बार उष्णोदक… इससे आमाशय पक्वाशय तथा मलाशय के क्रिमि… जाते हैं। दूसरे दिन से ही रोग के लक्षण या उपद्रव… लगते हैं। उदर के समस्त कृमि 15-20 दिनों के से… बाहर आ जाते हैं। *—श्री पं. ताराशंकर मिश्र…*

(सुधा. कैपसूल…

शंखपुष्पी
(Convolvulus Pluricaulis)

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तथा मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरू स्वाहा।।
—यजु. 32-14

अर्थात मेधानामक जिस धारणवती बुद्धि की विद्वान्, ...दर्शी, आत्मज्ञानी और सुधारक नेताजन उपासनाकरते ...हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर, मुझे भी उसी मेधा से युक्त ...। मेरा यह संकल्प सत्य हो।

मेधा शब्द ग्रन्थ, भाषण आदि में निर्दिष्ट विषय ...तु को ग्रहण कर तथैव धारणकर रखने (न भूलने) के ...मर्थ्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। व्याकरणानुसार भी ...का यह अर्थ होता ही है। उणादिगण में आशु ग्रहण ...र्थ की मेधा धातु पाणिनि ने पढ़ी है। ऐसी यह मेधा ...स व्यक्ति में होती है वह मेधावी कहा जाता है—

सकृदुक्तं च गृह्णाति न च विस्मरति श्रुतम्।
धीर्धारणावती यस्य मेधावी स इहोच्यते।।

...शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र वस्तु इस मेधा को प्रभावित ...ती है अतः मेध्य शब्द इनके लिए भी रूढ तथा कोषों ...स्मृति ग्रन्थों में पढ़ा गया है। इसके विपरीत अशुचि, ...वित्र वस्तु को अमेध्य कहा जाता है।

"मेधायै हितं मेध्यम्"—इस व्युत्पत्ति से इस मेधा ...लिए हितकारी द्रव्य इस श्रेणी में आते हैं। आयुर्वेद के ...थों में बहुत से मेध्य द्रव्यों का वर्णन मिलता है। इनमें ...ी, वचा, यष्टीमधु, गुडूची, मांसी, अर्कपुष्पी (श्वेत ...) निर्गुण्डी आदि मुख्य हैं। इन सबमें भगवान चरक ...मेध्या विशेषेण च शंखपुष्पी" कहकर शंखपुष्पी ...मेध्यद्रव्यों में सर्वोपरि स्थान दिया है।

श्री आनन्दराय मखी लिखित जीवानन्दनम् नामक नाटक में बुद्धि नाम्नी रानी जीव नामक राजा से पूछती है कि "हे आर्यपुत्र, क्या ये रस और गन्ध एक दूसरे द्रव्यों की सहायकता के बिना ही रोग रूपी शत्रुओं का नाश कर सकते हैं"। तो जीव-राजा उत्तर देते हैं कि "दिव्यौषधियों के संमिश्रण से ये अधिक शक्ति धारण कर लेते हैं।" उन दिव्यौषधियों के अन्तर्गत इस शंखपुष्पी की गणना की गई हैं श्री वाग्भटाचार्य कृत रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रन्थ में इन दिव्यौषधियों का वर्णन किया गया है। देखिये र.र.स. पूर्वखण्ड अध्याय ग्यारह में पारद के दीपन संस्कार के प्रसंग में—

सर्पाक्षी क्षीरिणी बन्ध्या मत्स्याक्षी शंखपुष्पिका।

यह दिव्य वनौषधि आधुनिक प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार त्रिवृत् कुल (कनवाल्वुलेसी) की कही गई हैं भावप्रकाश निघन्टु के गुडूच्यादिवर्ग में इसका वर्णन मिलता है। इसके पूर्व के निघुन्टु ग्रन्थों एवं संहिताग्रन्थों में भी इसका विपुल वर्णन उपलब्ध होता हैं संप्रति सर्वाधिक प्रचारित आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा द्वारा लिखित द्रव्य गुण विज्ञान (औद्भिद औषध द्रव्य) में मेध्य द्रव्यों के अर्न्तगत इसका सप्रमाण वर्णन मिलता है।

नाम—

संस्कृत—शंखपुष्पी, क्षीरपुष्पी, मांगल्यकुसुमा
हिन्दी—शंखाहुली
गुजराती—शंखावली
मराठी—सांखवेल
राजस्थानी—संखावली
लैटिन—कनवाल्वुलस प्लुरिकालिस
(Convolvulus Pluricaulis)

प्राप्ति स्थान—समस्त भारत में विशेषतः पथरीले और परती मैदानों में यह उत्पन्न होती है। गुजरात और राजस्थान के मैदानों में प्रातःकाल इसके असंख्य क्षुपों पर श्वेत पुष्प खिले हुये देखे जा सकते हैं।

रासायनिक परिचय—रासायनिक विश्लेषण से इसमें दो प्रकार के स्फटिकीय द्रव्य पाये जाते हैं। शंखपुष्पीन नामक एक क्षाराभ भी इसमें पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—शंखपुष्पी के प्रसरणशील छोटे-छोटे घास के समान पौधे होते हैं। इसके क्षुप 2-6 इंच ऊपर बढ़कर बाद में इसकी शाखायें जमीन पर छा जाती है। मूलस्तम्भ प्रायः बहुवर्षायु होता है। मूलस्तम्भ से अनेक रोमश 4-12 इंच लम्बे रेखाकार या निचले भाग में अत्रिप्रासवत् होते हैं। पुष्प-हल्के गुलाबी रंग के अथवा सफेद होते हैं। शंख के समान श्वेत पुष्पों वाली होने से इसे शंखपुष्पी एवं दूध के समान श्वेत पुष्पों वाली होने से इसे क्षीरपुष्पी कहा जाता है। पुष्प एक-तीन भागों में विभक्ति पत्रकोणीय पुष्पदंड पर होते हैं। इनका बाह्य दल रोमश और रेखाकार प्रासवत् और आभ्यन्तर कोश कुप्पी के आकार के तथा बाहर से रोमश होते हैं। इनमें दो कुक्षियाँ होती हैं। फल-अण्डाकार, छोटे-छोटे तथा शाखाओं पर अथवा पार्श्वदेश में लगते हैं।

मई से दिसम्बर तक इसमें पुष्प और फल लगते हैं। प्रातः काल इसके पंक्तिबद्ध खिले पुष्प दिखलाई देते हैं। जिनसे इसकी सही पहचान हो जाती है।

भेद—पुष्प के वर्ण के आधार पर इसके तीन भेद किये गये हैं—

1. **श्वेतपुष्पी**- Convolvulus Pluricaulis
2. रक्तपुष्पी (सर्वाक्षी) " Decussata
3. नीलपुष्पी (विष्णुक्रान्ता) " Alsinoides

वस्तुतः चिकित्सा की दृष्टि से किंबा विज्ञजनों के अनुभव के आधार पर श्वेत पुष्प वाली शंखपुष्पी ही लाभप्रद पाई गई है जिसका विवरण इस अ[...] किया गया है।

बंगाल के वैद्य वहाँ की प्रसिद्ध वनौषधि [...] को शंखपुष्पी मानकर ग्रहण करते हैं, किन्तु [...] मर्मज्ञों के अनुसार इन दोनों में कुछ गुणसाम्यता [...] भी बंगीय दानाकुनी शंखपुष्पी नहीं है। दानाकु[...] नाम भ्रमवश 'संखाहुली' लिख दिया गया है।

रस—तिक्त

गुण—स्निग्धं, पिच्छिल

वीर्य—शीत

धन्वन्तरि, भावमिश्र ने इसका वीर्य उष्ण [...] कैयदेव ने अनुष्ण तथा राजनिघन्टुकार ने शीत [...] सेवन करने पर शरीर में प्रतिक्रिया स्वरूप को [...] रखते हुए इसका वीर्य शीत ही स्वीकार किया [...]

विपाक—मधुर, **प्रभाव**—मेध्य

दोषकर्म—यह स्निग्ध, पिच्छिल एवं मधुर [...] होने से वात का तथा शीतवीर्य होने से पित्त [...] करती है। तिक्त रस के कारण यह कफ का [...] करती है। इस प्रकार यह त्रिदोषहर होते हुये भी [...] वातपित्तहर है।

उपयोगी अंग—पञ्चाग

मात्रा—**स्वरस**—25-50 मि.लि.

कल्क—10-20 ग्राम

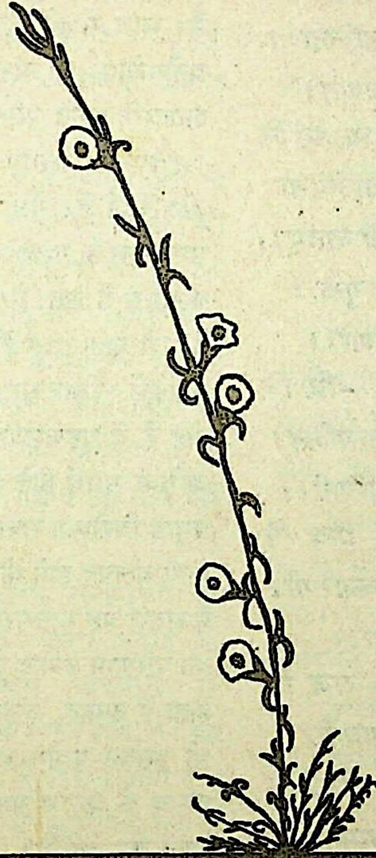
चूर्ण—3-6 ग्राम

संग्रह एवं संरक्षण—छाया शुष्क पंचांग को [...] डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिये।

वीर्य कालावधि—6 माह से एक वर्ष [...] विशेषतः कल्क या पानक (शर्बत) के रूप में [...] किया जाता है।

गुण प्रकाशक संज्ञा—मेध्या, स्मृतिहिता

प्रतिनिधि—ब्राह्मी



शंखपुष्पी (CONVOLVULUS PLURICAULIS)

नाम—सं०—संस्कृत—शंखपुष्पी, हिन्दी—शंखाहुली, गुजराती—शंखावली, मराठी—सांखवेल, राजस्थानी—संखावली लैटिन—कनवाल्वुलस प्लुरिकालिस

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत विशेषतः गुजरात, राजस्थान।

उपयोगी अंग—पचांग। **दोषशमन—त्रिदोष शामक।**

रोगोपयोग—उन्माद, अपस्मार, स्मृतिमांद्य, कुष्ठ आदि।

मुख्ययोग—शंखपुष्पी पानक (शर्बत), शंख पुष्पी तैल।

गुणधर्म विवेचन—

शंखपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानसरोगहृत्।
रसायनी कषायोष्णा स्मृतिकान्तिबलाग्निदा।।
दोषापस्मार भूतादि कुष्ठ कृमि विषप्रणुत्।
—भा. प्र. नि.

स्निग्धाऽशीता शमयति समस्तोग्रतां वातपित्तो
दभूतां मेद्या परिहरति वरा मानसं व्याधि जातम्।।
शंखपुष्पी सरा तिक्तमधुरा पिच्छिला गुरू:।
बलकान्तिप्रदा वृष्योन्मादापस्मारहारिणी।।
—प्रि. नि.

शंखिनी कटु तिक्तोष्ण कासपित्तबलासजित्।
विषापस्मार भूतादीन् हन्ति मेध्या रसायिनी।।
—धन्व. नि.

शंखपुष्पी हिमा तिक्ता मेधाकृत् स्वरकारिणी।
ग्रहभूता दिदोषघ्नी वशीकरणसिद्धिदा।।
—राज. नि.

शंखपुष्पी सरा स्वर्या कटुस्तिक्ता रसायनी।
अनुष्ण वर्णमेधाग्निबलायुः कान्तिदा हरेत्।।
अपस्मारमथोन्मदि मनिद्रां च तथा भ्रमम्।।
—कै. नि.

यह पूर्व में कहा जा चुका है कि ग्रहण, धारण तथा स्मृति ये तीनों प्रकार की शक्तियां मेधा में अन्तर्भूत है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों के प्रसिद्ध टीकाकारों ने मेधा की परिभाषा इस प्रकार की है—

"मेधा सर्वतोऽव्याहता सूक्ष्मतमा प्रगाढा बुद्धिः श्रुत धारिणी" **—डल्हण (सुश्रुत चि. 28-1)**

"मेधा धारणाशक्तिः"
—अरूणदत्त (अ.हृ.5-22)

"मेधा ग्रन्थाकर्षण समर्थरूपा"
—आढमल्ल (शा.सं.प्र. 5-32)

मेधयैहितं मेध्यम्। सामान्यतया शीतवी मधुरविपाकी वनौषधियाँ मेध्य के रूप में क्रिया हैं। साथ में ही कुछ उष्णवीर्य तथा तिक्त र वनौषधियां भी प्रभाव करती हैं। शंखपुष्पी, शतावरी आदि शीतवीर्य मेध्य औषधियां हैं त अश्वगन्धा, ज्योतिष्मती, कूठ आदि उष्णवी औषधियाँ हैं। मेधा का कार्य नाड़ी संस्थान से माना गया है, विशेषत: इसका सम्बन्ध मस्तिष्क केन्द्रों से हैं अत: मेध्य द्रव्यों की क्रिया प्रभावज है। जो मेध्य द्रव्य शीतवीर्य होते हैं वे धारणा श बढ़ाने में अधिक समर्थ होते हैं और जो मेध्य द्रव्य उ होते हैं वे ग्रहणशक्ति और स्मरण शक्ति को ब अधिक समर्थ होते हैं। शंखपुष्पी मेध्य द्रव्यों में प्रमुख विशेषता रखती है। यह मस्तिष्क और ना लिए बलप्रद होने के साथ ही शामक एवं निद्राज है सुतरां यह मानसरोगों की उत्तम औषधि है। ध का परिणाम उन्माद एवं स्मृतिनाश का परिणाम अ होता हैं उन्माद, अपस्मार के अतिरिक्त भ्रम, अ भी इसका प्रयोग बहुलता से होता है। अपने प्रभाव के कारण यह उन्मादादि रोगों की उग्राव शान्त कर देती है।

संहिताग्रन्थों में सर्वप्रथम महर्षि चरक ने ब्राह्म प्रथम एवं ब्राह्म रसायन द्वितीय में इसका प्रयोग इन रसायनों के सेवन से वैखानस एवं बालखिल्य ऋषियों ने तन्द्रा, क्लम से मुक्त होकर अत्यन्त बनकर दीर्घायु प्राप्त की। इसी भांति मेध्य रस प्रमुख चार द्रव्यों में से शंखुपष्पी को "मेध्या वि शंखपुष्पी" कहकर सर्वोपरि माना है। ये चार मेध्य है-मण्डूकपर्णी, यष्टीमधुक, गुडूची का स्वरस शंखपुष्पी। मण्डूकपर्णी का स्वरस और गुडूची का इस हेतु उपयोगी कहा है। इसी प्रकार मुलहठी को दूध के साथ तथा शंखपुष्पी के कल्क को

करने का परामर्श दिया है-"कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः"। इसी प्रकार ऐन्द्री रसायन के निर्माण में कई बाधायें इसलिए आती हैं कि इसमें वर्णित ऐन्द्री, मत्स्याक्षिक और ब्रह्मसुवर्चला नामक वनौषधियाँ तिरोहित हो चुकी हैं।

महर्षि सुश्रुत ने भी विविध रसायनकल्पनाओं के साथ बहुत से रोगों में इसे उपयोगी कहा है। बालकों की शरीर, मेधा, बल और बुद्धि बढ़ाने के लिए जो योग कहे है उनमें शंखपुष्पी ब्राह्मी को मधु, घृत और स्वर्णभस्म के साथ देने को कहा है। इसके सेवन से बालक के शरीरिक एवं मानसिक विकास के साथ उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। सुश्रुत के शरीर स्थान अध्याय 10 के अन्तिम श्लोकों में ये बालोपयागी मेधावर्धक योग कहे गये हैं।

आचार्य वाग्भट ने चरकानुसार शंखपुष्पी का रसायनोपयोगी वर्णन किया है। उत्तर स्थान के बालोपचारणीय नामक प्रथम अध्याय में 'बचेन्दुलेखादिघृत' में शंखपुष्पी को स्थान दिया है। यह घृत मेध एवं आयुवर्धक कहा गया है। इससे आगे एक अन्य घृत का भी उल्लेख किया है जो पूर्ववर्णित घृत के अनुसार ही लाभदायक है—

बचामृताशठीपथ्याशंखिनी वेल्लनागरै।
अपामार्गेण च घृतं साधितं पूर्ववद् गुणैः।।

रसायनाध्याय में एक नलदादि रसायन घृत का भी वर्णन किया है जो शंखपुष्पी के स्वरस से तैयार किया जाता हैं इस घृत की प्रशस्ति में आचार्य ने कहा है—

"उपयुज्य भवेज्जड़ोऽपि वाग्मी श्रुतधारी प्रतिभावानरोगः।"

अर्थात् इस घृत के सेवन से जड़ मनुष्य बोलने लगता है, मूर्ख विद्वान हो जाता है। सेवन करने वाले को एक-बार सुनने से ही सब कुछ याद हो जाता है और वह सदा स्वस्थ रहता है।

साहित्य में प्रतिभा को ही काव्य रचना का मूल हेतु कहा गया है। समाहित चित्त में शब्दार्थ समूह का स्फुरण करने वाली नवनवोन्मेष शालिनी ईश्वर प्रदत्त प्रज्ञा को प्रतिभा किंबा शक्ति कहते हैं। तुलसी ने इसके लिए ईश्वर कृपा को ही सर्वोपरि माना है—

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी।
कवि उर अजिर न चावहिं बानी।

—रामचरितमानस

शंखपुष्पी द्वारा निर्मित ऐसे योगों के सेवन से आस्तिकभावना प्रस्फुटित होती है जिससे ईश्वर कृपा सहज में ही मिल जाती है फिर वह व्यक्ति भी प्रतिभावान् होकर काव्य रचना में समर्थ हो जाता है।

उन्माद-अपस्मारादि में लाभप्रद जिस "ब्रह्मीघृत" का चरक वाग्भटादि ने वर्णन किया है उसका शंखपुष्पी मुख्य घटक द्रव्य है। अन्यत्र भी इसकी इन रोगों में उपादयेता प्रकट की गई है—

ब्राह्मीरस वचा कुष्ठशखपुष्पीभिरेवच।
पुराणं घृतमुन्मादालल्भ्यपस्मार पापनुत्।।

—चरक. चि. 10-23

ब्राह्मी कूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशंखपुष्पिका स्वरसाः।
उन्मादहतो दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः।।

—च. द. 20-3

महर्षि चरक ने अपस्मार चिकित्सा प्रकरण में एक महागद का वर्णन किया है जिसे अतत्वाभिनिवेश कहा जाता है। यह रोग वस्तुतः धीविभ्रम है अतः इसकी अपस्मार की अपेक्षा उन्माद से अधिक साम्यता है। "एको महागद इति अतत्वाभिनिवेशः" (चरक. सू. 19-8) ऐसा कहा गया है। आचार्य चक्रपाणि दत्त ने एक मानसविकार (विक्षिप्ता) के रूप में ही गुण व तमोगुण के विशेष प्रभाव के कारण स्वयं को महारोगी और मिथ्या

नाना रोगों से ग्रस्त समझता है। वह स्पष्टता बहम का शिकार होकर अनेकानेक काल्पनिक रोगों को स्वयं ही गढ़ लेता है। शरीर और मन का अन्योन्यसमन्वय है। कुछ दिनों बाद में वह कुछ वास्तविक रोगों का भी शिकार हो जाता है। शिरःशूल, उदरशूल, उत्क्लेश, आध्मान, विबन्ध, अनिद्रा, हृदयस्पन्दनाधिक्य, छर्दि, चिड़चिड़ापन आदि रोग धीरे-धीरे उत्पन्न होकर उसे व्यथित करने लगते हैं। इस रोग में पंचकर्म के द्वारा संशोधन के पश्चात् शंखपुष्पी, ब्राह्मी आदि मेद्याहितकारी रसायनों को उपयोग में लाना चाहिये साथ में ही सिद्धार्थवादी पण्डितजनों की मनोनुकूल कथा, धैर्य, स्मृति समाधी के द्वारा विज्ञान को आयोजित करना चाहिये—

ब्राह्मीस्वरसयुक्तं यत् पंचगव्यमुदाहृतम्।
तत् सेव्यं शंखपुष्पी वा यच्च मेध्यं रसायनम्।।

चरक. चि. 10-59

व्याधि क्षमत्व बढ़ाने के लिए शंखपुष्पी को आमलकी, यष्टीमधु, अश्वगंधा, हरीतकी आदि के साथ उपयोग में लाना चाहिये।

शंखपुष्पी मात्र मानसरोगों की ही महौषधि नहीं है अपितु यह अन्य बहुत से शरीर रोगों में भी उपयोगी है। इससे मन के दोषों की शान्ति के अतिरिक्त शरीर दोषों की शान्ति, धातुओं की वृद्धि एवं मलों का संशोधन होता है। यह कफनिः सारक होने से वातपैतिक कास में तथा स्वर्य (आवाज को ठीक करने वाली) होने से स्वरभेद में प्रयुक्त होती है। चरक. चि. 18. में वर्णित अगस्त्य हरीतकीलेह में,"दशमूली स्वयंगुप्तां शंखपुष्पी शटी बलाम्. ..." कहकर शंखपुष्पी को समाविष्ट किया गया है। यह लेह कास, श्वास, क्षय, हिक्का, विषमज्वर, अर्श, ग्रहणी, हृदयरोग आदि में लाभप्रद है। आचार्य वाग्भट ने भी इस लेह का कासचिकित्सा में वर्णन किया है।

यह दीपन-पाचन होने से अग्निमांद्य को दूर करती है तथा वातशामक होने से उदर के आंनाह, गुल्म, अर्श आदि वात प्रधान विकारों में लाभप्रद होती है। अनुलोमन भी है जिससे अन्त्रगत विष बाहर निक और विबन्ध दूर होता है। छर्दि को बन्द करने के लि इसे उपयुक्त कहा है—

शंखपुष्पीरसं टंकद्वयं समरिचं मुहुः।
सक्षौद्रं मनुजः पीत्वा छर्दिभ्यः किल मुच्

—

तीक्ष्णाग्नि में पित्तशामक द्रव्यों को उपयोग में जाता है—"तीक्ष्णे पित्त प्रतिकारः"। इसमें शीत के अतिरिक्त मधुरविपाकी, स्निग्ध, अनुलोमन अधिक लाभप्रद होते हैं। ये सारे गुण शंखपुष्पी में जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह मेध्य होने से भी हि है। वैद्य श्री गोपाल कृष्ण चतुर्वेदी ने स्पष्टया एक में निर्दिष्ट किया है कि "मेध्य द्रव्यों का प्रयोग ती पुरूषों में विशेष करना चाहिए। इससे शरीर की बढ़ती है एवं अग्नि के उपद्रव नहीं होते। शंख ब्राह्मी, यष्टिमधु आदि का प्रयोग तीक्ष्णाग्नि में उत्तम है।" *—सुधा.नि. चि.वि. भा*

यह रक्तविकारों में तथा चर्मविकारों में लाभ भाव मिश्र ने इसे "कुष्ठकृमिविषप्रणुत्" कहा है की गर्मी और वात की रूक्षता इन दोनों को नष्ट क घृत जितने उपयुक्त होते हैं, उतने अन्य कल्प नहीं कारण वातरक्त में कई घृतयोग लिखे हैं जिन जीवनीयघृत (चरक. चि. 29) भी हैं इस घृत में द पुनर्नवा, शतावरी आदि के साथ शंखपुष्पी का भी किया जाता है। यह घृत वातरक्त के अतिरिक्त अपस्मार, क्षय, हिक्का आदि रोगों में भी उपयो

यह शीत वीर्य होने से दाह एवं दाह प्रधान शान्त करती है। गर्मियों में स्वस्थ व्यक्ति भी इसके को उपयोग में लाकर दाह से बचते हैं। पित्ताधि दोषज ज्वरों में तथा सन्निपातज ज्वरों में जब अनिद्रा, दाह आदि उपद्रव हो तो इसे उपयोग में

जाता है। मणिमालाकार श्री कृष्णराम जी भट्ट ने पित्तावृत शीत वातज्वर में एक सरस्वती वटी का वर्णन किया है—"ब्राह्मी 30 ग्राम, गावजवां और शंखपुष्पी प्रत्येक 4-4 ग्राम, कालीमिर्च 6 ग्राम इन सबको एकत्र करके खूब बारीक पीस करीब 75 ग्राम द्राक्षा कल्क में खरल करके अच्छी तरह मिला लेवें। एक-एक ग्राम की गोलियां बना लें। पित्तयुक्त शीतवात ज्वर में दो या तीन गोलियों को निगल जावें। यदि आवश्यकता पड़े तो इसके ऊपर गुलाब अथवा सेवन्ती के गुलकंद का सेवन करना चाहिए।

मूत्रल होने के कारण यह मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह आदि में तथा वृष्य होने से शुक्रदौर्बल्य व अन्य शुक्रदोषों में लाभकर है। गर्भाशय दौर्बल्य के कारण जिन स्त्रियों को गर्भधारण नहीं होता गर्भ नष्ट हो जाता है उनको इसका सेवन करना हितावह है। निःसन्तान दम्पत्ती को इसे उपयोग में अवश्य लाना चाहिये, यह दोनों के लिए ही हितकर है।

यह हृदय के लिए बल्य (हृद्य) होने से हृदय रोगों में हितकारी है। रक्तगत वात की यह शामक होने से रक्त चाप वृद्धि में प्रयुक्त होती है। डा. जी. एन. चतुर्वेदी एवं सहयोगियों ने 1966 में इसे हृद्य (Cardio Tonic) एवं रक्त चाप को कम करने, स्थिर रखने वाला पाया है। हृदय रोगों में भी रक्तचाप वृद्धि जन्य हृदयरोग भारतवर्ष में सर्वाधिक देखने को मिलते हैं। रक्तचाप वृद्धि जन्य 36.9 प्रतिशत, आमवातजन्य 30.7, हृदय धमनी जन्य 18.4 हृदयरोग होते हैं शेष अन्य कारणों से होते हैं। रक्तचाप वृद्धि में शंखपुष्पी का विशेष प्रयोग—"मैंने कुछ आयुर्वेदीय औषधियों को रक्त भाराधिक्य के लिए चुना, जिनमें शंखपुष्पी, जटामांसी, वचा और लहसुन प्रमुख हैं। इनमें प्रयोग शालीन परीक्षण करने पर शंखपुष्पी को उत्कृष्ट पाया। वसन्त ऋतु में श्वेत पुष्प वाली शंखपुष्पी का पंचाग छाया शुष्क कर कपड़छन चूर्ण किया। जिसको एक ग्राम की मात्रा में सुबह, दोपहर और शाम प्रतिदिन (कुल 3 ग्राम) जल के अनुपान से दिया गया। प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ कि शंखपुष्पी प्रथम सप्ताह के उपरान्त लाभ प्रारम्भकरती है जो स्थायी रूप का होता है। औषधि का प्रभाव एक माह से तीन माह तक औषधि बन्द करने पर देखने को मिला। इनमें सर्वश्रेष्ठ लाभ 28 प्रतिशत, श्रेष्ठ लाभ 40 प्रतिशत, समान्य लाभ 24 प्रतिशत तथा हीन लाभ 8 प्रतिशत पाया गया। इस प्रकार शंखपुष्पी रक्तभाराधिक्य के रोगियों के लिए स्थायी लाभ हेतु निरापद औषधि पायी गई।

—वैद्य श्री राधाकान्त शर्मा

(आयुर्वेद प्रकाश नव. 1975)

"जहां सर्पगन्धा के व्यवहार से बढ़ा हुआ रक्त चाप घट जाता है और घटते घटते न्यूनावस्था में आकर रोगी कमजोर हो जाता है। वहाँ शंखपुष्पी केवल बढ़े हुए रक्तचाप को नियन्त्रित करती है, किसी प्रकार की कोई हानि नहीं पहुंचती। ऐसा अनेक रोगियों पर अनुभव हुआ है। जसकरनसिंह 45 वर्ष, स्वस्थ शरीर, सांवला रंग। बाराबंकी जिले के गांव से टैक्सी पर बेहोशी की दशा में लाये गए। मैंने उनके घरवालों से पूछा-रोगी कबसे बेहोश है? उत्तर मिला 6 दिनों से। नाड़ी देखी। वायु की नाड़ी बड़ी वेगवती थी, रक्तचाप देखा 250/150 था। मैंने कभी इतने उच्च रक्तचाप का रोगी नहीं देखा थां, हृदय की गति 140 थी। मैंने घर वालों से पूछा कि क्या इन्होने कटहल कई दिनों तक खाया है। उत्तर मिला घर का बाग है। एक कटहल नित दिन घर आता है, सभी खाते हैं, यह भी 15 दिन से बराबर खा रहे थे। मैंने पूछा पाखाना कब से नहीं हुआ, बताया 10 दिनों से। रोगी को शरबत शंखपुष्पी 25-25 मि.लि. चम्मच से दिन में चार बार दिलाया। सर में तथा पैर के तलओं में महाचन्दनादि तैल कपूर मिलाकर लगवाया। हृदय के लिए मोती पिष्टी 125 मि.ग्रा., अर्जुनाभ्र 500 मि.ग्रा. प्रवाल भस्म 500 मि.ग्रा., वातचिन्तामणि रस 125 मि.ग्रा., शंखपुष्पी चूर्ण

3 ग्राम की चार मात्रा में बनाकर उसी शंखपुष्पी शरबत से चार चार घण्टे पर दी। दूसरे दिन रक्तचाप 150, तीसरे दिन 140 हो गया और रोगी होश में आया। रोगी पखाना गया। पखाना साफ हो गया किन्तु पुन: बेहोश हो गया। पुड़िया उपरोक्त मिश्रण शरबत शंखपुष्पी के साथ देने से होश में आ गया और उसने खाना मांगा। दूध पिला दिया गया। दस दिन में रोगी स्वस्थ होकर अपने गांव चला गया किन्तु औषधि एक माह तक बराबर जारी रही। इसी प्रकार नवीन तथा जीर्ण उच्च रक्तचाप के रोगियों को शंखपुष्पी तुरन्त लाभ पहुंचाने में अद्वितीय है।''

राजवैद्य श्री बदलूराम रसिक

(सचित्र आयुर्वेद अक्टू. 1975)

सारस्वतचूर्ण (भै.र.) जो कूठ, अश्वगन्धा शंखपुष्पी, वचा आदि से निर्मित होता है, रक्तचाप वृद्धि में लाभदायक है। वैद्यराज श्री अम्बालाल जोशी जी ने अपने अनुभव के आधर पर इस सारस्वत चूर्ण को रक्तचाप वृद्धि में उपयोगी पाया है (स्वास्थ्य फरवरी 1978)। डा. श्री नित्यानन्द पाठक के कथनानुसार वस्तुत: आज के समय शंखपुष्पी की नितान्त उपादेयता है—''आज के व्यस्त जीवन में मानसिक तनाव को दूर करने एंव आत्मिक शक्ति एवं शान्ति के लिए शंखपुष्पी का नित्यप्रति कुछ न कुछ प्रयोग किया जाए तो रक्तचाप, उन्माद, अपस्मार, अनिद्रा, श्रम, क्लम आदि बीमारियों से बचा जा सकता है। इससे स्वस्थ शरीर में एक नई स्फूर्ति पैदा होती है जिससे दिन भर अथक श्रम करने के बाद भी थकावट नहीं होता।''

—स.आयु. जन 84

शीतवीर्य शंखपुष्पी रक्तस्तम्भन होने से रक्तपित्त में लाभ करती है। यह रक्तवमन के लिए भी प्रशस्त औषधि है।

केशवृद्धि के लिए इससे सिद्ध तैल का प्रयोग किया जाता है। बालकों को पुष्ट बनाने के लिए भी इससे सिद्ध तैल का मर्दन किया जाता है।

अन्त में यहाँ यह कहना उपयुक्त है कि नैमित्तिक और आजस्रिक रसायनों में काम्य रस रूप में मेधाशक्ति के विकास हेतु शंखपु विधिवत् सेवन करना चाहिये। मेधा के सही रह हम सही जीवन जी सकते हैं। शंखपुष्पी हमा को भ्रमित नहीं होने देती जिससे बुद्धिनाश की नहीं बनती। अन्यथा—

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रण

—गीता

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार शंखपुष्पी तथा बल्य रसायन है। इसका प्रयोग स्मृतिवर्ध मस्तिष्क तथा नाड़ियों को शक्ति देने के लिए जाता है। भ्रम, अनिद्रा, अपस्मार और उन्माद करने के लिए यूनानी वैद्य इसको उपयोग में सुजाक, शुक्रमेह, मधुमेह आदि में भी इसका चूर्ण हैं।

आधुनिक मत—डा. देसाई के मतानुसार शं मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओं को बल देने वाली है। डा. खोरी लिखते हैं कि शंखपुष्पी ज्ञानतन्तु बल देने वाली नर्वाइन टानिक है। उन्माद व मा कमजोरी में इसका ताजा रस तुरन्त लाभ देता है। का क़थन है कि यह रक्तवमन (Haemetemes लिए अद्वितीय औषधि है।

डा. डिमक का कथन है कि वेदों के समय पुष्पी गर्भाशय पर कार्य करने वाली औषधि मानी थी परन्तु बाद के समय में चिकित्साशास्त्रियों ने म पर कार्य करने वाले सूत्र भी निकाले। प्रयोगों हुआ है कि इसके मेधावर्धक गुण मूल की अपेक्षा पुष्पों में अधिक विद्यमान हैं।

डा. चतुर्वेदी ने उच्च रक्तचाप के 25 रोगि इसके क्वाथ का प्रयोग करके रक्तचाप में कमी व में क्रमिक न्यूनता पाई। कुत्तों पर किये गये प्रयोग

चला है कि ये धमनी रक्त दबाव में रूकावट पैदा करती है। जबकि इसकी जल विलेय प्रोटीन्स का सुरासव सत्व प्रारम्भ में रक्तचाप को बढ़ाता है तथा बाद में कम करता है। इसका सुरासवसत्व (Alcohalic Extroct) हृत्पेशी की क्रियाशीलता को कम करता हैं इसका स्वरस अल्प मात्रा में हृदय की संकुचन की गति व बल को बढ़ाता है, जबकि अधिक मात्रा में इसके विपरीत प्रभाव करता है।

"इण्डियन जरनल आफ मेडिकल रिसर्च' में डा. शर्मा ने शंखपुष्पी के मानसिक उत्तेजना शामक गुणों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इसके प्रयोग से प्रायोगिक जीवों में स्वत: होने वाली मांसपेशियों की हलचलें घट गयी।

थायराइड ग्रन्थि के अतिस्राव से जन्य घबराहट अनिद्रा व कम्पन जैसी उत्तेजना पूर्ण स्थिति में शंखपुष्पी अत्यधिक सफल पायी गयी है। यह रोग हृदय व मस्तिष्क को समान रूप से प्रभावित करता है। स्राव सन्तुलन बनाये रखना औषधि का प्रमुख कार्य है। बी. एच. यू. के डा. गुप्ता, प्रसाद व उडुप्पा के अनुसार शंखपुष्पी थायरोटाक्सिकोसिस के नवीन रोगियों में आधुनिक औषधियों से अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है। यदि किसी रोगी ने पूर्व में एलोपैथिक एण्टाथायराइड औषधि ली थी तो उस कारण उत्पन्न दुष्प्रभावों से भी शंखपुष्पी के कारण मुक्ति मिल जाती है। सेण्ट्रल ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने पाया है कि यह औषधि सीधे थायराइड की कोषिकाओं पर प्रभाव डालकर स्राव का नियमन करती है। इसके प्रयोग से मस्तिष्क ऐसिटाइल कोलीन नामक महत्वपूर्ण न्यूरोकेमीकल की मात्रा बढ़ गयी। इसका बढ़ना इस तथ्य का द्योतक हैं कि उत्तेजना के लिए उत्तरदायी केन्द्र शांत हो रहे हैं। मस्तिष्क रक्त अवरोधी झल्ली (ब्लड ब्रेनवैरियर) से शंखपुष्पी एसिटाइल-कोलीन का मस्तिष्क से निकल कर रक्त में जाना रोकती है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्यप्रयोग—

1. गण्डमाला—शंखपुष्पी की जड़ को कंठ में बांधना गण्डमाला में हितकर है। इस निमित्त इसकी जड़ पूरी होनी चाहिये, टूटी हुई न हो।

2. गर्भविच्युति—शंखपुष्पी की जड़ को स्त्री की कमर पर बांधने से हटा हुआ गर्भ यथा स्थान आ जाता है। शंखपुष्पी की जड़ किसी शुभमूहर्त में उखाड़ कर लानी चाहिये।

3. दन्तरोग—शंखपुष्पी की जड़ को बाहु पर बांधने से बालकों के दन्तरोग मिटते हैं। जड़ रवि-हस्त या रविपुष्य को उखाड़ कर लानी चाहिये।

4. चर्मरोग—शंखपुष्पी पत्र को पीसकर त्वचा पर लेप करने से खाज-खुजली में लाभ होता है। इस कल्क में यदि खदिरसार मिलाकर लेप किया जाय तो शीघ्र लाभ मिलता है।

5. श्वास—शंखपुष्पी के पत्रों का धूम्रपान करने से कास श्वास का वेग शान्त होता है।

6. केशरोग (पलित)—शंखपुष्पी के कल्क का बालों पर लेप करने से या इसका रस बालों पर मलने से केशरंजन होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

1. जीर्णशिर:शूल—अधिक पढ़ते रहने से या अन्य कारणों से जिन व्यक्तियों को प्राय:सिर में दर्द रहता है। वे कुछ दिनों तक शंखपुष्पी चूर्ण बराबर मिश्री मिलाकर 8-10 ग्राम सेवन करें। अनुपान में दूध, पानी या फलरस अथवा शंखपुष्पी का शर्बत सेवन करें। यह विद्यार्थियों के लिए एक उत्तम प्रयोग है। स्वस्थ व्यक्ति भी यदि चिकित्सक के परामर्श के अनुसार इसका सेवन करते रहें तो वे दिमागी थकान, नेत्र-ज्योति में कमी, शिर का भारीपन एवं शारीरिक थकावट के शिकार नहीं होते हैं।

2. अंशुघात (लू लगना)—मस्तिष्क को शक्ति देने के लिए शंखपुष्पी चूर्ण या पानक को उपयोग में लाना चाहिए।

3. शुक्रदौर्बल्य—(क) शंखपुष्पी के पंचांग चूर्ण को 3-3 ग्राम की मात्रा में नियमित दूध के साथ सेवन करने से वीर्य की दुर्बलता दूर होकर वह दोषहीन तथा गाढ़ा होता है।

(ख) जो व्यक्ति शुक्रदोश के कारण सन्तानोत्पत्ति में समर्थ नहीं हो पाते हैं उन्हें शंखपुष्पी चूर्ण, कूठचूर्ण और बिना बीज वाली कच्ची बबूल की फली का चूर्ण बराबर मात्रा में लेकर 6-6 ग्राम चूर्ण सुबह शाम दूध के साथ एक माह तक सेवन करना चाहिये। साथ में यदि शतावरी घृत का भी सेवन किया जाय तो अधिक लाभ होता है।

4. आमातिसार—शंखपुष्पी को रात्रि में भिगोकर रखें प्रातः उसे उबालकर ठंडा होने पर सेवन करावें।

5. रसायन के लिए—रसायनोचित गुणों के लाभ हेतु शंखपुष्पी पंचाग स्वरस 50 मि.लि., गोघृत 5 ग्राम, मधु 10 ग्राम, शर्करा 5 ग्राम एकत्र मिला प्रातः काल 6 माह तक निरन्तर सेवन करना चाहिये। स्वरस के अभाव में शंखपुष्पी का छाया शुष्क चूर्ण 6 ग्राम लेना चाहिये। रसायन सेवन से पहले आयुर्वेदोक्त संशोधन यदि शरीर का हो जाय तो अभीष्ट लाभ प्राप्त होता हैं इससे स्मृति, कान्ति, प्रभा आदि लम्बे समय तक बनी रहती है और बलीपलित रहित होकर मनुष्य सुखायु प्राप्त करता है।

6. उन्माद—(क) शंखपुष्पी के स्वरस में शहद मिलाकर देते रहने से सब प्रकार के उन्माद में अच्छा लाभ होता है।

(ख) शंखपुष्पी स्वरस में शहद मिलाकर इसे कूठ के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिये। इससे उन्माद के रोगी को लाभ मिलता है।

(ग) रोगी को शंखपुष्पी घृत या ब्राह्मी (शंखपुष्पी युत) दूध के साथ खिलाना चाहिये।

7. अपस्मार—(क) शंखपुष्पी के 30 मि. स्वरस में मधु मिलाकर देना अपस्मार में हितकारी

(ख) शंखपुष्पी, ब्राह्मी, जटामांसी तीनों लेकर इन सबके बराबर बीज निकले हुये मुनक्का पीस कर चने बराबर गोलियाँ बना लें। दो-दो सुबह शाम दूध के साथ दें। यह योग अपस्मार, स्मृतिमांद्य आदि सभी मानस रोगों में हितकर है।

8. योषापस्मार—(क) शंखपुष्पी, वच और क समभाग चूर्ण बनाकर 6 ग्राम चूर्ण मधु के साथ सायं देने से योषापस्मार, अपस्मार आदि में लाभ है। यदि इसमें 100-150 मि.ग्रा. रससिंदूर मिला दिया जाय तो अधिक लाभ होता है।

(ख) शंखपुष्पी 50 ग्राम, गोरखमुण्डी, पीपल शतावरी, जटामांसी और इलायची 10-10 ग्राम चूर्ण तैयार कर लें, 4-5 ग्राम चूर्ण शहद के साथ ऊपर गर्म कर ठण्डा किया हुआ दूध पीवें।

9. रक्तचाप—(क) रक्तचाप को कम करने के लिए शंखपुष्पी के शर्बत का पान करना सर्वोत्तम है। इसके शर्बत की निर्माण विधि आगे वर्णित है।

(ख) शंखपुष्पी चूर्ण और आंवला चूर्ण को ग्राम की मात्रा से नियमित जल के साथ सेवन क भी बढ़ा हुआ रक्तचाप न्यून होने लगता है। पथ्यापथ्य पर भी ध्यान देने की पूर्ण आवश्यकता

10. मेधा शक्ति बढ़ाने के लिए—

(क) शंखपुष्पी, वचा और कुष्ठ के चूर्ण को के स्वरस के साथ सेवन करने से बुद्धि बढ़ती है।

(ख) शंखपुष्पी पंचाग, कूठ, वच, शतावरी, अपामार्ग की जड़ और गिलोयसत्व सभी द्रव्य मात्रा में ग्रहण कर बारीक चूर्ण बनाकर रखें। इस

से 3-3 ग्राम चूर्ण लेकर प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ सेवन करने से स्मरण शक्ति में बृद्धि होती है। दिमागी काम करने वालों के लिए यह बहुत अच्छा योग है।

(ग) शंखपुष्पी 60 ग्राम, कालीमिर्च 50 ग्राम, छोटी इलायची के बीज 30 ग्राम इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर इस सारे चूर्ण के बराबर मिश्री पीसकर मिला दें और सुरक्षित रखें। इस चूर्ण में से 8-10 ग्राम चूर्ण गाय के दूध के साथ दिन में दो बार सेवन करने से मेधा शक्ति बढ़ती है।

(घ) सामान्य रूप से प्रयोग में लाने के लिए इसके पंचाग को छाया में सुखाकर चूर्ण बना लें उसमें बराबर मिश्री मिलाकर रखें। सुबह-शाम 6-7 ग्राम चूर्ण दूध के साथ सेवन करें।

11. ज्वर—(क) शंखपुष्पी पिप्पली और कालीमिर्च का क्वाथ बनाकर पिलाने से जीर्ण ज्वर में लाभ होता हैं

(ख) त्रिदोषज ज्वरों में जब रोगी प्रलाप करे और बेसुध हो जाये तो उसके योगों में शंखपुष्पी की योजना अवश्य करनी चाहिये। उसको शंखपुष्पी का फाण्ट बनाकर या चूर्ण को जीराचूर्ण में मिश्रित कर उसे दूध के साथ देना चाहिये। इससे उत्तम लाभ होता है।

12. मसूरिका—शंखपुष्पी की ठंडाई मात्रानुसार रोगी को पिलाने से दाह, बेचेनी एवं तीव्रताप न्यून होता है।

13. यकृत वृद्धि—(क) शंखपुष्पी की ताजा जड़ को ताजा पानी में घिसकर देने से यकृत सम्बन्धी रोगों में लाभ होता है।

(ख) शंखपुष्पी पत्रस्वरस 10 मिली. में 2-3 कालीमिर्च का चूर्ण एक सप्ताह तक निरन्तर देने से भी यकृत के रोगों में आराम मिलता है। शंखपुष्पी का स्वरस नित्य ताजा निकालना चाहिये। ताजा स्वरस ही लाभकर होता है।

14. मूत्रकृच्छ्र—शंखपुष्पी का हिमकषाय बनाकर रोगी को पिलाने से मूत्रकृच्छ्र और सुजाक आदि में लाभ होता है। रोगी को दाहरहित खुलकर पेशाब आने लगता है।

15. प्रमेह—पंचाग का 4-5 ग्राम चूर्ण को आमलकी स्वरस या हरिद्रा स्वरस के साथ सेवन करना प्रमेह में हितकर है।

16. रक्तप्रदर—शंखपुष्पी के ताजा पत्तें को पानी के साथ घोटकर छानकर पिलाने से स्त्रियों के रक्तप्रदर में लाभ प्राप्त होता है।

17. बन्ध्यत्व—शंखपुष्पी की जड़ (शुभ मुहूर्त में उखाड़ी हुई) को पानी में घोटकर गाय के धारोष्ण दूध में छान कर पीने से स्त्री गर्भ धारण करने में समर्थ होती हैं

18. विबन्ध—शंखपुष्पी चूर्ण 2 ग्राम और हरीतकी चूर्ण 2 ग्राम को गर्म जल से सेवन करने से शौच सामान्य तथा खुलकर हो जाता है।

19. आनाह—शंखपुष्पी चूर्ण 2 ग्राम अजवायन चूर्ण 2 ग्राम और कालानमक एक ग्राम को गर्म जल से सेवन करें।

20. स्मृतिभ्रंश—(क) शंखपुष्पी, ब्राह्मी, विडंग और मीठी बच का समभाग चूर्ण बनाकर मात्रानुसार घृत, दुग्ध से सेवन करें।

(ख) शंखपुष्पी, सोंठ, वचा, गिलोय, शतावरी और अपामार्गमूल समभाग चूर्ण बनाकर रख लें। इस चूर्ण में से 5 ग्राम चूर्ण गाय के घी में मिलाकर चाटने के पश्चात् गाय का ही गर्म दूध पीवें। जिस व्यक्ति की स्मृति कमंजोर होकर वह मानसिक विकारों से ग्रस्त हो गया है उसे कुछ दिनों इस योग का अवश्य सेवन करावें। उष्ण वीर्य मेध्य द्रव्य प्राय: स्मृति को बढ़ाते हैं अत: शंखपुष्पी के साथ सौंठ, वचा, गिलोय, अपामार्ग जैसे उष्ण वीर्य द्रव्यों को समिश्रण कर उपयोग में लाने हेतु यह योग उपयुक्त हैं।

21. शैयामूत्र—जो बच्चे रात्रि में स्वप्नावस्था में बिस्तरों में पेशाब कर देते हैं उन्हें शंखपुष्पी, खुरासानी अजवायन और उस्तखदूश तीनों समभाग लेकर चूर्ण बनाकर देना चाहिये। मात्रा वय के अनुसार सामान्यतः एक ग्राम देनी चाहिये। अनुपान में मिश्री मिला दूध देना चाहिये।

22. भ्रम (चक्कर आना)—शंखपुष्पी, दालचीनी के चूर्ण में बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करने से भ्रम का निवारण होता है।

23. मधुमेह—मधुमेह जन्य अशक्ति को दूर करने के लिए इसका प्रयोग हितावह है। कोई चिकित्सक मधुमेह में 6 ग्राम चूर्ण को गाय क मक्खन के साथ देना उपयोगी मानते हैं।

24. हृदयरोग—शंखापुष्पी, वचा, ब्राह्मी, अश्वगन्धा और यष्टीमधु का चूर्ण चेतनाविकार जन्य हृदय रोगों में हितकारी है।

25. रक्तपित्त—गोदुग्ध के साथ इसका स्वरस या चूर्ण सेवन करने से रक्तपित्त दूर होता है।

26. अनिद्रा—(क) शंखपुष्पी, जटामांसी और खुरासानी अजवायन के समभाग चूर्ण को (तीनों 2-2 ग्राम) दूध के साथ सेवन करना चाहिये।

(ख) शंखपुष्पी के ताजा स्वरस में मिश्री मिलाकर सेवन करने से अच्छी नींद आती है।

(ग) शंखपुष्पी के चूर्ण के साथ दुग्धबच और ब्राह्मी समान भाग लेकर इनका चूर्ण मिलाकर सेवन करने से जिन व्यक्तियों को नींद नहीं आती उनको नींद आने लगती है। नींद न आने का मानसिक तनाव, रक्तचाप वृद्धि कोई भी कारण रहा हो वह दूर होकर समय पर सही नींद आने लगती हैं किन्तु कुछ दिन इसका नियमित सेवन आवश्यक है।

विविध कल्प—

चूर्ण—शंखपुष्पी 100 ग्राम, वच मीठी 10 ग्राम, ब्राह्मी 10 ग्राम, अश्वगन्धा 10 ग्राम, कूठ मीठा 10 ग्राम, मुन्डी 10 ग्राम, मंजीठ 10 ग्राम जटामांसी 10 ग्राम शतावरी 10 ग्राम, इलायची छोटी 10 ग्राम और ... छोटी 10 ग्राम। सभी औषधियों को कूट पीसकर ... चूर्ण बना लें। यह चूर्ण 2-3 ग्राम की मात्रा में ... तीन बार मधु से चाटने से अनिद्रा, अपस्मार ... रक्तविकार, स्नायुविकार आदि रोगों में लाभ होता ...

—स. आयुर्वेद अक्टू. ...

वटी—शंखपुष्पी, वचा और कूट को ब्राह्मी ... में पीसकर चने बराबर गोलियां बना लें। एक-दो ... दूध के साथ सेवन करने से मेधा की उत्तम वृद्धि होती ... साथ में ही यह उन्माद, अपस्मार आदि में भी लाभ ... है।

—अग्निपुराण 285

शाक—ताजा शंखपुष्पी को लाकर स्वच्छ पानी ... धोकर उसे तिलतैल में छोंककर तथा जीरा, धनियां ... मसाले डालकर शाक बना लें। इस शाक में खाते ... नींबू का रस निचोड़कर खाने से शाक बहुत ही स्वा... एवं उपयोगी होता है। *—वनौषध...*

ठन्डाई—(क) शंखपुष्पी, ब्राह्मी, बादाम की ... छोटी इलायची, सौंफ, कद्दू के छिले हुए ... खीरा-तरबूज-खरबूजं के बीजों की गिरी, काली... हरीदूर्बा और गिलोय इन सबको समान मात्रा में ... कुछ देर भिगोकर बादाम गिरी के छिलके हटाकर ... जल में ठन्डाई की तरह पीस लें फिर दूध-बताशे मिला... छानकर पी लें। यह ठन्डाई पित्त शामक, मूत्र... शक्तिवर्धक, स्मृतिवर्धक और वयःस्थापक है। ... मई, जून में इसका प्रयोग करने से अतीव लाभ होता ... परन्तु शीत ऋतु या वर्षाऋतजु में इसका प्रयोग न ...

—आयुर्वेद विकास अप्रैल ...

2. शंखपुष्पी 12 ग्राम, खस-खस 12 ग्राम, ... 6 नग, कालीमिर्च 6 नग, गुलाब पुष्प 12 ग्राम ... मिश्री 12 ग्राम को पूर्ववत् घोटकर दूध मिलाकर ... कर पीने से मेधा वृद्धि होती है और मस्तिष्क को ...

मिलती है। इसे दिन में भिगोकर सायं काल घोटकर तैयार कर सेवन करें। इसका हर ऋतु में सेवन किया जा सकता है किन्तु पान करने वाले की प्रकृति पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए।

घृत—1. शंखपुष्पी, वच और कूट 60-60 ग्राम लेकर सबको पानी के साथ एकत्र पीसकर कल्क तैयार कर लें। एक किलो 500 ग्राम पुराने घी में यह कल्क और 6 लीटर ब्राह्मी का रस मिलाकर पकावें। जब रस जल जाय तो घी को उतार कर छान लें। दूध में 10-12 ग्राम यह घृत डाल कर सेवन करने से उन्माद अपस्मार में लाभ होता है। —गद-निग्रह

2. ताजा शंखपुष्पी 250 ग्राम लेकर कूटकर स्वरस निकाल लें। फिर इस स्वरस में एक किलोग्राम गाय का घी मिलाकर यथाविधि घृतसिद्ध कर लें। गरम 500 मि. लि. मीठे दूध में 10-12 ग्राम यह घृत मिलाकर प्रातः सायं लेने से मस्तिष्क को शांति मिलती है।

शर्बत—1. शंखपुष्पी का स्वरस 250 मि.लि. लेकर उसमें 250 ग्राम शर्करा डालकर इसकी चाशनी बनाकर शर्बत तैयार कर लें। मात्रा-10-20 मि.लि. पानी मिलाकर सेवन करें। यह मस्तिष्क की शान्ति के लिए तथा रक्तचाप को कम करने में उत्तम है।

2. शंखपुष्पी 125 ग्राम, ब्राह्मी (हरद्वारी) 30 ग्राम इन सब को 3 लिटर 125 मि.लि. जल में भिगो दें। प्रातः मन्द अग्नि पर पकावें। शेष 2 लिटर 500 मि.लि. जल रह जाने पर कपड़े से छान कर 5 किलों चीनी और निम्बू सत्व (साईट्रिक एसिड़) 3 ग्राम 600 मि.ग्रा. मिलाकर यथाविधि शर्बत तैयार कर लें। ठन्डा होने पर छानकर बोतलों में भरकर रख लें। इसमें खाने का हरा तरल रंग ग्राम (या आवश्यकतानुसार) मिला सकते हैं। इससे रंग अच्छा आता है। मात्रा-15-25 मि.लि. आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर सुबह शाम दें। इसके सेवन से बुद्धि तथा स्मरण शक्ति बढ़ती है। उन्माद, अपस्मार, योषापस्मार में भी बहुत उपयोगी है।

—आ.सा.सं.

तैल—1. शंखपुष्पी हरी एक किलो या सूखी आधा किलो चार किलो पानी में पकावें। एक किलो शेष रहने पर छान लें। फिर एक किलो तिल तैल डाल कर पकावें। तैल मात्र रहने पर छान लें। इस तैल को सिर में लगाने से बालों का झरना रूकता है। बुद्धिवर्धक एवं दाहशामक है। बच्चों के सूखारोग में इसकी मालिश करनी चाहिए।

2. शंखपुष्पी का रस या क्वाथ, बकायन की छाल का क्वाथ, वासा का रस, अर्जुन की छाल का क्वाथ, कांजी लाख का रस और मस्तु (दही में दुगना पानी मिलाकर बनाया हुआ तक्र) प्रत्येक चार-चार लिटर लें। फिर अनार की छाल, देवदारू, हल्दी, दारूहल्दी, हरड़, बहेडा, आंवला, लाल चन्दन, खस, सुगन्धबाला, सफेद चन्दन, मुलेठी, नागरमोथा, अनन्तमूल, शैवाल, हारसिंगार, लाल कमल और रसौंत सब समान भाग इनका मिश्रण कुल आधा किलोग्राम कल्क तैयार करें। इसके बाद चार लिटर तिल तैल में यह कल्क और सम्पूर्ण द्रव पदार्थ मिलाकर पकावें।

जब जलांश शुष्क हो जाए तो तैल को छान लें। फिर गन्ध द्रव्यों के कल्क द्वारा गन्धपाक करें (गन्धद्रव्य—छोटी इलायची, सफेद चन्दन, केशर, अगर, जटामांसी, शीतलचीनी, कचूर, सरल काष्ठ, खस, कस्तूरी आदि) गन्धद्रव्य प्रत्येक 7.5 ग्राम लें।

इस तैल के मर्दन से बालकों के समस्त रोग दूर होते हैं तथा यह कान्ति, मेधा की वृद्धि कर ज्वर और दुर्बलता को मिटाता है। बच्चों के सूखा रोग में इस तैल से विशेष लाभ होता है। यह तैल रक्त बढ़ाने वाला तथा मांस को पुष्ट करने वाला है। —भै.र.

पेटेन्ट प्रयोगों में शंखपुष्पी—देशरक्षक औषधालय लि. कनखल एक मेधा रसायन नामक अवलेह तैयार

करता है इसमें शंखपुष्पी, ब्राह्मी, बच, केशर, बादाम, इलायची आदि हैं। इसके अतिरिक्त बुद्धिवर्धक योग के नाम से गोलियां भी तैयार की जाती हैं, ये दोनों योग मस्तिष्क दौर्बल्य, अल्प स्मरण शक्ति, अपस्मार, योषापस्मार आदि में उपयोगी है। देशरक्षक निद्रायणी टेब में भी सर्पगन्धा, ब्राह्मी, खुरासानी अजवायन आदि के साथ शंखपुष्पी है। एक-दो गोली दूध से सेवन करने पर अच्छी नींद आती है।

झन्डू द्वारा निर्मित 'ब्रेंटो' टेब भी क्षीण स्मृति एवं मानसिक तनाव आदि के लिए उपयोगी है। इसमें शंखपुष्पी के अतिरिक्त ब्राह्मी, असगंध, मुलैठी, सर्पगन्धा, वचा आदि है। इसी नाम से प्रवाही (सीरप) भी तैयार किया जाता है। इसकी 'हिप्नोटेन्सन' टेब उच्च रक्तचाप की उत्तम औषधि है। इसमें शंखपुष्पी, सर्पगन्धा, भृंगराज आदि है। दो टेब. दिन में दो-तीन बार दी जाती है।

गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ़ द्वारा मस्तिष्क विकारों में दो उपयोगी कैपसूल तैयार किये जाते हैं गर्ग स्मृतिदा कैपसूल' जहाँ स्मरण शक्ति को बढ़ाते हैं। वहाँ 'गर्ग स्ट्रेस क्योर कैपसूल' अवसाद को दूर करते हैं। स्मृतिदा में शंखपुष्पी, जटामांसी, ब्राह्मी आदि 8 द्रव्य हैं तो स्ट्रेस क्योर में शंखपुष्पी, अश्वगन्धा, ब्राह्मी, जटामांसी, बच, ये पाँच द्रव्य हैं। साथ में दोनों में स्मृतिसागर रस भी है। इनमें वनौषधियों के घनसत्व हैं। पृथक् से भी ब्राह्मी शंखपुष्पी घनसत्व'' भी यहाँ से चूर्ण, कैप. के रूप में तैयार मिलता है। जो रक्तचापान्तक कैपसूल'' बनाया जाता है उसमें भी यह ब्राह्मी शंखपुष्पी घनसत्व डाला जाता है।

दीनबन्धु रसशाला (रतनगढ़) का 'स्मृतिसुधा सीरप' शंखपुष्पी, ब्राह्मी, शतावरी, दालचीनी, महुआ पुष्प आदि से तैयार किया जाता है। महर्षि के 'विद्यार्थी अमृत' में शुखपुष्पी, मण्डूकपर्णी, तगर, कूठ विडंग, गुडूची, वचा आदि है। रक्तचाप को कम करने हेतु महर्षि की 'कर्डमैप' टैब. भी उपयोगी है। इसमें शंखपुष्पी, जटामांसी, आदि हैं। एक-दो गोली लेने से रक्तचाप कम है। धर्मानी ड्रग्स (गुड़गांव) के 'ब्रह्मपुष्पी सी एक ब्रेन टानिक है। यह मानसिक रोगों की औषधि है। इसमें शंखपुष्पी, ब्राह्मी, जटामांसी, बलंगू, उस्तखद्दूस, बादरंज बोया, गाजवां, सत है। ''ब्राह्मी पुष्पी सीरप'' नाम से ही कौशिक श्री भवन (सालासर-राज.) द्वारा भी विनिर्मित है इसमें सर्वाधिक मात्रा शंखपुष्पी की होती है। अतिरिक्त, ब्राह्मी, आंवला विदारीकन्द, श्वेत चन्द भी है। यह स्मृतिमांद्य, अनिद्रा, उन्माद आदि में है। कौशिक का ही एक महत्वपूर्ण है-''चन्द्रविलास अवलेह''। इसमें शंख अकरकरा, मुनक्का, विदारी कन्द, नागरकेशर, आदि हैं। यह प्रत्येक ऋतु में सेवनीय सप्तधा रसायन है। स्त्रियों-पुरूषों के लिए समान रूप से है। मानसिक रोगों की उत्तम औषधि है। दो-तीन दूध से लें। इसके 'सर्कोल टेबलेट' में अर्जुन छाल 200 मि.ग्रा. और शंखपुष्पी घनसत्व 50 मि.ग्रा. औषधियाँ डाली जाती हैं। यह रक्तचाप, उन्माद में लाभदायक है।

हिशिमो फार्मा (जयपुर) का सैन्सटोन, गोस्वामी ड्रग्स (रतनगढ़) का 'मेन्ट्रील सीरप तथा वासु (बड़ौदा) का ''एलर्ट कैपसूल, टेबलेट और वैद्यनाथ का 'शंखपुष्पी सीरप' ऊँझा का शंखपुष्पी' तथा डाबर का शंखपुष्पी सीरप उत्तम योग हैं जो विद्यार्थियों के लिए उपयोगी रक्तचाप, अनिद्रा, उन्माद आदि में हितकारी हैं।

निर्मल आयुर्वेद संस्थान के 'मेधा कैपसूल हरीश फार्मा के 'मेधाटोन कैपसूल' दोनों योग दौर्बल्य जन्य विकारों में बहुत हितकारी हैं। इनमें के अतिरिक्त जटामांसी, वच, मुलेठी आदि हैं। कैपसूल जल या दूध से लिए जाने चाहिये।

मानसिक आवेगों से उत्पन्न बहुत सी व्याधियों में गलारसिन की 'सायलेडीन' टिकिया लाभ करती है। इसमें शंखपुष्पी, वचा, भृंगराज, जीवन्ती, सर्पगन्धा आदि है। दो-दो गोली दिन में दो-तीन बार दी जा सकती है। रक्तचापवृद्धि में चरक की 'सपेरा गोलियां' भी अच्छा लाभ करती हैं। इसमें बहुत से द्रव्यों के साथ शंखपुष्पी भी है।

रक्तचाप नियंत्रण और हृदय को ताकत वर बनाने में सहायक है जमना फार्मास्युटिकल्स के "हृदय शक्ति कैपसूल"। एक-एक कैपसूल दिन में दो-तीन बार दूध के साथ देना चाहिए। इसके घटक द्रव्य हैं—शंखपुष्पी, अर्जुन, ब्राह्मी, ज्योतिष्मती, जटामांसी, यष्टीमधु, पीपलामूल, पुनर्नवा, गूगल, अकीक, रससिन्दूर आदि हैं।

व्यास फार्मास्यूटिकल (इन्दौर) की एक 'दिव्य रसायन वटी' आती है। इसमें असगंध, शतावरी, आंवला, मुलैठी, तुलसी के बीज आदि के चूर्ण में शुखपुष्पी, विदारीकंद, भृगराज आदि की भावनायें दी जाती हैं। यह पुरूषों के लिए पौष्टिक, वृष्य है। इसके सेवन से शुक्राणुओं की संख्या बढ़ती है। राजवैद्य शीतल प्रसाद के प्रसिद्ध, 'हेमपुष्पा पेय' में भी अशोक, शतावरी आदि के साथ शंखपुष्पी है। स्त्रियों के लिए यह उपयोगी पेय है।

अनुभूत प्रयोग—

1. मानसिक रोगों में मेध्यवटी प्रयोग—चरक चिकित्सा रसायन में मेध्य रासायन के नाम से चार द्रव्यों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित आयुर्वेदिक फार्मेसी में मेध्य रसायन के अन्तर्गत बताये गये चारों द्रव्यों को एकत्र कर मेध्य वटी के नाम से एक योग विशेष बनाया गया। जिसका सफलता पूर्वक मनः शारीरिक विकारों में उपयोग किया जाता है, जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है—घटक द्रव्य—शंखपुष्पी 20 किग्रा., मण्डूकपेर्णी 8 कि.ग्रा., गुडूची 4 कि.ग्रा. और मधुयष्टी 4 कि.ग्रा.। प्रारम्भ में तीनों द्रव्यों की रस क्रिया निर्माण कर उसमें यष्टीमधु चूर्ण मिलाकर 240 मि.ग्रा. की वटी बना ली जाती है। मेध्यवटी के घटकों का अध्ययन करने पर निम्न तथ्य सामने आते हैं—इसका रस, कटु, तिक्त, कषाय। गुण-गुरू। वीर्य-शीत। विपाक-मधुर। कर्म-त्रिदोषघ्न। रसायन एवं बल्य तथा प्रभाव में मेध्य की प्रबलता है। निद्राजनक, उत्तेजना एवं उद्वेग हर, उच्च रक्तचाप को कम कर स्थिर रखने वाला, ब्लड़ यूरिया को कम करने, टोटल प्रोटीन को बढ़ाने आदि गुणों के कारण इसकी उपादेयता और भी सुनिश्चित हो जाती है। प्रोटीन सिंथेसिस से मेधा एवं स्मृति का सीधा सम्बन्ध बताया गया है। इसके घटकों में प्रोटी सिंथेसिस में भाग लेने वाले तत्व विद्यमान हैं। पृथक् रूप से भी इसके चारों घटक द्रव्य रसायन एवं बल्य हैं, साथ ही इसके घी-धृति-स्मृति मेधावर्धक एवं निद्रल होने से यह मन को सन्तुलित करता है, जिससे मानसिक व्याधियों में लाभकारी होता है।

—डा. सुरेष पी., डा. जोशी डी. आदि

(आयुर्वेद विकास जून 1989)

2. मेधा रसायन—शंखपुष्पी कल्क 20 ग्राम, मुदपर्णी कल्क 20 ग्राम, ब्राह्मी चूर्ण 20 ग्राम, रजतभस्म 20 ग्राम, अकीकपिष्टी 10 ग्राम, अश्वगंधाचूर्ण 10 ग्राम कुल 100 ग्राम। सभी द्रव्यों को खरल में एक जान करके दुगने शंखपुष्पी स्वरस में घोटकर 120 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। प्रातः सायं तथा रात्रि को 2-2 गोलियां गोदुग्ध के साथ सेवन करें। यह रसायन मेधावर्धक होने के साथ हृदय, मस्तिष्क, मन, बुद्धि आदि के सभी विकारों को अतिशीघ्र नष्ट करता है।

—कवि. श्री बी. एस. प्रेमी

(सुधा. नि. चि. वि. प्र. भा.)

3. योषापस्मार हर प्रयोग—शुखपुष्पी चूर्ण 3 ग्राम, मुलैठी चूर्ण 3 ग्राम, बच एक ग्राम और शतावरी चूर्ण 2 ग्राम लेकर सुबह शाम दूध के साथ प्रयोग कराने से योषापस्मार का शमन होता है। यह शतशः अनुभूत है।

—वैद्य श्री देवेन्द्र कुमार द्विवेदी

(स. आयुर्वेद जुलाई 87)

4. रक्तविकार में उपयोगी प्रयोग—वातरक्त के रोगियों पर शंखपुष्पी का बड़ा विलक्षण प्रभाव होता है। सावन का महीना था। शिवपाल सिंह यादव, आयु. 40 वर्ष, सांवला रंग, रायबरेली के गांव से आया। उसके हाथ पैर तथा सारे शरीर में गोल चकत्ते तथा चेहरे की खाल फटी हुई, कान, नाक की खाल भी फटी हुई सूजन युक्त ताम्र वर्ण थी। डाक्टरों ने उसे कुष्ठ रोग बताया था। एक साल से वह चिकित्सा करवा रहा था। मैंने उसकी नाड़ी देखकर पूछा कि तुम्हारे गले की नली में जलन होती है, सबेरे कुल्ला करने के समय पित्त भी निकलता है। भोजन के बाद खट्टी डकारें भी आती हैं, कभी-कभी खून भी बलगम के साथ आता है। पखाना भी साफ नहीं होता। उसने हर बात में हां की।

उसे शंखपुष्पी चूर्ण 5 ग्राम, मुण्डी चूर्ण 3 ग्राम, वाकुची चूर्ण 3 ग्राम की चार मात्रा चार-चार घंटे पर शहद से चाटने को दी गई। पथ्य में केवल मूंग की दाल, परवल, लौकी, तुरई, बिना नमक, गेंहूँ-चने की रोटी और दूध बताया। शरीर पर लगाने को चालमोगरा तैल दिया। चार महीने उक्त औषधियां लेने पर 75 प्रतिशत लाभ हुआ। अगहन के महीने में उपरोक्त सभी औषधि और पथ्य के साथ 2-2 हरे आमले प्रातः सांय खाने को बताये। फागुन तक रोगी पूर्ण स्वस्थ, गौरवर्ण हो गया, परन्तु नमक बन्द रहा। चैत से सावन तक केवल हरी शंखपुष्पी 25 ग्राम प्रातः सायं गाय के दूध तथा शक्कर से लेने को कहा। इस प्रकार शंखपुष्पी के प्रयोग से उसका वातरक्त और अम्लपित्त दूर हो गया।

—राजवैद्य श्री बदलूराम रसिक

(स. आयुर्वेद अक्टू. 1975)

5. उष्णवात-सुजाकनाशक योग—शंखपुष्पी ताजा पचास ग्राम, कालीमिर्च पाँच नग सिलबट्टे पर चटनी की तरह पीस लें। पिस जाने पर इसे एक कप दूध में घोल लें साथ ही इसमें एक बड़ा चम्मच ग्लूकोज मिला दें। इसी में 10 बूँदें चन्दन तैल की भी डाल दें। मात्रा-सुबह-शाम दो बार। सेवन काल में मिर्चें, अचार, तली हुई चीजें बन्द रखें। इसके सेवन से पेशाब करते समय [illegible] जलन चौबीस घंटे में बद हो जाती हैं। दो सप्ता[illegible] से उष्णवात ठीक हो जाता है। हानि-अधिक [illegible] पीने से कुछ रोगियों में पुरूषत्व हीनता की [illegible] मिली है। अतः लाभ होने के एक सप्ताह पश्[illegible] दवा बन्द कर देनी चाहिए।

—वैद्यराज श्री पी. [illegible]

(अनुभूत योग संग्र[illegible]

6. मानसिकरोगोपयोगी प्रयोग—शंखपु[illegible] जटामांसी चूर्ण, ब्राह्मी चूर्ण, मुलेठी चूर्ण और [illegible] चूर्ण इन सभी औषधियों को समान मात्रा में लेक[illegible] कर लें। एक चाय का चम्मच प्रातः सायं गोदु[illegible] या जल से सेवन करावें। यह सरस्वती पंच[illegible] योग रक्तचाप, मंदबुद्धि, जीर्णशिरः शूल ए[illegible] मानसिक रोगों में उपयोगी है।

यह योग वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ, पं श्री राम[illegible] लिखित "जड़ी-बूटी उपचार" नामक पुस्तक [illegible] गया है। इसका मैंने अनेक रोगियों पर प्रयोग कर [illegible] लाभ प्राप्त किये हैं। *—वैद्य महेश[illegible]*

(आयुर्वेद[illegible]

7. मन्द बुद्धि बालकों के लिए [illegible] प्रयोग—यह योग आयुर्वेदीय चिकित्सा अनु[illegible] सम्पादकीय टिप्पणी में छपा था। इसका हमने [illegible] कर मंदबुद्धि के बालकों को प्रयोग कराया। [illegible] लाभकारी सिद्ध हुआ। दो-तीन माह के प्रयो[illegible] लाभ होने लगता है। योग है—शंखपुष्पी, शता[illegible] वावची, मण्डूकपर्णी, विधारा, गिलोय और [illegible] 50-50 ग्राम, दूध चार लिटर, घृत एक लिटर [illegible] दवाओं का घृतपाक विधि से घृत सिद्ध कर लें। [illegible] अनुसार आधा चम्मच एक चम्मच घी खिला[illegible] (गाय का) पिलावें। —डा. श्री रामप्रकाश [illegible]

(वनौ. र. के लिए [illegible]

शतावरी
(Asparagus Racemosus)

आस्तां तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वारशूलव्यथा
नैरूच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी।
एकस्यापि न गर्भभारभरण क्लेशस्य यस्याः क्षमे
दातुं निष्कृतिमुन्नतोऽपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः।।

गर्भस्थिति के समय और उसके पश्चात् भी शरीर का शोषण होने से हुई यातना को जो सहर्ष सहन कर लेती है, नव मास पर्यन्त अपने उदर में अपने अंगप्रत्यंगज (अंगप्रज्यंगजः पुत्र) के भार को जो मुदित होकर वहन कर लेती है, प्रसव काल में अपने प्रियतर (पुत्रः प्रियतरो मातुः) के जन्म की असहय वेदना को जो सह जाती है और लगभग एक वर्ष तक मलमूत्र से लिप्त शैया में सो रहकर जो कष्ट भोगती है ऐसी इस माता की उक्त श्लोक द्वारा नमन करते हुए आद्य शंकराचार्य सदृश सन्यासी भी गौरवान्वित होते हैं।

माता की कोख नये अस्तित्व का सृजन करती है। माता स्वयं जलकर अपने हृदय धन को (पुत्रो हृदयाच्चा भिजायते) आलोकित करती है। माता अपने रस से लाड़ले का पालन-पोषण करती है। बाल्यकाल में जिसकी माता मर जाती है उस पर दुःखों का पहाड़ आ गिरता है—

बालत्वं च मृता माता वृद्धत्वं च मृताः सुताः।
यौवन च मृता भार्या पातकं किमतः परम्।।

किन्तु जब स्वयं ही रसहीन हो जाय तो माता शिशु को पोषण कैसे पहुंचायेगी? अर्थात् जब माता के स्तनों में ही दुग्ध नहीं होगा या न्यून होगा तो वह सद्यजात शिशु को क्या पिलायेगी? बोतल का दूध तो पूतना के दूध की भाँति विषसंपृक्त होता है। शिशु के संजीवन माता के इस दूध को बढ़ाने के लिए बहुत सी वनौषधियों में एक श्रेष्ठ वनौषधि है—शतावरी (शतेषु वरी श्रेष्ठा शतावरी) यह शतावरी भी तो बहुसुता है, इसे अनुभव है अपने बहुसुतों के पालन पोषण का।

भगवान् चरक ने मधुरस्कन्ध की इस वनौषधि को बल्य एवं वयः स्थापन कहा है। वृद्धावस्था को रोककर जो यौवन को स्थिर रखे वे द्रव्य वयः स्थापन कहे गये हैं। महर्षि सुश्रुत ने इसे पित्तशामक कहा है तथा विदरि-गन्धादि व कष्टकपंचक गणों में इसकी गणना की है। आचार्य शार्ङ्गधर ने इसे शुक्रल (शुक्रजनन) कहा है—

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते।
यथाश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी।।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह रसोनकुल (लिलिएसी) की वनौषधि है। भाव प्रकाश निघन्टु के गुडूच्यादि वर्ग में इसका वर्णन मिलता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्य गुण विज्ञान में शुक्रजनन द्रव्यों में मुशली और ताल मूली के बाद इसका वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—शतावरी, शतमूली, शतवीर्या, बहुसुता, अतिरसा, शतपदी, वरी, नारायणी, पीवरी।

हिन्दी—सतावर

गुजराती—शतावरी

मराठी—शतावरी

बंगला—शतमूली

राजस्थानी—नाहर कांटा

संथाली—केदारनारी

तामिल—सडावरी

तेलगू—चल्ला गड्डा

कन्नड़—मज्जिगे गड्डे

मलयालम—शतावली

फारसी—सतावरी

उर्दू—सतावर

अंग्रेजी—वाइल्ड ऐस्पेरेगस (Wild Asparagus)

लैटिन—ऐस्पेरेगस रेसिमोसस (Asparagus Racemosus)

प्राप्ति स्थान—यह भारत के समस्त उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रान्तों में तथा हिमालय प्रदेश में चार हजार फीट ऊँचाई तक पाई जाती है। पश्चिमी बंगाल के हुगली, हाबडा, 24 परगना और राजस्थान के उदयपुर जिले की अरावली पर्वत श्रेणियों में इसकी जंगली लतायें प्रचुरता से पाई जाती हैं। बाग-बगीचों में तथा शहरों भवनों के सामने में भी यह लगाई हुई मिल जाती है।

भारतेतर आस्ट्रेलिया, अफ्रीका आदि देशों में भी यह पाई जाती है।

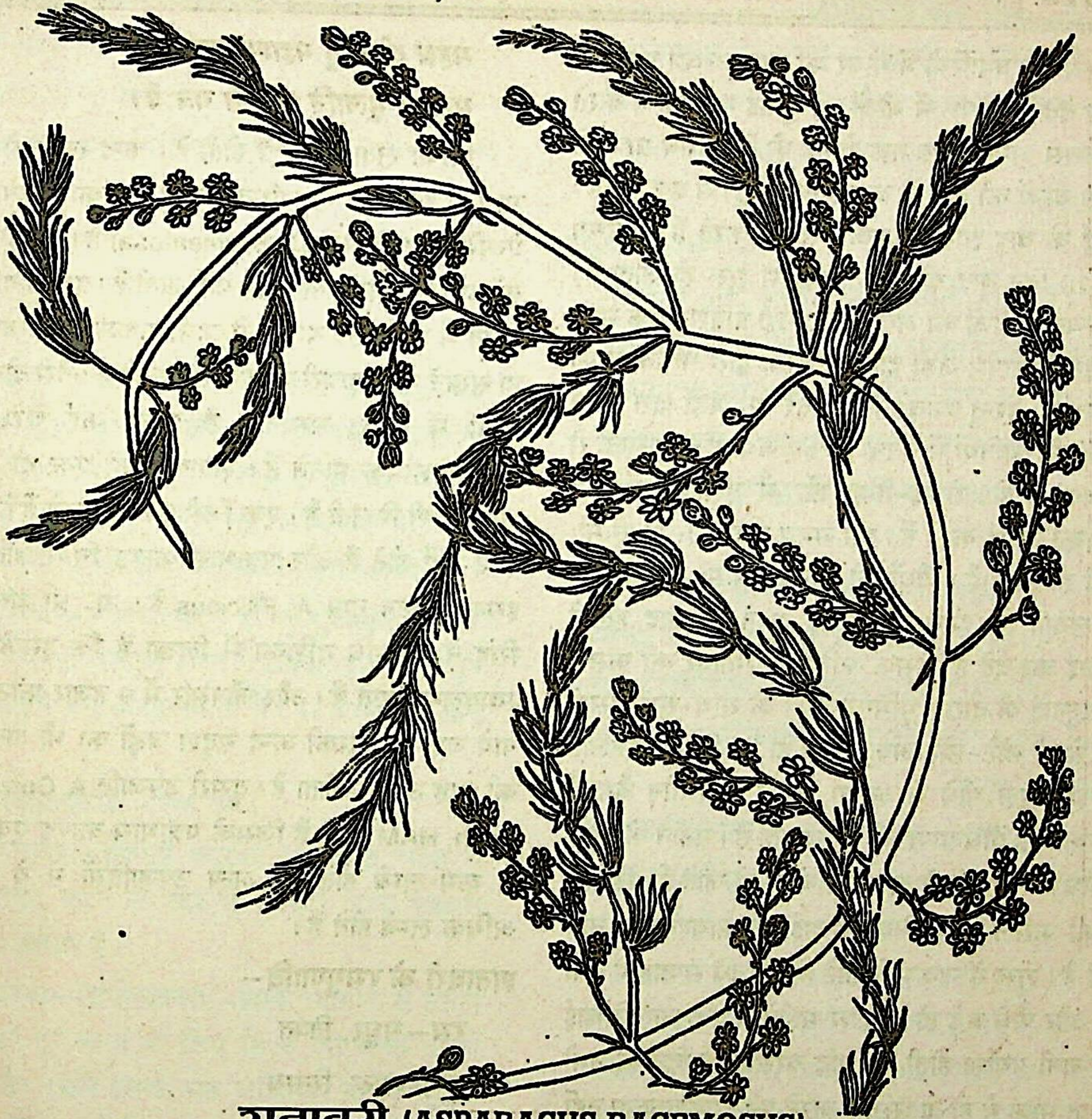
रासायनिक संघटन—शतावरी मूल में म्युसिलेज (पिच्छिल द्रव्य) एवं शर्करा आदि घटक पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसकी कण्टकयुक्त झाड़ीदार आरोहणी लता होती है। इसकी अनेक शाखायें चारों ओर फैली रहती है। प्रशाखायें त्रिकोणकार, स्निग्ध और रेखान्वित होती है। इसके कण्टक कुछ-कुछ मुड़े हुये तथा 1/4 से 1/2 इंच लम्बे होते हैं। पत्राभास काण्ड 1/2 एक इंच लम्बे, 2-6 एक साथ गुच्छबद्ध, नोकदार, नीचे की ओर नालीदार और हँसिया के आकार के होते हैं। पुष्प मंजरी-एक-दो इंच लम्बी, एकल या गुच्छबद्ध, सरल या शाखायुक्त होती है। पुष्पवृन्त 1/6 इंच लम्बा, बीच में पर्वयुक्त होता है। परागाशय-बैंगनी रंग के होते हैं। पुष्प सफेद एवं सुगन्धित होते हैं। इन पुष्पों से सारी लता सफेद दिखाई देती है। फल-मटर के आकार के 1/6-1/4 इंच व्यास के जो पकने प[र] रंग के होते हैं। इनमें एक-दो बीज होते हैं। ये [बीज] में काले होते हैं।

मूलस्तम्भ से कन्द के समान, लम्बगोल प[र] सिरों पर पतले और श्वेतमूलों का गुच्छा निकल[ता] है। जिसका चिकित्सा में उपयोग होता है। ये मूल धूसर वर्ण वल्कल युक्त सीधे लम्बे कनिष्ठिका[की] तरह मोटे होते हैं। आर्द्रावस्था में इसके वल्कल, और सूत्र तीनों अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। बाह्य भाग पर सूक्ष्म उपमूलों के चिन्ह दिखाई दे[ते] गीली रहने पर इसका वल्कल (त्वचा) सरलता से [छुड़ाई] जा सकती है। इसके सूख जाने पर इस पर झुर्रियां [दिखाई] देने लगती है। इसका रंग बाहर से धूसर और भीत[र] होता है।

ग्रीष्म ऋतु में प्राय: इसका ऊपरी भाग नष्ट हो[ता] है। वर्षा के प्रारम्भ में इसके मूल से नवीन [शाखायें] निकलती है। सितम्बर-दिसम्बर में पुष्पों का आ[गमन] होता है और इसके बाद फल आते हैं।

कृषिकरण—शतावरी की खेती विभिन्न प्र[कार की] मिट्टी में की जा सकती है परन्तु बालुई दोमट जिसमें जल निकास अच्छा हो तथा जिसमें पानी न[रुकता] हो सबसे उपयुक्त होती है। जिस मिट्टी में बालू की अधिक रहती है, उसमें जड़ों की वृद्धि अच्छी हो[ती है।] यह एक कंद वाली फसल है अत: रेतीली दोमट मि[ट्टी में] कन्द अच्छी प्रकार बढ़ते हैं तथा कंदों को खो[दकर] निकालने में भी आसानी रहती है। मई जून माह में की दो-तीन बार अच्छी प्रकार जुताई करने से खेत [खरपत]वार से मुक्त हो जाता है। जुलाई-अगस्त में बारिश हो जाने के पश्चात् फिर खेत की अच्छी प्रकार जुता[ई कर] रोपण करना चाहिए। इसकी खेती के लिए सर्व[प्रथम] बीजों द्वारा रोपणी में पौध तैयार की जाती है। रोप[णी में] 1×10 मी. की क्यारी तैयार कर लेते हैं व मिट्टी भु[रभुरी]



शतावरी (ASPARAGUS RACEMOSUS)

नाम—सं०—शतावरी, हि०—सतावर; गु०म०—शतावरी; अं.—वाइल्ड ऐस्पेरेगस, लै०—एस्पेरेगस रेसिमोसस।

प्राप्तिस्थान—भारत के समस्त उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रान्त

उपयोगी अंग—कन्द।

दोषशमन—वातपित्त शामक।

रोगोपयोग—प्रमेह, प्रदर, बन्ध्यत्व, दुग्धाल्पता, रक्त पित्त, अम्पपित्त आदि।

मुख्ययोग—शतावरी घृत, नारायण तैल, शतमूल्यादि लौह आदि।

कर लेते हैं। क्यारियों में गोबर की खाद अच्छी प्रकार से मिला देते हैं। रोपण में बीजों की बुवाई मई माह में करते हैं जिससे अगस्त माह तक रोपाई के लिए पौधे प्राप्त हो सकें। बीजों को बोने के बाद हल्की मिट्टी से ढक देते हैं। बुवाई के बाद झारे से हल्की सिंचाई करते हैं। लगभग 15-20 दिन बाद बीजों का अंकुरण शुरू हो जाता है। समान्यतया बीजों का अंकुरण 50-70 प्रतिशत तक रहता है। इसका रोपण जड़ों द्वारा व डिस्क द्वारा भी किया जा सकता है। परन्तु व्यावसायिक स्तर पर जड़ों द्वारा रोपण उन्हीं परिस्थितियों में करना चाहिए जब बीज आसानी से उपलब्ध न हो। रोपाई-तैयार खेत में जुलाई-अगस्त में पौधे की रोपाई करते हैं। इस समय पौध 10-12 से.मी. ऊंची हो जाती है। पौधों को 45-45 से.मी. के अंतराल पर लगाते हैं। पौधे की रोपाई करने के बाद हल्की सिंचाई कर देते हैं। इसके अतिरिक्त संतावर की फसल की खुदाई के दौरान भूमिगत जड़ों के साथ-साथ इसके तनों से जो छोटे-छोटे अंकुर प्राप्त हो वह डिस्क कहलाते हैं। इन्हें मूल पौधे से अलग करके पालीथीन बैग में लगाकर नई पौध प्राप्त की जा सकती है। महीने के अंदर ये पौध भी खेत में रोपाई करने योग्य हो जाते हैं। सिंचाई इसकी फसल को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। शुरू में जब पौधे छोटे होते हैं तब सप्ताह में एक बार और पौधे बड़े हो जाने पर महीने में एक बार सिंचाई की जानी पर्याप्त होती है। यदि बरसात के दिनों में नमी पर्याप्त मात्रा में हो तो सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं होती है।

—औषधीय फसलों की वैज्ञानिक खेती।

इसकी खेती के विषय में अधिक जानकारी के लिए एन.वी.पी.जी. आर पूसा कैम्पस नई दिल्ली 110012 से सम्पर्क करना चाहिये।

भेद—शतावरी की एक बड़ी जाति होती है जिसे महा-शतावरी, सहस्रवीर्या सहस्रमूला आदि पर्यायों से जाना जाता है। इसके मूल बड़े होते हैं।

सहस्र वीर्या तु महाशतावरी
महान्ति मूलानि भवन्ति यत्र वै।

इसकी लता भी बड़ी होती है। कन्द लम्बे साथ ही संख्या में भी अधिक होते हैं। इसका लैटि ऐस्पेरेगस सरमेन्टोसा (A. Sarmentosa) है। इस कोंकण की ओर सभी जगह पाई जाती है। इसका भारत में प्रसार है। बाजार में प्रायः महाशतावरी ही सूखने पर शतावरी के नाम से बिकते हैं। वैसे गुणों में प्रायः समानता है परन्तु कई वै कफवातशामक मानते हैं। शतावरी की एक-दो जातियाँ भी मिलती है। एक जिसे कौण्टा कहते हैं काँटे नहीं होते हैं और पत्राभास काण्ड चिपटे इसका लैटिन नाम A. Filicinus है। ठा. श्री सिंह ने वनौषधि दर्शिका में लिखा है कि इस स्वावलम्बी होते हैं। और जौनसार में 9 हजार फी पाये जाते हैं। इसकी कन्द सदृश जड़ों का भी की तरह उपयोग होता है। दूसरी उपजाति A. Cu Buch, HAM होती है जिसके पत्राभास काण्ड से कम लम्बे होते हैं। अन्य उपजातियों में अधिक लम्बे होते हैं।

शतावरी के रसगुणादि—

रस—मधुर, तिक्त
गुण—गुरू, स्निग्ध,
वीर्य—शीत
विपाक—मधुर
दोषकर्म—वातपित्तशामक

वातपित्तहरं शाकवृक्षो यष्टी शतावरी।

उपयोगी अंग—कन्द
मात्रा—स्वरस—10-20 मि. लि.

क्वाथ—50-100 मि. लि.

चूर्ण—3-6 ग्राम

संग्रह—शार्ङ्गधरसंहिता के मध्यमखण्ड में कहा गया

ॐ नारायण्यै स्वाहा। उत्तराभिमुखो भूत्वा त्खदिरशङ्कुना। ॐ सर्वव्याधि नाशिन्यै स्वाहा। उत्पाटनमन्त्रः।।

अर्थात् शतावरी को जंगल से खोदते समय उत्तरदिशा ओर मुख रहते हुये खैर की नोकदार लकड़ी को योग में लावें। खैर की लकड़ी से इसकी जड़ों को कर निकालें और "ओंम सर्व व्याधिनाशिन्यै स्वाहा" उत्पाटनमन्त्र का उच्चारण करते रहना चाहिए।

संरक्षण—शतावरी की जड़ों को सुखाकर, मुखबंद बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखकर इसका संरक्षण ना चाहिये और आवश्यकता होने पर उपयोग में लाना इए।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष।

अहितकर—आनाह कारक/अनुपयुक्त मात्रा में ा सेवन करने से उदर में आफरा आना महसूस जा सकता है।

निवारण—(दर्पनाशक)—इसके अतियोग से उत्पन्न ह को दूर करने के लिए मिश्री का सेवन करना प्रद है। इससे इसका यह अहितकर प्रभाव दूर हो है। यदि इसके सेवन काल में ही इसके साथ मिश्री मिश्रण कर सेवन किया जाय तो किसी प्रकार की होने की संभावना नहीं रहती है।

गुणप्रकाशक संज्ञा—वृष्या, शतावरी

प्रतिनिधि—शतावरी के अभाव में इसके स्थान पर मुशली को ग्रहण करना चाहिये। अष्टवर्ग के में मेदा और महामेदा के अभाव में इनके स्थान पर री को उपयोग में लाने का निर्देश है—

मेदाजीवक काकोली वृद्धिद्वन्द्वेऽपि चासति।
वरीविदार्यश्वगन्धा वाराहीश्च क्रमात् क्षिपेत्।।
मेदामहामेदास्थाने शतावरी मूलम्।।

—भा.प्र.नि.

गुणधर्म विवेचन—

शतावरी गुरुः शीतातिक्ता स्वाद्वी रसायनी।
मेधाग्निपुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मति सारजित्।।
शुक्रस्तन्यकरी बल्या वातपित्ता स्रशोथजित्।।
महाशतावरी मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी।
शीतवीर्या निहन्त्यर्शोग्रहणीनयनामयान्।।

—भा.प्र.नि.

वातपित्तहरी वृष्या स्वादुतिक्ता शतावरी।
महती चैव हृद्या च मेध्याग्निबलवर्धिनी।।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी वृष्या शीता रसायनी।
कफपित्तहरास्तिक्तास्तस्या एवांकुरा स्मृताः।।

—सुश्रुत. सू. 46

शतावरी हिमा तिक्ता रसे स्वादुः क्षयास्रजित्।
वातपित्तहरी वृष्या रसायनवरा स्मृता।।—ध.नि.

शतावर्यौ हिमे वृष्ये मधुरे पित्तजित् परे।
कफवातहरे तिक्ते महाश्रेष्ठे रसायने।।
शतावरीद्वयं वृष्यं मधुरं पित्तजिद् हिमम्।
महती कफवातघ्नी तिक्ता श्रेष्ठा रसायने।
कफपित्तहरा तिक्तास्तस्या एवांकुरा स्मृताः।।

—रा.नि.

शतावरी वातपित्तमेहरक्तहरा सरा।

—राजवल्लभ

शतावरीद्वयं शीत तिक्तं स्वादु रसायनम्।
शुक्रस्तन्यकरं बल्यं वातपित्तमयापहम्।।

—प्रि.नि.

रसायनी स्वादुरसा गुरुर्हिमा
हिता हशोः स्तन्यकरी शतावरी।

बलाप्रदा मारूत पित्तरक्तरूक्

कृशानुसादश्वयथुव्यथाहरी।। —*सि.भे.म.मा.*

शीताशतावरी स्याद् रसायनी स्तन्यदायिनी स्त्रीणाम्

वृष्या वातं पित्तं हन्ति हिता चाम्लपित्ते सा।।

—*षोडशाङ्गहृदयम्*

गुण और कर्मों की द्रव्यरहित कोई सत्ता नहीं है। अतएव आयुर्वेद में द्रव्य को प्रधान माना गया है और सभी द्रव्यों को पांच भौतिक कहा गया है। कार्य द्रव्यों की उत्पत्ति में पृथिवी अधिष्ठान होता है। अप् (जल) योनि (अणुओं को मिलाने वाला) बनता है। आकाश-वायु-तेज से उनका विशिष्ट स्वरूप बनता है। द्रव्य में जिस महाभूत की विशेषता या अधिकता होती है वह द्रव्य उसी महाभूत के नाम से जाना जाता है—उत्कर्षस्त्वभिव्यंजको भवति, इदं पार्थिवम्, इदं आप्यम्, इदं तैजसम्, इदं वायव्यम्, इदमाकाशीयमिति।

—*सुश्रुत. सू. 41*

मधुर रस प्रधान होने से यह शतावरी पार्थिवद्रव्य कहा जा सकता है (वि.ना. द्विवेदी)। मधुररस सर्वोत्तम बृंहण है। बृहणं द्रव्य शरीर का भार बढ़ाते हैं, धातुओं को उत्कृष्ट बनाते हैं किंबा शरीर में कार्य करने की क्षमता बढ़ाते हैं। आयुर्वेद में अनुत्पन्न रोगों का प्रतिबन्ध करने वाली और उत्पन्न रोगों को दूर करने वाली शक्ति को बल नाम से अभिप्रेत किया गया है। बलायं हितं बल्यम्' के अनुसार इस शक्ति को बढ़ाने वाले द्रव्य बल्य कहे गये हैं। बल्य, बृहण के साथ ही यह रसायन है। शुक्रल द्रव्यों में यह श्रेष्ठ है ही। द्रव्य गुण सिद्धान्त के विद्वान लेखक डा. श्री शिवचरण ध्यानी ने सभी रसायन द्रव्यों को रसवर्धक कहा है। रस, उसका उपधातु, स्तन्य, रस से निर्मित त्वक्, रसवह स्रोतस और उनके मूल हृदय एवं रसवाहिनी धमनियां इन पर होने वाले भिन्न कर्म यहाँ अभिप्रेत हैं। ऐसी इस बहुगुणा शतावरी के विषय में लावणी छन्द निबद्ध एक विस्तृत गीत रचा गया। एक चरण यह है—

रसायन मेध्य हृद्य भारी

बल्यं बृहण नित हितकारी

गर्भ पोषक मुद संचारी

वेदना विविध सदा टारी

शीत मधुर गुरू द्रव्य से ओज बढ़े नितमा[illegible] साम्राज्य करे काया में विविध व्याधियां जीत[illegible] गोपेश गिरा गाया।।

गीत 'गोपेश' गिरा गाया।

शतावरि शुक्रजनन राया।।

चरक संहिता (चि.1-4) में वर्णित इन्द्रोक्त[illegible] में शतावरी की योजना की गई हैं। ये रसायन[illegible] तरूणवय, नीरोगता, स्वरवर्ण-श्रेष्ठता, पुष्ठि, बुद्धि[illegible] शक्ति, उत्तमबल और जन्य प्रियभावों को देने[illegible]

इसी प्रकार चरकसंहिता चि. स्था. अ. 2 [illegible] बृंहणी गुटिका, बाजीकरणघृत, अपत्यकर [illegible] गुटिका, अपत्यकरघृत आदि वृष्ययोग शतावरी के [illegible] से निर्मित हैं। यहाँ घृत शतावरी योग को उत्तम [illegible] कहा है—

घृतं शतावरी गर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत्।

शर्करापिप्पली क्षौद्रयुक्तं तद् वृष्यमुत्त[illegible]

—*च.चि.*[illegible]

आचार्य सुश्रुत भी इस विषय में कहते [illegible]

शतावर्युच्चटामूलं पेयमेवं बलार्थिना।

शतावरीघृतं सम्यगुपयुक्तं दिने-दिने।

सक्षौद्रं ससुवर्णं च नरेन्द्रं स्थापयेद् वशे

—*सुश्रुत. चि.*[illegible]

नरेन्द्रं स्थापयेद् वश इति योहि इदं [illegible] तस्य वशगो भवेन्नरेन्द्रः।

आचार्य वाग्भट ने बड़े सुन्दर ढंग से कहा है कि शतावरीघृत को जो शर्करा के साथ खाते हैं। उन मनुष्यों को जीवन रूपी मार्ग में चलते समय रोग रूपी चोर नहीं लूट सकते—

शतावरीकल्ककषाय सिद्धं
ये सर्पिरश्नंति सिताद्वितीयम्।
ताञ्जीविताध्वानमभिप्रपन्नान्-
विप्रलुंपन्ति विकार चौराः।। —अ.हृ.उ.त.39

आचार्य सुश्रुत जहाँ शतावरी और उच्चटामूल को बल्य कहते हैं वहाँ लोलिम्बराज इसे शुक्र को गाढ़ा करने वाला बतलाते हैं—

शतावर्युच्चटाचूर्णं कमलायतलोचने।
सुखार्थिना सदा सेव्यं शुक्रदाढ्र्यकरं परम्।।
—वै.च.चि. 5-12

आचार्य शार्ङ्गधर भी शतावर्यादिचूर्ण को परमवृष्य कहकर वर्णन करते हैं—

शतावरी गोक्षुरश्च बीजं च कपिकच्छुजम्
गाङ्गेरूकी चातिबला बीजमिक्षुरकोद्भवम्
चूर्णितं सर्वमेकत्र गोदुग्धेन पिबेन्निशि।
न तृप्तिं यति नारीभिर्नरश्चूर्ण प्रभावतः।।

पुरूषों के लिए शुक्रल है तो स्त्रियों के लिए यह गर्भपोषक एवं स्तन्यजनन है। माताओं के लिए इसकी उपादेयता सर्वप्रसिद्ध है जिसके विषय में आलेख के प्रारम्भ में भी वर्णन किया गया है। गर्भवती को जब रक्तस्रावरहित गर्भाशय कटि बस्ति आदि में पीड़ा हो तो शतावरी, क्षीरकाकोली, मुलेठी आदि से सिद्ध दुग्धपान कराना हितकारी है—

अथादृष्ट शोणित वेदनायां मधुकदेवदारू मंजिष्ठापयस्यातिसद्धं पयः पाययेत्, तदेवाश्मन्तकशतावरीपयस्यासिद्धं, विदारिगन्धादिसिद्धं वा, बृहतीद्वयोत्पलशतावरी सरिवापयस्यामधुकसिद्धंवा एवं क्षिप्रमुपक्रान्ताया उपावर्तते रूजो गर्भश्चाप्यायते।

—सुश्रुत.शा. 10-60

बालक के लिए एवं माता के लिए दोनों के लिए गर्भावस्था में तथा बालक के जन्म के बाद दोनों समय शतावरी उपयोगी है। गर्भावस्था में यदि गर्भवती शतावरी का नियमित सेवन करती रहे तो गर्भ का पोषण होने के अतिरिक्त गर्भस्राव-पात की होने की आशंका नहीं रहती है। आयुर्वेद की प्राचीन संहिताओं में गर्भवती के लिए शतावरी, अश्वगन्धा, आमलकी, मधुयष्टी, गोखरू, सिंहाड़ा और मुनक्का आदि को बहुत उपयोगी कहा है। वैद्यनाथ भवन द्वारा प्रकाशित सचित्र आयुर्वेद के अप्रेल सन् 2002 के अंक में डा. श्री श्यामकिशोर पाण्डेय और डा. श्री सुरेन्द्र कुमार ने गर्भिणी आरोग्यरक्षक एक कल्प का उल्लेख किया है। यह गर्भवती के लिए बहुत उपयोगी होने से पाठकों के लाभार्थ यहाँ भी उद्घृत किया जा रहा है—सोयाबीन (श्वेत) भुना हुआ 100 ग्राम, नागौरी असगन्ध 50 ग्राम, शतावरी 50 ग्राम, सूखा आंवला 100 ग्राम, नागकेशर 100 ग्राम, मण्डूर भस्म 15 ग्राम और मधुयष्टी (मुलेठी) 25 ग्राम। इनका मिश्रण कर इस चूर्ण को दो-दो चम्मच सुबह-शाम गाय के दूध के साथ या ताजा जल के साथ सेवन करावें। इसके नियमित सेवन से गर्भवती महिला रक्ताल्पता, दौर्बल्य, श्वेतप्रदर, कटि-वेदना, अनियमित रक्तस्राव आदि कष्टकारी रोगों एवं लक्षणों से ग्रसित नहीं होती है तथा इससे गर्भ में पलने वाले शिशु का स्वास्थ्य भी ठीक रहता है, उसे समुचित पोषण मिलता है।

जन्म के बाद दूध पीने वाले बालक को शतावरी, ब्राह्मी, वचा, जटामांसी, हल्दी आदि से सिद्ध किया हुआ घृत खिलाते रहने से उसके स्वास्थ्य की सुरक्षा होती है—

क्षीराहरांय सर्पिः पाययेत् सिद्धार्थकवचामांसीप-यस्यापामार्गशतावरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठ-सैन्धवसिद्धम्।

--सु.शा. 10-48

क्रोधशोकादि के कारण जब माता के दूध का नाश हो जावे तब भी दूध को बढ़ाने के लिए शतावरी का सेवन हितकारक है। आचार्य सुश्रुत ने ऐसी स्थिति में जिन द्रव्यों के सेवन का परामर्श दिया है उनमें शतावरी मुख्य है (सुश्रुत.शा010-32) अन्यत्र भी कहा है—

शतावरीक्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्धिनी।

—यो. र.

शतावरी के सेवन से स्तन्य (दूध) की ही वृद्धि नहीं होती स्तनों की भी वृद्धि होती है।—"शतावरीमूल के विभिन्न निःसारों का प्राणियों में अध्ययन किया गया। प्रायः सभी क्रिया मस्केरिनधर्मी पाई गई। सुरासारीय निस्सार में गर्भाशय संकोचनिरोधी क्रिया पाई गई एवं इसमें स्तनवृद्धिकर प्रभाव भी होता है—एम, एच, जेठमलानी, पी.बी. सवनीस एवं बी. बी. गायतोंडे-जर. रिस. इण्डि. मेडि. 2-1-1967, 1-10।

इसके अनेक सत्वों का अध्ययन स्तनश्राव एवं स्तनश्रावी ग्रन्थियों पर प्रभाव की दृष्टि से किया गया। इससे स्तन एवं स्तन्यवृद्धि होती है।—पी.बी. सवनीस एवं बी. बी. गायतोंडे, 18 वीं इण्डि. फार्मा. कांग्रेस, सार, इण्डि. जर. फार्मे. 28-12-1966, 341।

इसके मूल के सुरासारीय अपरिष्कृत सत्व को मांसपेशी द्वारा चूहों में विभिन्न अवस्थाओं में दिया गया। इससे स्तनग्रन्थि तथा गर्भाशय का बजन बढ़ा। स्तन एवं स्तन्य वृद्धि सम्भवतः इसके द्वारा उन्मुक्त कोर्टिकायड या पोलिक्टिन के कारण हो सकती है—पी.बी. सवनीस एवं बी. बी. गायतोंडे एवं माया जेठमलानी, इण्डि. जर, एक्स्पेरि. बायो, 6,1,1968, 55-57।

—डा. श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर
(वा. अनु. दर्शिका)

शतावरी को महिलाओं की सखी कहा गया है क्यों कि यह इनको प्रायः सभी रोगों से बचाये रखती है। प्रजास्थापन (सन्तानोत्पत्ति) में भी यह बहुत सहायक है। गर्भाशय, आर्तववह स्रोतस, शुक्रवह स्रोतस सभी को शतावरी से बल मिलता है। इस प्रजास्थापन कार्य शतावरी से होता है। (इसका मुख्य घटक है।) और बृहच्छतावरी घृत दोनों यो को समूल नष्ट कर गर्भ धारण कराते हैं। पित्तल के उपचार में चरकाचार्य ने एक चिकित्सासूत्र है—

पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्ग पिचुक्रिय
शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहार्थं घृतानि

—चरक.चि. 30

और इसके बाद पित्तशामक सिद्ध घृत वृहत् श घृत की निर्माण विधि का वर्णन किया है। य 10-12 ग्राम की मात्रा में सेवन करने पर पि योनिर्माग का शमन होता है। यह रक्तप्रदर, शु यक्ष्मा, क्षतक्षीणता, रक्तपित्त, विसर्प आ वातपैत्तिकरोगों में लाभप्रद है। यह वृष्ण एवं पु कारक भी हैं इसे सेवन करने से पूर्व ब्राह्मणों (विद्व को खिलाना चाहिये। इसी प्रकार जीवनीय द्रव कल्क तथा क्वाथ से साधित दूध से निकाला गया गर्भप्रदाता और पित्तलयोनिव्यापदों का औषध हो जीवनीय गण में अष्टवर्ग कहे गये हैं। आजकल अ के अभाव में मेदा-महामेदा के स्थान पर शतावरी क ग्रहण किया जाता है।

आचार्य सुश्रुत ने शतावरी मेध्या कहा है। यह होने से मस्तिष्क दौर्बल्य, अपस्मार, मूर्च्छा आ हितकारक है। अपस्मार प्रतिषेध नाम उत्तरस्थान के अध्याय में आचार्य वाग्भट ने स्पष्टतया लिखा अपस्मार में लाभ पहुंचाने के लिए शतावरी चूर्ण दूध के साथ सेवन करें—

शीलयेत्तैललशुनं पयसा वा शतावरीम्।

चरकसंहिता, गदनिग्रह आदि में भी अपस्मारोपयोगी कहा है। भ्रम-मूर्च्छा आदि में भी

शतावरी बलामूलद्राक्षासिद्धं पयः पिबेत्।
ससितं भ्रमनाशाय...... ।।
—च.द.29-7

शतावरी कास कुशाम्बुधात्री कुस्तुम्बुरूनागर-
र्पटाम्भः।
सुशीतलं तृष्मदमोहमूर्च्छा जयेत्सुपीतं मधु
प्रयुक्तम्।। —क्वा. म. मा.

वेदनास्थापन एवं नाड़ीबलदायक होने से यह तव्याधि में प्रयुक्त होती है। वायु का प्रकोप धातुक्षय वं आवरण के कारण होता है। किसी शरीरायव को टकद्रव्य पर्याप्त मात्रा में न मिलने के कारण जो उसकी णता होती है यही धातुक्षय है। यह स्निग्धता के अभाव होता है। शतावरी स्निग्ध मधुर होने से इस धातुक्षय दूर करती है। पित्तदोष की वृद्धिहोकर वायु के संचरण यह अवरोध उत्पन्न कर देता है। ऐसी स्थिति में तपित्तशामक होने से शतावरी इस अवरोध किंबा वरण को दूर करती है। वायु के पित्त से आवृत होने दाह, तृष्णा शूल, भ्रम आदि लक्षण प्रकट होते हैं और गी शीतवीर्य द्रव्यों की कामना करता है। शीतवीर्य व्य शतावरी उक्तलक्षणों को हरने में सहायक बनती है। द्ध वात के शमन हेतु नारायणतैल एक सर्वप्रसिद्ध ष्ठतम योग है। नारायण तैल शतावरी प्रधान प्रसिद्ध ल्प है। शतावरी का पर्याय नारायणी भी है। इस पर्याय लक्ष में रखकर ही इस शतावरी प्रधान तैल को रायण तैल' यह नाम दिया गया है। इसका बाह्याभ्यन्तर योग हितावह है।

वातरोगों में शोधनचिकित्सा के अन्तर्गत शतावरी त का पान एवं नारायण तैल का अभ्यंग स्नेहन का र्य करता है। वातरोगों में नाड़ी स्वेद के रूप में शतावरी उपयोग होता है। इसका वर्णन चरक चि. 28-110 किया गया है। षडास्थापन स्कंध के अन्तर्गत धुरस्कंध में अष्टवर्ग, अश्वगन्धा, शतावरी, अनन्तमूल द्राक्षा आदि जो वर्णित किये गये हैं। इन द्रव्यों की बस्ति वात व्याधि में लाभप्रद होती है। बस्ति वात की प्रधान चिकित्सा है। निरूह तथा अनुवासन दोनों बस्ति वात-व्याधि में प्रशस्त होती हैं। केवल निरूह अधिक लेने से वात का प्रकोप होता है अतः निरूह के बाद अनुवासन वस्ति देनी चाहिये। वातरोगीयों को निरूह के बाद नारायण तैल, शतावरी तैल इत्यादि से अनुवासन यथा योग्य आतुर में देना चाहिये। ये सब कर्म दोषों की तारतम्यता को ध्यान में रखते हुये कुशल चिकित्सक की देखरेख में ही सम्पन्न होने चाहिये। तब ही पूर्ण सफलता मिलती है।

वातरक्त चिकित्सा में जो शतवर्यादि योग सारामृत (च.द.) वर्णित है। यह वातरक्त के अतिरिक्त क्षय, रक्तपित्त आदि रोगों में भी लाभप्रद है। शतावरीघृत भी वात.रक्त में लाभकर है—

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्या श्चतुर्गुणे।
क्षीरतुल्यं घृतं पक्वं वातशोणितनाशनम्।।

सब प्रकार की शिरोवेदना में वर्यादि यह लेप लाभप्रद कहा गया है—

वरी नीलोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णा पुनर्नवा।
शंखकेऽनन्तवाते च लेपः सर्वशिरोऽर्तिजित्।।
—शा. सं. उ. खं.

यह मूत्रल होने से मूत्रकृच्छ्र में दी जाती हैं कहा गया है—

शतावरी का शकुशश्वदंष्ट्रा-
विदारिशालीक्षुकशेरूकाणाम।
क्वाथं सुसिद्धं मधुशर्कराक्तं
पिबञ्जयेत् पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम्।। —चरक.चित्र 26
शतावरीका शकुशश्वदंष्ट्रा-
विदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम्।
सर्पिःपयो वा सितया विमिश्रं
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम्।। —च. द. 32

उक्त शतावर्यादिक्वाथ, शतावरी घृत, एवं शतावरीक्षीर के अतिरिक्त इसी चिकित्साधिकार में वर्णित त्रिकण्टकाद्य घृत, सुकुमारकुमारक घृत में भी शतावरी मुख्य घटक है। आचार्य हारीत केवल शतावरी चूर्ण को ठन्डे पानी से सेवन करना ही मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी कहते हैं— *पिबेच्छतावरीमूलं चूर्णितं शीतवारिणा।*

यह पित्तशामक होने से अम्लपित्त की श्रेष्ठ औषधि है। अम्लपित्त के अतिरिक्त विदग्धाजीर्ण, पैत्तिकशूल और परिणामशूल में भी पित्त की अम्लता बढ़ी हुई मिलती है इसे शान्त करने के लिए शतावरी का सेवन हितावह है। विदग्ध पित्त की अधिकता ही अम्लपित्तरोग को जन्म देती है। घृत के स्निग्ध गुण के समान ही शतावरी के स्निग्ध से अग्नि बढ़ती है और विदग्ध की अधिकता में न्यूनता आती है। शतावरी का मधुरतिक्त रस भी इस रोग को शान्त करने में प्रमुख सहायक बनता हैं स्वार्जिकाक्षर का कदली क्षार के साथ शतावरी प्रशस्त औषधि सिद्ध होती है। शतावरी घृत एवं नारायण तैल इसमें अच्छा कार्य करते हैं। शतावरी से निर्मित नारायण तैल दूध में मिलाकर 10-12 ग्राम देने का प्रशस्त परिणाम कई अनुसंधाताओं ने पाया है।

यह शूलहर होने से पैत्तिकशूल, परिणाम शूलादि में भी लाभप्रद है। आचार्य शार्ङ्गधर कहते हैं—'शतावर्याश्च मधुनापित्तशूलहरो रसः'। अन्यत्र भी कहा गया है—

शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम्।।
शतावरीसयष्ट्याह्ववाटयालकुशगोक्षुरः।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम्।।

—च. द. 26

शतावरीमण्डूर और बृहच्छशावरीमण्डूर (कल्पप्रसंग में वर्णित) परिणाम शूल, वातपैत्तिकशूल को दूर करने हेतु प्रशस्त प्रयोग है। पित्तशामक एवं वेदनास्थापन होने के साथ रक्तस्तम्भक होने से विशेषतः रक्तार्श में फलप्रदा है। यह ग्राही होने से विशेषतः रक्ता[illegible] भी है—

पीत्वा शतावरी कल्कं पयसा क्षीरभुग्जये
रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्ध घृतं न[illegible]

—चरक. चि.

रक्तं विट्सहितं पूर्वं पश्चाद्वा योऽतिसार्य
शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत्।।

—चरकः चि.

अर्शःसु-शतावरीमूलकल्कं वाक्षीरेण।

—सुश्रुत

शतावरीघृतमिति "शतावरीमूलतुलाश्चत[illegible] (चि. अ.30.) इत्यादिना योनिव्याप[illegible] शतावरीघृतम।

किसी कवि का यह श्लोक भी स्मरण करने[illegible] जिसमें उक्त योग को ही साहित्यमयी भाषा में [illegible] किया गया है—

किमर्थं नरोऽयं नरीनर्ति भद्रे
चलाक्षि प्रलापं चरीकर्ति किंवा।
जरीहर्ति रक्तातिसारं सदुग्धं
वरीवल्ककल्कं वरीवर्ति यत्र।।

यह हृद्य होने से हृदयरोगों में तथा रक्तपित्त[illegible] होने से रक्तपित्त में दी जाती है। इसके सेवन से [illegible] का भी नियंत्रण होता है। हृदयरोगों में वातपित्त [illegible] में (विशेषतः हृदयदाह में) यह लाभप्रद है। [illegible] वाग्भट ने एक योग में (जो कास और हृदय [illegible] उपयोगी है) शतावरी की उपयोगिता व्यक्त की है [illegible] अ.हृ.क. स्था. अ. 1-36। धामार्गव क्वाथ में [illegible] चूर्ण प्रक्षेप कर मधु, शर्करा मिलाकर वमन का[illegible] योग है। धामार्गव को घिया तुरई कहते हैं जो मी[illegible]

कड़वा भेद से दो प्रकार का होता है। कड़ुवा औषधि में युक्त होता है और मीठा शाक बनाकर खाया जाता है।

पित्त के तीक्ष्णोष्ण गुणों की वृद्धि से रक्तपित्त का स्राव होता है। उन गुणों के विपरीत शतावरी के गुण —ह्रास हेतुर्विशेषश्च। ऊर्ध्वग रक्तपित्त में—

शतावरी बला रास्ना काश्मर्यं सपरूषकम्।
पाययेद्रक्तपित्तघ्नं सद्य शूलहरं परम्।।

—यो. र.

अधोग रक्तपित्त में—

शतावरीगोक्षुरकैः श्रृतंवा
श्रृतं पयोवाप्यथ पर्णिनीभिः।
रक्तं निहन्त्याशु विशेषतस्तु
यन्मूत्रमार्गात् सरूजं प्रयाति।।

—चरक.चि. 4-82

रक्तपित्त चिकित्सा प्रसंग में वर्णित शतावरीघृत, च्छतावरी घृत, खण्डकाद्यो लौह किंबा खण्ड द्यावलेह आदि शतावरी प्रधान योग बहुत अच्छा लाभ जाते हैं। कविराज जयदेव जी भी उक्त अवलेह के ग की सम्मति प्रकट करते हैं—

तथैवार्दते खण्डखाद्यावलेहो
बृहद्रक्तपित्तं च चित्तं प्रसाद्य।

वातजन्य एवं पित्तजन्य ज्वरों में अपने वातपित्तशामक के द्वारा शतावरी रोगी को लाभ पहुंचाती है। कहा है—

पीयूषव्रतति-वरीजलं गुडेन
पीतं सज्जयति मरूज्ज्वरं क्षणेन।

—सि. भे. म. मा.

शतावरी गुडूची च मधुको शीरसारिवाः।
चन्दनंचहर कषायः स्यात् सिताक्षौद्रेण संयुतः।।
पित्तज्वरहरश्चैव पित्तविभ्रमनाशनः।।

—क्वा. म. मा.

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंगों में भी शतावरी की उपादेयता प्रकट की गई है—

कर्ण तैलगते श्रोत्रवैगुण्यं शोभवेदने।
कर्णस्रावश्च तत्राशु कर्त्तव्यं प्रतिपूरणम्।।
स्वरसो बहुपुत्रायाः सघृतः क्षौद्रसंयुतः।।

—सुश्रुत. क. स्था. 1-67

बहुपुत्रा-शतावरी-डल्हण।

बालानां शकुनिग्रहप्रतिषेधार्थम्—
शतावरी.......धारयेत्।—सुश्रुत. उ. त. 30-6

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्ड बीजकैः।
तलं विपक्वं सक्षीर पलीनां पुष्टिकृत परम्।।

—च.द. 57-54

पाषाणभेदो वसुको वृशिराश्मन्तकौ तथा।
शतावरी श्वंदष्ट्रा च वृहती कण्टकारिका।।
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथैर्घृतं कृतम्।
भिनति वातसंभूतामश्मरी क्षिप्रमेव तु।।

—सुश्रुत. चि. 7

द्राक्षा मधूकं खर्जूरं-विदारी सशतावरी।
पुरूषकाणि त्रिफला तत्क्वाथे पाचयेद्घृतम्।।
क्षीरेक्षुधात्री निर्य्यासे प्राणदाकल्क संयुतम्।
तच्छीतं शर्कराक्षौद्रपादिकं पूर्ववद्गुणैः।।
(विद्रधौ गुल्मवीसर्पदाहमोहमदज्वरान्।
तृणमूर्च्छाच्छर्दि द्रोग पित्तसृक्कुष्ठकामलाः।)

—अ. हृ. चि. 13

शतावरीमूलकल्कं कल्कात्क्षीरं चतुर्गुणम्।
क्षीरतुल्यघृतं गव्यं सितया कल्कतुल्यया।।
घृतशेषं पचेत्तत्तु पलार्द्धं लेहयेत्सदा।

रक्तपित्तं ह्यम्लपित्तं क्षयंश्वासं च नाशयेत्।।

—पाकप्रदीप

यूनानी मत—यूनानीमतानुसार यह पहले दर्जे में शीत एवं स्निग्ध है। यह कुछ मीठी, कफनिसारक, मृदुविरेचक और कामोत्तेजक होती है। दूध बढ़ाने के लिए तथा बल वर्धन के हित इसको विशेष रूप से उपयोग में लाया जाता है। हकीमलोग इसका हब्बुलसनोवर नामक योग प्रयुक्त करते हैं। इनके अनुसार यह यकृत और गुर्दे की बीमारियों में उपयोगी है। पुराना प्रमेह, सुजाक और मूत्र की जलन को भी यह दूर करती हैं।

होम्योपैथी मत—होम्योपैथी में शतावरी की यूरोपियन जाति एस्पेरेगस आफिसिनेलिस का प्रयोग प्रधान रूप से हुआ है। यह अनेक प्रकार की दुर्बलताओं में लाभकारी पायी गयी है।

पाश्चात्य मत—शतावरी शीतल, स्नेहन, मूत्रजनन, कामोत्तेजक, बल्य, आक्षेपहर, रसायन, शुक्रजनन एवं अतिसारप्रवाहिकानाशक कही गई है। पशुचिकित्सा में इसका स्नेहन हेतु प्रयोग किया जाता है।

डा. आर. एन. खोरी के अनुसार शतावरी पुष्टिकर, बल देने वाली और दूध बढ़ाने वाली है। यह पित्तविकार वातरोग, ग्रहणी और उदररोगों में दी जाती है। मूत्र की कमी में इसे मूत्र बढ़ाने वाली अन्य औषधियों के साथ मिलाकर दिया जाता है। बलकारक रूप में यह शुक्रक्षय से होने वाली कमजोरियों में तथा क्षयजन्य कास आदि रोगों में दी जाती है।

डा. वा. ग. देसाई के मतानुसार शतावरी मधुर, शीतल, भारी, दुग्धवर्धक, मूत्रल, वीर्यवर्धक, बलकारक और कामोद्दीपक हैं इसमें कुछ संकोचक धर्म भी रहता हैं इसके ये सब धर्म इसकी ताजी जड़ों को उपयोग में लेने से स्पष्ट दिखलाई देते हैं।

श्री नाडकर्णी के अनुसार शतावरी की जड़ समग्र पोषण प्रदान करने वाली एक टानिक रूपी औषधि है। यह आन्तरिक चयापचय जन्य गर्मी को शान्ति प्रदान करती है। 'वेल्थ आफ इण्डिया' के शतावरी एक पौष्टिक औषधि है। इसमें जो रस प्रकृति की मनुष्य को एक अद्भुत देन है। सारे जहाँ कमी है ठीक इसके रसायन पहुँचते हैं रूप में घुलकर सात्मीकरण की स्थिति ला दें जे. एफ. दन्तूर अपनी पुस्तक 'मेडिसिनल प्लान्ट्स इण्डिया एण्ड पाकिस्तान' में शतावरी को पुष्टि बताते हैं।

'वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि सीधे हृदय को प्रभावित कर उसे सामर्थ्य प्रदा है। इससे हृदय की संकोच क्षमता बढ़ती है ए धड़कन के साथ अधिक मात्रा में शुद्धीकृत के अंग प्रत्यंगों में पहुंचकर उन्हें प्रभावित करने

—

सामान्य प्रयोग—

बाह्य (बहिःपरिमार्जन) प्रयोग—

1. नेत्ररोग—शतावरी के शीतकषाय से धोवें/शतावरी को मिट्टी के बर्तन में भिगोवें। सुबह पानी से शाम को धोवें और शाम को भिगोकर सुबह धोवें। यह क्रिया कुछ दिनों तक निरन्तर चाहिए। इससे अभिष्यन्द, अधिमन्थ आदि रोग होता है।

2. कर्णशूल—(कान का दर्द)—शतावरी कुछ गरम कर कान में डालें। साथ में कान के कुछ हल्का सेक भी करना चाहिये। लाभ न हो थोड़ी देर बाद पुनः रस को डालना चाहिये रस डालने पर रस को पुनः थोड़ा गर्म कर लें

3. दन्तरोग—शतावरी, लोध्र, धायपुष्प को समान मात्रा में लेकर अतिसूक्ष्म चूर्ण तैयार इस चूर्ण से दिन में दो बार मंजन करें। दांतों की इससे मिटती हैं और मुख की दुर्गन्ध भी दूर

मंजन प्रातः काल के अतिरिक्त दोनों समय भोजन के बाद भी करना चाहिए।

4. वातव्याधि—(क) वातरोगों में शतावरी तैल या नारायण तैल की मालिश करनी चाहिये और इन तैलों की बस्ति देना चाहिए।

(ख) वातरोगों में शूल के साथ दाह होने पर वायुरोगों में पित्त का अनुबन्ध समझकर वातपित्तशामक औषधि सेवन के साथ ही शतावरी और मुलेठी बारीक चूर्ण को उक्त नारायण तैल में मिलाकर आक्रान्त स्थान पर लेप करना चाहिये और कुछ देर बाद दशमूल क्वाथ से धोना चाहिये।

5. रक्तप्रदर—शतावरी चूर्ण चार ग्राम को 400 मि.लि. पानी में उबालकर ठन्डा कर इसकी उत्तरबस्ति देने से रक्तप्रदर में तत्काल लाभ होता है।

6. स्तन की गांठ—यदि बालक को स्तनपान कराते समय स्त्री के स्तनों पर किसी कारण वश गांठें बन जायें या स्तनों पर सूजन आ जाये तो शतावरी चूर्ण को दूध के साथ सेवन करने के साथ ही शतावरी और बहेड़ा चूर्ण को गोमूत्र में पीसकर स्तनों पर लेप करना चाहिये। इससे लाभ होता है।

7. विसर्प—(क) शतावरी और विदारीमूल को धोये हुये घी में घिसकर लेप करते रहने से विष नष्ट होकर विसर्प दूर हो जाता है।

(ख) शतावरी, गिलोय, वट के प्ररोह और कमल कन्द इनको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर लेप करने से वातपित्तज विसर्प का दाह-शूल आदि दूर होकर रोगी को आराम मिलता है।

8. व्रण—(क) शतावरी के पत्तों का कल्क कर घी में तलकर फिर अच्छी तरह पीसकर उसकी पट्टी बांधते रहने से पुराना घाव भी शीघ्र भर जाता है।

(ख) आघात (चोट) लगने से बाहरी व्रण (सद्योव्रण) होकर रक्त का प्रवाह होने लगता हैं तो ततकाल ही शतावरी चूर्ण में आधा भाग स्फटिक (फिटकरी) चूर्ण मिलाकर व्रण पर बुरक कर स्वच्छ रूई रखकर पट्टी बांध दें। इससे खून बन्द हो जायेगा और व्रण पकेगा नहीं।

9. बालक के शकुनिग्रहजुष्ट होने पर—आयुर्वेद की प्राचीन संहिताग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि बालक ग्रहजुष्ट हो जाते हैं। लोक में भी आज यह धारणा व्याप्त हैं। इसके लिए औषधि सेवन की अपेक्षा दैवव्यपाश्रय औषध को अधिक उपयोग में लाया जाता हैं। इन ग्रहों में एक शकुनिग्रह भी होता है। बालक के जन्म के छठे दिन, छठे माह या छठे वर्ष में शकुनिका बालक को ग्रहण करती है। इस आक्रमण के कारण बालक दिन रात जगता रहता है, वह अपनी मुट्ठी को बांध कर ऊपर की आरे विशेष रूप से देखता रहता है और उसे बुखार भी हो जाता है। उसके शरीर से पक्षियों की सी गंध आती है। वह भयभीत रहता है। क्वचित् बालक के शरीर पर स्फोट भी होने लगते हैं। इसके उपचार में शान्तिकर्म करने चाहिये और नमो भगवते गरूडाय' का जप करने के साथ शतावरी की जड़ों की माला बनाकर बालक के गले में पहना देनी चाहिये।

10. दुर्बलता—शतावरी का घृत शरीर पर मर्दन करते रहने से शरीर की दुर्बलता दूर होकर शरीर पुष्ट बनता है।

11. शिरःशूल—(क) पैत्तिक शिरःशूल जो प्रायः अजीर्ण, अम्लपित्त, आमाशय शोथ, आन्त्रशोथ, जीर्णविबन्ध आदि के कारण उत्पन्न होता है, उसमें शतावरी, कूठ, काले तिल, मुलेठी, नीलकमल, दूब और पुनर्नवा को पीसकर सिर पर लेप करना चाहिये। इससे यह शिरःशूल मिटता है।

12. केशरोग—बालों के घने एवं लम्बे बनाने के लिए शतावरी को दूध में पीसकर इस दूध से बालों को धोना चाहिए। जीर्ण श्वेतप्रदर, गर्भनिरोधक गोलियों का

सेवन, रजोनिवृत्ति के बाद, जीर्ण प्रतिश्याय, हमेशा सिरदर्द बने रहना, मानसिक तनाव, लौह-कैल्शियम की कमी आदि कारणों से बाल गिरने लगते हैं अतः निदान का निवारण भी आवश्यक है।

अन्तः (परिमार्जन) प्रयोग—

1. **प्रमेह**—(क) शतावरी चूर्ण के बराबर मिश्री मिलाकर रखें। दूध के साथ 5-6 ग्राम चूर्ण सेवन करें।

(ख) शतावरी, गोखरू, चन्दन चूरा, आंवला और गुलसकरी के चूर्ण में समान मात्रा में मिश्री मिलाकर सेवन से प्रमेह दूर होते हैं।

(ग) शतावरी, शीतल चीनी, छोटी इलायची, वंशलोचन, मुलेठी, आंवला और हरड़ सब बराबर लेकर चूर्ण बनाकर बराबर मिश्री मिलाकर 6-6 ग्राम रात में सोते समय ठन्डे पानी से लेने पर स्वप्नप्रमेह (स्वप्नदोष) की शिकायत दूर होती है।

(घ) शतावरी के रस में दूध मिलाकर पीने से सभी प्रकार के प्रमेहों में लाभ होता है। इन योगों के सेवन के साथ ही प्रमेह रोगी को नित्य प्रातः खुली हवा में अपनी शक्ति अनुसार घूमना भी चाहिये। इससे विशेष लाभ होता है।

2. **प्रदर**—(क) शतावरी चूर्ण, नागकेशर चूर्ण और मुलेठी का चूर्ण 2-2 ग्राम (मिश्रित चूर्ण) दिन में तीन-चार बार ठन्डे पानी के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर का शमन होता है।

(ख) शतावरी चूर्ण, पठानी लोध चूर्ण और समुद्रफेन चूर्ण बराबर लेकर मिश्रित करें। इनके बराबर मिश्री मिला कर रखें। यह चूर्ण 6 ग्राम सेवन कर ऊपर धारोष्ण गोदुग्ध पीवें। इससे रक्तप्रदर में लाभ होता है।

(ग) शतावरी चूर्ण को मधु के साथ चाटने से श्वेतप्रदर और तण्डुलोदक से सेवन करने पर रक्तप्रदर में लाभ होता है। पित्त की प्रबलता में शतावरी स्वरस मधु के साथ सेवन करावें।

(घ) शतावरी चूर्ण को बारह घण्टे भिगोक[र] बाद इसका बनाया गया क्वाथ प्रातः सायं पिल[ाने] पर प्रदर दूर होता है और शरीर सबल हो जाता [है।]

(ङ) शतावरी चूर्ण 10 ग्राम को 250 मि[ली] में उबाल कर इसमें मिश्री मिलाकर पिलाते र[हने] सभी प्रकार के प्रदर रोग का निवारण होता है। [इस] का कम से कम दो सप्ताह तक अवश्य सेव[न] चाहिए।

3. **बन्ध्यत्व**—शतावरी आदि से निर्मित [...] बन्ध्यत्व की सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इसे प्रातः सा[यं] साथ या भोजन के साथ सेवन करने से गर्भा[शय] बीजाशय की विकृति दूर होकर गर्भधारण होत[ा है।]

4. **ज्वर**—(क) शतावरी स्वरस में गि[लोय] स्वरस और गुड़ मिलाकर पीन से वातज्वर नष्ट [होता है।]

(ख) शतावरी, गिलोय, मुलेठी, खस, [...] और चन्दन का क्वाथ मिश्री तथा मधु मिलाक[र] भ्रमयुक्त पित्त ज्वर दूर होता है।

(ग) शतावरी, मुलेठी और गिलोय के [...] पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करने से वातपि[त्त] शमन होता है।

5. **कामोत्तेजनार्थ बाजीकरण**—(क) [...] तालमखाना, गोखरू, कौंच के बीज, नाग[...] अतिबला के 3-3 ग्राम चूर्ण को दिन में दो बा[र] साथ दें। इससे शुक्राणु की भी वृद्धि होती है।

(ख) शतावरी, गोखरू, कौंच के बीज, [...] बीज का चूर्ण सबके बराबर मिश्री मिलाकर [...] चूर्ण 5-5 ग्राम दूध के साथर सेवन करने से [...] तरलता दूर होकर कामोत्तेजना बढ़ती है।

(ग) शतावरी, बीजबंद, गोखरू, कौंच बी[ज] मूसली, कालीमूसली, सोंठ, सालममिश्री, [...] गिलोय, विदारीकंद और वंशलोचन इन सबक[ो] मात्रा में लेकर वस्त्रपूत चूर्ण तैयार कर लें। इ[...]

बर मिश्री पीसकर मिला लें। दूध के साथ 5-7 ग्राम र्ण एक माह तक सेवन करें। इससे धातुपुष्ट होकर मोत्तेजना बढ़ती है।

(घ) शतावरी, सालमपञ्जा (मुञ्जातक), विदारी कंद र वाराहीकंद (गेंठी) इन चारों वनौषधियों के कन्दों चूर्ण तैयार कर रात में सोते समय 7-8 ग्राम चूर्ण को य या बकरी के दूध के साथ सेवन करने पर समस्त रुष रोगों का शमन होता है। युवावस्था प्रारम्भ होने से कर 60-70 वर्ष की अवस्था तक इसे बाजीकरण हेतु न करें।

(ङ) शतावरी, असगन्ध, गोखरू, रक्तपुनर्नवा, गंगेरन जड़ और सफेद मूसली के समान भाग चूर्ण में शक्कर मिला कर सेवन करने से पौरूष शक्ति एवं रिक शक्ति बढ़ती है।

(च) शतावरी के चूर्ण की दूध में खीर बनाकर या का पाक बनाकर सेवन करने से मनुष्य की काम क्ति जाग्रत होती है तथा उसका वीर्य बढ़ता है।

(छ) शतावरी, सफेद मूसली, गोखरू, कौंच के ज छोटे, कंघी की छाल, तालमखाना इन छः षधियों को यवकूटकर दूध में डालकर पकावें और में दो छुहारों में जरा सी अफीम (40 मि.ग्रा.) रखकर ड़ दें। एक लिटर 250 मि.लि. दूध का 375 मि.लि. रह जाय तब इसे उतार कर 25 ग्राम मिश्री मिलाकर लेना चाहिये। इससे संभोगशक्ति दुगनी हो जाती है।

(ज) शतावरी, खजूर, मुनक्का, उड़द की दाल, च के बीज और महुआ के फूलों को दूध में पकाकर में घी, शक्कर मिला भात साथ खावें यह उत्तम वृष्य

6. रसायनार्थ—(क) शतावरी, गिलोय, शालपर्णी, लीमुसली और गोरखमुण्डी का समभाग चूर्ण 10 प्रतिदिन प्रातः काल घृत शक्कर के साथ सेवन ने से अकाल मृत्यु दूर हो जाती है तथा कान्ति व बुद्धि ती है।

(ख) शतावरी घृत में शक्कर या शहद मिलाकर सेवन करते रहने से शरीर निरोग एवं सबल बना रहता हैं इसके सेवन से शरीरिक कृशता, शुक्र की निर्बलता, दृष्टिं मांद्य, हृदय की निर्बलता आदि शिकायतें उत्पन्न नहीं होती है।

आमाशय व्रण—(क) शतावरी चूर्ण 2 ग्राम, मुलेठी चूर्ण एक ग्राम को शतावरी घृत या शतावरी क्षीर पाक के साथ देने से आमाशय की अम्लप्रति क्रिया कम होती है तथा व्रण का रोपण होता है।

(ख) शतवारी चूर्ण को पत्तागोभी के रस के साथ देना भी इसमें हितकर है। पत्ता गोभी का रस क्षारीय होता है। इससे अम्लता कम होती है और व्रण रोपण की क्षमता बहुत अच्छी होती है। शतावरी के साथ में यह कार्य बहुत सफलता से होता है।

8. अम्लपित्त—(क) शतावरी चूर्ण दूध के साथ सेवन करें।

(ख) शतावरी चूर्ण को चूने के पानी के साथ सेवन करें।

(ग) शतावरी चूर्ण को सर्जक्षार, कदलीक्षार, शंखभस्म, कपर्दभस्म आदि में से किसी के साथ मिलाकर सेवन करें।

(घ) शतावरी चूर्ण को निम्बू के रस में मधुरक्षार (सोड़ा बाईकार्ब) और पानी मिलाकर इस अनुपान के साथ सेवन करें। नींबू का रस और क्षार मिलाकर मधुरीभूत (न्यूट्रलाइज) हो जाते हैं। (क्षारो हि याति माधुर्यमम्लद्रव्योपसंहितः चरक)। दोनों के संयोग से क्षार की क्षारता और अम्ल की अम्लता नष्ट हो जाती है।

(ङ) शतावरी घृत या नारायण तैल 10-12 ग्राम को दूध में मिलाकर सेवन करने से अम्लपित्त शान्त होता है।

(च) शतावरी, इलायची, हरीतकी, कुटकी और पटोलपत्र, के समभाग चूर्ण को आंवले के मुरब्बे या ठन्डे पानी के साथ दें।

9. पित्ताशय शूल—सुबह शतावरी का रस शहद मिलाकर तीन-चार माह तक पीते रहने से पित्ताशय शूल का शमन होता है। इससे पित्ताशय दाह, हृदयशूल, बस्तिशूल, गर्भाशय शूल आदि में भी लाभ होता है।

10. उदरशूल—शतावरी, मुलेठी, खरैटी, कुश और गोखरू समान भाग लेकर क्वाथ तैयार कर लें। इस क्वाथ को ठंडाकर इसमें गुड, शहद या शक्कर मिलाकर पिलावें। इससे पैत्तिक उदरशूल, दाहयुक्त ज्वर और रक्तपित्त आदि रोगों में भी अच्छा लाभ मिलता है।

11. भ्रम—(चक्कर आना)—शतावरी, खिरेंटी की जड़ तथा मुनक्का 5-5 ग्राम लेकर 125 मि.लि. दूध और 500 मि.लि. पानी में पकाकर दूध ही बाकी रहने पर उतार छानकर मिश्री मिला पीने से चक्कर आना दूर होता है। दूध में मुनक्का डालने से पहले इनके बीज निकाल कर पृथक् कर देने चाहिये।

12. दाह—शतावरी, गिलोय और आँवले के क्वाथ में शहद मिला कर पिलाने से सर्वांगदाह का निवारण होता है।

13. शुक्रकीटन्यूनता—शतावरी, असंगध, सफेद मूसली और आंवला को समान मात्रा में लेकर चारों का कपड़छन चूर्ण बना लें। यह चूर्ण 4-4 ग्राम दिन में दो बार पानी के साथ सेवन करें। इसके सेवन करने के एक घन्टे बाद दूध पीवें।

14. सन्धि वात—शतावरी चूर्ण 3 ग्राम, असगन्ध चूर्ण एक ग्राम और त्रिफला चूर्ण 2 ग्राम कवोष्ण जल के साथ दिन में दो बार देने से लाभ होता है।

15. विसर्प—शतावरी, गिलोय, त्रिफला, नीम की छाल, मुलेठी और मुनक्का का क्वाथ ठन्डाकर पीने से वातपित्तज विसर्प में लाभ होता है।

16. मसूरिका—शीतला निकलने पर शतावरी का क्वाथ पिलाते रहने पर इसका विष अधिक फैल कर परेशान नहीं करता है।

17. स्नायुक (नाहरू)—बृं. बूटी प्रचार॰ ने लिखा है कि 30 ग्रम शतावरी और एक ग्राम॰ का चूर्ण, इन दोनों को मिलाकर आधा लिटर पा॰ क्वाथ करें जब 60 मि.लि. पानी शेष रह जाय॰ छानकर दिन में दो बार सुबह शाम मंदोष्ण पि॰ नहरूवा, पूयमेह और संखिये के विष की विकृ॰ है।

18. रक्तपित्त—(क) शतावरी, त्रिफ॰ खंभारी की छाल और फालसे को समान भाग ले॰ बनाकर सेवन करने से रक्तपित्त शीघ्र ही मि॰

(ख) शतावरी और गोखरू 15-15 ग्राम ले॰ 250 मि.लि. दूध तथा एक लिटर पानी मिलाक॰ पानी के जल जाने एवं दूध मात्र शेष रहने पर छ॰ से मूत्रमार्ग से पीड़ा के साथ निकलने ॰ (अधोगरक्तपित्त) बन्द हो जाता है।

(ग) शतावरी चूर्ण 6 ग्राम, बबूल के को॰ नग 12, नीम की सीकोंका पिछला हिस्सा नग 12 ताज़ा 3 ग्राम को पानी में औटाकर चतुर्थांश जल॰ पर शहद मिलाकर तीन मात्रा कर लें और दिन में॰ दें। इससे तीन-चार दिनों में ही लाभ होकर॰ बिलकुल शान्त हो जाता है। रक्तपित्त के खून॰ हेतु कौऐ को खिलाना चाहिये। कौऐ यह खून॰ हैं।

19. रक्त विकार—(क) शतावरी मूल॰ (पंवाड) मूल और बला मूल को समान मात्रा॰ इनका क्वाथ बनाकर (32 गुने जल में अष्ट॰ जल) इसमें मिश्री और इलायंची मिलाकर पि॰

(ख) शतावरी स्वरस में दुगनी शक्कर॰ शर्बत बनावें। फिर उसमें केशर, जायफल, जावि॰ छोटी इलायची चूर्ण मिलाकर (मात्रा-शर्बत 40॰ चूर्ण 500 मि.ग्रा.) 42 दिनों तक पीने से रक्तविकृ॰ विष मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है और रक्त शुद्धि॰ है। शर्बत में दूध या पानी भी मिलाया जा सक॰

20 **गर्भपात**—(क) गर्भ गिरने की स्थिति में र्भाशय, कटी, वंक्षण, बस्ति इन स्थानों में पीड़ा होने गती है और योनि से रक्तस्राव होता है तब तत्काल केवल ड़ा होने पर (रक्त स्राव नहीं होने पर) शतावरी, क्षीर काकोली और पाषाण भेद तीनों 5-5 ग्राम लेकर 250 मि. लि. दूध और 250 मि.लि. पानी में औटाकर दूध मात्र शेष ह जाने पर छानकर पिलावें। इससे स्त्री की पीड़ा नष्ट ती है और गर्भ भी वृद्धि को प्राप्त होता है। साथ में ही र्भ के व्यवस्थित रहने पर कच्चे गूलर के फल से ाधित गोदुग्ध के साथ भोजन करावें।

(ख) इसी प्रकार विदारि गन्धादिगण की औषधियों से उपलब्ध औषधियों शालपर्णी, शतावरी, विदारीकंद, खरू, सारिवा आदि से सिद्ध दुग्ध भी पूर्ववत् लाभकर ताहै।

21. **सोमरोग (स्त्रियों का बहुमूत्र)**—शतावरी और दारी कन्द को समान मात्रा में लेकर इनका कपड़छन र्ण बनालें। पांच-पांच ग्राम चूर्ण सुबह-शाम दूध के या नी के अनुपान के साथ सेवन करावें। इस चूर्ण को गभग एक माह तक सेवन करना चाहिये और साथ पके ये केले 5-7 नित्य खाते रहना चाहिये। इससे शीघ्र लाभ ता है।

22. **अनिद्रा**—भैंस के दूध में शतावरी चूर्ण डालकर की खीर बनाकर फिर इस खीर में घृत मिलाकर अनिद्रा रोगी को खिलाने से नींद आती है।

23. **गर्भवती हेतु**—सुबह-शाम एक-एक चम्मच र्ण (3-4 ग्राम) दूध के साथ यदि गर्भवती बराबर सेवन रती रहे तो वह स्वस्थ रहती है। इससे गर्भावस्था में तस्राव होने की संभावना नहीं रहती है। इसके सेवन से र्भ का विकास भी ठीक तरह से होता है तथा प्रसवोपरान्त ता के स्तनों में दूध की न्यूनता नहीं रहती है।

24. **दुग्धाल्पता**—(क) शतावरी को दूध में पीसकर ने से स्त्रियों के स्तनों में दूध बढ़ जाता है।

(ख) शतावरी, मुलहठी और विदारीकंद तीनों को बराबर मात्रा में लेकर बारीक चूर्ण बनालें। यह 10-15 ग्राम चूर्ण आधा लिटर दूध में मन्दाग्नि पर आधा घण्टे तक उबालकर मिश्री मिलाकर पिलावें।

(ग) शतावरी, चावलों का चूर्ण और जीरा इनके एकत्र चूर्ण को गाय के दूध के साथ निरन्तर 5-7 ग्राम सेवन करने से युवतियों के स्तन युगल से दूध की धारायें बहने लगती हैं।

25. **आमवात**—शतावरी, गिलोय, नागरमोथा, पिप्पली, हरड़, बच और सोंठ का क्वाथ दिन में दो बार बनाकर आम वात के रोगी को पिलाने से उसे शीघ्र लाभ मिलने लगता है।

26. **अपस्मार**—शतावरी स्वरस को दिन में दो बार पीने तथा दूध-भात खाते रहने से 21 दिनों में अपस्मार दूर होता है।

27. **योषापस्मार**—प्रातः सायं शतावरी क्वाथ का सेवन करने से, भोजन के साथ शतावरीघृत का सेवन करने से तथा शतावरी तैल (नारायण तैल) की मालिश करते रहनेसे योषापस्मार (हिस्टिरिया)से पीड़ित रुगणा को लाभ मिलता है। इस व्यवस्था से अन्य वात रोगों में भी लाभ होता है।

28. **अतिस्राव**—गीली शतावरी को दूध के साथ पीस-छानकर पीने से रक्तातिसार मिटता है। दूध बकरी का होना चाहिये। पथ्य में दुग्धाहार ही लेना चाहिये।

29. **अविकसित वक्ष**—जिन स्त्रियों की यौवनावस्था आने पर भी वक्ष का उपयुक्त विकास नहीं हो पाया हो उन्हें शतावरी चूर्ण को 3-3 ग्राम की मात्रा में सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करते रहने चाहिये। इससे वक्ष का विकास होकर वक्ष सुडौल हो जाता है।

30. **कास**—(क) शतावरी, वासापत्र और मिश्री को औटाकर पीने से सूखी खांसी मिटती है।

(ख) शतावरी के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण मिलाकर पिलाने से वातज कास और उदरशूल मिटते हैं।

31. उरःक्षत—शतावरी, बला, असगन्ध, पुनर्नवा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी के समभाग चूर्ण में से 5-6 ग्राम चूर्ण दिन में तीन-चार बार शर्करायुक्त अजादुग्ध के साथ सेवन करने से उरःक्षत में लाभ होता है। साथ में भोजन के साथ शतावरी घृत भी सेवन करें।

32. स्वरभेद—(क) शतावरी, खरेंटी और मिश्री के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से स्वरभंग मिटता है।

(ख) शतावरी और कुलिंजन का चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन करने से कफ प्रकोप जन्य स्वर भेद दूर हो जाता है।

(ग) शतावरी और चावलों की खीलों के चूर्ण में शक्कर और शहद मिलाकर चाटने से भी स्वरभेद में आराम मिलता है।

33. दुर्बलता—विधायरा मूल चूर्ण में शतावरी स्वरस की सात बार भावना देकर इस चूर्ण को सुखाकर रखें। एक-एक ग्राम यह चूर्ण नित्य प्रातः सायं दूध या शहद के साथ सेवन करने से देह में बल की वृद्धि होती है। इससे स्मरण शक्ति की भी वृद्धि होती है।

34. भीतरी आघात पर—शतावरी चूर्ण 3 ग्राम, शुभ्रा भस्म एक ग्राम ऐसी तीन मात्रायें शक्कर के साथ दिन में तीन बार सेवन करें। औषधि सेवन के एक घन्टे बाद गर्म दूध में एक चम्मच शतावरी घृत डालकर भी साथ में सेवन करें।

35. नक्तान्ध्य (रात में दिखाई न देना)—शतावरी के कोमल पत्तों का घी में शाक बनाकर खिलाते रहने से रतौंधी दूर होती है।

36. जीर्ण वृक्क प्रदाह—इस रोग में पेशाब के साथ पूय, लषीका, रक्त और कभी-कभी श्लैष्मिक कला के टुकड़े निकलते रहते हैं। पेशाब गंदला और दुर्गन्ध युक्त होता है। इस रोग में मुंह पर कुछ शोथ भी आ जाता है। इस रोग में शतावरी, गिलोय, गोखरू और पुन[र्नवा का] क्वाथ तैयार कर प्रातः सायं तीन-चार मास तक देते रहने से लाभ प्राप्त होता है।

37. मूत्रकृच्छ्र—(क) शतावरी मूल के [...] शहद और शक्कर मिलाकर पीने से त्रिदोषजन्य मू[त्रकृच्छ्र] मिट कर मूत्र खुलकर आने लगता है।

(ख) शतावरी स्वरस, आंवला स्वरस और [...] की जड़ के रस 10-10 मि.लि. लेकर उसमें [...] यवक्षार मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघा[त] दूर होकर मूत्र खुलकर आने लगता है।

38. पौरुष ग्रन्थि प्रदाह—शतावरी, गोख[रू] एरण्डमूल की छाल को समान मात्रा में लेकर यव[कुट कर] 15 ग्राम लेकर द्रव्यों से 16 गुना जल डालकर [...] जब आठवां हिस्सा जल बाकी रहे तब बर्तन को [...] उतारकर थोड़ा गरम रहते ही छानकर पीने से ला[भ होता] है।

39. अश्मरी (पथरी)—शतावरी के स्वरस में [...] भाग गाय का दूध मिलाकर पिलाने से पथरी गलने [लगती] है। यह श्वान विष (पागल कुत्ते के काटने पर) [...] लाभप्रद है। स्वरस के अभाव में शतावरी के क्वाथ [...] को भी उपयोग में ला सकते हैं। पुराना रोग हो [तो] तीन-चार माह तक सेवन करना चाहिये।

40. सुजाक—20 ग्राम शतावरी को 250 [...] जल में औटावें। आधा जल शेष रहने पर उतार [लें] पूरी तरह से ठन्डा हो जाने के बाद इसमें शहद या [...] मिलाकर पिलानें से सुजाक के रोगी को लाभ हो[ता है]।

41. अर्श—अर्श के मस्से जो बाहर से नहीं दे[खते] वे शतावरी का चूर्ण 2-4 ग्राम मांस तक दूध के साथ [सेवन] करने पर दूर हो जाते हैं। गर्भिणी के रक्तार्श में यह [...] लाभदायक है।

42. अलर्क विष—शतावरी 20 ग्राम, काली [मिर्च] 31 नग को जल में घोटकर पिलावें। इससे पागल [...]

काटने के उपरान्त हुये उपद्रवों की कम संभावना रहती है। यह प्रयोग कुत्ता काटते ही 4-5 दिनों तक नित्य सेवन करावें।

विविध कल्प—

क्वाथ—

1. शतावरी, काश, कुशा, नागरमोथा, आंवला, धनियां, सोंठ और पित्त पापड़े का क्वाथ मधु मिलाकर लेने से अधिक प्यास लगना, मंद, मोह और मूर्च्छा आदि रोगों का नाश होता है। —*क्वा. म. मा.*

2. शतावरी, कास, कुश की जड़, गोखरू, विदारीकन्द, शालिधान्य की जड़, ईख की जड़ और कसेरू समान भाग लेकर क्वाथ तैयार करें। इस क्वाथ के शीतल हो जाने पर इसमें शहद मिलाकर पीने से दाह और पीड़ायुक्त मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है। —*च. द.*

3. शतावरी, पोखरमूल, नागरमोथा, हरड़, गिलोय, अतीस, रास्ना, त्रिफला, वासा, देवदारू, सोंठ और धमाशा समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। इस शतावर्यादि दशांग क्वाथ के सेवन करने से वात व्याधि में लाभ होता है। —*ग. नि.*

कल्क—शतावरी, बच, सोंठ, रास्ना, सफेद खैर, सल्लकी वृक्ष का गोंद (या छाल), दशमूल, खरेंटी, बेल की छाल, तुम्बरू (धनिया भेद) और गिलोय समान भाग लेकर सबको पानी के साथ पीसकर कल्क (पिट्टी सी) बनावें। इसे घी में मिलाकर सेवन करने से शरीर गत वायु दूर होती है। मात्रा—5 ग्राम। —*अ. सं.*

चूर्ण—शतावरी, गोखरू, केंवाच की बीज, गंगेरन के बीज, बरियारा के बीज और तालमखाना के बीज प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। यह 10 ग्राम की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करने से स्त्री के साथ रमण करते हुए मनुष्य नहीं अघाता। —*शा. सं.*

घृत—1. शतावरी का रस 2 लिटर 560 मि.लि., दूध 2 लिटर 560 मि.लि., गोघृत एक लिटर 280 मि.लि. तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुनक्का, मुलहठी, मुदपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द और रक्त चन्दन इन 12 औषधियों को समभाग लें। इन सब 12 औषधियों को मिलाकर किया हुआ कल्क 320 ग्राम लें। सबको मिलकर मन्दाग्नि पर पाक करें। पाक से पूर्व शतावरी के रस के बराबर पानी भी मिलालें। घृत सिद्ध होकर ठंडा होने पर इसमें शक्कर और शहद 160-160 ग्राम मिलाकर एक जीव कर लें। यह 5 ग्राम से 12 ग्राम तक दूध के साथ सेवन करें।

यह घृत उत्तम पौष्टिक, शीतवीर्य और बाजीकरण है। रक्तपित्त, वातरक्तऔर क्षीणशुक्र रोगियों के लिए यह अति हितकारक है। अंगदाह, शिरोदाह, ज्वर, पित्त प्रकोप, योनिशूल, दाह, पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों को शमन कर बल, वीर्य, वर्ण और अग्नि की वृद्धि करता है तथा शरीर को पुष्ट करता है। —*भै. र.*

2. शतावरी का कल्क 320 ग्राम, शतावरी का रस, दूध और गोघृत प्रत्येक एक लिटर 280 मि.लि. लेकर सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर यथाविधि घृत सिद्ध करें। यह 10-10 ग्राम घृत दिन में दो बार भोजन के प्रारम्भ में दें। यह घृत वातरक्त नाशक उत्तम योग है। पित्त प्रधान लक्षणयुक्त शूल, अम्लपित्त, दाह, रक्तविकार और हृदय की निर्बलता सह वातरक्त में यह उपयोग में लाया जाता है। —*नि. र.*

3. शतावरी, काश, कुश, गोखरू, विदारीकन्द, ईख के मूल, आंवला इन सात औषधियों को समभाग मिलाके जल के साथ पीसकर कल्क करें। फिर यह कल्क चार किलो, गोघृत 16 किलो और शतावरी आदि औषधियों का क्वाथ 80 लिटर मिलकर मन्दाग्नि द्वारा घृत सिद्ध करें। फिर तुरन्त पात्र को अग्नि से उतारकर घृत को छान लेवें और कांच की बरनियों में डालकर सुरक्षित रखें। सुबह-शाम शहद और मिश्री के साथ 10-12 ग्राम घृत सेवन करते रहने से दारूण मूत्र कृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी,

प्रमेह, स्त्रियों के गर्भाशय विकार, पुरुषों के धातु विकार, रक्तपित्त, रक्तस्राव और सोमरोग दूर होकर शरीर पुष्ट बनता है। —*बं. से. सं.*

शतमूल्यादि लौह—शतावरी, शक्कर, धनिया, नागकेशर, सफेद चन्दन, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, नागरमोथा, चित्रकमूल और सफेद तिल ये 15 औषधियां 10–10 ग्राम और लौह भस्म 150 ग्राम लें। पहले काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें फिर लौह भस्म मिलाकर खरल करें। यह रक्तपित्त की उत्तम औषधि है। दिन में तीन बार 375 मि.ग्रा. की मात्रा से वासास्वरस और शहद के साथ चाटकर ऊपर बकरी का दूध पीवें। यह तृष्णा, दाह, ज्वर हर भी है। —*भै. र.*

शतावरी मण्डूर—शतावरी का स्वरस 320 ग्राम, दही 320 ग्राम, दूध 320 ग्राम, शुद्ध मण्डूर का चूर्ण 320 ग्राम, गोघृत 160 ग्राम लेकर सबका पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर उष्ण दुग्ध के अनुपान से 500 मि.ग्रा. भोजन के आदि तथा मध्य में सेवन करें। इससे वातपित्त जन्य उदरशूल तथा परिणाम शूल नष्ट होते हैं। —*च. द.*

पाक—

1. शतावरी को दूध के साथ पीसकर इसकी पिष्टी का कल्क तैयार कर लें। कल्क से चौगुना दूध और दूध के बराबर गाय का घी तथा कल्क के समभाग मिश्री लेकर सबको एकत्र पकावें। पाक की चाशनी होने पर थाल में जमा दें या अवलेह जैसा ही रहने दें। नित्य 20–25 ग्राम पाक सेवन करने से रक्तपित्त, क्षय, श्वास आदि मिटते हैं। —*पाक प्रदीप*

2. शतावरी का चूर्ण एक किलो लेकर इसे चार लिटर दूध में पकावें। खोया हो जाने पर उसमें जावित्री, लौंग, काली मिर्च, नागरमोथा, सेंमल का गोंद, आमला, पीपल, दाल चीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, कोंच बीज और अजवायन का चूर्ण 10–10 ग्राम, केशर 5 ग्राम तथा भीमसेनी कपूर 3 ग्राम मिला दें। फिर इन सबको घृत में मंद अग्नि पर भूनकर 5 किलो मिश्री की चाशनी में मिला पाक जमा दें। इसके ... वीर्यवृद्धि होती है। इसके सेवन से पित्तज ... वीर्यक्षीणता जन्य नपुंसकता दूर होती है। —*वृ. ...*

3. शतावरी, चकवड़, (चक्रमर्द–पबाड़) और बला (खिरैंटी) की जड़ प्रत्येक 125 ग्रा... 540 ग्राम, घी 250 ग्राम, मिश्री एक किलो ... लौंग, इलायची, जायफल, जावित्री और गोखरू का चूर्ण 10–10 ग्राम, किशमिश 250 ग्राम और ... की मींगी 250 ग्राम। पहले शतावरी, चकबड़ और ... की जड़ों को पीस–कूट–छान कर और 250 ... कड़ाही में चढ़ाकर, इस चूर्ण को उसमें तल लें ... खोआ भूनकर इसी में मिला दें। मिश्री की ... बनाकर, चाशनी में खोवे में मिली दवाओं को ... और ऊपर से लौंग से गोखरू तक की पाँचों दवा... चूर्ण भी इसमें मिला दें और शेष में साफ की हुई ... और कतरे हुये बादाम मिलाकर, एक थाली में ... को डाल दें। पर पाक थाली में डालने से पहले ... घी चुपड़ दें। शीतल होने पर चाकू से कतलियां ... और साफ बर्तन में रख दें। सुबह–शाम इसमें से ... ग्राम पाक खाकर ऊपर से गाय का धारोष्ण दू... इसका सेवन करने से शरीर पुष्ट बलवान होता है ... साफ होता है। जिनके शरीर में खून और धातु की ... हो, वे इस पाक का जरूर सेवन करें।

—*चिकित्सा चन्द्रोदय*

शतावरी गुग्गुलु—

1. शतावरी, गिलोय, गन्ध प्रसारणी, गोखरू, सौंफ, अजवायन, रास्ना, असगन्ध, पद्माक, ... सौंठ ये सब औषधियां 50–50 ग्राम, शुद्ध गूगल ... ग्राम। इन सब औषधियों का महीन चूर्ण करके ...

घृत के साथ मिलाकर कूटकर 8-8 ग्राम की गोलियां लें। एक-दो गोली तक गरम जल या गरम दूध के साथ न करें। यह सब प्रकार के वातरोग विशेषकर पक्षाघात नाभदायक है। —र. र. स.

2. ताजा शतावरी का स्वरस पकाकर गाढ़ा किया 250 ग्राम, शोधित शिलाजीत 100 ग्राम और धित गूगल 300 ग्राम। तीनों को मिलाकर और उत्तम त दे दे कर खूब जोर से खूब कुटाई कर 500-500 ग्रा. की गोलियां बनालें। दिन में तीन बार एक-एक मिश्री मिले हुये गरम दूध के साथ दें। इससे वीर्यक्षय पक्षाघात में लाभ होता है।

—धन्व. जरा व्याधि चि.

—

1. शतावरी, बला, कंघी, सरिवन, पिठवन, एरण्डमूल, गन्ध, गोखरू, बेलगिरी, कास की जड़ और पियाबांसा क 60-60 ग्राम लेकर जौ कुट कर जल 3 लिटर 250 ले. में डालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान इस क्वाथ में तिल तैल 650 मि.लि., दुग्ध 650 मि. शतावरी स्वरस 650 मि.लि., जल 650 मि.लि., इन द्रव्यों को मिलाकर रख लें। शतावरी, देवदारू, मांसी, तगर, सफेद चन्दन, सौंफ, बला, कूठ, बड़ी यची, छरीला, कमल, बाराहीकन्द, मेदा (अभाव में वरी), मुलेठी, काकोली (अभाव में असगंध) क (अभाव में विदारीकन्द) प्रत्येक 10-10 ग्राम ले कल्क बनालें तथा उपर्युक्त मिश्रण में डालकर मंद पर पकावें। परिपाक हो जाने पर छान कर रखलें। तावरी तैल के सेवन से पुरुष वृषवत् संभोग सामर्थ्य करता है और स्त्री पुत्र प्राप्त करती है। योनिशूल, शूल, शिरःशूल, पाण्डु-कामला, विषदोष, गृधृसी, वृद्धि शोष, प्रमेह, दाह, वातरक्त वातपैत्तिक रोग, पित्त, रक्तप्रदर आदि रोग इससे मिटते हैं।

—शा. सं.

2. शतावरी, असगन्ध, क्षीरकाकोली तथा एरण्ड के बीज 60 ग्राम लेकर एक लिटर गोदुग्ध तथा 250 मि. लि. तिल तैल के साथ यथाविधि तैल पाक करें। इस तैल को कानों पर लगाने से कर्णपाली सुदृढ़ होती है।

—च. द.

पेटेन्ट प्रयोगों में शतावरी—

झन्डू फार्मा. के दो महत्वपूर्ण उत्पादन है। ये दोनों ग्रन्यूल्स के रूप में मिलते हैं। एक है—'जेस्टोन,' जिसमें शतावरी, अश्वगन्धा, नागकेशर, यष्टिमधु, बलामूल, गोखरू आदि है। दिन में दो-तीन बार दो चम्मच दवा दूध में मिलाकर दी जाती है। इससे गर्भाशय को बल मिलता है। गर्भ धारणा से लेकर प्रसूति तक लेने की निर्दोष टानिक है। दूसरी दवा है—शतावरेक्स' (शतावरी ग्रन्यूल्स)। यह विशेषतया ऐसी प्रसूता के लिए उपयोगी है जिसके स्तनों से दूध कम उतरता है। युवा लड़कियों के वक्षस्थल को बढ़ाकर यह आकर्षक बनाती है। पुरुषोंके लिए भी यह पौष्टिक एवं शुक्रवर्धक है।

झन्डू की भाँति साण्डू के भी इसी प्रकार के दो कल्प हैं। गर्भवती के लिए जो उपयोगी है वह है—प्रेगयुटेरो सीरप। इसमें शतावरी, असगन्ध, मुलेठी, लोध्र, ब्राह्मी, वासा, बला आदि है। स्त्रियों के दूध बढ़ाने के लिए है—शतावरी कल्प। दोनों ही अच्छे उपयोगी योग हैं।

सभी आयु की स्त्रियों के लिए उपयुक्त योग है— धूतपापेश्वर का 'अभ्रलौह' (टेब.)। इसमें लौह भस्म 125 मि. ग्रा., अभ्रक भस्म 50 मि.ग्रा और शतावरी 100 मि.ग्रा. है। शेष आमलकी, हरीतकी, विभीतक, सोंठ, मिर्च, पीपल, विडंग, चित्रक, मुस्तक 10-10 मि. ग्रा. है। यह स्त्रियों की सभी प्रकार की तकलीफों को दूर करने वाला योग है। वैद्य सी. नूतन नावर के अनुसार—मेरे पास आयी हुई रजोदर्शन की तक्रार करने वाली कन्या, रजोनिवृत्ति की तक्रार करने वाली वयस्का स्त्री, पाण्डुरोग से बाधित प्रौढ़ महिलायें, अल्पार्तव, अत्यार्त्तव, कष्टार्तव

की रुग्णतयें, गर्भिणी पाण्डु, गर्भिणी शोथ (पाण्डुजन्य) इन सभी रुग्णों में बहुत ही सुन्दर लाभ अभ्रलोह कल्प से मिला है।

अविकसित स्तनों को पूर्ण विकसित करने, असमय शिथिल हुये स्तनों को पूर्ववत् सुगठित करने हेतु जे. पी. (जमना फार्मा.) का 'ग्रेस मसाज आयल' भी आता है जिसमें शतावरी, मेंहदी, अश्वगन्धा, धतूरा पत्ती, चमेली पत्ती आदि है। वक्ष पर नीचे से ऊपर की ओर हाथ ले जाते हुये हल्के हाथ से इस तैल की मालिश करनी चाहिये।

कौशिक आयुर्वेद भवन सालासर (राज.) द्वारा निर्मित 'लेडीटोन सीरप' रक्तप्रदर, श्वेत प्रदर, रजोनिवृत्ति काल की अनियमितता जनित समस्त गर्भाशयिक विकारों को दूर कर नारी सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य वर्धक है। इसमें शतावरी, अशोक, अनारदाना, अर्जुन, मुनक्का, चन्दन, मुलेठी आदि हैं। व्याधि जनित दुर्बलता, रक्ताल्पता, स्नायुदौर्बल्य, अम्लपित्त आदि में रसायन कल्प सीरप' उपयोगी है। इसमें शतावरी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, अष्टवर्ग, मूसली आदि हैं। युवा स्त्री-पुरुषों को पर्याप्त पोषण देने वाला इसी औषध निर्माणशाला का एक और योग है—'अरविनटान सीरप' है। इसमें भी शतावरी के अतिरिक्त आमलकी, अष्टवर्ग, अश्वगन्धा, और अरविन्दासव है। शिव आयुर्वेद रसशाला भिलाई के ''सिकलीन' (रक्तवर्धक) टेब. में भी शतावरी की भावना है।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ के स्त्री सुधा सीरप में शतावर, अशोक, जीरा, मोथा, सोंठ, चन्दन, रसोंत, मुनक्का आदि है। यह सभी प्रकार के प्रदर एवं इनके कारण उत्पन्न सभी उपद्रवों को शान्त करता है। हरीश फार्मा के 'शक्ति सुमन सीरप', पावर 31 सीरप 'शिलाटोन सीरप तथा 'शक्ति फोर्ट कैपसूल आदि बल-वीर्य वर्धक योगों में शतावरी का मिश्रण किया जाता है। इन योगों के नाम से ही इनकी उपादेयता प्रकट होती है। शक्ति फोर्ट कैपसूल यकृद् विकारों को दूरकर भूख बढ़ा... को मेटते हैं। शिला टोन सीरप बालक, युवा,... के लिए बलवर्धक, स्फूर्तिदायक पेय है। श... सीरप सभी स्त्री पुरुषों के रक्त को बढ़ाकर,... घबराहट को दूर कर शरीर को सुडोल और स्... है। पावर 31 सीरप नपुंसकता, वीर्य निर्बलता,... के लिए प्रभावकारी शर्बत है।

'विटोन 99 सीरप' बान का एक महत्वपू... है। यह सामान्य कमजोरी, अपर्याप्त पोषण... दुर्बलता, शक्तिहीनता, थकावट, रक्तहीनता में... है। शतावरी, गोखरू, विदारीकंद, जातिफल,... अकरकरा, त्रिफला, त्रिकटु आदि हैं। दो-दो च... मात्रा में दिन में तीन बार भोजन के बाद दूध के... इष्ट है।

वासु फार्मास्युटिकल्स के स्त्री रोगों में... 'मेरिटोन कैपसूल और 'मेरिटोन सीरप' में श... अतिरिक्त जीवन्ती, अशोक, गिलोय, लोध्र,... आदि हैं। हिमालया ड्रग कम्पनी द्वारा बनाई गई... टिकिया' श्वेतप्रदर तथा रक्त प्रदर की प्रसिद्ध... इसमें शतावरी, अश्वगन्धा, तगर, मुलेठी, गि... आदि के सत्वों के अतिरिक्त लौह, प्रवाल,... आदि भी है। अन्य द्रव्यों के रस-क्वाथों की इस... दी जाने के साथ शतावरी स्वरस की भी भावना... है। इसकी दो-दो टिकिया दिन में तीन बार... चाहिये।

शतावरेक्स और शतावरी कल्प की भाँति... के लिए दूध बढ़ाने हेतु डाबर का ''लैक्टानिक''... बाजार में औषधि विक्रेता से प्राप्त किया जा... इसमें शतावरी यष्टिमधु, क्षीर विदारी, पालक... हैं जो उपयोगी गुणों से पूर्ण होने के साथ विटा... खनिज पदार्थों से भरपूर हैं। लैक्टानिक के सेवन... में हार्मोन प्रोलेक्टिन के स्तर में वृद्धि होती है और...

मात्रा कुदरती तौर से बढ़ने लगती है। शिशु के जन्म के एक सप्ताह बाद से इसकी दो चम्मच दिन में दो बार लेनी चाहिए।

गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ़ के द्वारा निर्मित क्लीबान्तक कैपसूल में शतावर, असगन्ध, गोखरू के घनसत्वों के साथ जायफल, जावित्री, लौंग, अकरकरा, त्रिफला आदि भी हैं। यह नपुंसकता, शीघ्रपतन, वीर्य की कमी, वीर्य का पतलापन और स्तम्भन शक्ति की न्यूनता में अत्युत्तम हैं। इसके नियमित सेवन से युवकों में बल, वीर्य, कान्ति और शक्ति बढ़ती है। मस्तिष्क के तन्तुओं को बल प्रदान करने में सहायक होने के कारण शतावरी का "स्मृतिदा कैपसूल में भी मिश्रण किया जाता है। इनमें ब्राह्मी, शंखपुष्पी, वच, आँवला, आदि के भी घनसत्व डाले जाते हैं। स्मरण शक्ति बढ़ाने, तनाव को हटाने तथा निद्रा लाने हेतु ये कैपसूल अनुपम हैं। मधुमेह एवं सामान्य दुर्बलता में उपयोगी शिलाजीत में शतावरी, बला, गिलोय आदि की भावना देकर शुष्ककर गर्ग द्वारा "शिलाजीत कैपसूल" भी तैयार किये जाते हैं।

शिल्पा केम (इन्दौर) के सेक्स टानिक 'शिल्पा टोन टेबलेट' में महत्वपूर्ण रस-भस्मों के साथ शतावरी, अकरकरा, कौंच, सालम मिश्री आदि भी है। इसकी 2 गोली रात में दूध के साथ देनी चाहिये। शीघ्रपतन, नपुंसकता आदि को दूर करते हुये यह शुक्राणुओं की वृद्धि करता है। एक जनरल टानिक "बलवर्धन सायरप" में शतावरी, आंवला, सफेद चन्दन आदि हैं। यह शारीरिक एवं मानसिक कमजोरी में उपयोगीहै। प्रसूता के लिए भी यह लाभप्रद है।

चरक के 'एडीजुआ गोली' (सोम्य कामोत्तेजक), 'नीओ गोली' (स्वप्न दोष, सोमरोगहर), के मिप्लेक्स मेनाल माल्ट' (दुर्बलताहर), ओजस सीरप (क्षुधा-वर्धक), और "एम टू टोन सीरप (स्त्री स्वास्थ्य वर्धक) आदि योगों में बहुत से अन्य द्रव्यों के साथ यत् किंचित शतावरी है।

महिलाओं और पुरुषों में कामोत्तेजना उत्पन्न करने हेतु "फण्टासी कैपसूल" का निर्माण धर्मानी ड्रग्स गुड़गांव ने किया है, इसमें शतावरी, मूसली, तालमखाना, जायफल, केशर, बंगभस्म स्वर्णपत्र आदि हैं। एक दो कैपसूल दूध के साथ लिये जाते हैं। आयुर लैव का "शतौजा काम्पोजिटस" शर्करायुक्त ग्रन्युल्स है जो शरीर में नव चेतना भरने वाला, बल्य, वृष्य, रसायन योग है। यह भी स्त्री, पुरुषों के लिए स्वादिष्ट टानिक है। इसके घटक द्रव्यों में शतावरी, विदारी, असगन्ध, सोंठ, कुचला, प्रवाल, मण्डूर, चित्राक आदि हैं। मिश्रीयुक्त दूध से 10 ग्राम सोते समय सेवन करना चाहिये। "पालवी टोन" नामक आदर्श टानिक पेयरूप में प्रस्तुत है, लक्ष्मी कैमीक़ल इन्ड. (मथुरा) द्वारा। जिसमें शतावरी, द्राक्षा, खजूर, अंजीर, लौह, स्वर्ण बंग आदि है। भोजन के बाद एक एक बड़ी चम्मच पानी मिलाकर सेवन किया जाता है। "यूटेरिन" नामक कैपसूल और सीरप (हर्ब इण्डिया कोटा) में गर्भाशय पोषक, स्राव रोधक, सामान्य स्वास्थ्यवर्धक एवं स्त्रीत्व के गुणों को बढ़ाने वाले सभी उत्तम द्रव्यों का संमिश्रण है। ये द्रव्य हैं—शतावरी, अशोक, लोध्र, असगन्ध, तगर आदि। स्त्रियों के गर्भपात-गर्भस्राव में उपयोगी 'सफरिन सीरप एवं टेबलेट' का निर्माण मेडिकल इथिक्स द्वारा किया जाता है। इसमें शतावर, महानीम, पलाश-पुष्प, अनन्तमूल, नागकेशर, धाय, लोध्र आदि हैं। स्त्रियों के लिए स्वास्थ्यवर्धक, गर्भाशय रोगों पर असर कारक योग हैं—गोस्वामी ड्रग्स, रतनगढ़ के "गायनाटोल सीरप और टेबलेट" इनमें भी शतावरी, जीरक, रास्ना, चन्दन, हरीतकी, अशोक आदि के घनसत्व हैं। वृष्य योग 'स्टेमिन डी सीरप' में भी शतावरी घनसत्व एवं अन्य घनसत्व हैं। इसका निर्माण भी गोस्वामी ड्रग्स द्वारा ही किया जाता है। भारतीय महौषधि संस्थान अनूपशहर द्वारा विनिर्मित अशोका प्लस सीरप में शतावरी, अशोक, रसोंत, श्वेतपुष्प कण्टकारी, चन्दन आदि हैं। यह स्त्रियों

के लिए अच्छा योग है। रुद्रदेव आयुर्वेद भवन नयागांव (बिहार) द्वारा स्त्रियों के रोगों को दूर कर उन्हें स्वास्थ्य सौन्दर्य प्रदान करने वाला फेमिलिन कैपसूल' नामक योग बनाया जाता है। इसमें शतावर, वंशलोचन, सुपारी, माजूफल, एला, द्राक्षा आदि हैं रुद्रदेव के ही 'रैक्लोडेक्स फोर्ट' पेय में, 'माल्टोफेराल' अवलेह में, "शक्तिना" कैपसूल में, "हीमेट-सी कैपसूल में भी शतावरी हैं। ये सभी योग शक्तिवर्धक, क्षुधावर्घक, रक्तवर्धक योग हैं। सिद्ध दवाओं के निर्माता मेडिलिंक्स लेबोरेटरीस (मदुराई) द्वारा बनाये गये "श्रीटोन सायरप" में शतावरी है जो एक बल्य योग है।

अनुभूत प्रयोग—

1. धातुपौष्टिक योग—शतावरी, मुलैहठी, सफेद मूसली, काली मूसली, तालमखाने के बीज, नागौरी असगंध, ढाक का गोंद और बबूल का गोंद प्रत्येक 50-50 ग्राम लेकर कूटकर कपड़छान चूर्ण तैयारकर लें। इस पूरे चूर्ण के बराबर पीसकर मिश्री मिलाकर सुरक्षित रखें। प्रातः काल और सायंकाल 10-10 ग्राम चूर्ण मिश्री मिले दूध के साथ सेवन करें। इस चूर्ण को उपयुक्त लाभ हेतु तीन माह तक सेवन करें। इसी प्रकार चूर्ण को पुनः तैयार कर लें। यह मैथुन शक्ति हेतु विशिष्ट बाजीकरण प्रयोग है।

—वैद्यरत्न श्री जी. के. दधिचि

(सुधानिधि सित. 1974)

2. शुक्रतारल्यहर प्रयोग—सतावरी, सोंठ, नागौरी असगंध, लोध सफेद, ईसबगोल की भूसी प्रत्येक 10-10 ग्राम, हरड़ काली 20 ग्राम, मिश्री 30 ग्राम, वर्क चांदी 6 नग, वर्क सोना 2 नग। इनको कूट-छान कर बाद में वर्क मिलावें। मात्रा-5 ग्राम से 10 ग्राम तक प्रातः धारोष्ण दूध से या खरैंटी की जड़ के हिम से लें एक सप्ताह के बाद गुणकारक होने लगता है। इस रोग की अन्य चिकित्सा भी हैं जो सबके लिए सामान्य रूप से नहीं बरती जा सकती। भिन्न भिन्न रोगी का पूर्व इतिहास और वर्तमान दशा देखकर ही चिकित्सक उन्हें निर्धारित करता [...] को पाचक बलवर्धक तथा रक्त को बलिष्ठ, का[...] द्रव्य देने चाहिये साथ में चूने, फास्फोरस, और [...] मात्रा बढ़ानी चाहिए।

—श्री तेजबहादुर चौधरी (धन्व. जन.)

3. पुरुषरोगोपयोगी प्रयोग—जिन युवकों [...] ही हाथों अपने यौवन को नष्ट किया है, उनके लि[...] प्रयोग प्रस्तुत कर रहा हूँ। तैल, मिर्च, मसाले, खटा[...] आदि का परहेज कर सुबह-शाम कम से कम [...] तक निम्न प्रयोग करें। भगवान धन्वन्तरि की [...] स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, धातुस्राव, पतलापन, अल्प[...] शिथिलता आदि विकार दूर होकर कामशक्ति [...] स्तम्भन शक्ति की अभिवृद्धि होगी। कई बार का प[...] है—शतावरी, असगन्ध, मुलेठी, नीम गिलोय, [...] आंवला, शिलाजीत और त्रिवंग सभी समान भाग ([...] 10-10 ग्राम) लेकर पहले काष्ठोषधियों को कूट[...] कर छान लें फिर इसमें शतावरी चूर्ण और भस्म भली[...] से मिलाकर रखलें। दिन में दो बार 3-3 ग्राम चूर्ण [...] चम्मच घी तथा तीन चम्मच शहद मिलाकर चाटें औ[...] समय बाद गर्म किया हुआ गोदुग्ध पीवें।

—वैद्य श्री सुनील [...]

(आयुर्वेद विकास जुलाई [...])

4. एक उत्तम वृष्य प्रयोग—शतावरी, [...] कुलींजन, विदारीकन्द 48-48 ग्राम कौंच के बीज [...] गिरी, उटंगन के बीज, पीपल, छोटी इलायची के [...] नागकेशर, सफेद मूसली, लाल चन्दन, छरीला, [...] और बंशलोचन 4-4 ग्राम। सब औषधियों को कूट-[...] छान लें। फिर पत्थर के बड़े खरल में चूर्ण को डा[...] सेमर के स्वरस की 21 भावना दें। इसके बाद [...] नारियल के पानी की 21 भावना दें और छाया शुष्क [...] बराबर मात्रा में मिश्री पीसकर मिला दें। इसे साफ [...] या कांच के पात्र में रख लें। सुबह-शाम 5-6 ग्राम [...]

खाकर ऊपर से गाय का धारोष्ण दूध पीवें। शीघ्र पतन के रोगियों के लिए भी नष्ट होकर बल-वीर्य एवं पुरुषार्थ बढ़ता है। यथा नाम तथा गुण हैं। अनेक बार परीक्षित हैं। स्वस्थ पुरुष भी इसका सेवन निःसन्देह कर सकता है।

—वैद्य श्री प्रदीप शर्मा

(सुधा. पुरुष रोग अनुभवांक)

5. नारी संजीवन प्रयोग—शतावरी, असगन्ध, पठानी लोध, सफेद विधारा, कमरकस, समुद्रशोष, कतीरा गोंद, माजूफल, मोचरस, चुन्नी गोंद सभी द्रव्य समान भाग (50-50 ग्राम) और मिश्री इन सबके बराबर (500 ग्राम) लेकर चूर्ण तैयार कर लें। दिन में दोनों समय 3-3 ग्राम चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों के प्रायः सभी रोग दूर होते हैं।

—वैद्यराज श्री युधिष्ठिर सिंह

(सुधा. म. रो. चि.)

6. पुत्रदाता प्रयोग—निम्न प्रयोग पुत्रदाता है। जिन स्त्रियों के सन्तान होकर मर जाती हों अथवा कन्या ही कन्या होती हैं। उनको इस घृत का सेवन करायें। अनेकों बार का परीक्षित है। इस घृत में एक विचित्र शक्ति है, जो गर्भ में स्त्री अंगों के स्थान पर पुरुष अंग पैदा करता है।

शतावरी स्वरस 2 लिटर 500 मि.लि., गोघृत 2 लिटर 500 मि.लि. और जल 2 लिटर 500 मि.लि. लें। कल्कद्रव्य गोखरू, कौंच बीज, खरैटी बीज, गंगेरन की छाल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, अनन्तमूल, वासा जड़, नीलोत्पल ये वस्तुओं 100-100 ग्राम, लालचन्दन, सफेद चन्दन 50-50 ग्राम मुलहठी 20 ग्राम इन कल्क द्रव्योंको बारीक कूटकर सबको मिलाकर घृत पाक विधि से घृत का निर्माण करें।

शतावरी पुष्य नक्षत्र में उखाड़कर लानी चाहिए। घृत ऐसी गाय का लेना चाहिये जो पीले रंग की हो तथा जिसके बछड़ा (सवत्सा गाय) हो।

सेवन विधि—जब डेढ माह का गर्भ हो जाय तबसे लेकर सात माह तक स्त्री इस घृत को प्रातःकाल-25-30 ग्राम की मात्रा में आधा लिटर गाय के दूध के साथ, मिश्री मिलाकर सेवन करें। तैल, गुड़ अधिक मिर्च, गरिष्ठ भोजन वर्जित हैं। ब्रह्मचर्य से रहें।

यह घृत अनेक बार का परीक्षित है। सुन्दर, सुडौल पुत्र प्राप्त करने वालों को अवश्य सेवन कराना चाहिये।

—वैद्य श्री पं. महावीर प्रसाद मिश्र

(धन्व. गु. सि. प्र. भाग 3)

7. गृध्रसीहर प्रयोग—शतावरी 100 ग्राम, पिप्पलीमूल 20 ग्राम, सोंठ 50 ग्राम, सफेद मूसली 50 ग्राम, कौंच बीज 50 ग्राम, कुडा छाल 50 ग्राम, शोभांजन निःसार 100 ग्राम (गोंद) मिश्री 150 ग्राम। सबका चूर्ण कर चार-पांच ग्राम चूर्ण गरम जल से या वातहर क्वाथ से सेवन कराने से गृध्रसी शूल का शमन होता है। साथ में सुपाच्य, लघु, पौष्टिक भोजन सेवन करना चाहिये।

—वैद्य श्री ओमप्रकाश गोस्वामी

(सुधा. नि. चि. वि. भाग 3)

8. धातु पुष्टिकर प्रयोग—शतावरी, गोखरू, बीजबन्द, बंशलोचन, सफेद मूसली, काली मुसली, सोंठ, कौंच के बीज, चोप चीनी, पीपर, कबाब चीनी, काली मिर्च, सालम मिश्री, विदारीकन्द सभी द्रव्य 10-10 ग्राम, निशोथ 60 ग्राम, मिश्री 200 ग्राम। काष्ठादि द्रव्यों का महीन चूर्ण कर फिर इसमें मिश्री पीसकर मिलावें। 8-10 ग्राम चूर्ण सुबह-शाम ताजा गोदुग्ध के साथ सेवन करने से धातु पुष्टि होतीहै। कमजोरी, नपुंसकता, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन आदि रोगों में यह बहुत उपयोगी है। अनेक बार अनुभव में लिया गया श्रेष्ठ योग है।

—डा. श्री रामप्रकाश अग्रवाल

(व. र. के. लिए प्रेषित प्रयोग)

9. श्वेत प्रदरारि चूर्ण—सतावर 24 ग्राम, असगन्ध 24, श्वेत मूसली 24 ग्राम, सफेद राल 24 ग्राम, रूमीमस्तंगी 24 ग्राम, चांदी के वर्क 6 ग्राम तथा मिश्री

120 ग्राम। सबको लेकर चूर्ण कर कुल 42 मात्रा बनालें। प्रातः सायं एक एक मात्रा गोदुग्ध के साथ श्वेत प्रदर की रोगिणी को खिलावें। यह श्वेत प्रदर नाशक चूर्ण मेरा बहुपरीक्षित योग है। प्रदर से दुर्बल रोगिणी को नया जीवन देता है।

—श्री रवीन्द्र कुमार सिन्हा कुजापी

(सुधा. प्र. संग्रह भाग-2)

10. एक आनुभविक कल्पना विशेष—"शतावरी कज्जली"—पारद गन्धक की सम भागीय कज्जली 10 ग्राम, पुष्ट शतावरी का सूक्ष्म पिष्ट चूर्ण 70 ग्राम लेकर सर्वप्रथम कज्जली को खरल में डालकर एक घन्टा पर्यन्त दृढ़ मर्दन करें। भली प्रकार घुटाई हो जाने के बाद शतावरी चूर्ण को थोड़ा-थोड़ा डालते हुए घुटाई करते हुए सारा चूर्ण मिश्रित कर दें। तथा किसी कांच की शीशी में सुरक्षित रखें। मात्रा—एक से दो ग्राम की मात्रा में दिन में दो बार दें।

जीर्ण पित्तजशूल में—एक-दो ग्राम दिन में आधा भोजन कर लेने पर औषधि लेकर पुनः शे करें।

परिणाम शूल में—उपर्युक्त विधि के नवनीत या गोघृत के साथ सेवन करावें। कोलाइटिस (आन्त्र प्रदाह) में डेढ़-डेढ़ ग्राम औ में तीन बार, घृत मिश्रित शोभांजन क्वाथ के सा करावें। न्यूनतम 60 दिवस प्रयोग करें। प्रयोग का पौष्टिक व द्रवाहार सेवन करावें।

अम्लपित्त—एक ग्राम औषधि दाडिमा चम्मच के साथ भोजन से पूर्व तथा एक ग्राम औ अनुपान से ही भोजन के मध्य में प्रयोग करने से उ मिला है।

—आयु. चक्र. वैद्य श्री हरीशंकर श

(वनौ. रत्ना. के लिए प्रेषित)

● **सम्पादकीय टिप्पणी—**

शतावरी घृत का गर्भाशय जन्य रोगों में अप्रतिम प्रभाव एक अनुभव

कई वर्ष पहले एक रोगिणी हमारे पास चिकित्सार्थ आई। उसके लगातार 5 बच्चों का गर्भपात हो चुका और यह सोचकर कि उसके भाग्य में सन्तान सुख नहीं है निराश हो चुकी थी एक परिचित के माध्यम से मेरे पास परामर्श हेतु आयी। मैंने उसका परीक्षण तथा महिला रोग विशेषज्ञ की जांच देखी तो पता लगा कि उ गर्भाशय की शक्ति क्षीण हो चुकी है आर गर्भस्थ शिशु के बढ़ते ही उसका गर्भाशय उसके भार को ग्रहण न कर पाता और गर्भपात हो जाता हैं किसी वैद्य के परामर्श पर वह फल घृत का भी सेवन कर चुकी थी। उसे एक वयोवृद्ध वैद्यराज से परामर्श करके 1 वर्ष तक गर्भधारण न करने की हिदायत देकर शतावरी घृत गर्भपाल रस का सेवन कराया। 1 वर्ष के बाद वह गर्भवती हुयी और बिना किसी उपद्रव के 9 माह पूर्ण पर सुन्दर शिशु की माँ बनी। इसके बाद मैंने शतावरी घृत का अन्य महिलाओं पर भी प्रयोग कराकर अप्रतिम प्रभाव का अनुभव किया। पाठक शतावरी घृत का प्रयोग कर यश प्राप्त कर सकते हैं। शतावरी की निर्माण विधि पाठक इसी प्रकरण के 147 वें पृष्ठ पर 'पुत्रदाता प्रयोग' में देख सकते हैं।

—गोपालशरण

शालपर्णी
(Desmodium Gangeticum)

न्ताः वेदान्तिनः किं पठथ शठतयाद्यापि चाद्वैतविद्यां
थ्वीतत्वे लुठन्तो विमृशथ सततं कर्कशास्तार्किकाः किम्।
दैर्नानागमैः किं ग्लपयथ हृदयं श्रोत्रियाः श्रोत्रशूलैः
द्यं सर्वानवद्यं विचिनुत शरणं प्राणसं प्रीणनाय।।

—जिस समय मनुष्य को व्याधि घेर लेती है उस समय हाँ पर वेदान्ती क्या अद्वैतविद्या का पाठ करेगा और क्या न पाठ से रोग दूर हो जायेगा। क्या उस समय में तार्किक ग तत्वों के लक्षणों का वर्णन करते हुये व्याधि को भगा गे। क्या वहाँ पर वेदज्ञ श्रोत्रिय शुद्ध स्वरों से वेद का च्चारण कर व्याधि को पकड़ निकाल देंगे। ऐसी चनीय दशा में यदि कोई प्राणों की रक्षा कर सकता है वह वैद्य ही है।

रोगी के प्राणों की रक्षा के लिए जिन आरोग्य प्रदान ने वाली औषधियों को वैद्य उपयोग में लेता है, उनको क विधि से दिया जाना चाहिये तब ही वे अमृततुल्य हो कती हैं—

आबाधकारणं व्याधिर्भेषजं सुखकारणम्।
सम्यग्युक्तं तदमृतं तदन्यद् विषवद् भवेत्।।

—काश्यप. खि. 3

औषधि एवं औषधि सेवन की इन विधियों का विशद वेचन ही इस ग्रन्थ लेखन का ध्येय है। इन वनौषधियों इस शालपर्णी का भी प्रमुख स्थान है क्योंकि यह गेषहर है तथा दशमूल का मुख्य घटकद्रव्य है। आचार्यों कुछ समान धर्मा वनौषधियों के समूह (गण) लिखे हैं समूहों में दशमूल सर्वाधिक व्यवहृत होता है। वृहत् मूल और लघु पंचमूल को मिलाकर दशमूल तैयार या जाता है। इस लघु पंचमूल में गोखरू, छोटी बड़ी कटेरी, पृश्निपर्णी और शालपर्णी है। आचार्य दृढबल ने (चरक सि. 10) में गोखरू के स्थान पर एरण्ड को लिया है जो सुश्रुत संहिता के पाठान्तर के अनुसार है किन्तु सुश्रुत संहिता की भानुमति टीका में आचार्य चक्रपाणि ने लिखा है कि चरक परम्परा में गोखरू तथा सुश्रुत परम्परा में एरण्ड लेना चाहिये। लघुपंचमूल केअतिरिक्त विदारि गन्धादि गण (सुश्रुत) की भी शालपर्णी प्रथम वनौषधि है। दृढ़बल लिखित चरक संहिता के अध्यायों में स्थिरादि (चरक. चि. 18) और रास्नास्थिरादि (चरक. चि. 26) द्रव्यगण भी इस शालपर्णी को मुख्य मान कर लिखे गये हैं। अंगमर्द प्रशमन, बल्य, स्नेहोपग, श्वयथूहर आदि दशेमानि चरकोक्त गणों में भी इस वनौषधि को लिया है।

चरक के अंगमर्द प्रशमन द्रव्योंके अन्तर्गत इस वनौषधि का वर्णन देखकर एवं इसे इस रोग में अधिक उपयोगी मानकर आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने भी अंगमर्द प्रशमन वनौषधियों में इसको प्रमुखता दी है। आचार्य भावमिश्र ने गुडूच्यादि वर्ग में इसका वर्णन कया है। यह शिम्बीकुल (लेग्युमिनोसी) तथा अपराजिता उपकुल (पैपिलिओनेटी) की औषधि है।

नाम—

संस्कृत—शालपर्णी, स्थिरा, सौम्या, त्रिपर्णी, पीवरी, गुहा, विदारिगन्धा, दीर्घपत्रा, अंशुमती।

हिन्दी—सरिवन।

गुजराती—शालवण

मराठी—सालवण

बंगला—शालपानि

तेलगू—गीतनारम्।

तामिल—पुल्लादि

मलयालम—पुल्लाटि

लैटिन—डेस्मोडियम गैंगेटिकम् (Desmodium Gangeticum)

प्राप्ति स्थान—यह भारत में अधिकतर भागों में 5 हजार फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। सड़कों के किनारे, बगीचों में, ऊसर भूमि पर और जंगलों में छायादार स्थानों पर इसके स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। शालवनों में यह प्रचुरता से पायी जाती है। यह विशेषकर देहरादून के शाल वनों में होती है।

रायायनिक संघटन—शालपर्णी के मूल में एक पीत रालीयतत्व, तैल, क्षाराभ तथा 6 प्रतिशत भस्म होता है। सम्पूर्ण क्षाराभ की मात्रा सूखे द्रव्य की अपेक्षा ताजे द्रव्य में तिगुनी पायी जाती है।

वानस्पतिक परिचय—इसके छोटे क्षुप 2 से 4 फुट ऊँचे होते हैं। इसकी शाखायें लम्बी, फैली हुई और जमीन की ओर कुछ झुकी हुई होती हैं। इसके सारे क्षुप पर सफेद या भूरे रंग के रौंये होते हैं। पत्र—शालपत्र के समान, भालाकार, आयताकार या लट्वाकार एक पत्रकीय, 3-6 इंच लंबे तथा एक-दो इंच चौड़े, आगे से तीखे होते हैं। इनका निचला पृष्ठ फीके रंग का और रोमश होता है। इसके पुष्प छोटे 6 से 12 इंच लम्बी अक्षीय या अन्त्य मंजरियों में रहते हैं। इनका रंग बैंगनी या सफेद होता है। इसकी फली पतली, चपटी, टेढ़ी और तिरछे रोमों से आवृत होती है, जिससे यह कपड़ों पर चिपक जाती है। यह फली 6 से 8 सन्धियों से युक्त होती है।

इस पर पुष्पागम वर्षा में तथा फलागम शीतकाल में होता है।

भेद—शालपर्णी के कई भेद हैं। इसका एक भेद जिसको गुजरात में त्रिपानी पांदडियों या बेठी सालवण कहते हैं। इसके तीन तीन पत्ते विल्वपत्र की तरह लगते हैं अतः इसे त्रिपानी पांदडियो कहा जाता है। इसका लैटिन नाम 'डेसमोडियम डिफूसम' है। इसके गु[ण] शालपर्णी के समान ही हैं।

अनेक पौधे शालपर्णी के नाम से व्यवहार में [आते] हैं। इनमें कुछ डेस्मोडियम की प्रजातियाँ होती [हैं,] युरेरिया की प्रजातियाँ होती हैं और कुछ फ्लेमि[ञ्जिया की] प्रजातियाँ होती हैं। ये सभी प्रायः सालपानी [के नाम से] प्रचलित हैं। मुख्य शालपर्णी कम मात्रा में सुल[भ है,] व्यापारी लोग अन्य प्रजातियों की मिलावट कर[के इस] के नाम से बेचते हैं।

श्री भागीरथ स्वामी के अनुसार डेस्मोडि[यम की] प्रजाति सात प्रकार की होती है जिनमें यह डे[स्मोडियम] गैंगेटिकम् ही प्रधान है। प्रायः इसे ही मुख्य [मा]नकर वर्णन किया है।

रस—मधुर, तिक्त

गुण—गुरू, स्निग्ध

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

दोषकर्म—स्निग्ध-उष्ण होने से यह बात[शामक, मधुर] होने से पित्त का तथा तिक्त होने से कफ का श[मन करती] है अतएव इसे त्रिदोष शामक कहा गया है।

उपयोगी अंग—पंचांग, विशेषतः मूल।

मात्रा—6 ग्राम से 12 ग्राम का क्वाथ बना[कर] 100 मि.लि. पान करना चाहिये।

संग्रह एवं संरक्षण—शीतकाल में इसके [मूल का] संग्रह कर उसे छाया में सुखा लें। अच्छी तरह सू[खने] पर मुखबन्द डिब्बों में भरकर अनार्द्र शीतल [स्थान में] रखना चाहिये।

वीर्यकालावधि—3 माह से 6 माह

प्रतिनिधि—पृश्निपर्णी।

अपमिश्रण (मिलावट)—इसके पत्र शा[लपत्र के] समान हरिताभ वर्ण के, मसृण व चमकदार दि[खते]



शालपर्णी (DESMODIUM GANGETICUM)

नाम—सं०—शालपर्णी, हि०—सरिवन; गु०—शालवण; म०—सालवण; लै०—डेस्मोडियम गैंगेटिकम्।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत विशेषतः देहरादून।

उपयोगी अंग—पंचांग, विशेषतः मूल। दोषशमन—त्रिदोष शामक।

रोगोपयोग—अंगमर्द, शोथ, हृदयरोग, ज्वर, वातरोग आदि।

मुख्ययोग—शालपर्ण्यादि क्वाथ, स्थिराद्य घृत आदि।

फली टेढ़ी–मेढ़ी एवं सूक्ष्म अंकुशाकार रोमयुक्त होती है। यह पूर्व में कहा गया है कि व्यापारी लोग अन्य प्रजातियों का मिश्रण इसमें कर देते हैं।

वनौषधि रत्नाकर (भाग 6) में भी पृश्निपर्णी के वर्णन प्रसंग में हमने लिखा था कि कहीं शालपर्णी को पृश्निपर्णी और पृश्निपर्णी को शालपर्णी मान बैठते हैं। किन्तु वास्तव में शालपर्णी नाम से डेस्मोडियम जाति को तथा ऊरारिआ जाति को पृश्निपर्णी के नाम से ही ग्रहण करना उचित है।

गुणधर्म विवेचन—

शालपर्णी गुरूश्छर्दि ज्वरश्वासातिसार जित्।
शोषदोषत्रयहरी वृंहण्युक्ता रसायनी।।
तिक्ता विषहरी स्वादुः क्षतकासकृमिप्रणुत्।।

—भा. प्र. नि.

शालपर्णी त्रिदोषघ्नी बल्या वृष्या रसायनी।
हृद्रोगे शस्यते वैद्येरं शुमत्या श्रृतं पयः।।

—प्रि. नि.

शालपर्णी रसे तिक्ता गुरूष्णा वातदोषजित्।
विषम ज्वरमेहघ्नी शोषतृष्णा विनाशनी।।

—राज. नि.

स्थिरा तु मधुरा तिक्ता गुर्वी चोष्णा रसायनी।
विषघ्नी बृंहणी छर्दिक्रिमिमेहतृषापहा।।
ज्वरातीसार शोथार्शः कास श्वास त्रिदोषनुत्।।

—महौषध निघन्टु

ज्ञेया तु शालपर्णी हृद्या बल्या त्रिदोषघ्नी।

—षोडशाङ्गहृदयम्

अंगमर्द एक बात वृद्धि के कारण होने वाला रोग है। इसमें अंगों में मर्दनवत् पीड़ा होती है। इसे ही लोक में 'हड़फूटन' कहा जाता है। इसमें रोगी यह चाहता है कि उसे कोई सतत दबाता रहे। और रोगी को दबाने से उसे राहत मिलती है। वस्तुतः यह एक रोग न होकर एक [illegible] है जो वातज्वर, अतिसार, आमवात, वातोदर, [illegible] सूतिकारोग, यक्ष्मा आदि रोगों में पाया जाता है। [illegible] मांस पेशियों में जब धीमी गति से रक्त संचरण [illegible] यह लक्षण प्रकट होता है। दबाने से यह रक्तसंचार [illegible] होने लगता है तब अंगमर्द न्यून हो जाता है। [illegible] अतिरिक्त कुछ औषधियां ऐसी भी हैं जो इस अं[illegible] कन करती हैं। ये औषधियां अंगमर्द के मूल क[illegible] निवारण करती हैं। इन औषधियों के सेवन से [illegible] में उत्पन्न होने वाले अंगमर्द का शमन होता है। परम्परा के अनुसार जो लघु पंचमूल कहा गया है [illegible] द्रव्य (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी बड़ी कं[illegible] एरण्ड) तथा काकोली, मुलेठी, एला, चन्दन [illegible] इन दस द्रव्यों को आचार्य चरक ने अंगमर्दह[illegible] लघुपंचमूल और सोंठ का क्वाथ अंगमर्द [illegible] औषधि कही जा सकती है। वातज्वर एवं अति[illegible] यह अंगमर्द रोगी को अधिक परेशान करता है [illegible] उपयोगी कहा गया है—

किराताब्दामृतोदीच्यवृहती द्वयगोक्षुरैः।
सस्थिराकलशीविश्वैः क्वाथः वातज्व[illegible]
शालपर्णी पृश्निपर्णी वृहती कण्टकारि[illegible]
बलास्वदंष्ट्राविल्वानि पाठा नागर धान्य[illegible]
एतदाहारसंयोगे हितं सर्वाति सारिणाम्।

सुश्रुतोक्त विदारिगन्धादि गण इस अंगमर्द [illegible] वाला वनौषधिगण है। अंगमर्द निवारण एवं अन्[illegible] रोगों में इसकी उपादेयता से पूर्ण, शास्त्र प्रम[illegible] क्रमानुसार दिये जायेंगे। इससे पूर्व यह लिख देना होगा कि यह वनौषधि त्रिदोषशामक होने के साथ [illegible] वृंहण एवं रसायन भी हैं, सुतरां दौर्बल्य, क्षय, [illegible] में सदैव हितकारी है। प्रसिद्ध च्यवनप्राश, ब्राह्म[illegible] आदि रसायनों का यह घटक द्रव्य है।

हम "अदीनाःस्याम शरदः शतम्" की

युर्वेदोक्त औषधि, अन्न एवं विहार के द्वारा ही कर
ते हैं। आयु बढ़ाने वाले आयुर्वेद को, दीर्घायु की
मना से ही आत्रेय आदि महर्षियों ने भरद्वाज महर्षि से
ण किया था—

दीर्घमायुश्चिकीर्वन्तो वेदं वर्धनमायुषः।

भगवान् चरक ने जो दश द्रव्य वयःस्थापन कहे हैं वे वस्तुतः आयुवर्धक हैं इनमें शालपर्णी भी एक वपूर्ण द्रव्य है। हितायु किंवा सुखायु प्राप्त करने के इन वनौषधियों के सेवन के साथ ही ब्रह्मचर्य यमित), प्राणायाम एवं अहिंसा का निर्वहन भी श्यक है। तब ही शालपर्णी सदृश वनौषधियों के द्वारा को बढ़ाया जा सकेगा। शालपर्णी के साथ हरीतकी, न, आमलकी, पिप्पली, वाराहीकन्द, गुडूची, गुग्गुलु, वरी, अश्वगन्धा, वृद्धदारक, भृंगराज, शंखपुष्पी, कपर्णी, मुलहठी आदि द्रव्यों में से उपयुक्त योजना सेवन करना हितावह है। आयुर्वेद का सम्यक् ज्ञान कर तदनुसार आचरण कर ऋषि-महर्षियों ने परम ाण एवं अनश्वर आयु प्राप्त की थी—

लेभिरे परमं शर्म जीवितच्चाप्यनश्वरम्।।

शारीरिक दुर्बलता को दूर करने के साथ यह दुर्बलता को भी मिटाती है। आचार्य चरक ने इसे षहर वृष्य कहा है—"विदारिगन्धा वृष्यसर्व-राणाम्"। आयुर्वेद में पंचकर्मोक्त बस्ति की बहुत ा की गई है इसे चिकित्सार्थ किंवा सम्पूर्ण चिकित्सा कहा गया है। आचार्य चरक ने जो यापन बस्तियों का किया है ये बस्तियाँ आयुवर्धक होती हैं। आयु का (दीर्घायुवर्तन) होने से ही इन्हें यापन बस्ति कहा है। इनका उपयोग बल, शुक्र, मांस बढ़ाने के लिए जाता है। इन बस्तियों में शालपर्णी की उपादेयता वीकार किया गया है, देखिये चरक संहिता सिद्धि 12-15 अध्याय। महाकल्याण घृत (अ. हृ.) का ख्य घटक है। जो कि बृहण एवं सन्निपात नाशक

यह नाड़ी बल्य होने से नाड़ी दौर्बल्य तथा वात-व्याधि में प्रयुक्त होती है। वातरोगों की सभी अवस्थाओं में दशमूल को देना चिकित्सक उपयुक्त समझता है। लघु पंचमूल जहां वातपित्तहर है वहाँ वृहत्पंचमूल वातकफहर है ये दोनों मिलकर दशमूल कहलाते हैं जो सन्निपातज रोगों में (विशेषतः वातप्रधान रोगों में) उपयोगी कहे गये हैं। शालपर्णी लघुपंचमूल का प्रथम द्रव्य है और लघु पंचमूल वातपित्तहर है किन्तु इसमें शालपर्णी स्वयं त्रिदोषहर होने से अधिक उपादेय है अतः इसके एकाकी प्रयोग से लघुपंचमूल के प्रयोग से तथा दशमूल के प्रयोग से वातप्रधान त्रिदोषज रोगों पर विजय पाई जा सकती है। इन्हें क्वाथ के रूप में, अरिष्ट के रूप में, घृत के रूप में और तैल के रूप में उपयोग में लाकर अन्तः परिमार्जन एवं बहिःपरिमार्जन किया जाता है। बातहर सभी औषधियों में प्रायः शालपर्णी का मिश्रण किया जाता है। अंतः प्रयोगार्थ दशमूल को देने के अतिरिक्त बाह्य प्रयोगार्थ जो तैलादि दिये जाते हैं उनमें भी शालपर्णी आदि दशद्रव्य प्रायः डाले जाते हैं। विष्णु तैल, नारायण तैल, महानारायण तैल, महाबलातैल, सप्त प्रस्थवृहन्माषतैल, त्रिशती प्रसारणी तैल, सप्तप्रस्थमहामाष तैल, महामाषतैल, त्रिशती प्रसारणी तैल (सभी चक्रदत्तोक्त) आदि दशमूल सिद्ध होते हैं।

आमवात में सोंठ, एरण्डतैल के साथ इसे लाभप्रद कहा गया है। दशमूल और सोंठ के क्वाथ में या केवल दशमूल या सोंठ के क्वाथ में एरण्ड तैल मिलाकर दिया जा सकता है। चक्रपाणिदत्त के इस कथन को ही लोलिम्बराज ने भी कहा है—

दशमूलकषाय मिश्रितं वा
ललने विश्वकषायमिश्रितं वा।
प्रपिबेत् कटिकुक्षि बस्तिशूले
ध्रुवमेरंडजमेकमेव तैलम्।।

आचार्य चरक ने त्रिदोष वात रक्त में स्थिरादिघृत एवं तैल पीने का परामर्श देने के अतिरिक्त शालपर्णी, निशोथ,

एरण्डमूल से सिद्ध दुग्ध के सेवन को भी परमोपयोगी कहा है—

अंशुमत्याश्रृतःप्रस्थः पयसो द्विसितोपलः।
श्यामैरण्डस्थिराभिश्च वातार्तिघ्नं श्रृतं पयः।।

—चरक. चि. 29

इसके अतिरिक्त भी अन्य रोगों में जहाँ वात की प्रधानता हो तो उसका शमन करने के लिए इसे या इसके समूह गणों को उपयोग में लाया जाता है।

शालपर्णी दीपन, स्नेहन, अनुलोमन, स्तम्भन एवं कृमिघ्न होनेसे पाचन संस्थानगत अग्निमांद्य, कोष्ठवात, अर्श, अतिसार, ग्रहणी, छर्दि तथा कृमिरोग आदि में लाभप्रद हैं। चक्रदत्तोक्त क्षारगुड़ अजीर्ण, मन्दाग्नि, विषमाग्नि, अर्श, अरुचि, गुल्म, प्लीहोदर आदि रोगों में हितकर हैं इसमें शालपर्णी समाविष्ट हैं। अर्शः चिल्त्सिा प्रकरण (चक्रदत्त) में वर्णित गुडभल्लातक (अपर) एवं दन्त्यरिष्ट में शालपर्णी है। यह पूर्व में कहा जा चुका है कि शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कंटकारी आदि द्रव्य अतिसार के रोगी को आहार के साथ में देने चाहिये। इस हेतु चरक सुश्रुत संहिता में विधि वर्णित है—

प्रयोजयेदन्नपाने विधिना सूपकल्पितम्।

—चरक चि. 10

शूलार्दितो (अतिसारे) व्योषविदारिगन्धासिद्धेन दुग्धेन हिताय भोज्यः। —सुश्रुत उ. 40

आचार्य शार्ङ्गधर ने आध्मानशूल युक्त वातज ग्रहणी में शालपर्णी, बला आदि पंचद्रव्यों का क्वाथ हितकर कहा है—

शालपर्णीबलाबिल्वधान्य शुष्ठीकृतः श्रृतः।
आध्मान शूल सहितां वातजां ग्रहणीं जयेत्।।

—शा. सं. म. ख.

यह हृद्य होने से हृदय रोगों में शोथहर होने से शोथ में एवं शोणितस्थापन होने से रक्त विकारों में हितकारी है।

हृदयशूल में शालपर्णी सिद्ध क्षीरपाक अत्यन्त ह[illegible] है। गूगल, रसोन आदि के साथ किंवा शिलाजी[illegible] दशमूलक्वाथ भी हृदय रोगों में उपयागी है। स[illegible] के रक्त परिभ्रमण में स्तब्धता आ जाना जिसे ह[illegible] जाता है उसमें दशमूल की उपादेयता सर्वसिद्ध[illegible] गया है—

हृदि प्रकुपिते वाते चांशुमत्या पयोहितम्

—च[illegible]

स्थिरादिकल्कैः पयसा च सिद्धं....हृदि[illegible]

—चरक

इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल वातज ह[illegible] में ही नहीं अपितु पित्तजहृदय रोगों तथा कफ[illegible] (रसायनं ब्राह्ममथामलक्याः) में भी यह शाल[illegible] पहुंचाती है। शालपर्ण्यादि पंचमूलसाधित दुग्ध[illegible] में भी इसी भांति लाभप्रद है। सुधानिधि के प्र[illegible] (द्वितीय भाग) के सम्पादकीय में आचार्य [illegible] प्रसाद त्रिवेदी ने इसका उल्लेख किया है। आपने [illegible] इस श्लोक को आधार मान कर यह बात कही [illegible]

स्थिरादिभिः श्रृतं तोयं पानाहारे प्रशस्य[illegible]
पाण्डुनां कामलार्तानां मृद्वीकामलका[illegible]

—चरक

जब कोई भी विताजीय द्रव्य शरीर की र[illegible] प्रवेश कर वाहिनी को अवरुद्ध करता है तो [illegible] विज्ञानवादी उसे ऐम्बोलस कहते हैं। इस ऐम्बो[illegible] डा. श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर ने आयु[illegible] "अन्तःशल्यता" यह दिया है। अन्तःशल्य का [illegible] रक्तवहस्रोतो वैगुण्य है। चरक चिकित्सा [illegible] त्रिमर्मीय नामक अध्याय 26 में आचार्य चरक ने [illegible] किया है वह प्रधानतः बस्ति हृदय और शिरो[illegible] शल्यता का ही मूर्तरूप है। उदावर्त को बहुत से [illegible] कारण कहा गया है। यह उदावर्त वातजन्य है औ[illegible]

रण शिर में, हृदय में, बस्ति में या उदर में रक्तवाही तों में उत्पन्न अन्तःशल्यता है। इसमें वातनिग्रह ही मुख्य किकित्सा है—"वायोः क्रिया विधातव्याः मार्गप्रतिपत्तये"। इसमें स्थिरादि घृत बहुत उपयोगी द्ध होता है—

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः
शम्पाकपूतीककरं जयोश्च।
सिद्धः कषाये द्विपलां शिकानां
प्रस्थो घृतात् स्यात् प्रतिरूद्धवाते।।

—चरक चि. 26

दशमूल हरीतकी, कंसहरीतकी ये अवलेह शोथ की स्त औषधियां हैं। इसी प्रकार दशमूल अर्क भी शोथहर रक्तशोधक, रक्तास्तम्भन और रक्तवर्धक द्रव्य, शोणित पन कहा जाता है किन्तु इनमें शालपर्णी विशेषतः रक्त धक है। अधोग रक्तपित्त में भी यह हितावह है।

शालपर्णी कफनिःसारक होने से कास में फायदा ती है। इसके साथ ही यह उरःक्षत एवं यक्ष्मा में भी कर है। पर्णीद्वय कंटकारीद्वय, काकोलीद्वय आदि से द्ध दुग्ध हितकारी कहा गया है—

स्थिरासितापृश्निपर्णी श्रावनीवृहतीयुगैः।
वीरर्षभकाकोली तामलक्य द्विजीवकैः।।
श्रृतं पयः पिबेत् कासी ज्वरी दाही क्षतक्षयी।।

—चरक. चि. 18

देवदार्वादिक्वाथ में भी शालपर्णी है, जो अग्निमांद्य, , श्वास आदि में लाभ पहुंचाता है—

देवदारूशिवावासाशलिपर्णी महौषधैः।
धात्रीयुतं श्रृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम्।।
चातुर्थिक ज्वरे श्वासे कासे मन्दानले तथा।।

—शा. सं. म ख.

यक्ष्मा में चारों पर्णिनियों से औटे जल को पीना तथा उसी जल से अन्नों को पकाकर सेवन करने का आचार्य ने निर्देश किया है—

पर्णिनीभिश्चतसृभिस्तेन चान्नानि कल्पयेत्।
स्थिरादिपंचमूलेन पाने शस्तं श्रृतं जलम्।।

—चरक. चि. 8

यक्ष्मा रोगी को जब स्वर भेद विशेष हो तब अन्य सेवन करने योग्य औषधियों के साथ नस्य धूमादि का भी विधान है—"विशेषात् स्वरसादस्यनस्यधूमानि योजयेत्"। न्स हेतु भी शालपर्णी, बला आदि सिद्ध और लवण से संयुक्त घृत उत्तम कहा गया है—

बलाविदारिगन्धाभ्यां विदार्य्या मधुकेन च।
सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्वर्य्यमनुत्तमम्।।

आ. हृ. चि. 5

च्यवनप्राश और अमृतप्राशघृत (चरक चि.11) का यह घटक है। ये योग कास, श्वास, यक्ष्मा में हितकर हैं। दशमूल और दुग्ध से सिद्ध घृत भी यक्ष्मा में सेवन करना हितकारक है। पार्श्वशूल किंवा पसली के दर्द को दूर करने में दशमूल क्वाथ का सेवन उपयोगी है। दशमूल क्वाथ के साथ पिप्पली चूर्ण सन्निपातज्वर हर कहा गया हैं, सुतरां शालपर्णी एक प्रशस्त ज्वरघ्न वनौषधि है। इसकी ज्वरघ्नता को ये छन्द प्रमाणित करते हैं—

शालपर्णी बला द्राक्षा गुडूची सारिवा तथा।
आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्र वातज्वराच्छदम्।।

—शा. सं. म. ख.

मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पंचमूलीश्रृतं पयः।

अ. हृ. चि. 1-110

शालपर्णी एवं अन्य उपयोगी द्रव्यों के संयोग से दी गई बस्ति भी ज्वरघ्न होती है—

चतस्रः पर्णिनीर्यष्टी फलोशीरनृपद्रुमान्।
क्वाथयेत्कल्कयेद् यष्टी शताह्वा कलिनी फलम्।।

मुस्तंच बस्तिः सगुडक्षौद्रसर्पिर्ज्वरापहः।।

—अ. हृ. चि.।

शालपर्णी एक मूत्रल द्रव्य होने से मूत्रकृच्छ्र, प्रमेहादि मूत्रवह संस्थानगत व्याधियों में भी हितकारी है। आचार्य सुश्रुत ने चि. स्थान अ. 11 में प्रियंग्वनन्तायूथिकादि से निर्मित जो लेह, आसवारिष्टों का वर्णन किया है उनमें शालपर्णी का भी उल्लेख किया गया है। ये योग प्रमेह रोगोपयोगी हैं। रक्तमेह में शालपर्णी सिद्ध क्षीरपाक हितावह हैं। लघु पंचमूल अर्क अश्मरी में हितकर है।

शालपर्णी स्त्री रोगों की एक प्रशस्त औषधि है। प्रदररोग को दूर करने के लिए कहा गया है—

शालपर्णी पृश्निपर्णी पीवरी वृहतीद्वयम्।
वाट्मैरण्डै च तत्क्वाथः प्रदरं विनिवर्त्तयेत्।।

—क्वा. म. मा.

विदारिगन्धादिगण की औषधियां गर्भपात एवं प्रसूती के समय समान रूप से हितकारी हैं—

अथादृष्टशोणित वेदनायां....विदारिगन्धादि सिद्धंवा पयः पाययेत्। *—सुश्रुत शा. 10-60*

अथ सूतिकां.......विशुद्धे ततो विदारिगन्धादि सिद्धां स्नेहय वागूं क्षीरयवागूं वा पाययेत् त्रिरात्रम्।

—सु. शा. 10-15

सूतिका के ज्वरदाहादि को दूर करने के लिए भी इसे उपयोग में लाया जाता है—

शालपर्णी पृश्निपर्णी वृहतीद्वय गोक्षुरैः।
दासीप्रसारिणी विल्वगुडूच्यम्बुधरैस्तथा।
कषायः सूतिकातङ्के ज्वरदाहादिकं हरेत्।।

—क्वा. म. मा.

यदि प्रसूता का दुग्ध विकृत हो तो दशमूल सिद्ध घृत सेवन कराना चाहिये। यदि दुग्धाल्पता हो तो लघु पंचमूल से सिद्ध सितायुक्त दुग्ध का सेवन कराना हितकारक है। जब किसी कारण से शिशु को माता का दूध उप... हो तो उसे बकरी या गाय का दूध पिलाना चाहि...

स्तन्याभावे पयच्छागं गव्यं वा तद् गुणं...

यह दूध सुपाच्य एवं पोषण प्रदान करने वा... चाहिये। दूध को हल्का (लघु) बनाने का प्रयत्न... चाहिये। दूध गरम कर रख देने से उस पर मला... जातीहै। यह मलाई निकाल देने से दूध लघु बन जा... इस प्रकार दो या तीन बार मलाई निकाल देने से दू... लघु एवं सुपाच्य हो जाता है। इस दूध को सुपाच्य एवं पोषक बनाने लिए दूध में समभाग जल मिला... लघु पंचमूल मिलाकर उबाल कर तैयार किया... दूध देना लाभप्रद है—

ह्रस्वेन पंचमूलेन स्थिराभ्यां वा सिता युक्...

—अ. हृ. 30...

यही नहीं, शालपर्णी, द्राक्षा, ब्राह्मी, जीवनी... वचा, कूठ आदि औषधियों से सिद्ध घृत का बाल... लेहन कराने से वह स्वस्थ एवं मेधावी होता है। अ... सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है कि अन्न सेवन करने वाले... को दशमूल, तगर, मुलेठी, मुनक्का, ब्राह्मी आदि... घृत का सेवन कराने से वह स्वस्थ, बलवान् तथा बु... होता है—

अन्नादाय द्विपंचमूली क्षीरतगर भद्रदारु... मधुक विडंग द्राक्षा द्विब्राह्मी सिद्धं तैल... बलमेधायूंषि शिशोर्भवन्ति। *—सुश्रुत. शा. ...*

वातिक शिरः शूल एवं अर्धावभेदक में यह... में उपयोग में लाई जाती है—

रास्नास्थिरादिभिः सिद्धं सक्षीरं नस्यमर्ति...

—चरक. ...

शालिपर्ण्यम्भसा क्षिप्रं नस्यमर्द्धावभेदजि...

विदारिगन्धादि और जीवनीय गण की औष...

सिद्ध तैल का नस्य खालित्य एवं पलितनाशक कहा गया है—

सिद्धं विदारिगन्धाद्यैजीवनीयैरथापि च।
नस्यं स्यादणु तैलं वा खालित्यपलितापहम्।।

—चरक. चि. 26

सुश्रुत संहिता कल्प स्थान में इसे कीट विष निवारण में उपयोगी कहा है—

शिरीषं तगरं कुष्ठं शालिपर्णी सहा निशे।
अहिण्डुकाभिर्दष्टानामगदो विषनाशनः।।

—8-52

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार इसकी जड़ पेचिश को रोकने वाली ताकत देने वाली, पित्त विकार को दूर करने वाली तथा जीर्ण ज्वर को हरने वाली है। इसके अतिरिक्त वमन, मिचलाहट को यह दूर करती है। छाती तथा फेफड़ों की पुरानी बीमारियों में भी यह लाभदायक है।

पाश्चात्य मत—पाश्चात्य मतानुसार यह ज्वरहर प्रतिश्याय रोधक है तथा दशमूल की प्रधान औषधि है जो आर्यों के प्राचीन द्रव्यगुण का एक प्रधान औषध कल्प है। यह विषघ्न, वमन में हितकर एवं ज्वर, कफ, श्वास, अतिसार, क्षय, शोथ, कृमि आदि रोगों को दूर कर दीर्घायु प्रदान करती है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. मूढ़गर्भ—नाभि, बस्ति और योनि पर शालपर्णी की जड़ को पानी के साथ पीसकर लेप करने से मूढ़ गर्भ बाहर आ जाता है। इसे चावलों के पानी के साथ पीसकर भी लेप किया जा सकता है। इससे सामान्यतया प्रसव कष्टरहित हो जाता है।

2. शिर:शूल—(क) रास्ना और शालपर्णी से दूध के साथ सिद्ध तैल का नस्य वातिक शिरोरोग को दूर करता है।

(ख) शालपर्णी के पत्तों के स्वरस का नस्य देने से अर्द्धावभेदक (आधे शिर की पीड़ा होने वाला रोग) का निवारण होता है। इसमें इसका क्वाथ बनाकर कान में डालने से भी अच्छा लाभ मिलता है।

3. व्रण—(क) इसकी जड़ को पानी में पीस घाव पर लेप करने से आराम होगा।

(ख) तैल से जले हुये घाव पर इसकी राख बुरकनी चाहिये।

4. वातरोग—शालपर्णी आदि लघु पंचमूल या दशमूल को तैल में पकाकर इस तैल की मालिश करने से वायु रोगों में शोथ-शूल की शान्ति होती है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

1. प्रतिश्याय—शालपर्णी के मूल का क्वाथ पीना प्रतिश्याय में गुणकारी है।

2. रक्त विकार—शालपर्णी की जड़ और पत्तों का काढ़ा कालीमिर्च के साथ रक्त विकार शामक कहा गया है।

3. रक्तपित्त—(क) इसका विधिपूर्वक तैयार किया हुआ मण्ड रक्तपित्त को दूर करता है।

(ख) चारों पर्णियों (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी और मुद्गपर्णी) के साथ पकाया हुआ दूध, विशेषकर तो जो मूत्रमार्ग से दर्द के साथ निकलता है, उस रक्त (अधोग रक्तपित्त) को रोकता है।

(ग) रक्तपित्त यदि वातानुबन्धी हो तो शालपर्णी आदि पंचमूल का क्वाथ तैयार कर उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पिलाने से यह रोग शान्त होता है।

5. अतिसार—अतिसार के रोगी को शालपर्णी के क्वाथ में खिचड़ी पकाकर सेवन करना चाहिये।

4. प्रवाहिका—शालपर्णी की जड़ और त्रिकुट को यवकुट कर दूध में उबालकर उसे छानकर पीने से पेचिश दूर होती है, यह आमातिसार में भी लाभप्रद है।

6. अग्निमांद्य—शालपर्णी, चित्रक, त्रिफला के क्वाथ में यवक्षार मिलाकर सेवन करने से अग्निमांद्य, कास, अर्श आदि रोग मिटते हैं।

7. अर्श—शालपर्णी और त्रिफला के क्वाथ में सेंधानमक और गुड़ मिलाकर सेवन करें। रक्तार्श में गुड़ के स्थान पर नागकेशर का चूर्ण मिलावें।

8. ग्रहणी—शालपर्णी, बला, बेल की गिरी, धनियां और सोंठ इन पांच द्रव्यों का क्वाथ बनाकर पान करने से अफारा, शूलयुक्त वातज ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

9. हृदय रोग—(क) शालपर्णी क्षीरपाक हृदयशूल को शांत करता है।

(ख) गूगल और लहसुन को मिश्रित कर सेवन करने के बाद उक्त क्षीरपाक अधिक लाभ पहुँचाता है या दशमूल क्वाथ अनुपान के रूप में सेवन करें।

(ग) शालपर्णी आदि लघु पंचमूल के द्रव्यों से तथा दूध से अथवा अंगूर के स्वरस से या गन्ने के रस से सिद्ध घृत पित्तज हृदय रोगों में लाभदायक है।

(घ) कफजन्य हृदयरोग में शालपर्णी, पोकरमूल, सोंठ और अर्जुन छाल को दूध में पकाकर देना चाहिये। इसी प्रकार शालपर्णी, अदरख, हरीतकी और अतीस को गोमूत्र में उबाल कर पीना भी कफज हृदयरोग में हितकारी है। च्यवनप्राश, ब्राह्म रसायन आदि रसायनों में शालपर्णी है। ये रसायन तो इसमें हितकारी हैं ही।

10. पाण्डु—लघु पंचमूल का क्वाथ या इससे साधित दुग्ध पाण्डु-कामला में हितकर है। साथ में आंवलां-अंगूर का रस भी पीते रहना चाहिये।

11. शोथ—(क) दशमूल क्वाथ में 500 मि. ग्रा. शुद्ध गूगल मिलाकर सेवन करना शोथहर कहा गया है।

(ख) शालपर्णी, पुनर्नवा, नीम की छाल और कुटकी का क्वाथ पीने से शोथ का शमन होता है।

12. कास—(क) शालपर्णी कालीमिर्च और तुलसी का क्वाथ कास, प्रतिश्याय में हितकारी है।

(ख) शालपर्णी, सोंठ, वासा और हरड़ के क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करना कास श्वास के रोगी के लिए लाभदायक है।

13. यक्ष्मा—(क) लघु पंचमूल से सिद्ध से ... पीना तथा उसमें अन्न पकाकर यक्ष्मा में खाना ... पृश्नि

(ख) शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी और मु... इन चारों पर्णियों से सिद्ध जल भी इसी प्रकार सेव... लाना चाहिए।

14. ज्वर—(क) शालपर्णी की जड़ को ... के साथ क्वाथ रूप में औटाकर छानकर पिला... उतर जाता है। श्लेष्मिक त्वचा के अन्दर सूजन ... अगर ज्वर आ जाय तो शालपर्णी के उपयोग से दू... है। यह विषम ज्वर की भी प्रशस्त औषधि है। स... ज्वरों में पिप्पली चूर्ण के साथ दशमूल क्वाथ ... बहुत लाभ पहुंचाता है।

(ख) शालपर्णी गिलोय और मुनक्का का क... के रोगी के लिए परम हितकारी है।

(ग) लघु पंचमूल क्वाथ वातपित्त ज्वर में ... है।

(घ) लघु पंचमूल, गिलोय, सोंठ, मु... चिरायता का क्वाथ वातपित्त ज्वर में लाभप्रद...

15. प्रदर—शालपर्णी, पृश्णिपर्णी, गिलो... कटेरी, बला और एरण्डमूल का क्वाथ प्रदर में ... है।

16. सूतिकारोग—सूतिका रोगों में दशमू... पीपरि और पिपरामूल के चूर्ण के साथ ... हितकारक कहा गया है। वातकफज्वर, सन्नि... भ्रम, कास, श्वास, हृदयशूल, पार्श्व पीड़ा, जीर्ण... शिर:शूल आदि बहुत से रोगों को दूर करने में ... एक अद्वितीय क्वाथ है। प्रसव के बाद इसके ... किसी भी प्रकार का रोग होने की संभावना न...

17. दुग्धन्यूनता—माता के स्तनों में यदि ... आता हो तो उसे विदारीगंधादिगण की औषधियों ... कराना चाहिये। इस गण की उपलबध प्रमुख ...

से सिद्ध दुग्धपान से दुग्ध की वृद्धि होती है। शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी और शतावरी इस गण की प्रमुख औषधियां हैं जो दुग्ध की वृद्धि करती हैं अत: इनका सेवन विशेष हितकारी है।

18. वातरोग—पित्तानुबन्धी वातरोगों में लघु पंचमूल का क्वाथ हितक है। दशमूल क्वाथ सभी प्रकार के वात रोगों को दूर करने वाला है।

19. आमवात—शालपर्णी, सोंठ और एरण्डमूल की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें एरण्ड तैल मिलाकर आमवात के रोगी को पिलाना हितकारक है।

20. वातरक्त—शालपर्णी, निशोथ और एरण्डमूल की छाल से सिद्ध दूध वातरक्त में हितावह है।

21. विसर्प—शालपर्णी आदि पंचमूल और जौ के छलकों (तुष) का क्वाथ पित्तज विसर्पहर कहा गया है। इस क्वाथ का सेक भी लाभप्रद है।

विविध कल्प—

क्वाथ—1. शालपर्णी, बला, मुनक्का, गिलोय और अनन्तमूल इन पांच औषधियों को समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनाकर सुखोष्ण क्वाथ पीने से उग्र वातजनित ज्वर का शमन होता है। *—शा. सं.*

2. शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, पियाबांसा, गन्धपसारन, बेल, गिलोय और नागरमोथा का क्वाथ बनाकर पीने से सूतिका स्त्रियों के ज्वरदाहादि रोग शीघ्र दूर होते हैं। *—क्वा. म. मा.*

घृत—1. शालपर्णी, गोखरू, बड़ी कटेरी, सारिवा, शतावरी, गम्भारी, कौंच के बीज, सफेद पुंनर्नवा, बला, अतिबला इनका क्वाथ, मेदा, शतावरी, मुलेठी, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक के कल्क में घृत को चौगुने दुग्ध से सिद्ध कर लें। इसे घृत से तीन गुने दुग्ध और डेढ़ गुनी शर्करा मिला लें। यह त्रिदोषक वातरक्त को नष्ट करता है।

—चरक संहिता

2. शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, पुनर्नवा, अमलतास, करंज प्रत्येक 2-2 पल (2 पल = 96 ग्राम) जल 64 पल से एक प्रस्थ (768 ग्राम) घृत पाक करें। यह उदर में रुके वायु को निकालता है। *—च. सं.*

तैल—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खरेंटी, शतावरी, एरण्डमूल की छाल, छोटी कटेरी तथा बड़ी कटेरी की जड़, पूति करंज, नागबला तथा कटसरैया की जड़ इनको प्रत्येक 48-48 ग्राम लेकर कल्क करें। तिल तैल 768 ग्राम, गाय या बकरी का दूध 3 किलो 72 ग्राम लेकर तैल पाक करें। इस तैल के लाभ ये हैं—घोड़े, हाथी और मनुष्य यदि वात से पीड़ित हों तो उनके समस्त रोगों को दूर करता है। यह आयु बढ़ाता है और दृढ़ता पैदा करता है। इसके प्रयोग से खच्चरी भी गर्भधारण करती है, स्त्रियों की कौन कहे ? इससे हृदयशूल, पार्श्वशूल और अर्धावभेदक दूर होते हैं। पाण्डु, कामला, मूत्र में शर्करा आना तथा अश्मरी ये रोग नष्ट होते हैं। शिथिल इन्द्रिय वाले तथा शुक्र जिनका नष्ट हो गया है, जो अत्यन्त वृद्ध हैं ऐसे तथा क्षय, आन्त्रवृद्धि, अर्दित, गलगण्ड और वातरक्त आदि रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को तथा सन्तान विहीन स्त्रियों को इस तैल का उपयोग करना चाहिये। यह शालपर्ण्यादि उत्तम तैल स्वयं भगवान् विष्णु द्वारा कहा गया है अत: इसे विष्णु तैल भी कहा जाता है। *—च. द.*

पेटेन्ट प्रयोगों में शालपर्णी—

शालपर्णी युक्त लघु पंचमूल का या दशमूल का प्रयोग बहुत से पेटेन्ट प्रयोगों में किया जाता है। दशमूल के इंजेक्शन भी तैयार किये जाते हैं। साण्डु नामक आयुर्वेदीय औषध निर्माता आरोग्य मिश्रण, दमामिश्रण आदि में दशमूल को मिश्रित करते हैं। इसी प्रकार अन्य भी इस औषधिगण को उपयोग में लाते हैं। गोस्वामी (रतनगढ़-राजस्थान) ड्रग्स के 'कारडी-टोन' कैपसूलों में दशमूल घनसत्व डाला जाता है। ये कैपसूल हृदय की

दुर्बलता, अनियमित हृदयगति एवं उच्च रक्तचाप में उपयोगी हैं।

अनुभूत प्रयोग—

1. हृदय रोगोपयोगी प्रयोग—शालपर्णी, कूठ, धनियां, पिप्पली, इलायची बीज, सोंठ, और अर्जुनछाल को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर रखें। इसे दूध में चाय की तरह पकाकर सेवन करने से बहुत लाभ होता है। दूध और पानी बराबर मात्रा में लेवें उसमें एक चम्मच उक्त चूर्ण (5 ग्राम) डालकर दुग्धावशेष करलें। फिर इसमें मिश्री या शक्कर डालकर छानकर पीवें। यह हृदय रोगी के लिए परम उपयोगी अनुभूत योग है।

—वैद्य श्री सीताराम शर्मा

(विशे. के लिए प्रदत्त योग)

2. वात रोगों में उपयोगी प्रयोग—यदि वायुके प्रत्येक रोगी को लघु पंचमूल (शालपर्णी, पृ... छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू का) विधि से फाण्ट बनाकर उसमें सोंठ चूर्ण का प्र... दिया जाय तो उसे अच्छा लाभ प्राप्त होगा।

—वैद्य श्री मदन मोहन ल...

(सुधा. नि. चि. वि...

3. ज्वरातिसार नाशक प्रयोग—... पृश्नपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, नागरमोथा, कुटज छाल, खस, कुटकी, गिलोय, बेलगिरी प्रत्येक द्रव्य 10–10 ग्राम लेकर जौकु... लिटर पानी में औटावें। शेष 250 मि.लि. रहने... दिन में तीन बार मधु मिलाकर पिलावें।

—वैद्य श्री काशी...

(अनु. प्र...

वनौषधि रत्नाकर के अन्य भागों में सम्मलित वनौषधियों का वि...

प्रथम भाग—1. अकरकरा, 2. अंकोल, 3. अगर, 4. अग्निमन्थ, 5. अर्जुन, 6. अतीस, 7. अपामार्ग 8. ... 9. अम्लवेतस, 10. अमलतास, 11. अर्क 12. अलसी, 13. असगन्ध, 14. अशोक, 15. अहिफेन, 16. ... 17. आम्र, 18. ईसबगोल, 19. इन्द्रायण।

द्वितीय भाग—1. उदुम्बर, 2. उलटकम्बल, 3. उशीर, 4. उस्तखुदूस, 5. एरण्ड, 6. एलाद्वय, 7. ... 8. कटुका, 9. कण्टकारी, 10. बृहती, 11. कपिकच्छु, 12. कर्पूर, 13. करंज त्रय, 14. कर्कटश्रृंगी, 15. ... 16. किराततिक्त, 17. कुचेलक।

तृतीय भाग—1. कुटज, 2. कुमारी, 3. कुलिंज, 4. कुष्ठ, 5. केसर/कुकुम, 6. खर्जूर, 7. खदिर, 8. ... 9. गुडूची/गिलोय, 10. गुलाब, 11. गोक्षुर, 12. चक्रमर्द, 13. चन्दन रक्त चन्दन, 14. चव्य, 15. चि...

चतुर्थ भाग—1. जटामांसी, 2. जातीफल, 3. जीरक चतुष्टय, 4. ज्योतिष्मती, 5. ताम्बुल, 6. ता... तुवरक, 8. तुलसी, 9. तेजवती, 10. त्रिवृत, 11. त्वक्, 12. दन्तीद्वय, 13. दन्तीबीज, 14. दाडिम, 15...

पंचम भाग—1. दुरालभा, 2. दूर्बा, 3. देवदारू, 4. द्रोणपुष्पी, 5. धत्तूर, 6. धातकी, 7. धान्यक, 8. ना... 9. निम्बुक, 10. निम्ब, 11. महानिम्ब, 12. निर्गुण्डी, 13. पटोल, 14. पर्पटी, 15. पलाश, 16. प्लाण्डु, ... प्लाण्डु, 18. पाषाणभेद, 19. पाटला, 20. पाठा, 21. पिप्पली।

छटवां भाग—1. पिप्पली, 2. पुनर्नवा, 3. पुष्करमूल, 4. पृष्णिपर्णी, 5. बकुल, 6. बालचातुष्टय, 7. ... 8. विभीतक, 9. बिल्व, 10. ब्राह्मी, 11. भंगा, 12. भृंगराज, 13. भल्लातक।

सप्तम भाग—1. भारंगी, 2. मंजिष्ठा, 3. मदनफल 4. मरिच, 5. मुस्तक, 6. यष्टीमधु, 7. यवानी, 8. ... 9. पारसीय यवानी, 10. रसोन, 11. रास्ना, 12. लवंग, 13. लोध्र, 14. वचा, 15. द्वीपान्तर वचा।

शिरीष
(Albizzia Lebbeck)

रोगाः हरन्ति सततं प्रबलांः शरीरं
कामादयोप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम्।
मृत्युश्च नृत्यति सदा कलयन् दिनानि
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो।।

चरकसंहिता में जो त्रिविध औषध कही गई है—युक्ति व्यपाश्रय, सत्वावजय और दैवव्यपाश्रय (चरक. सू. ग्यारह) ये तीनों औषध उक्त श्लोक में ध्वनित हो रही हैं। रोगों को दूर करने के लिए जड़ी-बूटियों को उपयोग में लाना चाहिये, अहित विषय किंबा द्रव्यों से मन को दूर रखना चाहिये और जगन्नियन्ता की शरण में जाना चाहिए। तब ही इन रोगों से मुक्ति मिल सकती है। इन तीनों उपायों में भी जड़ी-बूटियों का उपयोग अधिक महत्व रखता है। मानव रूप में अवतरित भगवान् राम को भी इनसे सहायता की आवश्यकता पड़ी थी। लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर हनुमान को बूटी लाने हेतु भेजा था—

संजीवन बूटी लाओ,
ओ मारूति मारूति मारूति रे
भैया के प्राण बचाओ।।
जो वीर बली कहलाये,
अंजनिसुत तत्क्षण धाये,
संजीवन बूटी लाये;
लक्ष्मण के प्राण बचाये
'गोपेश' सभी गुण गाओ।।

जो पदार्थ शरीर में प्रविष्ट होकर कष्ट पहुंचावे, विष कहलाते हैं। विषाद करने वाले पदार्थ ही विष होते हैं। चिकित्सक इस विष के निष्कासन का प्रयास करते हैं और उसके प्रभाव से उत्पन्न विकृतियों को दूर करने के लिए जो औषधि रोगी के हित प्रयुक्त करते हैं उनमें शिरीष का महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य चरक ने विषचिकित्सा में 24 उपक्रम बतलाये हैं उनमें कई औषधि जन्य उपक्रम हैं। इनमें मन्त्र, बन्धन, उंत्कर्तन, निष्पीडन, चूषण, परिषेक, अवगाहन, रक्तमोक्षण के अतिरिक्त सब उपक्रम संशमन औषधि के रूप में हैं। चरक. सू. अ. 4 में जो दश विषघ्न द्रव्य कहे हैं उनमें एक यह शिरीष भी है। कषायस्कन्ध की इस औषधि को वेदनास्थापन एवं शिरोविरेचन भी कहा है। आचार्य वाग्भट ने भी शिरीष बीज को शिरोविरेचनोपयोगी कहा है—"बीजं शैरीषं शोधयत्युत्तमांगम्" (शिरीष बीजं शैरीषम्)। आचार्य सुश्रुत ने इसे सालसारादिगण में वर्णित किया हैं इसके अतिरिक्त सु. क. अ. 5 में जो एकसर गण कहा है, उसमें भी शिरीष का उल्लेख किया गया है—

सोमराजीफलं पुष्पं कटभी सिन्धुवारकः।
चोरको वरूणः कुष्ठं सर्पगन्धा ससप्तला।।
पुनर्नवा शिरीषस्य पुष्पमारग्वधार्कजंम्।
श्यामाऽम्बष्ठ विडङ्गानि तथाऽप्राश्मन्तकानि च।।
भूमी कुरवकश्चैव गण एकसरः स्मृतः।
एकशो द्विन्त्रिशो वाऽपि प्रयोक्तव्यो विषापहः।।

—सुश्रुत. क. 5

स चौषधगण एकैकशः एकमेकं द्वौ-द्वौ त्रीन् त्रीन् वा प्रयोक्तव्यः, प्रयुक्तश्च विषापहो भवति।—डल्हणः

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार शिरीष, शिम्बी कुल (लेग्युमिनोसी) तथा बब्बूल उपकुल (माइमोसायड़ी)

की वनौषधि है। आचार्य भावमिश्र ने इसका वटादिवर्ग में वर्णन किया है। आचार्य प्रियव्रत ने विषघ्न द्रव्यों में निर्विषा, छिल (जलजमनी) और अंकोल से पहले शिरीष का वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—शिरीष, शुक्रप्रिय, मृदुपुष्प, कपीतन, भण्डी

हिन्दी—सिरिस, सिरस

गुजराती—सरसड़ो

मराठी—शिरस

बंगला—शिरीष

पंजाबी—शरी

तामिल—वेंगिआई

तेलगू—दिरासना

कन्नड़—बागेमारा

मलयालम—बागा

अरबी—सुल्तानुल् अश्जार

फारसी—दरख्ते जकरिया

उर्दू—दराश

अंग्रेजी—सिरिस ट्री (Siris Tree)

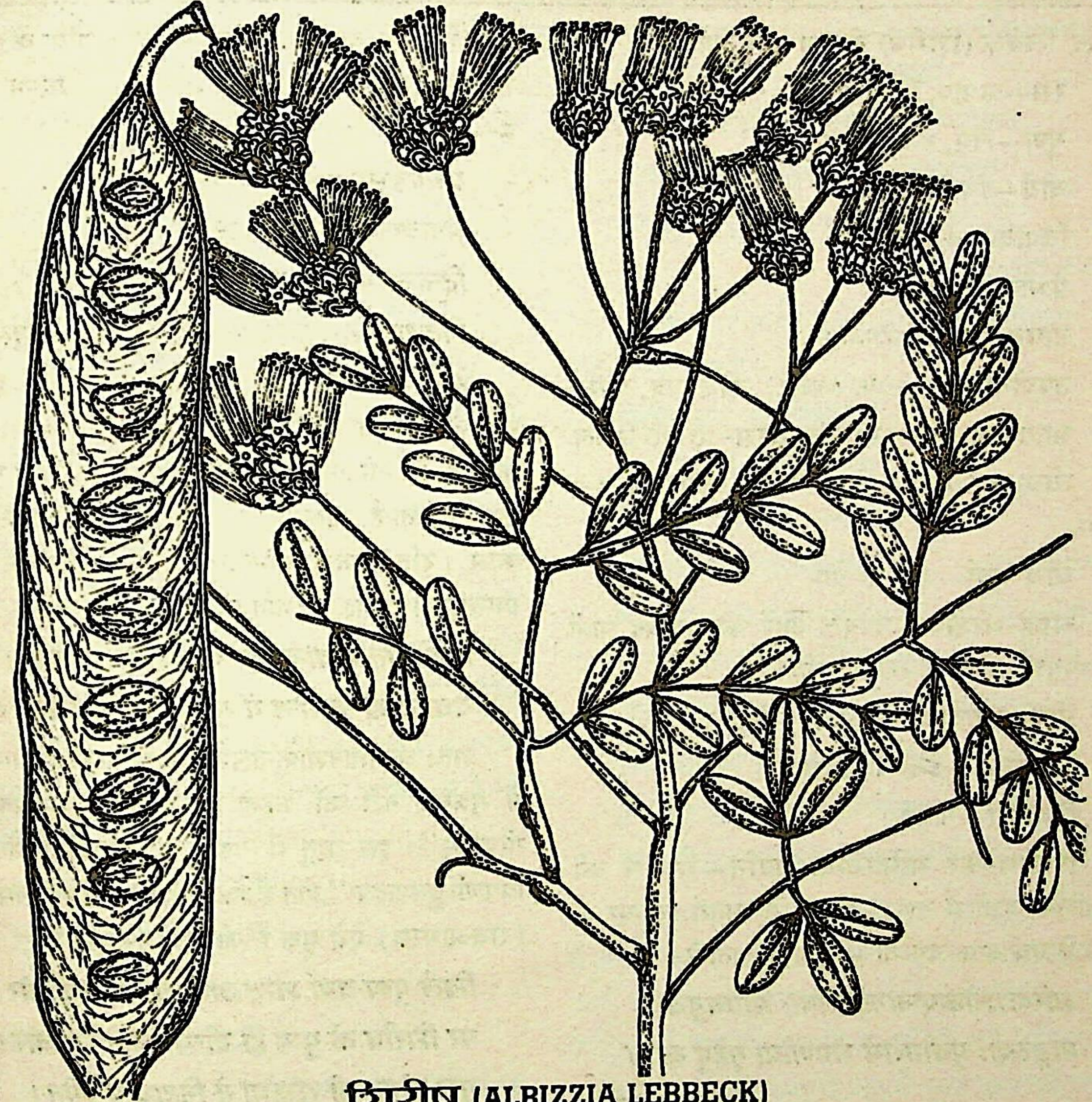
लैटिन—ऐलबिज्जिया लिबेक (Albizzia Lebbeck)

प्रप्ति स्थान—भारत में सर्वत्र 4000 फीट की ऊँचाई पर यह पाया जाता है।

रासायनिक संघठन—इसकी छाल में टैनिन (7-11 प्रतिशत) तथा सैपोनिन होता है। छाल से एक लाल भूरे रंग का गोंद निकलता है।

वानस्पतिक परिचय—शिरीष का वृक्ष 50-60 फुट ऊँचा लम्बा अधिकतर उष्ण तथा समशीतोष्ण स्थान में होता है। सड़कों के किनारे ये वृक्ष पाये जाते हैं और बहुत से गाँवों के मध्य में इसके वृक्ष देखने को मिलते हैं। बाग-बगीचों में भी ये वृक्ष लगाये जाते छायाकार वृक्ष की शाखायें चारों ओर फैली होतं वृक्ष पर पतझड़ का प्रभाव होता है अर्थात् ये वृक्ष होते हैं। इसके पत्र इमली के पत्तों जैसे लगते हैं कभी-कभी 5 जोड़े पक्षों से युक्त होते हैं। पत्र ऊर्ध्वतम पक्षों के नीचे तथा मूल भाग में ग्रन्थि पत्रकों में भी ऊपरी 2-5 युग्मों के नीचे ग्रन्थि पत्रक-प्राय: 6-8 जोड़े, आयताकार, ¾-2½ तथा 0.35-1 इंच चौड़े होते हैं। पुष्प-पी सुगन्धित और कोमल, 2-4 इंच लम्बे पुष्पद अक्षीय एक-तीन की संख्या में एक साथ अन्त:कोश बाह्य कोश से दुगना, बाहर निक होता है। शिम्बी (फली) ½ से एक फुट लम्बी, इंच चौड़ी, चपटी और कड़ी, रेखाकार-आयता है, जिसमें 6-10 की संख्या में धूसर, चपटे, शिवलिंगवत् चिन्हों से युक्त बीज होते हैं। ये पक कर जब हवा से हिलती हैं तब मर्मर ध्वनि आनन्द आता है। शीतकाल में इसके पत्र झड़ अप्रेल-जून (ग्रीष्मकाल में) पुष्प और शीत फल पकते हैं। जो पीछे तक पेड़ों पर लगे रह

भेद—इसकी अनेक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। ने ऐलबिज्जिया की 14 जातियाँ लिखी हैं। इ और फलियों में भेद पाया जाता है। आयुर्वेद शिरीष और कंटकीय शिरीष ये दो भेद और ऐल. प्रोसेरा के बहुत ऊँचे वृक्ष होते हैं इनकी या हरित-श्वेत होती है। इसे सफेद शिरीष कहते प्राचीनों की कटभी या किणिही हो सकती है आमरा को लाल शिरीष कहते हैं। ऐल. ओडो के वृक्ष उक्त ऐ. लिबेक (काला सिरस) से छोटे ये पहाड़ों पर झरनों के निकट उगे मिल जाते हैं तने और शाखाओं की छाल पीताभश्वेत होती है पीला सिरस भी कह देते हैं। इनके गुणों में प्राय: है।



शिरीष (ALBIZZIA LEBBECK)

नाम—सं०—शिरीष, हि०—सिरिस; गु०—सरसड़ो; म०—शिरष; अं.— सिरिस ट्री; लै०—ऐलबिज्जिया लिबेक।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत।

उपयोगी अंग—त्वक्, बीज, पत्र, पुष्प।

दोषशमन—त्रिदोष शामक।

रोगोपयोग—विषरोग, विसर्प, कुष्ठ, कास आदि।

मुख्ययोग—शिरीषाद्यरिष्ट, पंच शिरीष अगद, दशांग लेप आदि।

एल. लिबेक (शिरीष) के रस गुण आदि—

रस—कषाय, तिक्त, मधुर

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण

वीर्य—ईषद् उष्ण

विपाक—कटु

प्रभाव—विषघ्न

दोषकर्म—त्रिदोषशामक

उपयोगी अंग—त्वक् (छाल), बीज, पत्र, पुष्प।

मात्रा—पत्रस्वरस या पुष्पस्वरस-10-20 मि.लि.

त्वक् क्वाथ्—50-100 मि.लि., त्वक् चूर्ण-2-6 ग्राम।

बीज चूर्ण—एक-दो ग्राम

संग्रह-संरक्षण—उपयुक्त अंगों को मुखबंद पात्रों में उपयुक्त स्थान पर रखना चाहिए।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष पर्यन्त—

अहितकर—रूक्ष प्रकृति को

निवारण—गोघृत

शिरीष का साहित्यिक वर्णन—शिरीष की मांगलिक वृक्षों में गणना की गई है, सुतरां इसे घर के पास में एवं बाग-बगीचों में लगाया जाता है—

अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः।
माङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा।।

—बृहद्वास्तुमाला

संस्कृतसाहित्य में इस शिरीष की मांगलिकता, पुष्प की कोमलता एवं ग्रीष्मऋतु में प्रफुल्लसुन्दरता के कारण इसका रोचक वर्णन मिलता है। इसके पुष्प अत्यन्त सुकुमार कहे गये हैं—

"शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यो बाहू तदीयाविति मे वितर्कः" **(कुमारसंभव 1-41)**

महाकवि कालिदास ऊपर से सजे-धजे वसन्त के कवि हैं, किन्तु वे वस्तुतः परिणामरमणीय ग्रीष्म... हैं। इनका प्रथम काव्य ग्रीष्म ऋतुवर्णन से प्रा... है—

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः
सदावगाहक्षतवारिसंचयः।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो
निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये।। —ऋ...

हे प्रिये यह ग्रीष्म ऋतु का समय आ गया... सूर्य अति तपता है, सभी चन्द्रप्रकाश की ... करते हैं, निरन्तर स्नानादि से नदियों–जलाशयों... कम हो जाता है, सांयकाल की छवि मनोरम होती... काम (रति) की अभिलाषा कम हो जाती... ग्रीष्मसंध्या से यह परिणति परिलक्षित होती है-

दिन तपते हैं वन्हि सम पर दिनांत रमणी...
यथा दुःख उपरान्त में सुख होता कमनी...

अतः अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामक नाटक के... में सूत्रधार नटी को कहता है "ग्रीष्मसमय... गीयताम्"। इस ऋतु में यद्यपि "ध्वस्तवील... विपर्णाङ्कितपादपा" होते हैं किन्तु शिरीष और ... (राजआभरण) ऐसे वृक्ष हैं जो इसमें खिलते हैं...

खिले पुष्प वर्षा शरद अरू वसन्त चहुं...
पर शिरीष के पुष्प ही ग्रीष्म खिले रस...
गुल मोहर की रक्तिमा दे निदाघ में शीत...
यह ऊषा की लालिमा शान्ति देत ज्यों...

प्राचीन समय में युवतियां कर्णफूल के रूप में... के पुष्प को उपयोग में लाती थीं। शिरीष ... हलका रंग कुन्दनी चेहरे की शोभा बढ़ाता है—

मृदुल कपोलों पर लगे वने श्रवण श्रृंगार...
तन की तपन मिटाय कर सुरभि करे ...

मेघदूत में वर्णित है कि अलकापुरी की ... कानों में सुन्दर शिरीष के फूल धारण करती हैं...

काले बालों में सफेद जुही के पुष्प गूंथती हैं और लाल होंठो व गालों पर लोध्र का चूर्ण मल कर उन्हें पीताभ कर लेती है।—

हस्ते लीला कमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूड़ापाशे नवकुरबकं चारूकर्णे शिरीषं
सीमान्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।

—उत्तरमेघ-2

कुमार चन्द्रापीड़ दीक्षान्त के उपरान्त जब गुरूकुल लौटे तब उनके सौन्दर्य के वर्णन में भी शिरीषपुष्प का उल्लेख मिलता है—

एतदस्य कर्णाभरणमरकतप्रभाश्यामायितं परचितविकचशिरीषकुसुमकर्णपूरमिवकपोलतलं राभाति। ***—कादम्बरी पूर्वार्ध***

इस प्रकारपुष्पाभरण श्रृंगार के रूप में इस शिरीषपुष्प का प्रमुख स्थान हैं यह नटी के मुख से कालिदास ने भी कहलाया है—

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः
सुकुमार केसर शिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः
प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।।

—अभिज्ञानशाकुन्तलम 1-4

शिरीष पुष्पों की अत्यधिक कोमलता और सुकुमारता का काव्यों में स्थान-स्थान वर्णन किया गया है। राजकुमार सुदर्शन की सुकुमारता की उपमा में—

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः
खेदं स यायादपि भूषणेन।
नितान्तगुर्वीमपि सोऽनुभावादुरं
धरित्र्या विभरां वभूव।। ***—रघुवंश सर्ग-18***

सीता के सौकुमार्य की उपमा में भी कहा गया है—

सद्यः पुरीपरिसरेऽपिशिरीषमृद्वी
सीताजवात् त्रिचतुराणि पदानि गत्वा।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्।।

—बालरामायण 6-34

राम के वनगमन के समय भी इसकी कोमलता को याद किया गया है—

विपिने क्व जटानिबन्धनं
तव चेदं क्व मनोहरं वपुः।
अनयोर्घटना विधेः स्फुटं
ननु खंगेन शिरीषकर्तनम्।। ***—राघवविलास***

ये शिरीष के पुष्प सुकोमल होने के अतिरिक्त प्रियदर्शन, मानोरम गंधी और सौरभप्रसारक होते हैं—

ये शिरीष के पुष्प हैं कोमलता पर्याय।
झट जाते ये झर तथा पट जाते कुमलाय।।
इन शिरीष के पुष्प की केशर अति सुकुमार।
तन की तपन मिटाय कर सुरभि करे संचार।।

साहित्यकार का मूल धर्म सृजन है। सृजन के उत्स में जो संवेदना, अनुभूति, दृष्टि, उल्लास और उन्मेष हैं उसमें प्रत्येक की समानता हो सकती है किन्तु उनकी व्याख्याओं का मर्म उनकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अवश्य भिन्न-भिन्न होती है। इसमें कालिदास की महत्ता सर्वोपरि है। क्योंकि "ये भारत की समग्रचेतना को समझने वाले कवि है। ये एक साथ कभी न समाप्त होने वाले वसन्त हैं, लू की लपटों में खिलने वाले कोमल शिरीष हैं, उदार रसवर्षी वर्षाकाल हैं, निरभ्र शरद् के मुक्त आकाश है, हेमन्त के हिमकर्णों से प्रभात में चमकते भूपटल हैं"।

—डा. गंगाधर भट्ट

तब ही तो कालिदास पर सर्वाधिक समीक्षात्मक निबन्ध लिखे गये हैं। हिन्दी भाषा में भी शिरीष के बहाने

कालिदास पर बहुत विवेचना की गई है जिनमें "शिरीष के फूल" (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी) और "शिरीष का आग्रह" (विद्यानिवास मिश्र) नामक निबन्ध विशेष प्रसिद्ध हैं। श्री विद्यानिवास मिश्र जब आचार्य द्विवेदी जी की अन्त्येष्टि में जाकर आये तो उन्होंने लिखा–

"पिछले दिनों कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय गया था। बड़ेभारी मन से गया था। स्व. बन्धू पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी की अन्त्येष्टि में सम्मिलित होकर इसलिए गया था कि पूर्वप्रति श्रुति थी। गर्मी का मौसम था, बड़ी तपन थी। शाम को पहुंचा था। विश्वविद्यालय परिसर में घूमते हुए एक कतार में शिरीष के पेड़ थे, जमीन पर शिरीष के फूल झरे पड़े थे। हल्की सी सुगन्ध वातावरण को भर रही थी। फूल उठाये एकदम कुम्हला गये थे। अजीब है यह फूल, तपन में ही खिलता है और तपन सह नहीं सकता। द्विवेदी जी भी शिरीष फूल थे। बड़े कठिन तप में विकसित हुए, पर स्वभाव में ऐसी मृदुता पायी कि उनसे वचन या कर्म का उत्ताप सहा नहीं जाता था। शिरीष की तरह ही वे अवधूत स्वभाव के लेखक थे। आज अचानक दाहक ऋतु में शिरीष की याद आयी, शिरीष के साथ शिरीष जैसे पंड़ित जी और स्वयं अपने द्वारा लिखित कालिदास पर केन्द्रित शिरीष वाला निबन्ध । याद आया। इसके साथ ही मन असंख्य साझे की स्मृतियों में खो गया।" *—विद्यानिवास मिश्र*

(नवभारत टाइम्स 1 मई 1994)

गुणधर्म विवेचन (शास्त्रोक्त)—

शिरीषो मधुरोऽनुष्णस्तिक्तश्च तुवरो लघुः।
दोषशोषविसर्पघ्नः कासव्रण विषापहः।।

—भा.प्र.नि.

तिक्तोष्णो विषहा वर्ण्यस्त्रिदोषशमनो लघुः।
शिरीषः कुष्ठकण्डूघ्नस्त्वग्दोषश्वासकासहा।

—कै.नि.

शिरीषः शीतलो व्रण्यो विषवीसर्पशोथह...

—...

भगवान् चरक ने यद्यपि सूत्रस्थान चतुर्थ अ... दश द्रव्य विषघ्न कहे हैं परन्तु सर्वश्रेष्ठ विष... शिरीष को (सू. स्थान 25 में) कहा है–

"शिरीषो विषघ्नानाम्"

सुतरां, आचार्य प्रियव्रत जी कहते हैं कि य... शिरीष अनेक रोगों में लाभकर है तथापि इसका... कर्म सर्वोत्तम है–

विषनाशकेषु चाग्र्यं शस्तञ्चान्येषु रोगेषु

—प्रि...

विष अपनी रूक्षता से वात को प्रकुपित क... उष्णता से पित्त को प्रकुपित करता है, सूक्ष्मता के... रक्त को दूषित करता है तथा अपने अव्यक्त रस से... से कफ को भी विकृत करता है। शिरीष त्रिदो... और रक्तशोधक होने से इन विकृतियों को दूर क...

जाङ्गम विष को नष्ट करने के लिए स्थावर... और स्थावरविष को नष्ट करने के लिए जाङ्गम... उपयोग में लाने का निर्देश है किन्तु यह शिरीष... ही उपयोगी है। इस हेतु इसकी छाल का क्वा... स्वरस एवं बीजों का चूर्ण उपयोग में लाया ज... शरीरान्तर्गत विष प्रविष्ट हो जाने के पश्चात् जो... लक्षण प्रकट होते हैं उनको आयुर्वेदज्ञों ने वेग क... है। ये वेग क्रमशः आठ किंवा सात (सुश्रुत के अ... होते हैं। इन वेगों के प्रारम्भ होने में जितना प... औषधि का प्रयोग किया जायेगा उतना ही लाभ... होगा।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में विविध विषघ्न योगों क... मिलता है। इन विषघ्न योगों को यहाँ अगद कहा... इन अगदों के वर्णन के कारण एक पृथक् तंत्र की...

म दिया गया। इन बहुत से अगदों में शिरीष का हत्वपूर्ण स्थान है। ये अगद स्थावर-जाङ्गमविषों के वारणार्थ प्रयुक्त होते हैं। इन अगदों में प्रमुख अगद ये जिनमें शिरीष की उपादेयता प्रकट की गई -सार्वकार्मिक अगद (सुश्रुत), अमृत घृत अगद चरक) मृतसंजीवनी अगद (चरक) गन्धहस्ति-हागदहस्ति (चरक), पञ्चशिरीष अगद (सुश्रुत), रागद (सुश्रुत), शिखरीघृत (भै. र.) और शिरीषारिष्ट भै. र.) आदि। कतिपय अन्य ब्राह्याभ्यन्तर प्रयोगों में शिरीष की कार्मुकता प्रकट की गई है—

सर्पदष्टाय—

रसं शिरीषपुष्पस्य सप्ताहं मरिचं सितम्।
भावितं सर्पदष्टानां नस्य पानांजने हितम्।।
—चरक.चि. 23

लूतादंशे (मकड़ी के काटने पर)—

मधूकं मधुकं कुष्ठं शिरीषोदीच्यपाटलाः
सनिम्बसारिवाक्षौद्राः पानं लूताविषापहम्।।
—चरक. चि. 23

कटम्युर्जुन शैरीष शैलुक्षीरि द्रुमात्वचः।
कषाय कल्क चूर्णास्युः कीटलूताव्रणापहाः।।
—चरक चि. 23

वृश्चिकदंशे (बिच्छू के काटने पर)—

कपोतविण्मातुलुङ्गं शिरीषकुसुमाद्रसः।
शंखिन्यार्कपयः शुण्ठी करञ्जमधु वाश्चिके।।
—चरक चि. 23

करञ्जर्ज्जुनशैलुनां कटुभ्याः कुटजस्य च।
शिरीषस्य च पुष्पाणि मस्तुनादंश लेपनम्।।
—अ. हृ. उ. 37

मण्डूकविषे—

शिरीषस्य फलं पिष्टं स्नुहीक्षीरेण दादुरे।।
—चरक. चि. 23

शिरीषपुष्पं कुलिशद्रुमस्य
क्षीरेण पिष्टं कृतनावनानाम्।
विषं विनाशं नयति क्षणेन
मण्डूकदंशप्रभवं नराणाम्।। —रा. मा.

मूषकविषे—

अर्कस्य दुग्धेन शिरीषबीजं
त्रिर्भावितं पिप्पली चूर्ण मिश्रम्।
एषोगदो हन्ति विषाणि कीट-
भुजंगलूतोन्दुरवृश्चिकानाम् —अ. हृ. उ. 37

कीटविषे—

समूलपुष्पाङ्कुरवल्कबीजात्
क्वाथः शिरीषात् त्रिकटुप्रगाढ़ः।
सलावणः क्षौद्रयुतोऽथपीतो
विशेषतः कीटविषं निहन्ति।। —सुश्रुत क. 5

कुक्कुरविषे—

शिरीषस्यतु बीजं वै स्नुहीक्षीरेण धर्षितम्।
तल्लेपेन महादेवि नश्येत् कुक्कुरजं विषम्।।
—भै. र.

स्थावरविषे—

स्थावरेण विषेणार्तं नरं यत्नेन वामयेत्।
वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम्
वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च।
पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम्।।
मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेतिशिरीषतः।
गवां मूत्रेण संपिष्टं लेपाद् विषहरं परम्।।
—यो. र.

सर्प के काटने से उसके विष का प्रभाव उसमें रहने वाले विषाक्त प्रोटीन व ऐनजाइम की उपस्थित के कारण होता है। ये नाड़ीमंडल पर प्रभाव डालते हैं, हृदय पर विषाक्त प्रभाव तथा आक्षेप व जकड़न पैदा करने वाले होते हैं या रक्तस्रावी प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार अन्य

जंगमों के विष का प्रभाव होता हैं इनमें यथावश्यक बंधन, प्रच्छन, आचूषण, दग्ध-अंजन एवं अगदप्रयोग आदि का क्रम अपनाना चाहिये।

स्थावरविष से प्रभावित रोगी की श्वसनक्रिया पर पूरा ध्यान रखने की आवश्यकता है। उसका रक्तसंवहन उचित रूप में चलना चाहिये। विषनिष्काशन के सभी उपाय शीघ्रातिशीघ्र करने चाहिये और विषशामक औषधि का प्रयोग करना चाहिए जिज्ञासु पाठकों को विषविज्ञान सम्बन्धी प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य का सम्यक् अनुशीलन करना चाहिये। यहाँ इंगितमात्र किया गया है। यह हमारा विषय नहीं है। हमें तो यहाँ पर यही लिखना है कि जहाँ औषधि प्रयोग की आवश्यकता हो वहाँ इस शिरीष को अन्तः एवं बाह्य प्रयोग हेतु उपयोग में लाना चाहिए। जो शास्त्रीय उद्धरण यहाँ पर दिये गये हैं उनका भावार्थ सामान्य जन को ग्रन्थों के द्वारा जान लेना चाहिए। हम इन उद्धरणों को अनुदितकर सामान्य प्रयोग किंवा कल्प प्रसंग में लिख दिया करते हैं। पुनरूक्ति दोष से बचने के लिए यहाँ इनका हिन्दी अनुवाद नहीं किया है। यह मन्तव्य सभी आलेखों में समझा जाना चाहिये।

बेहोशी को दूर कर चेतना लाने वाली एक वर्तिका अंजनार्थ आचार्य ने कही हैं—

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः।
अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः।।

—शा. सं.

उन्माद रोगी को भी जब नस्य, अंजन आदि का प्रयोग किया जाता है। तो शिरीध को उपयोग में लाया जाता है—

शिरीषो मधुकर्हिंगु लशुनं तगरं वचा।
कुष्ठं च बस्तमूत्रेण पिष्टं स्यान्नावनांजनम्।।

—चरक. चि. 9

शिरीषादि से निर्मित ये नस्य-अंजन उन्माद में ही नहीं अपस्मार, गृहवाधा आदि में भी प्रयुक्त होते हैं—

तद्वद व्योषं हरिद्र हि द्वे मंजिष्ठाहिंगुसर्षपाः।
शिरीष बीजं चोन्माद ग्रहापस्मारनाशनम्।

—चरक

स्थूलव्यक्ति को या पित्तवृद्धि के कारण ग्रीष्मऋतु में पसीना अधिक आता है, तब यह उबटन के रूप में प्रयुक्त होता है—

शिरीषलाभज्जकहेमलोध्रै-
स्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः। —चरक
शिरीषपद्मकोशीररोध्रोद्वर्तित विग्रहः।
ग्रीष्मोष्मणाऽपि नाप्नोति दौर्गन्ध्यं जातु

शिरीष के कुष्ठघ्न होने से कुष्ठ रोग में दिया जाता है। यह रक्तशोधक और शोथहर रक्तविकार, विसर्प, शोथ, गण्डमाला, व्रण, विस्फो में उपयोगी कहा गया है—

शिरीषोदुम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोधवत्सकैः।
प्रलेपः सघृतः शीघ्रं व्रणविसर्पदाहहा।।
शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्राभिर्लेपनाद् द्रुतम्
विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः

शिरीषमूलमंजिष्ठाचव्यामलकयष्टिकाः
सजीतपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवलग्रहः
चन्दनं नागपुष्पञ्च तण्डुलीयकशारिवे
शिरीषवल्कलं जाती लेपः स्याद् दाहनाशनः

शिरीषयष्टीनतचन्दनैला-
मांसीहरिद्राद्वयकुष्ठबालैः।
लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रदिष्टो
विसर्प कण्डू ज्वर शोथहारी।

शिरीषादि दशांगलेप एक महत्वपूर्ण योग है। प्रत्येक चिकित्सक अपने एतद् सम्बन्धी रोगो में करता है। कुछैक चिकित्सकों केअनुभव पाठकों यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

अन्तः प्रयोग—

1. विष विकार—(क) शिरीष के फूलों का रस कालकर उसकी सफेद मिर्च में सात बार भावना दें। इस चूर्ण बनाकर सेवन करने से सर्प आदि विष विकारों लाभ होता है।

(ख) मिथुन संक्रान्ति में शिरीष की सात ग्राम छाल पीसकर चावलों के धोवन के पानी के साथ तीन दिन पिलाने से सर्प आदि जहरीले जानवरों के विष का ाव कम होता है।

(ग) आक के दूध में शिरीष बीजों को भावित कर प्पली चूर्ण मिला सेवन करने से सर्प, मकड़ी, मूषक र बीछू का विष मिटता है।

2. कृमि रोग—(क) शिरीष पत्र स्वरस में मधु ाकर सेवन करना उदरकृमिहर कहा गया है।

(ख) शिरीष (काला), सफेद शिरीष, केमुआ और ाश वृक्षों के पत्तों के रस में तिल तैल मिलाकर पीने क्रिमियों का समूह नष्ट होता है।

(ग) शिरीष पत्र और अपामार्ग का रस निकालकर द मिलाकर दिन में दो बार पिलाते रहने से कुछ दिनों मि नष्ट हो जाते हैं और नई उत्पत्ति बन्द हो जाती है।

3. अतिसार—शिरीष के बीजों का चूर्ण जल के साथ न करने से अतिसार में लाभ होता है।

4. स्वप्नदोष—शिरीष पुष्प चूर्ण का नियमित सेवन

5. श्वास—शिरीष के फूलों के रस में पिप्पली चूर्ण शहद मिलाकर सेवन से श्वास में लाभ होता है।

6. मूत्रकृच्छ्र—बीजों का चूर्ण दूध की लस्सी के सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

7. गण्डमाला—बीजों का चूर्ण गण्डमाला के यों के लिए हितकर है।

8. प्रमेह—(क) सिरस की छाल, राल, अर्जुन की छाल और नागकेशर का क्वाथ बनाकर उसमें मधु डालकर पिलाने से पैत्तिक प्रमेह में लाभ होता है।

(ख) शिरीष, पाठा, तेंदू, कैथ, ढाक, मूर्वा और जवासा के क्वाथ में शहद मिलाकर हस्तिमेही को पिलावें।

9. बाजीकरण हेतु—(क) शिरीष छाल का चूर्ण घृत के साथ सेवन करने से धातुपुष्ट होता है तथा कामोद्दीपन होता है।

(ख) इसके बीजों का चूर्ण 2 ग्राम, शक्कर 4 ग्राम मिलाकर प्रति दिन सुबह शाम दूध के साथ सेवन करने से वीर्य गाढ़ा होता है तथा स्तम्भन शक्ति बढ़ती है।

10. प्रदर—शिरीष की छाल का चूर्ण घी मिलाकर प्रातः सायं सेवन करावें या क्वाथ पिलाते रहने से थोड़े ही दिनों में दुर्गन्धि युक्त प्रदर दूर हो जाता है।

11. नक्तान्ध्य (रतौंधी)—रतौंधी में इसके पत्तों का क्वाथ बनाकर पिलावें।

12. कुष्ठ—शिरीष के 15 ग्राम पत्तों को दो ग्राम काली मिर्च के साथ पीसकर सेवन करने से कुष्ठ के रोगी को लाभ मिलता है। इस प्रकार नियमित चालीस दिनों तक सेवन करना चाहिये।

13. गण्डमाला—शिरीष के बीज लेकर चूर्ण बनाकर उसमें दुगना शहद मिलाकर इन्हें एक कोरी हांडी में डालकर मुखबन्द कर कपरौटी कर दो सप्ताह तक रख दें। दिन में इसे धूप में रखें। दो सप्ताह बाद निकालकर प्रतिदिन 10 ग्राम सेवन करें। इससे गण्डमाला, अपची, अर्बुद आदि में लाभ होता है।

विविध कल्प—

1. क्वाथ—शिरीष की जड़, शिरीष के पुष्प, शिरीष के नये पत्ते, शिरीष की छाल और शिरीष के बीज इनका विधि अनुसार क्वाथ बनाकर उसमें त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), सेंधा नमक और शहद डालकर सेवन कराने से कीट विष का शमन होता है। यह पंचशिरीष नामक योग है। *—सुश्रुत सं. क.*

2. चूर्ण—शिरीष के जड़ की छाल, तने की छाल, फूल और बीज इन सबको समान मात्रा में लेकर चूर्ण तैयार कर लें। यह चूर्ण 5-5 ग्राम दिन में दो तीन बार गोमूत्र के साथ खिलाने से विष विकारों में लाभ होता है।

—ब. च.

3. घृत—शिरीष की छाल, सोंठ-मिर्च-पीपल, हरड़-वहेड़ा-आंवला, चन्दन, निलोफर, वला, अतिबला, अनन्तमूल, हाफरमाली, शल्लकी, नीम की छाल, पाटला, दुपहरिया, अरहर की जड़, मूर्वा, वासा, तुलसी, इन्द्र जौ, पाठा, अंकोल, असगन्ध, आक की जड़, मुलहठी, पद्माख, इन्द्रायण, बड़ी कटेरी, लाख, कोविदार, शतावरी, मालकांगनी, दंती, अपामार्ग, पिठवन, रसोंत, सफेद फूल का पियावांसा, अपराजिता, कूठ, देवदारू, प्रियंगु, विदारीकंद, मुलहठी का सार (रब्बलसूस), कंजे का फल और छाल, दोनों हल्दी, लोध्र प्रत्येक 12-12 ग्राम पीसकर कल्क बनावें, जल, बकरी का मूत्र तथा गोमूत्र प्रत्येक 11 लिटर 160 मि.लि. में 3 किलो 72 ग्राम घृत लेकर घी सिद्ध कर लें। यह घृत अमृतघृत के नाम से जाना जाता है जो सब प्रकार के विषों का नाशक है। यह अपस्मार, क्षय, उन्माद, भूतबाधा, गृहबाधा, गरविष, उदररोग, पाण्डुरोग, कृमिरोग, गुल्म, प्लीहोदर, उरूस्तम्भ, कामला, हनुग्रह, स्कन्धग्रह आदि रोगों में भी पीने, मलने, आंजने या नस्य हेतु उपयोगी है। ***—चरक सं. चि.***

4. अरिष्ट—शिरीष की छाल 5 किलोग्राम को 49 लिटर 150 मि. लि. जल में पकाकर चतुर्थांश जल शेष रह जाने पर 20 किलो गुड़ मिलावें। पिप्पली, प्रियंगु, कूठ, छोटी इलायची, नीली, नागकेशर, सोंठ, हल्दी और दारूहल्दी प्रत्येक 48-48 ग्राम लेकर इसमें डालें और एक माह तक संधान हेतु रख दें। अरिष्ट तैयार हो जाने पर इस शिरीषारिष्ट को 15-20 मि.लि. की मात्रानुसार पीने से सभी प्रकार के विषविकारों का शमन होता है।

—भै. र.

5. लेप—शिरीष की छाल, मुलेठी, तगर, बड़ी इलायची, जटामांसी, हरिद्रा, दारूहरि[illegible] नेत्रबाला इन दस द्रव्यों का चूर्ण बनाकर [illegible] दशांग लेप के नामसे प्रसिद्ध है। लेप करते [illegible] को जल में पीसकर पंचमांश घृत मिलाकर [illegible] विसर्प, विष, विस्फोट, शोथ और दुष्ट व्रण [illegible] होते हैं। इसके गुणों के विषय में पूर्व पृष्ठों [illegible] लिखा गया है।

6. अंजन—सिरस के बीज, छोटी पी[illegible] मिर्च, सेंधा नमक, लहसुन, बच और शुद्ध मै[illegible] भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर गोमूत्र में (पीसकर) अंजन करने से सन्निपात ज्वर [illegible] होकर चेतना पुनः लौट आती है।

पेटेन्ट प्रयोगों में शिरीष—

गर्ग वनौषधि भंडार द्वारा बनाये जाने वाले [illegible] वर्धक सुरमा'' में शिरीष बीज और छोटी इला[illegible] शीतला चीनी, बहेड़े की मींग, कूठ, कपूर, [illegible] आदि हैं। त्रिफला जल से नेत्रों को धोने के [illegible] और रात में सोते समय कांच की सलाई से यह [illegible] से धुन्ध और जाला कटता है और नेत्रों की [illegible] है।

''शिल्पा परीला कैपसूल' और ''शि[illegible] सायरप' इन दोनों योगों में शिरीषछाल है। इनमें [illegible] पित्तपापड़ा, गोरखमुण्डी, मंजीठ, अनन्तमूल [illegible] ये दोनों योग उत्तम रक्तशोधक हैं। त्वचा की [illegible] हैं।

आर्य औषधि फार्मास्युटिकल (इन्दौर) [illegible] किये गये रक्तशोधक, सारक, कृमिघ्न [illegible] इम्यूरिन सीरप में शीरीष छाल, चोपचीनी, [illegible] उसवा, चिरायता, अनन्तमूल, नीम, रक्त[illegible] आदि हैं। यह रक्तविकार, खाज, शीतपित्त, [illegible] रोगों में उपयोगी कहा गया है।

नूभूत प्रयोग—

1. **यौन शक्तिवर्धक प्रयोग**—शिरीष वृक्ष के बीजों गिरी और इसी वृक्ष की अन्तर्छाल समभाग लेकर पीस लें। यह चूर्ण 5-5 ग्राम की मात्रा में नित्य सुबह-शाम न करें। यह यौन शक्ति को प्रबल करता है।

—वैद्य श्री बलजीत सिंह बठिण्डा

(सुधानिधि नव. 2001)

2. **रक्तार्श में लाभप्रद योग**—सिरस के बीज 12 ले कूटकर कपड़छन कर लें। इसकी चार खुराक में ह वासी जल के साथ खिलावें। खटाई और गरम चीजों परहेज करना होगा। इससे खूनी बवासीर का खून बन्द जायेगा, अनूभूत है।

—श्री विश्वनाथ त्रिपाठी

(अनु. योगमाला जन. 74)

3. **वृश्चिक विषहर शास्त्रोक्त परीक्षित प्रयोग**—ट उ. स्था. अ. 37-43 में वर्णित प्रयोग विच्छू दंश सफल रहा है-शिरीष के बीजों को आक के दूध से दिन घोटकर, उंसी दवा के वजन के बराबर पीपल कर बेर बराबर गोली बना लें। जिस स्थान पर बिच्छू ट खाया हो वहाँ कुछ घाव करके थोड़ा खून निकाल द में उस गोली को पानी में घिसकर उस स्थान पर दें। जल्दी ही बिच्छू का काटा हुआ रोगी का विष जायेगा और वह रोने के बजाय हंसने लगेगा। यह योग कर के देखा है। इधर पहाड़ी इलाके में ऐसे रोगी देखने को मिलते हैं। इन पर इस प्रयोग को काम में रहा हूँ प्रत्येक में सफलता मिली है।

—कवि. श्री सन्तोष कुमार जैन

(धन्व. गु. सित्र प्र. भाग 4)

4. **जलोदर पर एक प्रयोग**—सिरीस की छाल, कचनार की छाल, ककरोंदा के पत्ते, कालीमिर्च इन चारों चीजों को 60-60 ग्राम लें और कूट कर जंगली बेर की बराबर गोलियां बना लें, और उन को सुखा लें। इनमें से दो-दो गोलियाँ सुबह-शाम सेवन करें। सिरीस और कचनार की छाल 30-30 ग्राम लेकर कुचल कर ढाई लिटर पानी में जोश दें जब पानी आधा रह जाय मलकर छान लें और इसमें से 60-60 मि.लि. सबेरे शाम इन गोलियों को खाकर ऊपर से पीवें। शेष जो कुछ क्वाथ बचे इसे भोजन के साथ या जब प्यास लगे पानी की जगह पीवें। इस प्रकार गोली और काढ़े के कुछ दिन निरन्तर सेवन करने से जलोदर रोग में अच्छा लाभ मिलता है।

—श्री तुलसी प्रसाद अग्रवाल

(तुलसी अनुभव सार)

5. **रक्तार्श पर एक अन्य प्रयोग**—सिरस बीज का मगज, चाकसू बीज का मगज, नीम की निबोली की गिरी और रसोत 10-10 ग्राम लेकर पीसकर रखें। जल के संयोग से पीसकर चने प्रमाण गोलियां बना लें। दो-दो गोली प्रातः सायं ताजे ज़ल के साथ देने से रक्तार्श में शीघ्र लाभ होता है। तैल, मिरच, कब्ज, जागरण तथा ज्यादा परिश्रम से बचना चाहिये।

—वैद्य श्री पं. द्वारिका प्रसाद दुबे

(धन्व. स. सि. प्रयोगांक)

6. **अञ्जननामिकान्तक कवच**—शिरीष के अच्छे मोटे बीज लेकर उनका वस्त्रपूत चूर्ण बनाकर जीरो नम्बर के कैपसूलों में भर लें। एक-एक कैपसूल प्रातः सांय शीतल जल से केवल दस दिनों तक दें। दस वर्ष से कम आयु के बच्चों को आधी मात्रा में दें। इससे अञ्जननामिका (गुहेरी) में लाभ होता है। यह प्रयोग शतशोऽनुभूत है।

—वैद्य श्री शिवदत्त शर्मा

(अनु. प्रयोग संग्रह)



शुण्ठी
(Zingiber Officinale)

जयपुर के आयुर्वेद भूषण काव्य कला निधि पण्डित श्री हरिशास्त्री दाधीच ने "संजीवनी-साम्राज्यम्" नामक एक ललित काव्य की रचना की। शार्ङ्गधरसंहिता में वर्णित संजीवनी वटी को कौन नहीं जानता? एक ही आयुर्वेदीय योग अनुपान भेद से कितने कार्य कर सकता है, इसकी स्पष्ट झांकी हमें इस काव्य में मिलती है। इस काव्य की भूमिका में आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी ने अपना मत प्रकट करते हुये लिखा है कि "इस परम्परा का आगे भी अन्य योगों को लेकर अनुभव एवं अनुसंधान के आधर पर सरस्वती के वरदपुत्रों एवं धन्वन्तरि के चरणरत चंचरीकों द्वारा उपयोग किया जाना चाहिए। उनके लिएनिःसन्देह संजीवनी साम्राज्य युगानुयुग तक प्रेरणास्रोत बना रहेगा।"

काव्य के प्रारम्भ में कविराज कहते हैं—

जीवातुमेंकममृतं जगदातुराणां
संजीवनीमिह वटीं परिचाययाम।।

—प्रिये, तुमने जिसके विषय में पूछा है, जगत के रोगियों को जीवन देने वाली उस की अमृतरूप संजीवनी वटी का तुम्हें परिचय कराते हैं। इस वटी के घटक द्रव्य शुण्ठी का परिचय कविराज जी इस प्रकार कराते हैं—

रूच्या त्वन्मुखकान्तिवन्निधुवनोल्लीलेव सम्पाचनी
त्वद्वक्षोज-निगूहनेव सुदृढं वातामयोर्नाशिनी।
लघ्वी लोमलतेव ते सुमधुरा पाके तव श्रीरिव
वृष्या हासकलेव ते सुमिलिता ह्यस्यां परा कांचनी।।

अर्थात् हे प्रिये, तुम्हारे मुख की कान्ति के समान रूचिप्रद और निधुवन लीला के समान पाचनकरा तथा सुदृढ उरोज के दबावपूर्वक आलिंगन सरीखी वात और आमहरण करने वाली एवं तुम्हारी लोमराजि के समान लघु तथा परिपाक में तुम्हारी शोभा सी मधुर हासकला की वृष्या उद्दीपन और बलप्रद इसमें सम्मिलत हुई है।

हम भी पाठकों के लिए इस महौषध का पद्य से प्रारम्भ करते हैं—

आम को पचाने हित शोथ को मिटा
शूल को हटाने हित श्रृंगवेर सानी है।
हिक्का श्वास कास माँहि अरूचि हर
आमवात खास माँहि महौषध मानी है।
जीर्णजुर जारण में सूतिका उधारण
हृदय उबारन में सोंठ सुखदानी है,
कफगदमारन में पवनप्रकारन में
विविध विकारन में नागर नूरानी है।

भगवान चरक ने दशेमानि के अन्तर्गत तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, दीपनीय, शूलप्रशमन एवं कहा है। महर्षि सुश्रुत ने पिप्पल्यादिगण एवं इसे समाविष्ट किया गया। सामान्य जन त्रिकटु से परिचित हैं। इनमें त्रिकटु के अन्त मरिच और पिप्पली को लिया जाता है वनौ के षष्टम भाग के प्रारम्भ में पिप्पली का भाग के क्रमाङ्क चतुर्थ पर मरिच का विस्तृत जा चुका है। शुण्ठी के विशद विवेचन से अलंकृत हो रहा है। आचार्य भावमिश्र ने और षड्डूषण गणों में भी स्थान दिया है। पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक और सोंठ एक (1 कर्ष, वटक=6ग्राम) लें, इन्हें पंचकोल है। पंचकोल में मरिच के मिला देने पर षडूष है। जैसा कि कहा गया है—

मैं छात्रों की परीक्षा के सम्बन्ध में पीलीभीत गया हुआ वहाँ अपने मित्र डॉ. जे. पी. शर्मा के माध्यम से ालीन सिविल सर्जन से परिचय हुआ और पता चला उनके पिताजी एक रोग से पीड़ित हैं जिसे वे हर्पीज ते हैं। उन्होंने आग्रह किया कि पिताजी को देख लें और आयुर्वेदिक औषध बतावें। रोग की जलन से उन्हें -दिन कष्ट रहता है तथा कोई भी एलोपैथिक ध अब तक लाभ नहीं पहुँचा पाई है।

मैंने रुग्ण को देखा और विविधं सर्पति यतः' के ार पर विसर्प नामक रोग निर्णीत किया। ऐसी अवस्था सबसे अधिक विश्वसनीय योग दशाङ्गलेप को नलिखित विधि से तैयार कर प्रयुक्त कराया जिससे ातीत सफलता प्राप्त हुई मूल पाठ में इस योगको ल घृत में मिलाकर लगाने का विधान है। मैंने इसे शतध घृत में मिलाकर प्रयुक्त कराया गया। शुद्ध घृत को ारी में डालकर नौकर को नल के पास बिठा दिया और कटोरी में पानी डालता जाता था तथा अंगुलियों से ाकर पानी को बदलता रहता था। इस प्रकार सौ बार र शतधौत घृत प्राप्त किया गया। दशांग लेप के ्तम चूर्ण को इस घृत में मिलाकर दिन में कई बार कराया गया। इससे रोगी को जलन शान्त होकर क प्रतीत होने लगी।दो-चार दिनों में ही ब्रण रोहण र रोग से छुटकारा मिल गया।

—श्री पं. अनन्तराम शर्मा, हरिद्वार।

इस लेप को जल में पीसकर चूर्ण से 1/5 भाग घी कर लेप करें, ऊपर रूई चिपका दें। यह लेप उग्र ोटक, विसर्प, दाह, विषदोष, शोथ, व्रणशोथ, सिर ौर दुष्ट व्रण आदि में लाभप्रद होता है। पामा और पर यह लेप हितकारक है। इन व्याधियों में इस लेप थ स्वर्णगैरिक मिला गुलाबजल में चटनी के समान र लेप लगाते रहने से दाह, कण्डूसह विकार शमन ता है। दो चार दिन में विषका आकर्षण होकर पामाव्रण और व्यूची सूख जाते हैं। यह लेप पैत्तिक शोथ और रक्तज शोथ पर सत्वर लाभ पहुँचाता है। वृषण पर शोथ आने पर दशांग लेप के साथ निर्गुण्डी के पान मिला पीसकर लेप करने से शोथ शमन हो जाता है। ज्वर में 10 ग्राम दशांग लेप को 100-150 मि. लि. शीतल जल में मिला उसमें कपड़ा भिगो उसकी पट्टी कपाल पर रखने से शिर दर्द और ज्वर का वेग शान्त हो जाता है। दशांग लेप का प्रयोग मैंने हाऊस फिजिशियन तिब्बिया कालेज चिकित्सालय में रहते हुये सैकड़ों रोगियों पर, जो कि उपर्युक्त व्याधियों से ग्रस्त थे, कराया और सफलता प्राप्त हुई।

—श्रीनिवास व्यास नयी दिल्ली
(धन्व. स. सि. प्रयोगांक)

विसर्प रोग में दशांगलेप बहुत लाभकारी है। इसका शतधौत घृत के साथ प्रयोग करने पर इस रोग के दाह में आश्चर्यजनक कमी आती है। हमने अनुभव किया है कि इसमें थोड़ा कपूर लेप करते समय और मिला लिया जाय तो दाह शान्ति में तीव्रता आ जाती है। व्रण शोथ की प्रारम्भिक अवस्था में हम इसमें थोड़ा जौ का आटा मिलाकर उसकी टिकिया बनवाकर शोथ पर रखवा देते हैं और चार-चार घन्टे पर बदलवाते हैं तो व्रण शोथ बैठ जाता है। सूचीवेध जन्य व्रण शोथ पर भी इसका प्रयोग करने पर आश्चर्यजनक लाभ देखा है। व्रण की पकने की अवस्था में इसकी पुल्टिस बनाकर प्रयोग करने पर व्रण शीघ्र पक जाता है और मवाद निकलकर साफ हो जाता है। इसके बारीक चूर्ण को गुलाब जल में घोलकर गाढ़ा शीतल लेप कुछ दिन करने पर आश्चर्यजनक लाभ मुंहासों में देखने को मिलता है। गलशोथ तथा टान्सिल वृद्धि की अवस्था में भी इसका लेप करने से शोथ तथा वेदना में शीघ्र लाभ होता है।

—श्री गोपालशरण गर्ग विजयगढ़
(सुधा. नव. 1979)

बीजों का चूर्ण गोदुग्ध के साथ बाजीकरणार्थ तथा शुक्र दौर्बल्य में दिया जाता है। पुष्पों को भी शुक्रस्तम्भनार्थ उपयोग में लाया जाता है। कई चिकित्सक इसकी अन्तर्छाल को भी उपयोगी मानते हैं। आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी ने अपनी रचना "वृद्धों के रोग तथा वृद्धावस्था का प्रतिकार" में एक स्थान पर लिखा है कि "सिरस के बीज कूट चूर्ण बनाकर रखलें। उसमें से 3-3 ग्राम चूर्ण सबेरे और शाम को दूध के साथ प्रतिदिन नियमित रूप से लेने से 20 दिनों में ही व्यक्ति का बुढ़ापा दूर होने लगता है और उसमें यौवन का पुनः संचार होने लगता है। इस बीच उसे मैथुनादि से परहेज करना अधिक लाभदायक होगा"।

शिरीष कफघ्न एवं शिरो विरेचन होने से कास, श्वास, प्रतिश्याय, शिरोरोग में हितकारक है। जीर्ण कफ रोगों में बीज चूर्ण नस्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं। श्वास में छाल का अवलेह बनाकर तथा अन्य औषधियों के साथ पुष्प स्वरस दिया जाता है। कफपित्तानुबन्ध युक्त श्वास रोग में शिरीष पुष्प स्वरस में पिप्पली चूर्ण और मधु मिलाकर सेवन करना हितकर कहा गया है—

शिरीष पुष्प स्वरसः सप्तपर्णस्य वा पुनः।
पिप्पलीमधु संयुक्तः कफपित्तानुगे मतः।।

—चरक चि. 17

सचित्र आयुर्वेद (वैद्यनाथ प्रकाशन) के अगस्त 1997 के अंक में डा. बालकृष्ण शर्मा और डा. पुष्पा असवाल (भारतीय काय चिकित्सा संस्थान, पटियाला) का एक अनुसन्धान परक आलेख प्रकाशित हुआ था। इसमें आपने शिरीषत्वक् के क्वाथ की तमकश्वास में उपादेयता सिद्ध की है। आपने निष्कर्ष रूप में लिखा है कि एकल औषधि (शिरीष क्वाथ) एवं यौगिक औषधि (भागोत्तर गुटिका) को अनुसन्धान कार्य हेतु लिया गया। तमक श्वास पर दोनों ही औषधियां कार्यकारी सिद्ध हुई। किन्तु शिरीष क्वाथ का परिणाम भागोत्तर गुटिका की अपेक्षा अधिक अच्छा रहा।

सूर्यावर्त नामक शिरोरोग में शिरीष फूल मैनफल को पीसकर कपड़े से निचोड़कर इसे [illegible] में टपकाना चाहिये। कहा गया है—

शिरीषमूलक फलैरव पीडं प्रयोजयेत्

आचर्य वाग्भट ने (अ. हृ.चि. 20) शिरीष [illegible] में मधु मिलाकर सेवन करना कृमि रोग में [illegible] है। उग्रादित्याचार्य ने भी एक कृमिहर योग [illegible]

अपि शिरीषरसं किणिही रसं
प्रवरकेंबुककिंशुकसद्रसं [illegible]
तिलजमिश्रितमेव पिबेन्नरः
क्रिमिकुलानि विनाशयितुं [illegible]

—कल्या[illegible]

नक्तान्ध्य (रतौंधी) में इसका पत्र [illegible] दन्तशैथिल्य में त्वक् क्वाथ लाभप्रद है। इसकी शाखा से दन्तधावन (दातून) करना भी दांतों [illegible] हितकारी है—

आम्रपलाशबिल्वा नामपामार्ग शिरीष [illegible]
वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद् दन्त धा[illegible]

—याज्ञवल्[illegible]

यूनानी मत—यूनाती मतानुसार यह दूसरे [illegible] और खुश्क है। गुणकर्म–लेखन, उपशोषण [illegible] शोधक है। व्रण शोधन, व्रणरोपण और दंतशूल [illegible] छाल उपयोगी है। रक्तविकार एवं शोथ में छाल [illegible] पिलाया जाता है। पत्र स्वरस आंखों के लिए [illegible] है। बीज जुकाम आदि में नस्य हेतु उपयोग में [illegible] हैं। ये वीर्य की तरलता में भी हितकारी हैं।

आधुनिक मत—डा. आर. एन. खोरी के [illegible] शिरीष की छाल मुखक्षत को दूर ठीक करती [illegible] बल्य एवं रसायन के रूप में सेवित होती है। [illegible] शोथयुक्त व्रणों पर इसके पत्तों का लेप हितकर [illegible] उदरामय और दुर्बलता में प्रयुक्त होते हैं।

ान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. शोथ—शिरीष के बीजों को पीसकर या छाल के को पीसकर उसमें थोड़ा घी मिलाकर लेप करने से दूर होता है।

2. कण्डू—शिरीष के पत्र स्वरस में कपूर मिलाकर ास करने से शरीर में चलने वाली खाज दूर होती है।

3. मुख पाक—पत्तों के क्वाथ को ठन्डा कर इस से कुल्ले करने से मुखपाक में शीघ्र आराम मिलता

4. नेत्ररोग—(क) शिरीष पत्र स्वरस का नेत्रों में च्योतन करने से रतोंधी दूर होती है।

(ख) खिरनी के बीजों को पीसकर फिर चार-पांच सिरस के पत्तों के रस में खरल करने के बाद 6 दिन के दूध में खरल कर रखलें। इसका अंजन करने से की फूली कट जाती है।

5. दन्तरोग—(क) दन्तशूल निवारण तथा मसूढ़ों जबूत बनाने के लिए शिरीष की छाल के क्वाथ से करना चाहिए।

ख) शिरीष के मूल की छाल का बारीक चूर्ण । इस चूर्ण का मंजन करने या इसकी छोटी शाखा तुन करने से दन्तरोगों का निवारण होता है।

. गण्डमाला—शिरीष के बीजों को पीसकर में) लेप करने से गण्डमाला धीरे-धीरे समाप्त होने है। साथ में कांचनार गूगल का सेवन भी करते रहना ।

. मसूरिका—सिरिस की छाल, गूलरकी छाल, की छाल, वट की छाल और पिलखन की छाल भाग ले चूर्ण बनावें। इसे मसूरिका की फुन्सियों पर ने से लाभ होता है।

. शिर:शूल—शिरीष के फूल, मूली और मैनफल को पीसकर कपड़े में रख निचोड़कर रस निकालें। यह रस नाक में टपकाने से (नस्य रूप में) सूर्यावर्त नामक शिर:शूल का शमन होता है।

9. अर्श—शिरीष के बीज और कलियारी की जड़ को पानी में पीसकर लेप करने से अर्शांकुर नष्ट होने लगते हैं। लेप कुछ दिन नियमित करना चाहिये।

10. दारुणक (बालों की रूसी)—शिरीष की छाल और तिल समान मात्रा में लेकर इनको सिरके में पीसकर इस कल्क (लुगदी) को बालों की जड़ों में लगाने से रूसी मिटती है।

11. भगकंडू—शिरीष छाल, बरगद की छाल, पीपल की छाल और गूलर की छाल 4-4 ग्राम लेकर एक लीटर पानी में क्वाथ करें। पानी आधा शेष रहने पर उतार छान कर सुखोष्ण क्वाथ से योनि को धोने से योनि की खाज मिटती है। यदि इसमें 5 ग्राम फिटकरी चूर्ण भी मिलाकर योनि को धोया जाय तो अधिक लाभ होता है।

12. उपदंश—(क) इसकी छाल को पानी में घिसकर उसमें रसौंत मिलाकर उपदंश के घावों पर लगाने से घाव शीघ्र भरने लगते हैं।

(ख) शिरीष के सूखे पत्तों को जलाकर राख बनाकर इस राख को घी या तैल में मिलाकर उपदंश या फिरंग के घावों पर लगाना चाहिये।

13. विसर्प—(क) शिरीष की छाल, गूलर की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, ल्हिसोड़े की छाल और कुड़े की छाल समान भाग लेकर बारीक पीसकर घी में मिलाकर लेप करने से विसर्प, व्रण और दाह का शीघ्र ही शमन होता है।

(ख) शिरीष की छाल, खस, नागकेशर और जटामांसी समान भाग लेकर फिर पानी के साथ बारीक पीसकर लेप करने से विसर्प, विष विकार और विस्फोटक आदि रोग मिटते हैं।

(ग) शिरीष की छाल, नागरमोथा, हल्दी, दारूहल्दी, लोध्र, सफेद चन्दन और नाग केशर को समान मात्रा में लेकर लेप बनावें। यह लेप विसर्प, विस्फोटक, कुष्ठ आदि रोगों में लाभप्रद हैं।

14. विस्फोटक—(क) सिरस की छाल, तगर, जटामांसी, हल्दी और कमल समान मात्रा में लेकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण को ठण्डे पानी में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के विस्फोटक (फफोले) मिटते हैं।

(ख) सिरस की छाल और जामुन की छाल का लेप करने से तथा इनके क्वाथ का अवसेक (सिंचन) करने से भी विस्फोटक नामक रोग में शीघ्र ही आराम मिलता है।

15. कुष्ठ—शिरीष की छाल को पानी में पीसकर लेप करें। इससे कुष्ठ रोगीको लाभ मिलता है।

16. श्वेत कुष्ठ(श्वित्र)—शिरीष के बीजों का तैल निकाल कर उस तैल की मालिस करने से श्वेत कुष्ठ में लाभ होता है।

17. युवान पिडिका (मुंहासे)—शिरीष, हल्दी, दारूहल्दी, मंजीठ, और सोनागेरू को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर इसे बकरी के दूध में मिलाकर मुख पर लेप करने से मुंहासे, झांई आदि मिटकर मुख पर निखार आता है।

18. उन्माद—शिरीष के बीज और करंज के बीजों को पीसकर अंजन करने से उन्मादऔर अपस्मार आदि रोगों में तथा ग्रहबाधा में लाभ होता है।

19. किक्किस (गर्भवती स्त्रियों के उदर पर कण्डू और विदाह)—शिरीष और धातकी दोनों के पुष्पों को बांटकर इस कल्क का उदर पर धीरे-धीरे मर्दन करें। इससे उदर एवं जंघाओं पर बनी धारियां मिटती हैं।

20. दन्तोदगम—बच्चों के दांत निकलते समय शिरीष के बीजों की माला बनाकर पहनाने से दांत शीघ्र व पीड़ा रहित उगते हैं। यदि किसी प्रकार का रोग हो रहा हो तो वह भी इससे दूर होने लगता है।

21. सर्पदंश—(क) काटे हुये पर प्रच्छन या छेद कर प्रक्षालन के बाद वहाँ शिरीष छाल में आक के दूध और थूहर का दूध मिलाकर कल्क बनाकर वहाँ लगाने से विष कम होता है।

(ख) शिरीष के फूल के स्वरस में सफेद मरिच को एक सप्ताह तक भावित करें फिर इसका चूर्ण बनाकर आखों में अंजन करें। इससे सर्पादि के विष का प्रभाव कम होता है।

(ग) शिरीष के बीजों को पीसकर आंखों में अंजन करने तथा इसका नस्य लेने से सर्पादि ग्रस्त मनुष्यों के शरीर में विष प्रभाव कम होने लगता है। ऐसा बार-बार करना विषग्रस्त रोगी के लिए हितकर है।

22. वृश्चिक विष—शिरीष के पुष्प को दही के मस्तु में पीसकर दंश स्थान पर लेप करें।

23. व्रण—इसके मूल की छाल का चूर्ण किसी प्रकार के घाव पर बुरकने से वह शीघ्र भरने लगता है।

24. कर्णशूल—शिरीष और आम के पत्तों का रस निकाल कुछ गरम कर कान में डालने से कर्णशूल मिटता है।

25. मण्डूक विष—शिरीष के फूल या बीजों को थूहर के दूध में पीसकर उसका नस्य लें। ऐसा करने से मेंढक विष शीघ्र दूर होता है। बीजों को थूहर के दूध में पीस कर लेप करने से कुत्ते का काटा ठीक होता है।

26. वातरोग—शिरीष के पत्ते, सहिजन के पत्ते और निर्गुण्डी के पत्तों को पानी में औटाकर बाँधने से या बफारा देनें से वात जन्य पीड़ा का शमन होता है।

27. स्वेदजन्य दुर्गन्ध—शिरीष, पद्मकाष्ठ, खस, लोध्र इनका उबटन करने से शरीर में पसीने से उत्पन्न होने वाली दुर्गन्ध पैदा नहीं होती है।

यद्यपि यह शुण्ठी अनेक रोगों को नाश करने वाली है तथापि द्रव्यान्तर के संयोग से यह जीवन को प्रदान करती है—

यद्यप्यनेकरोगारि तथाप्येतत् स्वभावतः।
मान्योकालुकसंयोगे जीवितारितमृच्छति।।

—महौषधि निघन्टु

वस्तुतः सामान्य प्रतिश्याय से लेकर कई भीषण रोगों में प्रयुक्त होने के कारण ही इसे महौषध नाम से पुकारा जाता है। आयुर्वेद में आम (आमअन्न, आमरस) को सर्वरोग प्रकोप कहा गया है। व्याधि (रोग) का एक पर्याप्त आमय भी है। अधिकतर व्याधियाँ उक्त आम से उत्पन्न होने के कारण ही रोग को आमय भी कहा जाता है—"प्रायेणामसमुत्थत्वेनामय इत्युच्यते" (चक्रः) "सर्वेषां रोगाणामयमेव कारणीभूत आमसंज्ञक" (आ. द.)। शुण्ठी इस आम का पाचन करने में श्रेष्ठ है। यह शरीरस्थ आमदोष का पाचन कर आम से उत्पन्न होने वाले विविधि रोगों को दूर करती है, सुतरां इसे महौषध कहा गया है। यह आम पाचन के अतिरिक्त स्रोतोरोध का भी निवारण करती हैं यह पाचन संस्थान एवं श्वसन संस्थान की श्रेष्ठ औषधि है। पाचन, दीपन, रोचन, तृप्तिघ्न, वातानुलोमन शूलप्रशमन और अर्शोघ्न होने से यह अग्निमांद्य, अजीर्ण, अरूचि, हृल्लास, छर्दि, कोष्ठवात, आध्मान उदरशूल तथा अर्श आदि रोगों में यह प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार कफघ्न, श्वासहर होने से कास, श्वास, प्रतिश्याय, हिक्का आदि रोगों में भी यह उपयोग में लाई जाती है। आमवात की यह उत्तम औषधि है। सामान्य दुर्बलता विशेषतया प्रसवोत्तर दुर्बलता में इसका पाक प्रयोग में लाया जाता है। इससे प्रसूता का पेट ठीक रहता है, वातविकार नष्ट होते हैं, शोथ दूर होता है तथा बल की वृद्धि होती है।

ज्योतिषं व्यवहारं प्रायश्चित्तं चिकित्सितम्।
विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।।

अतः उक्त रोगों में शुण्ठी की कार्मुकता का शास्त्रीय आधार लिखना आवश्यक है—

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्।
अग्नि संदीपनं रूच्यं जिह्वाकण्ठ विशोधनम्।।

—यो.र.

भवेदजीर्णं प्रतिं यस्य शंका
स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोऽन्नकाले।
प्रातः स शुण्ठीमभयामशंको
भुजीत संप्राश्य हितं हितार्थी।। —सुश्रुत.

अतिसारसंहरणमग्निहितं
ग्रहणीविकारगुदकीलहरम्।
जठरार्तिशोफगररूक्शमनं
समुहौषधं जयति तक्रयुतम्।। —शोढल

रोचनं दीपनं वृष्यमार्द्रकं विश्वभेषजम्।
वातश्लेष्मविबन्धेषु रसस्तस्योपदिश्यते।।

—चरक सं.

प्रातरूत्थाय कोष्णेन वारिणा परिकीर्तितम्।
मन्दाग्निदीपनं मुख्यं यः पिवेत् विश्वभेषजम्।।
वातशूले विबन्धे च सामदोषे च मार्दवे।।

—रा.नि.

शतपोनपावितानां जगदौषधलवणपूर्वदेवानाम्।
घटिता निम्बूकरसैश्चतुर्गुणैर्मोदकाः स्युरनलकराः।।
निम्बूकनीरार्द्रमहौषधस्य कल्कः सितातन्तुलिकाप्रणीतः।
त्रिजातकक्षेपविशेषहृद्यो रोचिष्णुराग्निं द्विगुणीकरोति।।

—सि. भे. म. मा.

शुण्या शुण्ठ्या विबन्धामवातशूल श्वासबलासहृत्।
आर्द्रकस्य ज्वरं दाहं हरेदुच्योऽग्निदीप्तिकृत्।।

—अर्क. प्र.

धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दध्याद्विचक्षणः।
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वह्निदीपनम्।।

—क्वा. म.

विश्वधूलिरथसामिसैन्धवा
स्यादजीर्णरिपुरूष्णवारिणा।
सैव शैवरजसा समन्विता
शश्वदीडितगुणानुलोमिनी।। —सि.भै. मंजू.

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः।
तृष्णातीसारशूलघ्नं पाचनं दीपनं लघु।।
—च.द.

यदि ते सरणाशङ्कि शरीरं
पिब जातीफलनागर नीरम्।। —सि. भै. म.

शुण्ठीप्रतिविषाहिंगु मुस्ताकुटजचित्रकैः।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातिसारनाशनम्।।
—शा. सं.

नागरातिविषामुस्तापाठा बिल्वं रसांजनम्।
कुटजत्वक् फलं तिक्ता धातकीं च कृतंरजः।।
क्षौद्रतण्डुलवारिभ्यां पैत्तिके ग्रहणीगदे।
प्रवाहिकार्शोगुदरूग्रक्तोत्थानेषु चेष्यते।।
—अ. हृ.

पीतो मसूरयूषेण कल्कः शुण्ठीशलाटुजः।
जयेत् संग्रहणीं.... ।। —शा. सं.

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले श्रृतम्।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीसामतामयम्।।
—च.द.

वृद्धदारूकभल्लातकशुण्ठीचूर्णेन योजितः।
मोदकः सगुडो हन्यात् षड्विधार्शः कृतांरूजम्।।
—शा. सं.

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्ध्वमन्त्यात्।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमांद्य-
कासारूचिश्वसनककण्ठहृदामयेषु।। —च. द.

नागरं त्रिपलं प्रस्थं घृततैलात्तथाढकम्।
मस्तुनः साधयित्वैतत् पिबेत् सर्वोदरापहम्।।
कफमारूतसम्भूते गुल्मे च परमं हितम्।।
—अ. हृ.

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफज स्वरसं क्षये।।
—यो. र.

नागरातिविषे मुस्तं श्रृङ्गी कर्कटकस्य च।
हरीतकीं शटीं चैव तेनैव विधिना पिबेत्।।
(कासे श्वासे ज्वरे चैव पिष्ट्वा धर्माम्बुना पिबेत्।)
—चरक सं.

विश्वाभार्ङ्गीकणासोमवल्कं द्राक्षा शटी सिता।
लिह्यात्तेलेन वातोत्थं कासं जयतिदुस्तरम्।।
—यो. र.

शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः।
सामेवातेकटीशूले पाचनो रूग्विनाशनः।।
—वृन्द

शुण्ठीतिलगुड़ैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत्।
परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत्।।
शुण्ठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरण्डमूलजैः।
विपचेत्पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः।।
आमवातसमुद्भूतां पीड़ां जयति दुस्तराम्।।
—शा. सं.

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत् सदा।
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम्।।
सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरकचतुर्गुणम्।
सिद्धमाग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम्।। —च. द.

क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद् दशमे हितम्।
सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारू च।।
—सुश्रुत सं.

बलानागरनिः क्वाथः सस्नेहः केवलोऽपि वा।
गर्भिणीनां प्रदातव्यः सूतिकानांच वातनुत्।।

—क्वा. म. मा.

अथ सूतिकां बलातैलाभ्यक्तां वातहरौषधनिष्क्वाथेनोपचरेत्। सशोषदोषां तु तदहःपिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पली-चित्रक श्रृंगवेरचूर्णं गुडोदकेनोष्णेन पाययेत्।

—सुश्रुत सं.

श्रृङ्गवेरवचापथ्यादेव दार्वुम्बुदैः कृतः।
कषायः पटुना पीतः क्षीरशुद्धिं करोति हि।।

—क्वा. म. मा.

महौषधामृतामुस्तपाठाभिः क्वथितं जलम्।
प्रवाहिकामतीसारं सरक्तं नाशयेच्छिशोः।।
वचामुस्ताभद्रदारूनागराति विषागणः।
आमातीसारशमनः कफमेदो विशोषणः।।
श्रृंगवेरविषामुस्तबाल केन्द्रयवैः कृतम्।
कुमारं पाययेत्क्वाथं सर्वातिसारनाशनम्।।

—क्वा. म. मा.

शुण्ठी की अनेकानेक रोगों में उपादेयता से शास्त्रों के पृष्ठ भरे पड़े हैं, उनको यहाँ सर्वात्मना उद्धृत करना एक दुष्कर कार्य है। कतिपय उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। सामान्य पाठकों के लिए यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि सोंठ एक उत्तम ग्राही द्रव्य है। जो औषधि पतले तथा बार-बार और अतिमात्रा में सरने वाले मल को बांध देती है, वह ग्राही किंबा संग्राही कहलाती है—

आग्न्येयगुणभूयिष्ठं तोयाशं परिशोषयेत्।
संग्रहणाति मलं ततु ग्राहि शुंठ्यादयोयथा।।

—भा. प्र. नि.

दीपनं पाचनं यत् स्यादुष्णत्वादद्रवशोषकृत्।
ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली।।

—शा.सं.

यद् द्रव्यं दीपनं अग्निकरं, पाचनं, आमादीनां, द्रवशोषकमिति द्रवस्वरूपाणां दोशधातुमलादीनां शोषकमित्यर्थः उष्णत्वात् उष्णवीर्य त्वात् द्रवशोषकमिति योज्यं, दीपनादिकार्यकरत्वेनो पदक्षितमिति भावः तद् ग्राहि विज्ञेयम्।।

—आढमल्ल

आचार्य चरक, सुश्रुत ने जो लोध्र, धात की, प्रियंगु आदि ग्राही द्रव्य कहे हैं वे तो शीतवीर्य द्रव्य हैं। फिर यह शार्ङ्गधरोक्त परिभाषा उचित कैसे कही जा सकती है। इस विरोध का व्याख्याकार आढमल्ल ने समुचित समाधान प्रस्तुत किया है। ये लिखते हैं ये ग्राही द्रव्य दो प्रकार के होते हैं एक उष्णवीर्य और दूसरे शीतवीर्य। जब आमलक्षण युक्त मल आता हो तब उष्णवीर्य ग्राही द्रव्यों को उपयोग में लाना चाहिए तथा जब मल पक्वलक्षणयुक्त आता हो जब शीतवीर्य द्रव्यों को उपयोग में लाना चाहिये। चरक-सुश्रुतोक्त द्रव्य पक्वसंग्राहक है जबकि शार्ङ्गधरोक्त द्रव्य आमसंग्राहक है। इस प्रकार शुण्ठी एक उष्णसंग्राहक द्रव्य है। अतिसार और ग्रहणी आदि रोगों में जब पतले दस्त आते हों, मल आमलक्षणयुक्त आता हो तब ही इसे उपयोग में लाना चाहिये। इसके साथ में जीरा, जायफल, सोंफ आदि का मिश्रण कर दिया जा सकता है। यह सब रोगी और रोग की स्थिति के अनुसार निर्धारण करना चाहिये। इसी प्रसंग में दूसरी शंका भी उपस्थित होती है कि शुण्ठी को जब कि मल का भेदन करने वाली कहा है फिर ग्राही कैसे हो सकती है? इसके उत्तर में कहा गया है कि यह मलबंध को तो तोड़ सकती है किन्तु मल को बाहर नहीं निकाल सकती है—

विबंधभेदनी या तु सा कथं ग्रहिणी भवेत्।
शक्तिर्विबन्धभेदे स्याद् यतो न मलपातने।।

—भा. प्र. नि.

शुण्ठी आमवात में ही उपयोगी नहीं अपितु वातशामक

और नाड़ियों के लिए उत्तेजक होने से अन्य वातरोगों में भी लाभप्रद है। सोंठ और एरण्ड मूल की छाल का क्वाथ (मिश्रित मात्रा–20–40 ग्राम) प्रायः सभी वातरोगों की श्रेष्ठ औषध है। इस क्वाथ में शुद्ध हींग (घी में भुनी हुई) एक ग्राम और कालानमक एक ग्राम मिलाकर सेवन करने से वातजशूल का शीघ्र शमन होता है यह सामान्य सा प्रयोग बहुत ही उपयोगी है जिसे बहुत से चिकित्सक रोगियों को देकर लाभान्वित करते हैं। योगरत्नाकर एवं शार्ङ्गधर आदि ने यह उदरशूलाधिकार में कहा है किन्तु यह वातव्याधि में भी अच्छा लाभ पहुंचाता है। वातरोगों में अन्य प्रयोग–

सहचरामरदारू सनागरं
क्वथितमम्भसि तैलविमिश्रितम्।
पवनपीड़ितदेहगतिः पिबन्
द्रुतबिलम्बितगो भवतीच्छया।।
निर्गुण्डी दीप्यकं वन्हिहरिद्रा विश्वभेषजम्।
तक्रं काञ्जिकपक्वं तत् वातघ्नं वन्हिवर्धनम्।।
बलाभ्यां पिप्पलीमूलनागरादष्टकद्वरः।
तैलप्रस्थः समो दध्ना गृध्रस्यूरूग्रहापहः।।
रास्नागुडूचिकैरण्डं देवदारू महौषधम्।
पिबेत्सर्वाङ्गगे वाते सामे संध्यास्थिमज्जगे।।
शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत् सौवर्चलं तथा।
समभागानि सर्वाणि सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत्।।
ज्ञेयं पंचसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम्।
आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं स्मृतम्।।–यो. र.
आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत्।

–शा. सं.

शुण्ठी वेदनास्थापन होने से इसको बहिः परिमार्जन हेतु भी उपयोग में लाया जाता है। शोथहर होने से इसको बाह्याभ्यन्तर प्रयोगों में उपयोग मे लाया जाता है। सोंठ और गुड़ का एक कल्प चरकसंहिता में कहा गया है शोथ, प्रमेह, कास, मनोविकार आदि को जीत लेता है–

प्रयोजयेदार्द्रकनागरं वा
तुल्यं गुडेनार्धपलाभि वृद्धया।
मात्रा पलं पंच पलानि मासं
जीर्णे पयो यूषरसाश्च भक्तम्।।
गुल्मोदरार्शःश्वयथुप्रमेहान्
श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान्।
सकामलाशोषमनोविकारान्
कासं कफं चैव जयेत् प्रयोगः।।

–चरक. चि. 12

आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः।
आजाक्षीराशिनां शीघ्रं सर्वशोथहरो भवेत्।।
दारूगुग्गुलुशुण्ठीनां कल्कोमूत्रेण शोथजित्।
वर्षाभूश्रृंगवेराभ्यां कल्को वा सर्वशोथजित्।।
–च. द.

श्लीपदे पिवेदेवं वा नागरम् (गोमूत्रेण)।–वृन्द

हृदयशूल और हृदयदौर्बल्य में भी यह श्रेष्ठ औषधि सिद्ध हुई हैं। कहा गया है–

नागरं वा पिबेदुष्णं क्वाथं चाग्निवर्धनम्।
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम्।।–वृन्द
शुण्ठीवयस्थालवणकायस्थाहिंगुपोष्किरैः।
पथ्यया च श्रृतं पार्श्वहृद्रुजागुल्मजिद् घृतम्।।
–अ. हृ.

शुण्ठीसौवर्चलं हिंगु दाड़िमं चाम्लवेतसम्।
चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशान्तये।।
–शा. सं.

शीतपित्त में भी–

आर्द्रकस्य रसः पेयः पुराणगुड़संयुतः।
शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वन्हिमांद्यविनाशनः।
–भा. प्र.

पिप्पलीपिप्पलीमूलं चव्य चित्रक नागरैः।
पंचभिः, कोलमात्रं यत्पंचकोलं तदुच्यते।।
पंचकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम्।।

—भा.प्र.नि.

आर्द्रककुल (जिंजिबरेषी) की शुण्ठी को भावप्रकाश निघन्टु के हरीतक्यादिवर्ग में लिखा है और इसके गुणधर्म का वर्णन किया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने तृप्तिघ्न द्रव्यों में सर्वप्रथम इसका वर्णन किया हैं भोजन नहीं करने पर भी जो मनुष्य अपने को तृप्त जैसा अनुभव करे उसे तृप्ति (अरोचक) नामक रोग कहते हैं यह एक श्लेष्म विकार है। इस रोग को दूर करने वाले द्रव्य को तृप्तिघ्न कहा जाता है। चरक व्याख्याकार कविराज योगीन्द्रनाथसेन कहते हैं—"अनन्नाभिनन्दनात् तृप्तिरिव तृप्तिररोचकः तदघ्नं तृप्तिघ्नम्"।

नाम—(शुण्ठी)

संस्कृत—शुण्ठी, नागर, महौषध, विश्वभेषज, श्रंगवेर

हिन्दी—सोंठ

गुजराती—सुंठ

मराठी—सुंठी

बंगला—सोंठ

तामिल—शुक्कू

तेलगू—सोंटि

अरबी—जंजबील

फारसी—शंगवीर

अंग्रेजी—ड्राई जिंजर (Dry Ginger)

लैटिन—जिजिंवर आफिशिनेल् (Zingiber Officinale)

नाम—(आर्द्रक)—

संस्कृत—आर्द्रक

हिन्दी—अदरख

गुजराती—आदु

मराठी—आले

बंगाली—आदा

तामिल—इञ्जि

तेलगू—अल्लमु

अंग्रेजी—फ्रेंश जिंजर (Fresh Ginger)

प्राप्ति स्थान—इसकी विशेषतः केरल में खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, मध्यप्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश में भी खेती की जाती हैं। सूरत और अहमदाबाद के कई गांवों में भी इसकी खेती होती है।

खेती—जहाँ आलू, मूली, शकरकन्द आदि की खेती की जाती है वहाँ इसकी खेती भी की जा सकती हैं बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसे खाद और पानी की अधिक आवश्यकता होती हैं इसका कोई बीज नहीं होता। अदरख के छोटे-छोटे टुकड़े कर आलू की तरह जमीन में गाढ दिया जाता है। इसकी बुआई का अप्रेल से जून तक का समय है। खेती के लिए कम रेशों वाली अच्छी अदरख उपयोग में लानी चाहिए। एक हेक्टेयर खेती के लिए लगभग 10-15 किंवटल अदरख की आवश्यकता होती हैं एक हेक्टेयर खेत में लगभग 20-25 किंवटल गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। क्यारियाँ बनाकर एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति की दूरी लगभग 45 सेंटीमीटर होनी चाहिये और पौधों की दूरी 30 सेंटीमीटर होनी चाहिये। बीजाई के लिए सुबह का समय उपयुक्त रहता हैं बीजाई के बाद क्यारियों को घास-फूस या पत्तियों से ढक देना चाहिये। इससे अंकुरों के फूटने में सुविधा रहती है।

रासायनिक संघठन—आर्द्रक में आर्द्रता, प्रोटीन, वसा, सूत्र, कार्बोहाइड्रेट, खनिज, कैल्शियम, फास्फोरस, लौह आदि होते हैं। विटामिन ए, बी, और सी भी इसमें होते हैं।

आर्द्रक के शुष्क हो जाने पर अर्थात् शुण्ठी में एक प्रकार का उड़नशील तैल उत्पन्न हो जाता हैं जिससे यह विशेष तीक्ष्ण, उष्ण और ग्राही हो जाती है। इस तैल के अतिरिक्त सोंठ में आर्द्रता, सूत्र, स्टार्च आदि भी होते हैं।

सोंठ का यह उड़नशील तैल छिलके सहित सोंठ से प्राप्त किया जाता हैं इसके छिलकों में तैलकोषाणु विशेष रूप से पाये जाते हैं। इस तैल में जिजिबरीन और जिंजिबराल आदि तत्व होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—गाड़े गये अदरख के टुकड़े, खाद, पानी और सूर्य प्रकाश पाकर पौधों का रूप ले लेते हैं। ये पौधे धीरे-धीरे तीन-चार फुट ऊंचे हो जाते हैं। इसके पत्ते बांस पत्तों के समान किन्तु आकार में उनसे कुछ छोटे होते हैं। ये अग्रभाग पर नुकीले तथा अधस्तल पर चिकने होते हैं। ये एक इंच चौड़े तथा 6-12 इंच लम्बे होते हैं। इस पर पुष्प बहुत ही कम आते हैं। यदि अदरख खोदी नहीं जाती है तो पुष्प आ जाते हैं। पुष्पध्वज-डेढ़ इंच से तीन इंच होता है। इसमें 6-12 इंच लम्बे पुष्प दंड पर हरिताभ पीतवर्ण पुष्प लगते हैं। इनका ओष्ठ भाग गहरे बैंगनी रंग का या कृष्णाभ होता हैं। पुंकेशर गहरे बैगनी रंग के होते हैं।

भेद—देशभेद से शुण्ठी के ये भेद किये गये हैं—1. जमायकन 2. अफ्रीकी, 3. भारतीय (क) कोचीन, (ख) कालीकट (ग) कलकत्ता, 4. चीनी-यह सफेद और सूत्र रहित होती है।

दक्षिणी भारत में भी एक सफेद जाति की सोंठ (आर्द्रक) होती है। संभवत: कैयदेव ने इसे ही आर्दनागर कहा हैं इससे बनाई गई सोंठ बैतरा सोंठ, मैदा सोंठ, सतुआ सोंठ कहलाती है। इसे अरबी में जंजवील सतवा कहते हैं। यह सोंठ तन्तुरहित होती है। अदरख का छिलका हटाकर दूध में उबाल लेते हैं और फिर इसे सुखा लेते हैं। यह सोंठ दूधिया सोंठ कहलाती हैं। एक पेटी की सोंठ होती है जिसमें रेशे अधिक होते हैं।

सामान्यतया आर्द्रक से शुण्ठी बनाने के लिए ... के तीक्ष्ण टुकड़ों से आंर्द्रक को रगड़कर उसका छिल... (त्वचा) हटा देते हैं। इसके बाद पानी से धो... सुबह-सुबह 8-10 दिनों तक धूप में सुखाते हैं इस... बाद छाया में सुखाते हैं। टुकड़ों को सफेद और चमक... बनाने के लिए अदरख को एक दिन पानी में भिगोने ... बाद गाढ़े चूने के पानी में रखते हैं। यह चूने का पानी ... लिटर पानी में एक किलो चूना भिगोकर तैयार कि... जाता है। इसके बाद इसे धूप में सुखाकर टाट से रग... जाता है। इससे उन पर सफेदी और चमक आ जाती है।

रस—कटु

गुण—आर्द्रक—गुरू, रूक्ष, तीक्ष्ण

शुण्ठी—लघु, स्निग्ध

वीर्य—उष्ण

विपाक—आर्द्रक-कटु, शुण्ठी,-मधुर

दोषकर्म—कफवात शामक

उपयोगी अंग-कन्द (भौमिक काण्ड)

मात्रा—आर्द्रकस्वरस—5-15 मि.लि.

शुण्ठीचूर्ण—एक-दो ग्राम

संग्रह-संरक्षण—शुण्ठी को वायु एवं धूलरहि... अनार्द व शीतल स्थान में भलीभांति मुखबन्द पात्र मे... रखना चाहिये।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष पर्यन्त

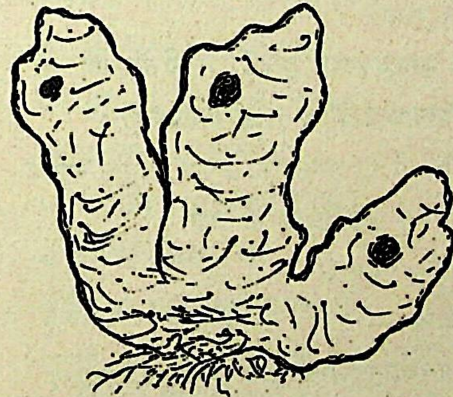
गुणप्रकाशक संज्ञा—विश्वभेषज (अनेक रोगों मे... उपयोगी औषधि के रूप में प्रयुक्त होने पर)

वर्ग—यह कटुरसं और उष्ण वीर्य होने से आग्ने... वर्ग की औषधि है।

प्रशस्त शुण्ठी—आर्द्रक कन्द के आगे के भाग मे... गोलबेर के आकार के श्रृंग दिखाई देते हैं अत: इसका... एक नाम श्रृंगवेर भी रखा गया है। शुण्ठी में ये श्रृं... शुष्क होने पर कम दिखाई देने लगते हैं। शुण्ठी के ...







शुण्ठी (ZINGIBER OFFICINALE)

नाम (आर्द्रक)—सं०—आर्द्रक, हि०—अदरख; गु०—आदु; म०—आले; अं०—फ्रेश जिंजर।

नाम (शुण्ठी)—सं०—शुण्ठी, हि०—सोंठ; गु०—सुंठ; म०—सुंठी; अं०—ड्राई जिंजर; लै०—जिंजिबर आफिशिनेल।

प्राप्तिस्थान—केरल, बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक आदि।

उपयोगी अंग—कन्द। दोषशमन—कफवातशामक।

रोगोपयोग—अरुचि, आमवात, श्वास-कास, शूल, हृदय रोग, अजीर्ण, प्रतिश्याय आदि।

मुख्ययोग—समशर्कर चूर्ण, सौभाग्य शुण्ठी आदि।

खण्ड अनियमित आकार के होते हैं किन्तु ये 20 मि.मी. से कम नहीं होते हैं। इनका रंग हलका भूरा होता हैं गन्ध एवं स्वाद में विकृति नहीं होनी चाहिये। बाहरी पदार्थ दो प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। इसकी मनोरम गन्ध और गन्ध और स्वाद में तीक्ष्णता समुचित होनी चाहिये। अदरख से सोंठ तैयार करते समय इसका छिलका हटा दिया जाता हैं परन्तु इसके छिलके में ही सर्वाधिक उपयोगी तैल होता है। अतः प्रशस्त शुण्ठी नहीं है जिसका छिलका सारा हटाया हुआ नहीं हो। इसे तोड़ने पर तल स्टार्ची मालूम होता है किन्तु उसमें अधिक रेशे नहीं होने चाहिये।

प्रयोग निषेध—कुष्ठ, पाण्डु-कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, व्रण, ज्वर आदि पित्तप्रधान रोगों में तथा ग्रीष्म व शरद् ऋतु (पित्त प्रकुपित होने के कारण) इसे उपयोग में नहीं लाना चाहिये—

कुष्ठे—पाण्ड्वामये कृच्छ्रे रक्तपित्ते व्रणे ज्वरे।
दाहे निदाघशरदोर्नैव पूजितमार्द्रकम्।।

कण्ठ रोगों में भी शुण्ठी का प्रयोग उपयुक्त नहीं है।

दर्पघ्न—मधु एवं बादाम का तैल

प्रतिनिधि—पिप्पली

गुणधर्म विवेचन—

शुण्ठी रूच्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः।
स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत्।।
वृष्या स्वर्य्या वमिश्वासशूलकासहृदामयान्।
हन्ति श्लीपदशोफार्श आनाहोदरमारुतान्।।

—भा.प्र.नि.

शुण्ठीति शुष्का कथिता महौषधं
विश्वा च नैकेषु गदेषु साधनम्।
वातानुलोम्याय हिताग्निदीपनी
संपाचनी शूलकफानिलापहा।। —प्रि.नि.

उष्णा विपाकमधुरा कटुकापि वृष्या
स्निग्धा लघुः स्वरहिता रूचिदास्ति शुण्ठी।
दुर्नाममान्द्यवमिशूल विबन्ध कास-
श्वासामवातकफशोफहृदामयघ्नी।।

—स.भे.मा.

नागरं कफवातघ्नं विपाके मधुरं कटु।
वृष्योष्णं रोचनं हृद्यं सस्नेहं लघु दीपनम्।।
कफानिलहरं स्वर्यं विबन्धानाह शूलनुत्।
कटुष्णं रोचनं हृद्यं वृष्यं चैवार्द्रकम्।।

—सुश्रुत सू.

आर्द्रिका भेदनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनीमता।
कटुका मधुरापाके रूक्षा वातकफापहा।।
ये गुणाः कथिताः शुठयां तेऽपि संत्यार्द्रके
केऽखिलाः।। —भा.प्र.

आर्द्रक जहाँ बिना पकाया हुआ शाक है शुण्ठी शाक में डाला जाने वाला श्रेष्ठ मसाला है। शाक-मसाले स्वादिष्ट होने के साथ ही स्वास्थ्य प्रद है। आचार्य चरक ने सूत्र स्थान अध्याय 27 में धान्य, शाकवर्ग आदि के साथ ही हरित वर्ग और आहार योगिक का भी वर्णन किया है। हरितवर्ग में वे द्रव्य आते हैं आर्द्र अवस्था में ही भोजन के रूप में प्रयुक्त होते हैं आजकल इस वर्ग के द्रव्यों को ही सलाद के नाम से जाना जाता है। आहार-योगिवर्ग में वे द्रव्य आते हैं जो मसाले के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इन मसालों को शाक या वेसवार भी कहा गया हैं आर्द्रावस्था की अदरक सलाद के रूप में उपयोग में लाई जाती है तथा शुष्कावस्था की सोंठ मसाले के रूप में प्रयुक्त होती है। इन द्रव्यों की वेसवार संज्ञा है—

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यो धान्यकाजाजिदाडिमम्।
पिप्पलीमूल संयुक्तं वेसवार इति स्मृतः।।

कुछ शीतवीर्य शुक्रवर्धक वृष्य द्रव्य होते हैं तो कुछ उष्णवीर्य उत्तेजक वृष्य द्रव्य होते हैं। युवावस्था में प्रायः शीतवीर्य वृष्य योग उपयोगी होते हैं तो प्रोढ़ावस्था में प्रायः उष्णवीर्य वृष्य योग उपयोगी हैं। शतावरी, मुलेठी, गिलोय, आंवला, सफेद मूसली आदि शीतवीर्य द्रव्य हैं तो सोंठ, असगन्ध, कालीमूसली, भल्लातक आदि उष्णवीर्य द्रव्य हैं। ये सभी द्रव्य बाजीकरण हेतु उपयोग में लाये जाते हैं। मधुरविपाकी होने से शुण्ठी वृष्य है किन्तु उष्णवीर्य होने से यह उत्तेजक है। इसके सेवन से उत्तेजना बढ़ जाती है और पुरूष बार-बार सहवास की कामना करता है। बहुत से उत्तेजक बाजीकरण योगों में शुण्ठी प्रयुक्त होती है। योगचिन्तामणि और पाकप्रदीप में आर्द्रकपाक का वर्णन मिलता है जो उत्तम वृष्य योग है-'बलंपुष्टिप्रदो वृष्यो ह्यार्द्रको लेह उच्यते।' इसी प्रकार गदनिग्रहकार ने नागराद्यवलेह का वर्णनकिया है यह भी "धातुपुष्टिकरं परम्" है। बल्यं वृष्यं नारसिंहचूर्ण, शिवागुटिका आदि योगों में भी शुण्ठी का मिश्रण किया जाता है।

यह ज्वरघ्न एवं शीतप्रशमन होने से ज्वरों में प्रयुक्त होती है। शुण्ठी चूर्ण ज्वरघ्न योगों में मिश्रित कर दिया जाता है तो आर्द्रकस्वरस अनुपान के रूप में प्रयुक्त होता है। चरकसंहिता में वमन विरेचन योगों के पश्चात् जो दुग्धयोग कहे हैं उनमें शुण्ठी सिद्ध दुग्ध का भी उल्लेख मिलता है-

सनागरं समृद्वीकं सघृतक्षौद्रशर्करम्।
श्रृतं पयः सखर्जूरं पिपासाज्वरनाशनम्।।

—च. चि. 3

अन्यत्र भी इसके प्रयोग मिलते हैं—

व्याधी शुण्ठ्यमृताक्वाथः पिप्पली चूर्ण संयुतः।
वातश्लेष्मज्वर श्वासकासपीनसशूलजित्।।
नागरं पौष्करं मूलं गुडूची कण्टकारिका।
सकासश्वासपार्श्वार्तौ वातश्लेष्मोत्तरे ज्वरे।।

—अ. हृ. चि.।

नागरं देवकाण्ठं च धान्यकं वृहतीद्वयम्।
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम्।।

—शा.सं.

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः
क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः।।

—च. द.

धान्यनागरनिर्यूहः सनिम्बुकाम्बुशर्करः।
शारदं ज्वरमन्हाय प्रसह्य हरतेतराम्।।

—सि. भे. म. मा.

विश्वगुडूचीग्रन्थिकनीरम्।
मारूततापध्वंसनधीरम्।।

मधुरसा मधुरा मधुपर्णिका (द्राक्षा, सौंफ, गिलोय)

मरिचकं मधुकं च महौषधम्।
मगधजेति च सप्तमकारका
ज्वरहराः खलु दीपनपाचनाः।।
त्र्यूषणताप्याकल्लकजं
श्लेष्मजयि स्यात् सार्द्रकजम्।
भुक्तमिदं चेत्सक्षरणं
तर्हि रजः स्याद् भूरिगुणम्।। —सि. भै. म.

शुण्ठी, मरिचम्, पिप्पली, स्वर्णमाक्षिक भस्म, आकल्लकमिति सर्वं पिष्ट्वा कृतं चूर्णमार्द्रकरसेन भुक्तं कफं जयति। इदमेव यवक्षारसहितं बहुगुणां भवति। चूर्णमिदं सन्निपातग्रस्ते रोगिणि कफविवृद्धया वरूद्धे घुर्घुरायमाणे च गलेऽन्तसमये रक्तिद्वयमितं न्यूनाधिकं-वार्द्रकरसेन प्रयोज्यम्। घण्टात्रयं धण्टाचतुष्टयं वा यावदवश्यं कफशान्तिर्भवति। म्रियमाणः कदाचिन-जीवेदपि। प्रत्यक्षचमत्कारोयं योगः कुञ्चि- काकर्तुः।

—कुचिंका

ज्वरहर एवं ग्राही होने से यह ज्वरातिसार में भी प्रयुक्त होती है—

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः।
सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः।।
—च. द.

धान्यबालकविल्वाब्दनाग्रैः साधितं जलम्।
आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम्।।
—शा.सं.

वाताश्मरी में भी—

शुण्ठीगोक्षुरवरूण क्वाथ निपीतोयवक्षारः
सगुड़क्षेपं त्वचिरान्नियतं वाताश्मरीं जयति।।—र. तर.

चक्रदत्त, भै. र., यो. र. आदि में भी अश्मरी अधिकार में वर्णित योगों में (शुण्ठयादिक्वाथ, पाषाणभेदादिघृत आदि) भी शुण्ठी को उपयोगी माना है।

"औषधि कल्पलता" में कतिपय वनौषधियों के कल्पों का वर्णन मिलता है। इसमें शुण्ठी कल्प वर्णित है—

उत्तमं नागरं ग्राह्यं चूर्णितं वस्त्रगालितम्।
गुडेन मधुना गव्यसर्पिषा मर्दितं भवेत्।।
सुस्निग्धभांडे निक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत्।
मासं मासं समुधृत्य कृत्वा कायविशोधनम्।।
सुस्निग्धं भक्षयेत्प्राज्ञो विड़ालपदमात्रकम्।
दिनसप्तप्रयोगेण सर्वरोगंनिवारयेत्।।
षणमाससेविताज्जीवेन्नरो वर्षशतं किल।
वृहस्पति समोबुध्या सर्वशास्त्र विशारदः।।
नागार्जुनसमाख्यातः कल्पोऽयममृताधियः।

अन्त में यह लिखकर इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ कि आयुर्वेद में जो 6 रस वर्णित हैं उन रसों में एक-एक द्रव्य को सर्वोत्कृष्ट किंवा ऐकान्ततः पथ्य कहा है। उनमें कटु द्रव्यों में आर्द्रक सवोत्तम है—

अम्लेष्वामलकं पथ्यं
शर्करा मधुरेषु च।
पटोलः शाकवर्गेषु
कटुकेष्वार्द्रकं भवेत्।।
कषायेषु यवाश्चैव
लवणेषु च सैन्धवम्।।
—वै

यूनानी मत—सोंठ तीसरे दर्जे में गरम और दर्जे में खुश्क है। यह बाजीकरण बुद्धिस्मृतिवर्धक, तथा वातविलयन है। श्लेष्म प्रकृति के लोगों के सोंठ गुणदायक औषधि है। आनाह, उदरशूल, अ आदि आमाशय के रोगों में इसका अधिक उपयोग है। मरोड़ उत्पन्न करने वाली औषधियों के साथ मिलाकर इदेने से इस अवगुण का परिहार होता कामोत्तेजक माजूनों में इसे सम्मिलित करते हैं या मु बनाकर खाते हैं। सर्द दर्दों में इसे उपयुक्त तैलों में मिल मालिश करते हैं। जुवारिश जंजबील और माजून जंज इसके प्रसिद्ध यूनानी योग हैं जो कफजरोगों में विशे मन्दाग्नि, पृष्ठशूल, नपुंसकता और योनिस्राव में प्र होते हैं। माजून फलासफा (पक्षाघात गृध्रसी आदि उपयोगी), जिमाद इल्तिहाबुल आसाब (नाडीशोथ लेप के लिए), माजून कुलंज (शूल में उपका जदेजामइश्क बुजुर्ग (वीर्यस्तम्भनकारी) आदि प्रसि यूनानी योगों का भी सोंठ प्रमुख घटक द्रव्य है। हकी के अनुसार जीर्ण संधिशोथ में नियमित रूप से रात्रि शयन के समय सोंठ सेवन करना बहुत लाभदायक है।

होम्योपैथी मत—होम्योपैथी में सबसे पहले श्री फ सोंठ का प्रयोग पहली से लेकर छठी पोटेन्सी तक कि इससे जोड़ों के पुराने रोगियों को दर्द से मुक्ति दिला

आधुनिक मत—वैज्ञानिकों के मतानुसार प्रोटि लिलिक एन्जाइम क्रिया के कारण यह वायु का श करती है, कफ को मिटाती है, भूख को बढ़ाती है शूल का निवारण करती है। इसी क्रिया द्वारा ही जीवाणुओं के ऊपर प्रभाव कर एवं जीवनी शक्ति बढ़ा रक्त की शुद्धि करती है।

डा. देसाई के अनुसार यह उष्ण और वातनाशक धर्म के कारण सब प्रकार की वातजनित वेदनाओं में लाभकारी सिद्ध हुई है। जीर्ण सन्धिवात के रोगियों विशेषकर वृद्ध पुरूषों को यह अधिक आराम देती है। यह सुगन्धित, दीपन और उत्तेजक औषधि है। इसके सेवन से पाचन क्रिया शुद्ध होती है, पेट में वायु का संचय नहीं होने पाता। इस गुण के कारण सोंठ आंतों के रोगों में बहुत उपयोग में ली जाती है।

आर. एन. खोरी के मतानुसार सोंठ सुगन्धित, उष्ण एवं वायुनाशक है। खाने से पेट में गर्मी का अनुभव होता है। यह पेट की वायु का नाश कर उदराध्मान को मिटाती है। वायुनाशक होने से यह शूल में प्रयुक्त होती है। गले के रोग विशेष में (Relaxed Throat) लालास्राव बढ़ाने के लिए इसे उपयोग में लाया जाता है। बाहर प्रलेप करने पर यह त्वचा को उतप्त कर ताम्रवर्ण बना देती है। अदरख को खाकर भोजन करने पर पाचन क्रिया शीघ्र बढ़ जाती है। शिरोरोग में सोंठ के चूर्ण का गर्म प्रलेप या पोटली में बांधकर स्वेदन करने से शूल शान्त हो जाता है। स्नायु रोग, उदरशूल, दन्तशूल, ग्रहणी, अग्निमांद्य, उदाराध्मान, प्रवाहिका, कास, हृत्स्पंद वृद्धि, शोथ, विसूचिका, आदि में यह लाभ करती है। रेचक दवाओं के साथ इसे देने से परिकर्तिका शूल नहीं होने पाता। तिक्तद्रव्यों को सुगन्धित करने के लिए भी सोंठ का प्रयोग होता है। रसोनस्वरस अथवा मधु के साथ भी इसका प्रयोग श्वास कास को दूर करता है।

कर्नल चोपड़ा लिखते हैं कि जिंजर टिंक्चर का प्रयोग एक प्रकार के मादक द्रव्यों के नाते नहीं वरन् उसकी वातनाशक क्षमता के कारण ही किया जाता हैं पाश्चात्य जगत में सर्दियों में इसे विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है।

पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान के लेखक डा. रामसुशील सिंह ने लिखा है कि अदरक एक तीव्र सुगन्धित उत्तेजक द्रव्य है। इस रूप में इसकी क्रिया लालमिर्च तथा इलायची की भाँति होती है। भोजन के साथ अदरख खाने से यह लालास्रावजनक तथा रूचिकारक है। सोंठ की बुकनी का नस्य लेने से यह शिरोविरेचक है। चिकित्सा में इसका प्रयोग विशेषतः दीपन-पाचन, वातानुलोमन तथा रूचिकारक द्रव्य के रूप में किया जाता है।

इसका "टिंक्चर आफ जिंजर" (शुण्ठीसुरा) 30 से 60 बूंद तक दिया जाता है। यह उत्तेजक, अग्निदीपक, वायुसारी होता है। सिरप आफ जिंजर (शुण्ठी पानक) 2-8 मि.लि. तक दिया जाता है। यह पेट की वायु को हरने वाला तथा पाचक होता है। अन्य औषधियों के साथ भी इसे उपयोग में लाया जाता है।

आर्द्रक के सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. **कर्णशूल**—अधिक देर तक ठन्डे पानी से स्नान करने पर या सर्दी के कारण कान में दर्द होने लगे तो अदरख के रस की चार-पाँच बूंद कान में डालनी चाहिए।

2. **युवान पिड़िका**—रात में सोते समय अदरख को पानी में पीसकर क्रीम की तरह से मुख पर लगावें। और सुबह इसे धोकर मुख पर नारियल का तैल लगावें। इससे मुंह पर होने वाले मुंहासे, झांई आदि दूर होते हैं।

3. **दन्त शूल**—अदरख का टुकड़ा दाँत के बीच में रखें अथवा इसके रस को गर्म कर फुरेरी बना कर पीड़ित दाँत पर मलें।

4. **शीतांग सन्निपात**—सन्निपातिक दशा में जब शरीर ठंडा पड़ जाय तो अदरख के रस के साथ लहसुन का रस समान मात्रा में मिलाकर मर्दन करें।

5. **श्वसनकज्वर(निमोनिया)**—घृत में अदरख का रस मिलाकर कुछ गर्म कर छाती पर मलना निमोनिया में विशेषतः बच्चों के लिए हितकारक है। इसमें थोड़ा कपूर मिलाकर मलने से अधिक लाभ होता है। इसे छाती

पर धीरे-धीरे मलना चाहिए। यदि आवश्यक समझा जाय तो इसे मलने के कुछ देर बाद गर्म पानी की बोतल से या गर्म नमक की पोटली से सेक भी करना चाहिए।

6. शिरःशूल—अदरख के रस में दूध मिलाकर सूंघने में मस्तक की पीड़ा मिटती है। दूध में मिलाने से इसकी तीक्ष्णता में कमी आ जाती है।

7. चोट लगने पर—अदरख की एक गांठ लेकर उसे कुचल कर पुल्टिस बना कर गरम कर सुखोष्ण ही उस स्थान पर बांध देने से दर्द में आराम होता है।

8. वातशूल—(क) अदरख के रस में अजवायन को पीसकर आक्रान्त स्थान पर मर्दन करने से वातजन्य पीड़ा दूर होती है।

(ख) अदरख का रस 500 मि.लि. और तिलतैल 250 मि.लि. को मंद अग्नि पर रखकर पकावें। जब तैल मात्र रह जाय तब उतारकर रख लें। इस तैल की मालिश करने से भी वायु से उत्पन्न शरीर के किसी भी भाग की पीड़ा का शमन होता है।

(ग) अदरख के रस में हींग अथवा सैन्धवलवण बारीक पीसकर मिलाकर मलने से भी दर्द दूर होता है।

(घ) अदरख को महीन पीसकर लेप करने से हाथ-पावों के बांयटे (हडफूटन) सर्वथा मिट जाते हैं। इसका रस निकाल कर कुछ गरम कर भी मला जा सकता है।

9. अतिसार—(क) आमलों को पीसकर कल्क बनाकर नाभि के चारों ओर आलवाल बनाकर इसमें अदरख का रस भर कर कुछ देर रखने से घोर अतिसार भी रूक जाता है। यदि नाभि टलने से विकृति हुई हो तो वह भी इससे ठीक हो जाती है।

(ख) अदरख के रस में कपड़ा भिगो भिगोकर नाभि पर रखने से भी उक्त विकृतियाँ दूर होती हैं। प्रति पन्द्रह मिनट के बाद कपड़ा बदलते रहना चाहिए।

अन्तःप्रयोग—

1. अग्निमांद्य—(क) अदरख के छोटे-छोटे टु कर उन टुकड़ों में सैन्धव लवण मिलाकर भोजन से सेवन करने से अग्नि दीप्त होती है। इससे भोजन के रूचि बढ़ती है, आम का पाचन होता है और जीभ व का शोधन होता है।

(ख) अदरख के रस में 500 मि.ग्रा. सेंधान और एक ग्राम सिका हुआ जीरा (दोनों का चूर्ण) मिला सेवन करना हितकारी है।

(ग) अदरख के रस में त्रिकटुचूर्ण और श मिलाकर सेवन करें।

(घ) अदरख का रस 20 मि.लि. नींबू स्वरस 5 लि. भुना जीरा एक ग्राम, सेंधानमक एक ग्राम, छो इलायची नग आठ के बीज और मुनक्का 5 नग (बी निकाले हुये) सबको पीसकर चटनी बनाकर खिलाने अग्निमांद्य दूर होता है तथा भोजन में रूचि उत्पन्न हो है। यह एक मात्रा है इसी प्रकार दिन में दो-तीन ब सेवन करावें। पूर्ण लाभ के लिए इसी प्रकार तैयार क कुछ दिनों तक निरन्तर सेवन करना चाहिए।

2. शीतपित्त—अदरख के स्वरस में पुराना गु मिलाकर सेवन करने से शीतपित्त, शोथ और मन्दाग्नि लाभ होता है।

3. सिन्दूर विष—इस विष के उपद्रवों में अदर को मुख में रखें, रोटी में मिलाकर खावें या इसमें नम मिलाकर थोड़ा-थोड़ा खावें।

4. अम्लपित्त—(क) अदरख, आंवला और मि को पीसकर सेवन करें।

(ख) अदरख के रस में अनार का रस मिला सेवन करें। अदरख रस 5 मि.लि. में अनार का रस मि.लि. मिलाना चाहिए।

5. कृमिरोग—अदरख 10 ग्राम, खुरास

अजवायन 3 ग्राम पीसकर गर्मकर सेवन करें। अनुपान में गर्मजल ही पीना आवश्यक है।

6. अश्मरी (पथरी)—(क) सोंठ, वरूण की छाल, गोखरू, पाषाणभेद और मकोय का क्वाथ गुड़ और यवक्षार मिलाकर पीने से पथरी दूर होती है।

(ख) सोंठ, एरण्ड पत्र, वरूण की छाल और गोखरू के क्वाथ पान से भी पथरी छोटी-छोटी होकर बाहर निकल जाती है।

7. कास—(क) अदरख के स्वरस में मधु मिलाकर सेवन करना कास, श्वास और प्रतिश्याय आदि में लाभप्रद कहा गया है।

(ख) अदरख का रस और देशीपान (ताम्बूल) का रस 5-5 मि.लि. और मधु 10 मि.लि. मिलाकर चाटना कास, ज्वर, प्रतिश्याय में हितावह है।

(ग) अदरख के रस में सेंधानमक और त्रिकटु चूर्ण मिलाकर सेवन करने से कास, ज्वर, मुखरोग मिटते हैं।

(घ) अदरख, तज और मिश्री का क्वाथ खांसी-जुकाम में हितकर है।

(ङ) सभी मनुष्य खांसी जुकाम होते ही अदरख की चाय बनाकर पीना पसन्द करते हैं। इसके साथ तुलसी पत्र एवं कालीमिर्च का भी मिश्रण कर चाय की भाँति जल, दूध में उबालकर मिश्री या शक्कर या बताशे डालकर पिया जाता है। इससे प्रतिश्याय एवं प्रतिश्याय जन्य कास में अच्छा लाभ होता है।

8. स्वरभंग—(क) अदरख के रस में कालीमिर्च, वंशलोचन, मुलेठी और मिश्री (कालीमिर्च 5 ग्राम, वंशलोचन 10 ग्राम, मुलेठी 15 ग्राम और मिश्री 20 ग्राम मिलाकर चूर्ण तैयार कर लें।) मिलाकर चाटें।

(ख) अदरख में हींग मिलाकर गर्म कर फिर इसमें कालानमक मिला करे थोड़ा-थोड़ा सेवन करें।

9. अरूचि—(क) नींबू के रस में अदरख के टुकड़ों को भिगोकर खाने से अरूचि मिटती है और मुख का विगड़ा हुआ स्वाद ठीक होता है।

(ख) कटे हुये 10 ग्राम अदरख में 20 ग्राम मुनक्का, 10 ग्राम प्याज कटा हुआ और आधा चम्मच नमक लेकर इसमें नींबू निचोड़ कर मिलाकर खाने से भोजन के प्रति रूचि उत्पन्न होती है।

10. अर्श—(क) यदि अर्श (मस्से) फूल गये हों, शूल चलता हो अथवा मल गाढ़ा बन गया हो तो अदरख का टुकड़ा लेकर उसका क्वाथ बनाकर पीवें। यह अच्छा असर दिखाता है।

11. प्रतिश्याय (जुकाम)—(क) 10 मि.लि. अदरख का रस और चार-पाँच कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर सेवन करना प्रतिश्याय में लाभदायक है। जीर्ण प्रतिश्याय में इसके साथ में नींबू का रस या शहद भी मिलाना चाहिए।

(ख) अदरख, तुलसी पत्र, बड़ी इलायची और कालीमिर्च आदि यथावश्यक लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करना भी प्रतिश्याय में लाभदायक है।

12. छर्दि—पाँच मि.लि. अदरख का रस, पाँच मि. लि. प्याज का रस और शहद 10 ग्राम मिलाकर चाटने से उल्टियां होना बन्द होता है। हैजे में इसे बार-बार उपयोग में लाना चाहिये। इससे बार-बार उल्टियाँ होने में लाभ होता है।

13. विसूचिका (हैजा)—कालीमिर्च और अर्कमूल की छाल के चूर्ण को अदरख के रस में पीसकर गोलियां बनाकर सेवन करावें। गोलियों को मुख में रखकर बार-बार चूसते रहना चाहिये। इससे हैजा में अच्छा लाभ होता है और मुख का जायका ठीक होता है।

14. अतिसार—अदरख और खस का क्वाथ बनाकर ठन्डा कर पिलावें। अतिसार के आरम्भ होते ही इसे उपयोग में लाना चाहिये। इससे पाचन होकर लाभ होता है।

15. उदर रोग—अदरख के रस में बराबर दूध मिलाकर पान करना उदर रोगों में हितकारी है। अदरख, सोंठ, पिप्पली, मरिच, मिश्री, मुनक्का, शहद आदि दूध के मित्र कहे गये हैं अर्थात् इनका मिश्रण लाभकारी है।

16. बहुमूत्र—अदरख का रस 10 मि.लि. मिश्री 10 ग्राम सेवन करने से मूत्र का अधिक आना कम हो जाता है। जिन व्यक्तियों को प्रमेह के कारण या वृद्धावस्था में यह शिकायत हो उन्हें अदरख को उपयोग में लाना चाहिए।

17. भांग का नशा—भांग का नशा अधिक हो जाने पर वात प्रकोप होता है। अदरख वात का शमन कर लाभ पहुंचाता है। अत: जिन व्यक्तियों को भांग के अतियोग से उपद्रव उत्पन्न हो गये हों उन्हें अदरख का सेवन कराना चाहिये। भांग के साथ अदरख का सेवन निरापद कहा गया है।

18. आध्मान (आफरा)—(क) अदरख, अनारदाना, जीरा, हींग और सेंधा नमक को पीसकर चटनी बनाकर सेवन करने से पेट में उत्पन्न हुआ आफरा, पेट की गुड़गुड़ाहट दूर होती है। इससे पाचन संस्थान की प्राय: सभी व्याधियाँ मिटती हैं।

(ख) 100 मि.ली. उबलते पानी में दो ग्राम यवक्षार तथा दो ग्राम मधुर क्षार (मीठा सोड़ा) डालकर आग से उतारकर उसमें 20 मि.लि. अदरख का रस मिलाकर पीने से आफरा, गैस दूर होती है।

19. अजीर्ण—अदरख उत्तम पाचक होने से इसका सेवन सभी प्रकार के अजीर्ण को मेटकर लाभ पहुंचाती है। किसी द्रव्य के अधिक खाये जाने पर उसका अजीर्ण हो जाता है। इसके निवारण के लिए दर्पघ्न द्रव्य को उपयोग में लाया जाता है। ईख का रस अधिक पी लेने से यदि अजीर्ण हो जाय तो अदरख के सेवन से यह अजीर्ण समाप्त हो जाता है।

21. शोथरोग—(क) अदरख के रस में पुराना गुड़ मिलाकर पिलाने से सूजन में लाभ होता है। इसके सेवन काल में बकरी का दूध पथ्य रूप में सेवन करना चाहिए।

(ख) अदरख का कल्क (चटनी) बनाकर [illegible] ग्राम की मात्रा में सेवन करें इसके ऊपर 20 मि[illegible] गोमूत्र छानकर पीवें। इससे भी शोथ दूर होने में अ[illegible] लाभ मिलता है।

21. आमवात—(क) अदरख का रस 10 [illegible] लि., लहसुन का रस 10 मि.लि., शुद्ध देशी घृत 50 [illegible] लि. लेकर अग्नि पर पकावें। लहसुन की गन्ध मिट [illegible] पर 25 ग्राम गुड़ (पुराना) अच्छी तरह मिलाकर [illegible] आग से पात्र को नीचे उतार लें और सुखोष्ण ही से[illegible] करें।

(ख) अदरख को सेंधानमक या कालानमक [illegible] साथ पीसकर खाने के बाद कांजी का सेवन आमवात [illegible] रोगी के लिए हितकारक कहा गया है।

विशेष—यद्यपि भावमिश्र ने ज्वर, दाह आदि रो[illegible] में तथा ग्रीष्म-शरद ऋतु में अदरख का सेवन निषि[illegible] बतलाया है किन्तु शालिग्राम (निघन्टुकार) के मतानुस[illegible] उक्तरोगों में तथा समय में नमक (सैन्धव) और जंभी[illegible] नींबू के साथ अदरख का सेवन किया जा सकता है।

शुण्ठी के सामान्य प्रयोग—

ब्राह्य प्रयोग—

1. शिर:शूल—(क) सोंठ को पानी के साथ पीसक[illegible] लेप करने से सिर का दर्द विशेषतया आधाशीशी का द[illegible] मिटता है।

(ख) सोंठ को बकरी के दूध में पीसकर नस्य दें[illegible] से भी शिर:शूल में लाभ होता है। तीन ग्राम सोंठ को 150 मि.लि. दूध में पीसकर लेवें।

(ग) सोंठ को एरण्ड तैल में घिसकर कुछ गरम कर[illegible] लगाने से सर्दी से उत्पन्न मस्तक पीड़ा मिटती है।

(घ) सोंठ और दालचीनी को पीसकर इसका लला[illegible] पर लेप करें।

(ङ) सोंठ, कूठ, पमाड़ (चक्रमर्द) और देवदारु समान भाग लेकर सबको पीसकर भैंस के मूत्र में मिला[illegible] मन्दोष्ण कर लेप करने से कफज शिर:शूल मिटता है।

2. व्रणशोथ—सोंठ, देवदारू, रास्ना, अग्निमांथ और मातुलुंग की जड़ इन्हें एकत्र लेकर पानी के साथ पीसकर

लेप तैयार कर लें। इसे गरम कर व्रणशोथ पर लेप करने से शोथ दूर होता है।

3. **पक्षाघात**—सोंठ और सैंधव को महीन पीसकर इसे एक चुटकी भर लेकर पक्षाघात के रोगी को सूंघना चाहिए।

4. **नेत्ररोग**—सोंठ और नीम के पत्तों को पीसकर कुछ गरम कर टिकिया बनाकर कुछ देर के लिए आंखों पर बांधने से आंखों की पीड़ा और सूजन मिटती हे।

5. **शीतांग**—सोंठ को शीतप्रशमन कहा गया है अतः शरीर के शैत्य को दूर करने के लिए इसका लेप या तैल में मिलाकर अभ्यंग करना चाहिये। इसके लेप या अभ्यंग से अवसाद भी दूर होता है।

6. **वृश्चिकदंश**—सोंठ को पान के रस में पीसकर लेप करें।

7. **शोथरोग**—सोंठ के चूर्ण को शोथ स्थान पर रखकर रगड़ना चाहिये तथा गोमूत्र में पीसकर आक्रान्त स्थान पर लेप करना चाहिये।

8. **योनिशूल**—सोंठ और एरण्डमूल की छाल को बारीकचूर्ण बनाकर इसे पानी या घी में पीसकर लेप करने से स्त्रियों का योनिशूल मिटता है।

9. **वातशूल**—(क) सोंठ, कायफल और असगन्ध को पीसकर पानी में मिलाकर कुछ गरम कर लेप करने से वातव्याधि का शूल मिटता है।

(ख) सोंठ को स्त्री के दूध में पीसकर लेप करने से पैरों और हाथों में होने वाले दर्द का शमन होता है।

(ग) संधिशूल, संधिशोथ एवं अन्य वातजन्य शूल पर सोंठ को पानी में पीसकर गर्म कर लेप करना चाहिये। इसे तैल में मिलाकर भी लेप किया जा सकता है। इससे रोगी को शीघ्र लाभ मिलने लगता है।

अन्तःप्रयोग—

1. **गर्भवती हेतु**—(क) सोंठ, बेल की गिरी, पिपरामूल तथा पिपर के चूर्ण को जल में भिगोकर आठ घंटों के बाद छानकर पीने से गर्भवती स्त्रियों के वात से उत्पन्न होने वाले सभी विकार नष्ट होते हैं।

(ख) गर्भिणी को दशवें महीने में सोंठ तथा क्षीरकाकोली से सिद्ध दूध पिलाना हितकर है।

(ग) सोंठ, मुलेठी और देवदारू के चूर्ण को दूध में पकाकर फिर छानकर यह दूध पिलाना भी गर्भिणी के लिए दशवें महीने में पिलाना हितकारक कहा गया है। दोनों में से कोई एक योग दशवां महीना लगते ही पिलाना प्रारम्भ कर देना चाहिये।

(घ) सोंठ और बलामूल का क्वाथ पिलाने से गर्भवती और सूतिका स्त्रियों का वात प्रकोप शान्त होता है। इस क्वाथ में घृत भी मिलाया जा सकती है।

(2) सूतिका हेतु—अपरा गिरने के पश्चात् सूतिका को बलातैल का अभ्यंग करवाकर वातहर औषधियों से चिकित्सा करें। यदि गर्भाशय में कोई दोष शेष रहा हो तो उसी प्रसव के दिन सोंठ, पिप्पली, पिप्पली मूल, गजपीपल और चित्रक का चूर्ण बनाकर गरम गुड़ोदक के साथ सूतिका को पिलावें। इस प्रकार दो दिन या जब तक दुष्ट रक्त निकलता हो तब तक पिलावें।

3. **उर्ध्ववात**—सोंठ चूर्ण को घी में भूनकर 3-4 ग्राम की मात्रा में लेकर भोजन के मध्य में सेवन करना चाहिए। भोजन के मध्य में लेने से तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति दो रोटी खाता हो उसे एक रोटी खा लेने के बाद यह चूर्ण लेकर पुनः रोटी खानी चाहिये।

4. **अजीर्ण**—(क) सोंठ और धनिये का क्वाथ आमांजीर्ण में लाभदायक है।

(ख) सोंठ और हरड़ का चूर्ण बनाकर सुखोष्ण जल के साथ सेवन करें। यह चूर्ण भोजन से पहले 2-2 ग्राम लेना चाहिये।

(ग) सौंठ 20 ग्राम, मरिच 40 ग्राम, पीपल 60 ग्राम, सेंधानमक 80 ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर 3-4 ग्राम अर्क आजवायन के साथ लें।

5. **छर्दि**—सोंठ, पिप्पली, धान का लावा के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से उल्टियां बन्द होती हैं।

6. **बालरोग**—(क) सोंठ, गिलोय, नागरमोथा तथा पाठा का क्वाथ बनाकर उसे ठन्डा कर बालकों को पिलाने से उनका रक्तातिसार तथा प्रवाहिका बन्द होते हैं।

(ख) सोंठ, अतीस, देवदारू, वच, नागरमोथा का क्वाथ बालकों के आमातिसार को दूर करने वाला तथा कफमेद का शोषण करने वाला है।

(ग) सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ का क्वाथ बच्चों के सब प्रकार के अतिसार को दूर करता है।

7. अतिसार—(क) सोंठ का चूर्ण गुड़ के साथ सेवन करना आमातिसार, आमवात, वातार्श, आमाजीर्ण आदि में लाभप्रद है।

(ख) सोंठ के चूर्ण में थोड़ा घी डालकर पिंडी बनाकर एरण्ड के पत्तों में लपेटकर मन्दअग्नि से पुटपाक करें। फिर निकालकर चूर्ण में मिश्री मिलाकर प्रात: खाने से आमातिसार से उत्पन्न, पीड़ा नष्ट होती है।

(ग) सोंठ, सौंफ, भूना जीरा, बेलगिरी और अजवायन का समभाग चूर्ण बनाकर 3-3 ग्राम चूर्ण दिन में 3 बार जल से सेवन करें।

(घ) सोंठ और जायफल 2-2 ग्राम को जल में पीसकर सेवन करें।

(ङ) सोंठ 50 ग्राम, जीरा 25 ग्राम, अनारदाना 25 ग्राम, चित्रक 15 ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर 3-3 ग्राम चूर्ण पानी से सेवन करें।

(च) सोंठ, सौंफ, छोटी हरड़ 10-10 ग्राम ले घी में भूनकर बराबर मिश्री मिलाकर 6-6 ग्राम की मात्रा में पानी से आमातिसार में दें।

8. संग्रहणी—(क) सोंठ, कच्चे विल्व की गिरी के चूर्ण को गुड़ में मिला कर छाछ के साथ सेवन करना संग्रहणी में लाभदायक होता है।

(ख) सोंठ, नागरमोथा और बायविडङ्ग समान भाग लेकर इनका चूर्ण बना लें। दो-तीन ग्राम चूर्ण तक्र के साथ सेवन करें।

(ग) 100 ग्राम सोंठ का कल्क बनाकर इससे एक लीटर घी और चार लीटर पानी में पकाकर घी मात्र शेष रह जाने पर उतारकर 10-10 ग्राम सेवन करावें। घृत संग्रहणी, तिल्ली, ज्वरनाशक तथा वातानुलोमक

(घ) सोंठ और कच्चे बेल की गिरी को पीस कल्क (चटनी) बनाकर इसे मसूर की दाल पानी के साथ सेवन करने से भी संग्रहणी में लाभ है।

(ङ) सोंठ, नागरमोथा, अतीस और गिलोय क्वाथ आमदोष युक्त ग्रहणी और अग्निमांद्य में प्र करना चाहिये।

9. अर्श—(क) सोंठ और चित्रक मूल का क्व बनाकर पीना वातप्रधान अर्श में हितकारक है।

(ख) सोंठ, शुद्ध भिलावा और विधायरा तीनों स मात्रा में लेकर इन सबको चूर्ण बनाकर इस सारे चूर्ण गुड़ लेकर मिलाकर चार-पाँच ग्राम सेवन करने से स प्रकार के अर्श (बवासीर) में लाभ मिलता है। यह यौन ऊर्जा वर्धक भी कहा गया है।

10. भांग का नशा—सोंठ के एक ग्राम चूर्ण दही के साथ दें इससे भांग का नशा दूर होकर से कर्त्ता को आराम मिलता है।

11. वत्सनाभ का विष—सोंठ का चूर्ण खिला बच्छनाग के विष की शान्ति होती है। अनुपान रू सोंठ के चूर्ण के साथ गोमूत्र या बकरी का दूध विष के लिए पीना चाहिए।

12. गुल्म—(क) सोंठ और निशोथ चूर्ण उन्डे से सेवन करें।

(ख) सोंठ का चूर्ण दो ग्राम, भूसी रहित काले ति 10 ग्राम और गुड़ 5 ग्राम सबको एकत्र मिलाकर खा ऊपर गरम दूध पीना चाहिये। इससे वातज गुल्म, उद और योनिशूल दूर होता है। ये योग कुछ अधिक दि तक सेवन करने की अपेक्षा रखते हैं।

13. आमवात—(क) सोंठ के चूर्ण को कांजी साथ नित्य पीने से आमवात शान्त होता है। उर्द की द भिगोकर उसकी पिट्ठी बनाकर घी में उसके बड़े पका उन बड़ों (पकोड़ियां) को मसालों युक्त नमकीन पा

भिगो देते हैं जिससे वह पानी खट्टा हो जाता है। यही कांजी कहलाता है।

(ख) सोंठचूर्ण एक ग्राम और दो ग्राम गिलोय के चूर्ण को सोंठ क्वाथ के साथ या सोंठ मिले दशमूलक्वाथ के साथ सेवन करना आमवात के रोगी के लिए लाभदायक होता है।

(ग) सोंठ और एरण्ड के जड़ की छाल 10-10 ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर नियमित पीने से आमवात में अच्छा लाभ होता है। इसमें एक ग्राम कालानमक और एक ग्राम हींग डालना अधिक हितकर है।

(घ) सोंठ के क्वाथ में एरण्ड तैल मिलाकर पीने से आमवात एवं अन्य वातजन्य शूल मिटता है।

(ङ) सोंठ और गोखरू का क्वाथ पीने से आमवात और कटिशूल में लाभ होता है। इस क्वाथ में यवक्षार मिलाकर पिलाने से पेशाब खुलकर आता है।

(च) सोंठ, शु. सुहागा, कालानमक और शु. हींग समानमात्रा में लेकर सहजन की ताजी छाल के रस में घोटकर छोटे बेर के समान गोली बनाकर गर्म पानी से सेवन करने से सभी प्रकार के वातरोग और उदरशूल मिटता है।

(छ) सोंठ, निर्गुण्डीमूल और लहसुन बराबर लेकर 5-5 ग्राम लेकर दो गिलास पानी डालकर क्वाथ बनावें। आधा गिलास शेष रह जाने पर छानकर रोगी को पिलावें।

(ज) सोंठ 200 ग्राम और 100 ग्राम धनिये को पानी में पीसकर इनका कल्क बनाकर इसे 2 लीटर घृत और 8 लीटर पानी में मिलाकर पकावें। जब पानी जल जाय तो घृत को छान लें। यह घृत आमवात, अग्निमांद्य, कास, श्वास, अर्श और अग्निमांद्य आदि रोगों को तथा अन्य वातकफजन्य रोगों को दूर कर बल-वर्ण की वृद्धि करता है।

(झ) सोंठ, एरण्डमूलछाल, गिलोय, रास्ना, देवदारू और दशमूल की औषधियों को मिलाकर इन सबका क्वाथ बनाकर उसमें एरण्ड तैल मिलाकर सेवन करना भी आमवात में हितकर है।

14. अग्निमांद्य—(क) सोंठ के चूर्ण में गुड़ मिलाकर सेवन करने से अग्निदीप्त होती है।

(ख) सोंठ, बड़ी हरड़ का छिलका, अजवायन और सेंधानमक बराबर मात्रा में लेकर 3-3 ग्राम उष्ण जल से सेवन करें। इससे भूख लगती है तथा पेट का दर्द मिटता है।

(घ) सोंठ, कालानमक, चित्रक, हरड़, हींग, अनारदाना और सेंधानमक सभी सम मात्रा में लेकर चूर्ण बनावें। 2-2 ग्राम चूर्ण सेवन करने से अग्निमांद्य का नाश होकर जठराग्नि तीव्र होती है।

(ङ) सोंठ, सेंधानमक और शुद्ध गन्धक को एकत्र पीसकर इनका बरीक चूर्ण तैयार कर लें। फिर इसमें चौगुना नींबू का रस मिलाकर गोलियां बना लें। ये भूख को बढ़ाती है।

15. वातव्याधि—(क) सोंठ, पुष्करमूल, भारंगी और वंशलोचन का समभाग चूर्ण बनाकर 3-3 ग्राम दिन में तीन बार शहद से चाटना सभी प्रकार के वातरोगों में लाभदायक होता है।

(ख) सोंठ और वच का समभाग चूर्ण बना लें। दो-तीन ग्राम चूर्ण शहद के साथ चटाने से अर्धांग वात में लाभ होता है।

(ग) सोंठ, गोखरू, हरड़, अमलतास का गूदा, सहजने की छाल और बरने की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें हींग, यवक्षार और सेंधानमक डालकर सेवन करने से कटिशूल, वंक्षणशूल अग्निमांद्य और पथरी आदि रोगों में लाभ होता है।

(घ) सोंठ और एरण्डमूल की छाल के क्वाथ में एक ग्राम काला नमक और एक ग्राम घी में भुनी हींग डालकर कुछ दिन नियमित पीने से सभी प्रकार के वातशूल का शीघ्र ही शमन होता है।

(ङ) सोंठ, देवदारू, एरण्डमूल की छाल, गिलोय और रास्ना इनका क्वाथ सामवात, सन्धिवात, सर्वांगवात एवं अस्थि मज्जागत वात का शमन करने में श्रेष्ठ है।

16. **कटिशूल**—सोंठ एक ग्राम, अजवायन एक ग्राम, पीपलामूल 500 मि.ग्रा. में बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करने से कटिशूल शीघ्र दूर होता है। स्त्रियों के कटिशूल में यह विशेष लाभदायक है। अनुपान में गोदुग्ध पीवें।

17. **बस्तिशूल**—सोंठ, कालीमिर्च और यवक्षार के चूर्ण को 3-3 ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार गर्म जल से सेवन करने से वस्ति में उत्पन्न शूल दूर होता है।

18. **गृध्रसी**—सोंठ और एरण्डबीज कल्क को दूध में क्षीर पाक विधि से पकाकर सेवन करावें।

20. **वातरक्त**—सोंठ 2 ग्राम, चोपचीनी, एक ग्राम और कड़वी सुरंजान 500 मि.ग्रा के चूर्ण को प्रात: पुनर्नवाष्टककषाय के साथ सेवन करावें। इसी प्रकार मात्रा दोपहर में मंजिष्ठादि क्वाथ से तथा तीसरी मात्रा सायंकाल दूशमूल क्वाथ के साथ सेवन करावें।

19. **नपुंसकता**—(क) सोंठ का चूर्ण 2 ग्राम, शहद 3 ग्राम, प्याज का रस 4 ग्राम और देशी घृत 5 ग्राम मिलाकर नित्य 21 दिनों तक प्रात: सायं सेवन करें।

(ख) सोंठ, जायफल, शीतल-चीनी, दालचीनी का समभाग चूर्ण बनाकर रख लें। यह चूर्ण उत्तम बाजीकरण है। नपुंसकता में उत्तेजना हेतु इसे उपयोग में लावें। एक-दो ग्राम चूर्ण मधु या दूध के साथ सेवन करावें।

21. **दुर्बलता**—सोंठ, विधायरा, बलामूल, अकरकरा, जीरा, हरड़ और नागकेशर समानमात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण को 3-4 ग्राम की मात्रा में सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करने से दुर्बलता दूर होती है। यह स्त्रियों के दौर्बल्य को भी दूर कर उनके सौन्दर्य को बढ़ाता है।

22. **हृदयरोग**—(क) सोंठ का क्वाथ बनाकर गुनगुना ही पीने से हृदय रोगी को आराम मिलता है।

(ख) सोंठ 2 ग्राम, पोखरमूल 2 ग्राम, काला नमक 2 ग्राम और शु. हींग एक ग्राम लेकर गरमजल से सेवन करें।

(ग) सोंठ, मिर्च, पिप्पली, चित्रक, पिप्पलीमूल, जटामांसी और भार्गी का क्वाथ बनाकर पिलाना हृदयरोग में लाभप्रद है।

(घ) सोंठ, ब्राह्मी, हींग, अनारदाना और अम्लवेत समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। एक-दो ग्राम चूर्ण उष्णजल से सेवन कराने पर हृदयरोग और श्वास में लाभ होता है।

(ङ) सोंठ, भुनी हींग और कालानमक को क्रमश: एक ग्राम, 125 मि.ग्रा. और एक ग्राम को लेकर उक्त सोंठ का क्वाथ पीने से कफवात से उत्पन्न हृदयशूल, पार्श्वशूल, उदरशूल और विसूचिका में लाभ होता है।

(च) सोंठ, आंवला, सेंधानमक, हरड़, हींग, पोखरमूल और काकोली से सिद्ध घृत हृदयरोग, पार्श्वशूल, गुल्महर है।

(छ) सोंठ, लहसुन, अर्जुन, पुष्करमूल और पुनर्नवा के क्वाथ में शु. हींग 500 मि.ग्रा. मिलाकर सेवन करना हृदयशूल व हृदय की दुर्बलता में हितकर है।

23. **विसूचिका**—(क) सोंठ, बिल्व का गूदा और कायफल का समभाग क्वाथ बनाकर पीने से हैजा में लाभ होता है।

(ख) सोंठ और एरण्ड की जड़ की छाल को समान मात्रा में लेकर यवकुट कर 25-30 ग्राम का क्वाथ बनाकर उसे छानकर फिर उसमें घी में भुनी हुई हींग एक ग्राम तथा कालानमक एक ग्राम डालकर पीने से उदरशूल में अच्छा आराम मिलता है।

25. **हिक्का**—(क) सोंठ और हरड़ चूर्ण को गरम जल से सेवन करें। इससे हिचकी, श्वास आदि रोगों में लाभ होता है।

(ख) सोंठ, पिप्पली और आंवले को समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर 3-4 ग्राम चूर्ण को शहद के साथ सेवन करने से भी हिचकी मिटती है।

(ग) सोंठ चूर्ण में शक्कर मिलाकर गरम जल से सेवन करना भी हिचकी में हितकर है।

(घ) सोंठ को गुवार पाठे (कुमारी) के रस में घिसकर रोगी को सेवन करने से भी हिक्का का शमन

होता है। यह औषधि रोगी को बार-बार सेवन करानी चाहिये।

26. स्तन्य दोष—सोंठ, वच, हरड़, देवदारू और नागरमोथा के क्वाथ में सेंधानमक मिलाकर पीने से माताओं के विकृत दुग्ध की शीघ्र ही शुद्धि होती है।

27. आध्मान—सोंठ, अजमोद, जीरा, अजवायन 50-50 ग्राम, कालानमक, सेंधानमक 20-20 ग्राम और भुनी हीरा हींग 10 ग्राम सबका चूर्ण बनाकर एक दो ग्राम चूर्ण गरम पानी से आफरे में सेवन करें।

28. ज्वर—(क) सोंठ, तुलसी पत्र और कालीमिर्च 5-5 ग्राम लेकर 250 मि.लि. जल में औटावें। चौथाई पानी शेष रह जाने पर छान कर रोगी को पिलावें। इससे वातश्लेष्मिक ज्वर (इन्फ्लूएंजा) में अच्छा लाभ मिलता है।

(ख) सोंठ, जवासा, वासा और नागरमोथा का क्वाथ बनाकर सेवन करने से कफजन्य ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(ग) सोंठ, नागरमोथा, धमासा और गिलोय समान भाग लेकर आठ गुने पानी में पकावें और आठवां भाग पानी शेष रह जाने पर छानकर पिलाने से वातजन्य ज्वर का शमन होता है।

(घ) सोंठ, देवदारू, कचूर, पित्तपापड़ा, कटेरी, कुटकी, चिरायता, नागरमोथा और अनन्तमूल समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। फिर इसमें पीपली चूर्ण और शहद मिलाकर पिलाने से विषमज्वर, जीर्णज्वर, कास आदि दूर होते हैं।

(ङ) सोंठ, त्रिफला, नागरमोथा और खस का क्वाथ शीतज्वर नाशक तथा पाचक है।

(च) सोंठ और धनिये के क्वाथ में नींबू का शर्बत मिलाकर पीने से शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाला ज्वर नष्ट होता है।

(छ) सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, लालचन्दन, खस, धनियां इनके काढ़े में मिश्री-शहद मिलाकर पीना तिजारा ज्वर में लाभप्रद है।

29. कास—(क) सोंठ, कुलंजन, कालीमिर्च, बच और पीपर को पान के रस में पीसकर छोटे बेर के समान गोलियां बनाकर मुख में रख सूचने से खांसी में लाभ होता है।

(ख) सोंठ, अतीस, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, हरड़ और कचूर को पीसकर गरम जल से सेवन करें। इससे कास, श्वास, ज्वर आदि दूर होते हैं।

(ग) सोंठ, भारंगी, पिप्पली, सोमलता, द्राक्षा, कचूर का समभाग चूर्ण बनाकर बराबर मिश्री मिलाकर 3-4 ग्राम चूर्ण तिलतैल में मिलाकर सेवन करने से वातजन्य कास का शमन होता है।

30. श्वास—(क) सोंठ और बड़ी हरड़ को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें। दो-दो ग्राम यह चूर्ण दिन में तीन-चार बार सेवन करें। इससे श्वास फूलने के सभी कष्ट समाप्त होते हैं।

(ख) सोंठ और भारंगी का क्वाथ श्वास रोग को मिटाता है।

(ग) सोंठ, पुष्करमूल, गिलोय, कटेहली का क्वाथ श्वास, पसली का दर्द और वातकफज ज्वर में लाभप्रद है। इस क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करने से अधिक लाभ होता है।

31. ज्वरातिसार—(क) सोंठ, नागरमोथा, बेलगिरी, नेत्रबाला और धनियां का क्वाथ ज्वरातिसार में हितकर है।

(ख) सोंठ, अतीस, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और इन्द्र जौ इनका क्वाथ सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर और अतिसार में लाभ होता है।

(ग) एक दो ग्राम सोंठ चूर्ण दशमूल क्वाथ में मिलाकर सेवन करने से भी ज्वरातिसार में लाभ होता है।

32. श्लीपद—सोंठ के चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करना श्लीपद में लाभदायक है। यह उरूस्तम्भ रोग में लाभप्रद कहा गया है।

33. अपस्मार—सोंठ, धनिया, देवदारू, हल्दी, लहसुन, गिलोय और निर्गुण्डी का क्वाथ अपस्मार (मृगी) के रोगी के लिए लाभदायक कहा गया है।

34. तृष्णा—(क) सोंठ और धनिये के चूर्ण को (सोंठ 10 ग्राम, धनिया 10 ग्राम) को पानी में मिलाकर क्वाथ बनाकर ठन्डा हो जाने पर पीने से अधिक प्यास लगना, अतिसार और उदरशूल आदि मिटते हैं।

(ख) सोंठ, अतीस और नागरमोथा को समभाग लेकर जौकुट कर लें। यह जौकुट चूर्ण 20 ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर ठन्डा हो जाने पर पीवें। इससे भी प्यास, अतिसार, उदरशूल मिटते हैं। ये दोनों क्वाथ आमदोषपाचक और भूख को बढ़ाने वाले हैं।

35. मूत्रकृच्छ—सोंठ और गोखरू का क्वाथ तैयार कर उसमें यवक्षार मिलाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

36. चोट लगने पर—सोंठ चूर्ण 2 ग्राम, मुलेठी चूर्ण 2 ग्राम और हरिद्रा चूर्ण 500 मि.ग्रा. को दूध के साथ सेवन करना चाहिये। इससे

37. शोथ—शूल का शमन होता है और घाव भी शीघ्र भरने लगता है। साथ में कोई जीवाणु नाशक बाह्य प्रयोग को भी उपयोग में लाना चाहिए।

38. उदररोग—उदररोगों से पीड़ित रोगियों का अन्न बंद कर उन्हें गोमूत्र एवं गोदुग्ध पर ही रखना ठीक है। त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) चूर्ण को गोमूत्र या गोदुग्ध के साथ सेवन कराना चाहिए।

39. पाण्डु—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला का चूर्ण 3-4 ग्राम, आर्द्रक स्वरस और मधु के साथ या गोमूत्र के साथ सेवन करने से कफजन्य पाण्डु का शमन होता है। इसमें सोंठ का निषेध नहीं है। नवायस चूर्ण, मण्डूर वटक, ताप्यादियोग, योगराज आदि में सोंठ है, ये पाण्डु की श्रेष्ठ औषधियाँ हैं।

40. शोथ—(क) सोंठ 2 ग्राम, मुलेठी 3 ग्राम को मधु से चाटकर दूध पीवें। इससे शोथ के अतिरिक्त गुल्म, अर्श, प्रमेह, प्रतिश्याय, कास आदि रोग भी नष्ट होते हैं।

(ख) सोंठ, पुनर्नवा, एरण्ड मूल की छाल, बेल की जड़, अरलू की जड़, खम्भारी की जड़ और अरणी समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। इस क्वाथ के सेवन कराने से वातजनित शोथ दूर होता है।

(ग) सोंठ, पुनर्नवा और देवदारू के क्वाथ में गुग्गुलु मिलाकर (500 मि.ग्रा.) सेवन से शोथ दूर होता है।

(घ) सोंठ, पीपल और पुराना गुड़ तीनों को सेवन करने से सूजन, आमाजीर्ण और शूल का शमन तथा बस्ति का शोधन होता है।

(ङ) सोंठ और चिरायता की चटनी चाटकर ऊपर से पुनर्नवा का क्वाथ पीने से भी सारे शरीर की सूजन मिटती है।

(च) सोंठ, पुनर्नवा, देवदारू और गूगल का गोमूत्र के साथ सेवन करने से भी अच्छा लाभ होता है।

विशेष प्रयोग—

आर्द्रक के कल्प—

आर्द्रक कल्क (चटनी)—

1. अदरख को छिलकर छोटे-छोटे टुकड़े 200 ग्राम, छुहारे के टुकड़े 100 ग्राम और किशमिश 100 ग्राम को उबलते हुये पानी में डालकर निकाल लें। फिर इसमें इलायची सैंधानमक और नींबू का रस डालकर अच्छी तरह मिला लें। यह भोजन के पूर्व खाने से भोजन के प्रति रूचि बढ़ाती है तथा भोजन के साथ या बाद में खाने से अजीर्ण, अग्निमांद्य सम्बन्धी रोगों को दूर करती है।

कई मनुष्य इसमें राई, लाल मिर्च, हींग आदि

डालकर इसका अचार बनाते हैं जो अत्यन्त स्वादिष्ट होता हैं। कई सिरके में अदरख को डालकर अचार तैयार करते हैं। यह अचार यद्यपि स्वादिष्ट होता है किन्तु यह दाहकारक अचार पित्त को बढ़ाता है।

2. बारीक कटा अदरख 10 ग्राम, सेब फल (एप्पल) 2, किशमिश 20 ग्राम, शक्कर 40 ग्राम, नींबू का रस 2 चम्मच, सोंठ चूर्ण एक चम्मच, कटा प्याज 10 ग्राम, कटी हरी मिर्च 10 ग्राम, लोंग चूर्ण आधाचम्मच नमक हल्का सा (आवश्यकतानुसार) लें।

एक कढ़ाई को आंच पर रखकर थोड़ी गर्म करें फिर उसमें बारीक कटे हुये सेबफल (जिनके छिलके हटा लिये गये हों) बारीक कटा अदरख, किशमिश, शक्कर, नींबू का रस, सोंठ चूर्ण, कटा हुआ प्याज, कटी हरी मिर्च, लोंग चूर्ण व नमक डालकर पकावें। जब यह मिश्रण पानी छोड़ दें तब आंच कम कर दो घन्टे तक पकावें। बस अदरख-सेबफल की चटनी तैयार हो जायेगी। यह चटनी स्वादिष्ट, रूचिवर्धक और पाचक है।

आर्द्रक अवलेह—

अदरख का रस 500 मि.लि. तथा 250 ग्राम पुराना गुड़ मिलाकर पतली चाशनी तैयार कर लें। फिर इसमें तज, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची, लोंग, सोंठ, कालीमिर्च एवं छोटी पिपल, इन आठों वस्तुओं को 12-12 ग्राम की मात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण करें और उपर्युक्त चाशनी में आग से नीचे उतार कर मिला लें। भली-भांति सभी वस्तुएं मिल जाने पर किसी स्टील के बर्तन में या कांच के पात्र में सुरक्षित रखकर उपयोग में लावें। इसे 5-10 ग्राम की मात्रा में सेवन करें। इसके सेवन से सर्दि-जुकाम, कास-श्वास, कण्ठ के रोग, मन्दज्वर, अग्निमांद्य, अरूचि और कब्ज आदि दूर होते हैं।

आर्द्रक घृत—250 ग्राम अदरख को पीसर इसकी चटनी बना लें फिर इसे एक लिटर ताजा घृत और चार लिटर अदरख का रस लेकर मंद आंच पर पकावें। घृतमात्र शेष रह जाने पर भली-भाँति घृत सिद्ध हो जाने पर इसे उतार छान कर रख लें। यह घृत 5-10 ग्राम की मात्रा में सेवन करने से शोथोदर, मन्दाग्नि, एवं अन्य उदररोगों का शमन होता है।

आर्द्रक पानक (शर्बत)—अदरख का स्वरस 250 मि.लि. और मिश्री 250 ग्राम लेकर प्रथम मिश्री को पीसकर समभाग जल में मिलाकर चाशनी बना लें फिर उसमें अदरख का रस डालकर पकावें। एक तार की चाशनी हो जाने पर इसमें दो ग्राम केशर पीसकर मिला दें और उतार लें। मात्रा 5 मि. लि. से 20 मि.लि. तक। यह पाचक, रोचक और क्षुधावर्धक है। सर्दी के विकार खांसी आदि में यह उत्तम है। यह शर्बत बालकों के कफ, खांसी, अजीर्ण, मुख से दूध डालना आदि रोगों में बड़ा लाभकारी है। बच्चों को इसकी मात्रा आयु के अनुसार देनी चाहिये।

आर्द्रक पाक—

1. अदरख 320 ग्राम लेकर खूब महीन पीसकर 250 ग्राम गोघृत और चार लिटर गोदुग्ध में एकत्र मिलाकर औटावें। जब मावा सा हो जाए तब उसमें कालीमिर्च, पीपली, दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची प्रत्येक का महीनचूर्ण 40-40 ग्राम मिलाकर रखें पश्चात् 2 किलो 500 ग्राम चीनी की पक्की चाशनी में मिलाकर पाक जमा देवें। यह 20-25 ग्राम खाकर ऊपर से औटाया हुआ गाय का दूध एक गिलास पीने से शीघ्र ही कटिशूल, गृध्रसी, उदरशूल आदि रोग दूर होकर शक्ति की वृद्धि होती है। यह वर्षा ऋतु में विशेष सेवनीय है।

2. अदरख एक किलोग्राम लेकर छीलकर पिट्ठी बनावें। फिर उसे दो लिटर दूध में पकाकर और आधा लिटर घी में डालकर भून लें। फिर दो किलो चीनी की चाशनी कर नीचे उतार उसमें खोवा और पीपल, पीपलामूल, मिर्च, चित्रक, मोथा, नागकेशर, दालचीनी,

तेजपात प्रत्येक का चूर्ण 10-10 ग्राम मिलाकर पाक जमा दें। नित्य 30-40 ग्राम सेवन करने समस्त वातरोग, पाचन विकार दूर होते हैं। इससे शरीरिक क्षीणता मिटती है।

आर्द्रक राग खाण्डव (मुरब्बा)—अदरख को छीलकर छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें जल में वफा लें। जव यह आधी वफ जाय तव उसमें तीन गुना शक्कर की चाशनी बनाकर उसमें उक्त अदरख को डाल दें। दस ग्राम मुरब्बा सेवन करने से मन्दाग्नि, अरूचि दूर होती है। यह हृदय के लिए बहुत लाभकारी है।

विविध कल्प (शुण्ठी के विशेष प्रयोग)—

क्वाथ—

1. सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक, चव्य, हरड़, शरफोका, करंज और बेल इन्हें समान मात्रा में लेकर जौकुट कर लें फिर इनका यथाविधि क्वाथ तैयार कर सेवन करें। यह क्वाथ (व्योषादिक्वाथ्) अग्निमांद्य, उदरशूल, गुल्म, कृमिरोग, श्वास आदि कोष्ठाग्नि सम्बन्धी विकारों को नष्ट करता है। **—क्वा. म. मा.**

2. सोंठ, एरण्डमूल की छाल और मिलित दशमूल के द्रव्य 12 ग्राम (तीनों 4-4 ग्राम), जौ 12 ग्राम को 500 मि.लि. पानी में पकावें। जब चौथाई पानी रह जाय तो उसे उतार कर छान कर इसमें सज्जीक्षार, यवक्षार, हींग, सेंधानमक, विडनमक, कालानमक और पुष्करमूल का सम्मिलित चूर्ण एक ग्राम डालकर पीने से हृदयशूल या पार्श्वशूल, कटिशूल, आमाशयशूल, पक्वाशयशूल, अंसशूल, ज्वर, गुल्म आदि रोग दूर होते हैं। **—च.द.**

चूर्ण—

1. सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धाय, रसौंत, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाठा, कुटकी सभी द्रव्य समान मात्रा में लेकर इसका कपड़छन चूर्ण तैयार कर लें। यह चूर्ण 3-3 ग्राम दिन में दो-तीन बार मधु में मिलाकर चाटें तथा ऊपर चावलों का पानी पीवें। इसके सेवन से पैत्तिक ग्रहणी (जिसमें खून भी आता हो), अर्श, गुदशूल तथा प्रवाहिका रोग मिटते हैं। यह कृष्णात्रेय द्वारा पूजित नागराद्य चूर्ण हैं। **—च. सं. चि.**

2. सोंठ, हरड़, पिप्पली, निशोथ और काला[...] की सममात्रा से बनाया गया चूर्ण पंचसम चूर्ण कह[...] है। यह उदरशूल को दूर करने में श्रेष्ठ चूर्ण है। [...] तीन ग्राम, अनुपान-जल। इसके सेवन से आ[...] उदररोग, अर्श और आमवात का भी निवारण होता [...] **—यो[...]**

3. सोंठ, मिर्च, पीपर, इन्द्रयव, नीम की [...] चिरायता, भांगरा, चित्रक, कुटकी, पाढ़, दारू[...] अतीस इन सबकों समभाग लेकर महीन कूटकर [...] कर समभाग कुड़े के छाल का चूर्ण भी मिलाना चा[...] इसे चावल के धोवन के साथ पिलावें या मधु के [...] चटाने से आम का पाचन तथा दस्त बन्द होते हैं। [...] अरूचि, ज्वरातिसार, कामला, ग्रहणी, गुल्म, प्लीह[...] प्रमेह, पाण्डु तथा शोथ ये सब नष्ट होते हैं। [...] व्योषादिचूर्ण है। **—च[...]**

4. सोंठ 7 भाग, पीपर 6 भाग, कालीमिर्च 5 [...] नागकेशर 4 भाग, तेजपात 3 भाग, दालचीनी 2 [...] छोटी इलायची एक भाग इन सबको उक्त परिमा[...] लेकर चूर्ण कर बराबर चीनी मिलाकर 2-3 ग्राम [...] में सेवन करने से अर्श, अग्निमांद्य, कास, अरूचि, [...] कुष्ठरोग और हृदय के रोग शान्त होते हैं। यह सम[...] के नाम से चूर्ण जाना जाता है। **—च[...]**

5. सोंठ, आम की गुठली की अन्तर्मज्जा, सौंफ [...] पोस्त के छौंतरे इन सबको समान मात्रा में लेकर [...] धीरे-धीरे आंच पर भून लें। फिर इसमें एक भाग [...] हुआ जीरा तथा इन सभी द्रव्यों से दुगनी मिश्री मिला[...] इससे आमातिसार निःसन्देह दूर होता है। मात्रा 2[...] ग्राम। ***—सि. भै. म.***

6. सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, आम की गुठली [...] गिरी, जामुन की गुठली की गिरी, सौंफ, जीरा और [...] के छौंतरे सबको आंच पर भून कर इन सबके बरा[...] देशी शक्कर मिला कर रख लें। यह चूर्ण भी यह [...] भी अतिसार में बहुत उपयोगी है। मात्रा-पूर्वोक्त। ***—सि. भै.***

वटी—मोटी सोंठ दिल्ली की सोंठ के नाम से जानी जाती है। दूसरी सोंठ जो इतनी पुष्ट नहीं होती, पिचकी हुई सी होती है बम्बई की सोंठ कहलाती है। बम्बई की सोंठ (लघुशुण्ठी) 250 ग्राम लेकर इसका चूर्ण तैयार कर इसे 125 ग्राम गाय के घी में भून लें। फिर इसमें लहसुन की कलियों का 250 ग्राम कल्क इसमें मिला कर छोटे बेर जैसी गोलियां बना लें। तीन-चार गोली गुनगुने जल से दिन में 2-3 बार देवें। कटिशूल, बाहुशूल, जानुशूल (घुटनों का दर्द) और पिडंलियों में होने वाला दर्द इसके सेवन से मिट जाता है। —*वृ. नि. र.*

फाण्ट—सोंठ, चव्य, चित्रक, पिप्पली और पिप्पली मूल को समान मात्रा में लेकर इनका चूर्ण तैयार कर फिर इसे 10 ग्राम की मात्रा में लेकर उबलते हुये गरम पानी में थोड़ी देर रखकर ढक दें। बाद में इसे मसल कर छान कर पीवें। यह वातकफघ्न फाण्ट प्रतिश्याय में उपयोगी है। —*यो.हृ.*

अवलेह—नींबू के रस को पीकर फूली हुई सोंठ के कल्क को उससे चार गुना शक्कर की चासनी में अच्छी तरह हिलाकर मिला दें फिर इसमें यथावश्यक त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) चूर्ण मिलाकर रख दें। चार-पाँच ग्राम की मात्रा में इसका सेवन करने से भूख अच्छी लगती है तथा अरूचि दूर होती है। यह अवलेह हृदय के लिए हितकारी है। —*सि. भे. म. मा.*

पाक—

1. सोंठ का महीन कपड़छन चूर्ण 325 ग्राम लेकर उसे 3 लिटर 250 मि.लि. दूध में डालकर पकावें। खोवा हो जाने पर उसे 200 ग्राम घी में भून लें और उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात और इलायची का चूर्ण 40-40 ग्राम मिला कर 2 किलो 500 ग्राम खांड की चाशनी में पाक जमा दें। अग्निबलानुसार 10 ग्राम से 20 ग्राम तक सेवन करने से आमवात में लाभ होता है, धातु पुष्ट होती है। —*वृ. पा. सं.*

2. सोंठ को थोड़ा सा घी लगाकर पानी में भीगे हुये गेंहूँ के आटे में लपेटकर गोला बनावें और उसके ऊपर गाय के ताजा गोबर का एक अंगुल मोटा लेप कर दें या एरण्ड के पत्तों में लपेटकर मन्दाग्नि में पकावें। अच्छी तरह पक जाने पर इसे निकाल सोंठ को पीस लें। फिर इसे सोंठ के बराबर की मात्रा में मिश्री लेकर उसकी चासनी बनाकर जमा दें। इसके सेवन से अग्निदीप्त होती है और आमातिसार नष्ट होता है। मात्रा—3 से 6 ग्राम तक, दिन में 2-3 बार। —*वृ. पा. सं.*

3. सोंठ का चूर्ण 500 ग्राम को समभाग घृत के साथ भून कर उसमें चार लिटर दूध तथा एक किलो 500 ग्राम खांड मिलाकर पकावें। जब चाशनी तैयार हो जावे तब उसमें कसेरू, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, नागरमोथा, दोनों जीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, छैलछरीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, कचूर, धाय के फूल, इलायची, सोया, धनिया, गजपीपल, पीपल, कालीमिर्च और शतावर प्रत्येक का चूर्ण 20-20 ग्राम मिलाकर पाक जमा दें। इसमें 20-20 ग्राम अभ्रक भस्म और लौह भस्म भी मिला सकते हैं। इसे 5-10 ग्राम की मात्रा में देवें उष्णगोदुग्ध से। इसे सौभाग्य शुण्ठी पाक कहते हैं, सूतिका रोगों के लिए श्रेष्ठ पाक है। इससे अतिसार, ग्रहणी आदि नष्ट होकर अग्नि दीप्त होती है। —*वृ. पा. सं.*

अन्य भी सौभाग्य शुण्ठी पाक के प्रयोग योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली आदि में लिखे हुये हैं उन्हें भी बनाकर उपयोग में लाया जा सकता है।

घृत—

1. सोंठ 250 ग्राम, घी एक लिटर और जल चार लिटर लेकर यथाविधि घृतपाक करें। यह घृत गहणी, पाण्डु, प्लीहा, कास तथा ज्वर को शान्त करता है। —*च.द.*

2. सोंठ 250 ग्राम का कल्क बना लें। दशमूल क्वाथ 2 किलो लेकर उसे 16 लिटर जल में क्वाथ करें

जब 4 लिटर जल रह जाय तब उसमें एक किलो ग्राम घी डालकर घृत पाक करें। घृतपाक मंद अग्नि पर करें। घृत मात्र रह जाने पर छान कर रखें। यह घृत आमयुक्त ग्रहणी को नष्ट करने में श्रेष्ठ कहा गया है। **—च. द.**

तैल—

1. सोंठ, कूठ, पीपल, बेल की छाल और मुनक्का प्रत्येक 20-20 ग्राम लेकर कल्क तैयार कर लें। क्वाथ हेतु उक्त प्रत्येक औषधि 320 ग्राम लेकर 16 लिटर पानी में क्वाथ बनावें, चार लिटर शेष रह जाने पर इसमें कल्क और एक लिटर तैल मिलाकर मंद अग्नि पर पाक करें। तैल सिद्ध हो जाने पर (तैल मात्र रह जाने पर) छान कर रख लें। इस तैल का नस्य लेने से क्षवथुरोग (अधिक छीकें आना) दूर होता हैं।

2. सोंठ, सेंधानमक, पीपल, नागरमोथा, हींग, घोड़बच और लहसुन, प्रत्येक 12-12 ग्राम, मदार के पके पत्तों का रस डेढ लिटर, पलाश पत्र का स्वरस डेढ लिटर और तैल 375 मि.लि. लेकर विधिवत् तैल सिद्ध करें। इस तैल के कर्णपूरण से कर्णनाद एवं कर्णबाधिर्य नामक कर्णरोगों में लाभ होता है। ***—शालाक्यतंत्र***

यूनानी योग—सोंठ, मरिच, पिप्पली, नींबू सत्व 50-50 ग्राम सैन्धवलवण 200 ग्राम बारीक पीस छानकर इसमें पोदीना सत्व 10 ग्राम मिलाकर खरल करें और शीशी में रख लें। एक-दो ग्राम भोजन के बाद सेवन करें। यह हाजमा के लिए उत्तम चूर्ण है। इसे 'सफूफ अक्सीरे हजम' कहते हैं। **—यू.चि.सा.**

इनके अतिरिक्त भी बहुत से योग शास्त्रों में वर्णित हैं। विस्तारभय से यहाँ अधिक नहीं लिखे जा रहे हैं।

पेटेन्ट प्रयोगों में शुण्ठी—एनटरोडरीन टिकिया (अतिसार, रक्तातिसार में लाभदायक) और गेस्ट्रेक्स टिकिया (पेट सम्बन्धी उदरशूल, आधमान आदि रोगों में उपयोगी) का निर्माण भारतीय औषधि निर्माणशाला द्वारा किया जाता है। दोनों योग में सोंठ है। रूमारन सीरप (कौशिक आयु. भवन) जो समस्त वातरोगों की श्रे[ष्ठ] औषधि है, इसमें सोंठ का मिश्रण किया जाता है। गैसहरवटी (देशरक्षक) में भी सोंठ है। हमदर्द मा[ल] सुहाग सोंठ (सौभाग्य शुंठी पाक) बनाता है। यह स्त्रि[यों] के अधिकतर रोगों में उपयोगी है, गर्भाशय में शक्ति दे[ती] है और उसके अनेक विकारों को ठीक करती है। [व] बालक के जन्म के पश्चात् की कमजोरी दूर करती है औ[र] कमर के दर्द को शान्त करती है। यह माजून प्रातः [...] ग्राम सेवन करें ऊपर 250 मि.लि. दूध पीवें। गैसने[क्स] सीरप (गर्ग वनौषधि भंडार) में सोंठ है जो अपने [...] के अनुसार गैस को दूर करने वाली औषधि है। इ[सी] प्रकार गैस ट्रबल, एसिडिटी को दूर करने वाल[ी] औषधि है-कोअप सीरप (हर्ब इण्डिया) है जो सोंठयु[क्त] है। एन्टेरोसिन कैपसूल एवं पेडिएट्रिन सस्पेन्[शन] (आयुरलब) में सोंठ है। ये गैस, पेचिश आदि को मि[टाते] हैं। आयुरलब के ही व्हिगोरीन फोर्ट में मकरध्वज, [...] अभ्रक आदि के साथ सोंठ है, ये कैपसूल बाजीकरण हे[तु] निर्मित हैं। फिवरलैक्स सीरप, रूमाटोन कैपसूल व आ[यल] में भी सोंठ हैं ये धर्मानीड्रग्स द्वारा बनाये गये योग हैं। फिबरलैक्स बुखार के लिए है तो रूमाटोन बातरोगों [...] लाभप्रद है। रूमाटोन कैपसूल खाये जाते हैं और रूमाटो[न] आयल मालिश के लिए है। भारतीय महौषधि संस्था[न] द्वारा बनाये गये बाइलेरिन सीरप (यकृत प्लीहा रोगों [में] उपयोगी पेय), डायडिस टेबलेट (अतिसार, प्रवाहिका) [...] गुलमैक्स टेबलेट (रोचक, पाचक अग्निवर्धक) आ[दि] योगों में सोंठ है। ये कैपसूल पेट में संग्रहीत वायु [को] निकालने में श्रेष्ठ है। यूनेक्सोजीम टेबले[ट] (निर्माता-यूनेक्सो) भी सोंठयुक्त योग है। यह उदरविका[र] से होने वाले पेट के दर्द, अम्लपित्त आदि में लाभप्रद है। इसी प्रकार यकृत की हर विकृति को दूर करने वाल[ा] योग हेप्टोलिव सीरप व कैपसूल हैं। इसमें सोंठ है। इसके अतिरिक्त श्री रूद्रदेव आयुर्वेद भवन के ये [...] सोंठ युक्त योग हैं-कुर्चीनम सीरप (प्रवाहिका, अतिसा[र] में), डायोडिन कैपसूल (अतिसार प्रवाहिका में) औ[र]

वातगजान्कुश कैपसूल (सभी प्रकार के वातरोगों की औषधि) है। महर्षि के अम्लान्त टेब. (अम्लपित्त में) डाइजोमैप (पाचन विकृति में) टेब., लिवोमैप टेब. (यकृत के रोगों में) और कण्ठसुधा पिल्स (गले के रोगों में) आदि में भी सोंठ का समिश्रण किया जाता है। शिल्पा केम के गैसहर टेब. (गैस व पाचन के लिए) और जिंजर प्लस कैपसूल (पाचक, वायुनाशक योग) में भी सोंठ है। गोस्वामी ड्रग्स द्वारा बनाये गये लेग्जोन टेब. (कब्जहर) और रूमाटिल सीरप एवं टेबलेट (सन्धिगत वात व पीड़ा के लिए) आदि में भी सोंठ डाली जाती है।

अनुभूत प्रयोग—

1. बधिरताहर कर्णरोगारि तैल प्रयोग—अदरख का रस 40 मि.लि., सेंधानमक 4 ग्राम, तिल के फूल 20 ग्राम, आक के पीले पत्ते 40 ग्राम, नीम का तैल 60 मि. लि. मिलाकर अग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रह जाने पर उतारकर छाल लें। इस तैल की दो-तीन बूंद प्रातः सायं कान में डालें। इससे कम सुनना दूर होता है।

—डा. श्री राजेन्द्र साहू (अन्व. जराव्याधि चि.)

2. उदरशूलहर प्रयोग—सोंठ 20 ग्राम, कालानमक 5 ग्राम, पोहकर मूल 10 ग्राम और हींग एक ग्राम लेकर चूर्ण बना लें। एक-एक ग्राम चूर्ण गर्म जल से दें। इसके सेवन से उदरशूल, हृदयशूल एवं अन्य वायुजनित शूल शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

—वै. श्री चन्द्रभूषण पाण्डेय

(सुधा. अप्रेल 1980)

3. पायरियाहर प्रयोग—सोंठ 10 ग्राम, नोसादर 10 ग्राम दोनों को बारीक पीसकर रख लें। इसे प्रातः मंजन की तरह लगावें। इससे पायरिया में अच्छा लाभ होता है। रात को मंजन लगाकर सोवें और कुल्ला न करें प्रातः काल कुल्ला करें फिर मंजन लगाकर मुंह धोवें। ऐसा करने से पायरिया न रहेगा।

—श्री राजेन्द्र कुमार सिंह

(अनु. यो. माला जन. 74)

4. सन्धिशूल में शुण्ठी प्रयोग का अनुभव— संधिशूल एवं सन्धिशोथ के लक्षणों से युक्त 20 रोगियों का चयन कर उन सभी रोगियों पर शुण्ठी चूर्ण का अध्ययन व निरीक्षण किया गया। बीस रोगियों में आमवात के 5, संधिगतवात के ग्यारह और वातरक्त के चार रोगी थे इनमें 15 से 60 वर्ष के रोगी थे। इन रोगियों की औसत आयु 32 वर्ष थी रोगियों की प्रकृति परीक्षा भी की गयी। सभी की प्रकृति भिन्न-भिन्न थी। सभी रूग्णों की प्रमुख वेदना लक्षण आदि का निरीक्षण स्वतन्त्र रूप से रूग्ण परीक्षण पत्र में लिखा गया था। रोगियों की प्रकृतिऔर वय आदि का विचार न करके संधिशूल व उसकी अवस्था विशेष ध्यान देकर एक ग्राम शुण्ठी चूर्ण कोष्ण जल से चार-छः सप्ताह तक रोगियों को दी गयी। प्राथमिक निरीक्षण से यह प्रतीत हुआ कि सभी प्रकार के संधिशूल व शोथ में यह औषधि लाभप्रद सिद्ध हुई है। इससे जितना लाभ हुआ उससे अधिक नजर नहीं आया। इस निरीक्षण से यह संकेत मिलता है कि किसी अवस्था विशेष तक यह शुण्ठी कार्य कर सकती है। इसके पश्चात् अवस्था विशेष देखकर औषधि योजना बदलनी चाहिए।

—वैद्य पी. सी. जामखेड़कर

(स्वास्थ्य जून 1994)

5. अजीर्ण हर प्रयोग—सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपर, सफेद जीरा भुना हुआ, अजवायन, जीरा स्याह, आंवलासार गन्धक (शुद्ध), टाटरी, नौसादर हांड़ीवाला, कालानमक 100-100 ग्राम। हींगतालाबी घी में भुनी हुई 50 ग्राम, लहसुन छिला हुआ 200 ग्राम। लहसुन को सिलपर पीसें और शेष औषधियों को कूट-छानकर लहसुन में मिलाकर शीशी में भरकर रख लें। सुबह-शाम 6 ग्राम चूर्ण गुनगुने पानी के साथ लें। यह चूर्ण अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरूचि को दूर करता है। यह पाचन शक्ति को बढ़ाता है यदि भोजन के बाद पेट फूल जाता हो या पेट में दर्द होने लगता हो तो इसमें 500 मि.ग्रा. शंखभस्म मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय देना चाहिये।

—वैद्य श्री नगेन्द्रनाथ दीक्षित

(धन्वन्तरि अक्टू. 2003)

6. आयुर्वेदिक चाय—सोंठ 50 ग्राम, हल्दी 50 ग्राम, धनिया 100 ग्राम, हरे रंग की इलायची 50 ग्राम। सबको एक साथ कूटकर जौकुट कर लें। आधा कप पानी में एक चम्मच यह चूर्ण, दो चम्मच शक्कर और एक कप दूध मिला कर उबालें। एक कप रहने पर छानकर पीवें। यह हृदयरोग को नियन्त्रित करती है।

—वैद्य श्री उदयसिंह (स. आयुर्वेद मार्च 95)

7. यकृत प्लीहा हर प्रयोग—सोंठ 20 ग्राम, यवक्षार 10 ग्राम, सज्जीक्षार 10 ग्राम, कलमीशोरा 10 ग्राम, नौसादर उडा हुआ 10 ग्राम, गिलोय सत्व 10 ग्राम और सुहागा भुना हुआ 10 ग्राम सबको कूटछानकर रख लें। भोजन के आधा घन्टे बाद 1½-2 ग्राम चूर्ण गरम पानी से दोनों समय दें। यह यकृत प्लीहा वृद्धिहर उत्तम चूर्ण है। इससे उदरशूल का भी शमन होता है।

—वैद्य श्री आत्माराम श्रीवास्तव
प्राणाचार्य प्रयोग मणिमाला

8. आमनाशक उत्तम योग—सोंठ, सौंफ और घी में सिकी हुई छोटी हरड़ तीनों 100-100 ग्राम और मिश्री 300 ग्राम। इन सबका बारीक चूर्ण कर शीशी में भर लें। मात्रा-3 से 6 ग्राम तक दिन में 3-4 बार जल के साथ दें। यह प्रयोग सोप्रद प्रवाहिका को शान्त कर देता हैं यह योग बहुसंख्यात्मक रोगियों पर प्रयोग किया जा चुका है। यह ग्राही, आग्निदीपक, आमपाचक होने से प्रवाहिका नाशक अति सफल चूर्ण है।

—डा. श्री अमरनाथ शास्त्री
(धन्व. गु. सि. प्र. भाग 4)

9. दीपन पाचन योग—सोंठ, कालीमिर्च, भुना हुआ जीरा, चित्रक और सेंधानमक ये प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रखें। मात्रा-3 ग्राम। अनुपान-तक्र। यह योग साधारणतया दीपन-पाचन है। यथावश्यक दिन में दो-तीन बार दें। ***—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्ता***
(सुधा. जटिलरोग चिकित्सा)

10. निमोनिया नाशक योग—सोंठ, कलीमिरच, पीपल, सुहागा, नवसादर और सोंचर नमक। सबको बारीक पीसकर खरल में डालकर ग्वारपाठे के रस में सात दिन घुटाई करें और 250 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। एक-एक घन्टे के अन्तर से केवल प्रातः एक-एक गोली (कुल 3 वटी) सौंफ के क्वाथ या सौंफ के अर्क के साथ दें। फिर दिन भर देने की आवश्यकता नहीं। दूसरे दिन इसी प्रकार फिर दें। पीने को गरम जल दें।

—स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज (गु. सि...)

11. कासरोहन योग—सोंठ 25 ग्राम, कालीमिर्च 25 ग्राम, बड़ी पीपर 25 ग्राम, यवक्षार 5 ग्राम, भुनी हल्दी 20 ग्राम सभी कुल 100 ग्राम। सबको मिलाकर चूर्ण बनावें। यह चूर्ण 5 ग्राम लेकर ... मिलाकर चाटें। ऐसा दिन में 3-4 बार करें। यह ... नाशक अद्भुत योग है। अनेक बार इसकी परीक्षा की जा चुकी है।

—आयु. वृह. श्री मदनमोहन भ...
(सुधा. अनु. प्र. ...)

12. अजीर्णहर स्वादिष्ट चटनी—सोंठ, ... कचरी, अमचूर, सैंधानमक 100-100 ग्राम। भुना जीरा, लाल मिर्च, कालानमक 50-50 ग्राम। घी में ... हींग, इलायची दाने दोनों 10-10 ग्राम। सबको कूट ... बारीक चूर्ण बना लें। इसे मंद आंच पर घी के ... अकोर लें। गरमजल से 5-6 ग्राम सेवन से अजीर्ण ... उदरशूल आदि में सत्वर लाभ होता है। इस चूर्ण ... दाल-शाक में भी डालकर स्वादिष्ट बनाया जा ... है।

—का...

13. पक्षाघात नाशक योग—वेतवा सोंठ (... रेशे वाली) 360 ग्राम लेकर उसे बारीक कूट कप... कर लें। फिर इसे 100 मि.लि. एरण्ड तैल में ... मांड लें। अब मैंदे के आटे की मोटी-मोटी रोटियां ... इन प्रत्येक रोटियों में 20-20 ग्राम उक्त मिश्रण र... बाटी की तरह बन्द कर दें फिर कण्डों की भट्टी ल... उसमें इन वाटियों को रखकर पुटपाक विधि से ... तरह पकावें। पक जाने पर ऊपर से मैदा अल...

भीतर से सोंठ निकाल लें। और उसमें छोटी पीपल, काली मिर्च 30-30 ग्राम, नागौरी असगन्ध 40 ग्राम, कपड़छन चूर्ण मिलाकर कूट लें। मात्रा-10-10 ग्राम प्रातः सायं गरम दूध के साथ सेवन करावें। पक्षाघात में बहुत उपयोगी योग हैं। *—वैद्य श्री चन्द्रशेखर जैन*

(धन्व.पक्षा.रोगांक)

14. उदररोगोपयोगी प्रयोग—सोंठ, कालानमक और करंजबीज की मज्जा (सागर गोटी बीज) सब समान भाग लेकर वस्त्र पूत चूर्ण बनालें। मात्रा-3 ग्राम से 5 ग्राम तक अथवा रोगी की अवस्था के अनुसार इसे गर्म जल से दिन में तीन-चार बार सेवन करावें। यह हर प्रकार के उदरशूलों पर अत्युपयोगी है। इसके अलावा उदरकृमियों पर भी इसका आशातीत गुण देखने में आया है। *—वैद्याचार्य श्री मक्खनलाल दीक्षित*

(धन्व. स. सि. प्रयो.)

15. प्रसूता पुष्टि अवलेह—सोंठ 100 ग्राम, अजवायन 200 ग्राम, पीपलामूल 10 ग्राम, पीपल 10 ग्राम, छुहारे 200 ग्राम, बादाम मिंगी 100 ग्राम, बबूल गोंद 200 ग्राम, गुड़ एवं शुद्ध देशी घृत यथावश्यक। सर्वप्रथम चारों वनौषधि द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण कर लें। मेवा द्रव्य बादाम व छुहारों को बारीक काटकर पृथक् रख लें। उक्त चूर्णित द्रव्यों की दस पृथक्-पृथक् मात्रा बना कर रखें। प्रति दिन एक-एक खुराक उपयोग में लेनी है।

सबसे पहले एक कढ़ाई में आवश्यक मात्रा में शुद्ध घी डाल गर्म कर उसमें 20 ग्राम गोंद को तलकर फूला बना लें। शेष रहे गर्म घृत में औषधियों के चूर्ण को डालकर हल्का भून लें। अब इसी भर्जित चूर्ण में उचित मात्रानुसार गुड़ डालकर चलावें तथा एक-दो कप पानी डालकर इतना पकावें अल्प द्रव्य मिश्रण तैयार हो जावे। अब इसमें पिसा गोंद फूला व कटे मेवा द्रव्यों को डालकर भली प्रकार मिला दें। चाटने योग्य अवलेह तैयार है। इसी प्रकार निरन्तर 10 दिनों तक करें। उक्त अवलेह को खाने के पूर्व प्रसूता एक गिलास दूध के साथ 3-4 ग्राम हल्दी का चूर्ण सेवन करें। इसके बाद इस अवलेह को धीरे-धीरे चाटें तथा ऊपर से 250-500 मि.ली. दूध अवश्य पीवें। अन्यथा किसी किसी महिला को मुँह में छाले हो सकते हैं। इसी प्रकार 10 दिनों तक निरन्तर सेवन करना है। इस अवलेह का सेवन करने से प्रसूता के स्वास्थ्य व सौन्दर्य में वृद्धि होती है। पर्याप्त दूध उत्पन्न होता है, उदर का ढीलापन मिटता है और अच्छी भूख लगती है। सार्वदैहिक वातजशूलों व स्नायुदौर्बल्य में लाभ होता है। यह एक उत्तम प्रसूता-पौष्टिक चाटण-विशेष है। यह अनेकशः सफल अनुभूत योग है। यह एक उत्तम औषधि होने के साथ ही सर्व सामान्य उपयोग हेतु महिलाओं के लिए उत्तम आहार भी है।

—आयु. चक्रवर्ती वै. श्री हरीशंकर शांडिल्य

(वनौ. रत्ना. हेतु प्रेषित प्रयोग)

16. प्रमेहहर प्रयोग—सोंठ, मुलेठी, गोखरू, हरिद्रा और विडंग को समान मात्रा में लेकर जौकुट कर रखें। इनमें से 15 ग्राम द्रव्य लेकर क्वाथ बनाकर छानने के बाद ठण्डा हो जाने पर उसमें शहद मिला कर पीने से सभी प्रकार के प्रमेहों में लाभ होता है। सामान्य सा प्रयोग होते हुये भी बहुत अच्छा लाभ करता है। अनेक बार परीक्षित किया है। *—वैद्य श्री सीताराम शर्मा*

(वनौ. रत्ना. हेतु प्रे. प्र.)

17. आमवातहर प्रयोग—सोंठ, मेथीदाना, अजवायन, कालाजीरी और कालानमक सभी द्रव्य समान मात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण तैयार कर लें। तीन-तीन ग्राम चूर्ण लाभ करता है। बहुत से रोगियों को इसके प्रयोग से उत्तम लाभ हुआ है।

—वैद्य श्री जगदीश प्रसाद शर्मा

(वनौ. रत्ना. हेतु प्रषित प्रयोग)



शोभाञ्जन

(Moringa Concanesis)

गरूड़पुराण का एक सूक्ति-श्लोक है—

सा श्रीर्या न मदं कुर्यात् स सुखी तृष्णयोज्झितः।

तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरूषः स जितेन्द्रियः।।

अर्थात् वही शोभा स्थायी होती है जो मद (घमण्ड) की शिकार न हो, वही सुखी हो सकता है जो तृष्णा से मुक्त रहे, सच्चा मित्र वही है जिस पर विश्वास किया जा सके और वही पुरूष जीवन में सफल हो सकता है जो जितेन्द्रिय हो। शोभा युक्त होने से ही जिस वृक्ष को शोभाञ्जन नाम दिया गया वही जब अपनी बहुत फलियों से लद जाता है तो फूल कर कुप्पा हो जाता है और फिर इसका परिणाम यह होता है कि उसकी शाखायें टूट कर गिरने लगती हैं। शोभाञ्जन की ऐसी स्थिति को देखकर हमारे नीतिज्ञ कवि-विचारक कहते हैं—

रहिमन अति न कीजिए गहि रहिये निज कानि।

सहिजन अति फूले तई डार-पात की हानि।।

वृन्दकवि तो कहते हैं कि इसका यह गुमान उसके डार-पात की ही हानि नहीं करता अपितु मूल को भी उखाड़ फेंकता है—

अम्ब फले तो नव चले रेंड़ फले सतराय।

अति को फूल्यो सहजना फल और मूल नसाय।।

जो भार उठाने में समर्थ हैं वे तो अधिक भार भी उठा लेते हैं ("कोऽति भारः समर्थानाम्"—चाणक्य) किन्तु जो समर्थ नहीं हैं उन्हें अधिक भार उठाना नहीं चाहिये। जो समझदार होते हैं वे अधिक भार उठाने का दुःसाहस नहीं करते ("न पण्डिताः साहसिका भवन्ति"-दशरूपक) किन्तु जो दूरदर्शी नहीं होते, दुःसाहस कर बैठते हैं। शोभाञ्जन का काष्ठ बहुत कोमल होता है फिर इस पर इन फलियों का सामर्थ से अधिक भा... धराशायी कर देता है। जब ही तो आचार्य चरक ने... सीख दी है—

साहसं वर्जयेत्कर्म रक्षन् जीवितमात्मनः।

जीवन् हि पुरूषस्त्विष्टं कर्मणः फलमश्नुते।।

—चरक

अर्थात् अपने जीवन की रक्षा करनी हो तो न... यानि अपने बूते के बाहर काम नहीं करना चाहिये, क्... जीवित रहने से ही पुरूष कर्म का वान्छित फल ... है।

इस प्रकार शोभाञ्जन हमें नित्य ये दो शिक्षायें... है। हम तो शोभाञ्जन की इस करणीयता से बड़े प्र... हुए हैं। हम इसकी इन प्रवृत्तियों को मद एवं दुः... नहीं कहते अपितु हम इसके इस त्याग की प्रशंसा... हैं। परोपकार में लगे हुये ये लता-वृक्ष ह... अधिकाधिक उपयोगी औषधि देने के लिए लाल... रहते हैं और अपनी इस झलक में ये अपने शरीर का... ध्यान नहीं रखते हैं। ये हमें जीवन भर देते ही देते हैं... बदले में कुछ नहीं लेतें। जो परम दानी होते हैं वे दान... में कभी सन्तोष नहीं करते। क्योंकि शास्त्रों में कहा... है—

सन्तोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने।

त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः।।

आचार्य चरक ने शोभाञ्जन का कटुक स्कन्ध... हरितवर्ग में वर्णन किया है। इसे कृमिघ्न कहा है। ... शिरोविरेचनोपग और स्वेदोपग कहा गया है जो... स्वेदन क्रिया में सहायक होते हैं वे स्वेदोपग कहे...

किन्तु शिरोविरेचनोपग द्रव्य शिरोविरेच में सहायक न होकर प्रधान शिरोविरेचन द्रव्य ही माने गये हैं। चरक वि. 8-154 में आश्रय भेद से शिरोविरेचन सात प्रकार का कहा गया है उसमें फलशिरोविरेचन एवं त्वक् शिरोविरेचन में इसे स्थान दिया गया है। स्वेदोपग आक, एरण्ड, तिल आदि दस द्रव्यों में शोभाञ्जन को मुख्य मान कर स्वेदो पग प्रकरण में मात्र शोभाञ्जन का आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्यगुणविज्ञान में वर्णन किया है। भावप्रकाश निघन्टु के गुडूच्यादिवर्ग में इसका वर्णन हुआ है। प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह शोभाञ्जन-कुल (मारिङ्गेसी) की वनौषधि है।

चरक संहिता के चि. स्थान अध्याय तीन में अगुर्वाद्य तैल के प्रसंग में शोभाञ्जन, शिग्रु और अक्षीव का पृथक्-पृथक नामोल्लेख मिलता है। व्याख्याकार चक्रपाणि ने "शिग्रु शोभाञ्जन भेद:" ऐसा लिखा है। किन्तु इसके बाद सभी निघन्टुका कारों ने तीनों नामों को एक ही द्रव्य का वाचक कहा है—

शिग्रुः शोभाञ्जनस्तीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः।

—भा. प्र. नि.

सोभाञ्जन शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः।

—अमरकोष

शोभाञ्जनस्तीक्ष्णगन्धः शिग्रुर्बहलपल्लवः।

—अभि. रत्नमाला

शोभाञ्जन के पर्यायों के वर्णन से यह सिद्ध होता है कि उक्त सभी नाम श्वेत किंबा कटुशोभाञ्जन के हैं। इन पर्यायों के कथन के पश्चात् मधुशिग्रु का पृथक् से उल्लेख किया गया है—

रक्तोऽसौ मधुशिग्रुः स्यात्। *—अमरकोष*

बहलदलस्तीक्ष्णगन्धः शिग्रुः शोभाञ्जोऽपरः रक्तः।
मधुशिग्रुश्च मुरंगी क्ष्वेडः कृतवेधनं च कोशवती।।

—हृदयदीपक निघन्टु

इसी प्रकार प्रायः सभी निघन्टु-रचनाकारों ने कटुशिग्रु और मधुशिग्रु का पृथक् से वर्णन किया है। कुछेक ने इसके अन्य भेदों का पर्याय तथा उनके गुणधर्म का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है।

सुश्रुतसंहिता के सूत्र स्थान में द्रव्यसंग्रहणीय अध्याय में जो वरूणादिगण कहा है। इसमें शिग्रु और मधुशिग्रु इन दोनों का उल्लेख किया गया है। इसकी व्याख्या में डल्हणाचार्य लिखते हैं—"शिग्रु: शोभाञ्जनक:", मधुशिग्रु रक्त शोभाञ्जनक:"। यह गण इन रोगों में उपयोगी है—

वरुणादिर्गणो ह्येष कफमेदोनिवारणः।
विनिहन्ति शिरः शूलगुल्माभ्यन्तर विद्रधीन्।।

इसी प्रकार संशोधनसंशमनीय अध्याय में शिग्रु बीज को शिरोविरेचनोपयोगी कहा है।

इसी आधार पर आचार्य वाग्भट ने भी कहा है—

बीजं शैरीषं बार्हतं शैग्रवं च।
........शोधयंत्युत्त्मांगम्। *—अ. हृ. 15-5*
शिग्रोः बीजं शैग्रवम्। *—अरुणदत्त*

नाम—

संस्कृत—शोभाञ्जन, शिग्रु, तीक्ष्णगन्धा, अक्षीव, मोचक, मुरङ्गी

हिन्दी—सहिजन, सहजन, मुनगा, सोहाजन

गुजराती—सरगवो, सेकटो

मराठी—शेवगा, शेगटा

बंगाली—शजिना

पंजाबी—सोहांजना

राजस्थानी—सहजणो

तामिल—मुरूंगई

तेलगू—मुनगा

उर्दू—सहजना

अंग्रेजी—हार्स रेडिश ट्री (Horse Radish Tree)

ड्रुमेस्टिक ट्री (Drum Stick Tree)

लैटिन—मोरिगा कोन्किनान्सिस (Moringa Concanesis)

वानस्पतिक परिचय—शोभाञ्जन के छोटे-छोटे या मध्यम कद के वृक्ष होते हैं। छाल मोटी तथा मुलायम होती है। यह पूर्व में कहा गया है कि इसका काष्ठ भी कोमल होता है। पत्र-संयुक्त, पक्षकार, एक-दो फुट लंबा होता है जिसमें पत्रक 6-9 जोड़े, चौथाई इंच से पौन इंच लम्बे, अंडाकार अभिमुख क्रम से लगे रहते हैं। पुष्प-सुगन्धित, नीलाभ, सफेद रंग के तथा गुच्छों में निकलते हैं। फलियाँ—6 इंच से 20 इंच तक लम्बी 6 सिराओं से युक्त और धूसरवर्ण की होती है। ये फलियाँ बीजों के बीच-बीच में पतली होती है। इसकी फलियाँ भी अमलतास की भाँति अधोलम्बी होती हैं। बीज-त्रिकोणाकार, पक्षसहित और कंटु होते हैं। श्वेत वर्ण और मरिच के समान होने से इन बीजों को भ्रमवश श्वेत मिर्च कह देते हैं। इसका स्पष्टीकरण वनौषधि रत्नाकर के सप्तम भाग में मरिच (कालीमिर्च) के प्रसंग में किया गया है। वृक्ष के काण्ड पर चीरा लगाने से गोंद निकलता है।

जनवरी से मार्च तक पुष्पागम होता है और इसके बाद अप्रैल-जून मास में फल लगते हैं।

भेद—यह पूर्व में कहा गया है कि पुष्प भेद से शास्त्रों में शोभाञ्जन के श्वेत और रक्त दोनों जाति वाला मधुर होता है। यदि केवल शोभाञ्जन किंबा शिग्रु का उल्लेख मिले तो श्वेत (कटु) शोभाञ्जन का ग्रहण करना चाहिये। कटु शोभाञ्जन वातरोगों में तथा बाह्योपचार में मधुर की अपेक्षा अधिक गुणदायक है। ऊपर जो वर्णन किया गया है वह श्वेत (कटु) शोभाञ्जन का है। मधुर शोभाञ्जन का लैटिन नाम मोरिगा ओलीईफेरा (पर्याय-मोरिगा प्टेरी गोस्पेर्मा) है। इसके पुष्प गुलाबी-पीले होते हैं। राजनिघन्टुकार ने नीला शिग्रु का भी उल्लेख किया है। किन्तु इसकी दो प्रजातियों का वर्णन मिलता है।

प्राप्तिस्थान—श्वेत शोभाञ्जन प्राय: समस्त भारत में पाया जाता है। राजस्थान एवं दक्षिण भारत में इसके अधिक पाये जाते हैं। शाक सब्जी बेचने वालों के इसकी कोमल कच्ची फलियाँ मिल जाती हैं जिन्हें शाक बनाकर खाया जाता है। कटु होते हुए भी उपयोगी समझ कर काम में लिया जाता है। शोभाञ्जन कटु की अपेक्षा कम पाया जाता है। हिमालय की तराई में चनाव से लेकर अवध तक जंगली रूप में पायें जाते हैं। जंगली वृक्षों के फल-फूल तो कुछ कड़वे ही होते हैं किन्तु लगाये हुये वृक्षों की फलियाँ मीठी होती हैं। इनका शाक बड़े चाव से खाया जाता है।

रासायनिक संघठन—इसके मूलत्वक् में मोरि- नामक दोक्षाराभ होते हैं। रासायनिक दृष्टि से कार्यकारी तत्व का दो अंशों में विश्लेषण किया गया प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि स्फटिकीय तत्व कोई विशेष कर्म नहीं होता, अपितु अस्फटिकीय का तीव्र प्रभाव एड्रिनिलिन और इफेड्रिन के समान है। इसका कर्म सांवेदनिक नाड़ी संस्थान के द्वारा के समस्त अंगों पर होता है। यथा-रक्तभार की वृद्धि हृदय गति की तीव्रता, रक्तवाहिनियों का संकोच और पाचन तंत्र तथा श्वास प्रणालियों की स्वतंत्र पेशियों की गति कम होती है और नेत्र की तारिकायें विस्फारित होती हैं।

इसके मूल में एक सक्रिय प्रतिजीव (Antibiotic) तत्व टेरिगौस्पर्मिन नामक होता है जो अनेक जीवाणु और फफूंदों की वृद्धि को रोकता है। पत्र स्वरस में भी जीवाणु नाशक क्षमता पाई जाती है। कांड से निकलने वाला गोंद प्रारम्भ में सफेद और बाद में यह लाल-भूरे रंग का हो जाता है। मूल में एक अत्यन्त कटु और दुर्गन्धित उड़नशील तैल होता है। बीजों के दबाने से एक



शोभांजन (MORINGA CONCANESIS)

नाम—सं०—शोभांजन, शिग्रु, हि०—सहिजन; गु०—सरगवो; म०—शेवगा; लै०—कोन्किनान्सिस।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत विशेषतः राजस्थान, दक्षिण भारत।

उपयोगी अंग—जड़-तने की छाल, पत्र, बीज, तैल, गोंद।

दोषशमन—कफवात शामक।

रोगोपयोग—विद्रधि, गण्डमाला, शोथ, वातरोग आदि।

मुख्ययोग—कलहंस, शोभांजनादि लेप आदि।

तैल (36.6 प्रतिशत) निकलता है। व्यापार में यह तैल बेन या बेहन तैल के नाम से प्रसिद्ध है।

—द्रव्यगुणविज्ञान-2

बीजों में एक अनुत्पत् तैल पाया जाता है, जिसमें 60 प्रतिशत तक प्रवाही तैल तथा 40 प्रतिशत ठोस वसा होती हैं छाल में एक सफेद क्रिस्टली एल्केलाइड, राल एवं लबाब आदि तत्व होते हैं। ***—वनौषधि-निदर्शिका***

रस—कटु (क्षारीय), तिक्त

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोषकर्म—यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण और कटु रस युक्त होने से कफ का शमन करता है। तथा उष्णवीर्य युक्त होने से वात को भी शान्त करता है।

मधुर शोभाञ्जन की अपेक्षा कटु शोभाञ्जन विशेष गरम और विदाही होता है। अन्य गुणों में दोनों में प्रायः समानता पाई जाती है।

उपयोगी अंग—मूलत्वक् (जड़ की छाल), काण्डत्वक् (तने की छाल) पत्र, बीज तैल एवं निर्यास (गोंद)।

विशेष—औषधि प्रयोगार्थ 90 प्रतिशत इसकी त्वचा (छाल) ही उपयोग में लाई जाती है। क्योंकि इसकी रसीली त्वचा में ही रोग नाशक प्रभाव सर्वाधिक है, जो वर्ष की सभी ऋतुओं में गीली प्राप्त की जा सकती है। जहाँ पर इसके वृक्ष नहीं होते वहाँ इसकी शुष्क त्वचा ग्राह्य है। इसके तने की छाल और जड़ की छाल के गुणों में भी अन्तर है। जड़ की छाल तने की छाल की अपेक्षा अधिक लाभदायक है। आचार्य चरक ने तो इसके मूल में आसव निर्माण शक्ति मानी है। यह शीघ्र सन्धान प्रारम्भ कर देता है। अतः आसवनिर्माण में यदि शोभाञ्जन प्रयुक्त करना हो तो इसके मूल को ही डालना चाहिये।

धन्वन्तरिनिघन्टु, भावप्रकाशनिघन्टु आदि में ... गया है कि शोभाञ्जन के बीज ही सफेद मरि... किन्तु ऐसा नहीं है, शोभाञ्जन के बीजों को भ्रमवश ... मरिच कह दिया जाता है श्वेत मरिच तो वस्तुतः ... का ही एक रूप है। वनौषधि रत्नाकर के सप्तम भा... मरिच वर्णन के प्रसंग में हमने भी यह स्पष्ट किया ...

मात्रा—त्वक् स्वरस—10–20 मि.लि.

त्वक् चूर्ण—3–4 ग्राम

बीज चूर्ण—1–3 ग्राम

संग्रह-संरक्षण—छाल एवं बीजों को मुखबंद ... में अनार्द्रशीतल स्थान में रखना चाहिये।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष पर्यन्त।

गुणप्रकाशक संज्ञा—वैद्यकशब्द सिन्धु में ... विद्रधिघ्न तथा विद्रधिनाशक कहा है। शब्दकल्पद्रु... इसकी व्युत्पत्ति में विद्रधि रोग विशेषं नाशयतीति' ... गया है। इसका एक नाम मोचक भी है अर्थात् जो ... से मुक्त करावे।

अहितकर—यह रक्तपित्तकर और विदाही होता ... अतः पित्तप्रकृति वालों को तथा जिन व्यक्तियों का ... कारणवश पित्त प्रकुपित हो गया हो उन्हें इसका सेव... करावें। जिन व्यक्तियों के वृक्क विकृत हों या ... रक्तचाप वृद्धि की शिकायत रहती हो ऐसे रोगियों को ... इसका सेवन न करावें। यदि इन्हें सेवन कराना आवश्... ही हो तो सावधानी पूर्वक सेवन करावें। गर्भवती ... को भी इसका सेवन न करावें, क्योंकि इसके सेवन ... गर्भस्राव या गर्भपात होने की संभावना रहती है।

इसके अतिसेवन से दाह आदि पित्तजन्य लक्षण ... होते हैं।

निवारण (दर्पनाशक)—उपर्युक्त अहितकर ... के निवारण के लिए घृत, दुग्ध, सिरका आदि पित्त श... द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

गुणधर्मविवेचना (शास्त्रीय)—

शिग्रुः सरः कटुःपाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः।
दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारास्तिक्तो विदाहकृत।।
संग्राही शुक्रलो हृद्यः पित्तरक्तप्रकोपनः।।
चक्षुष्यः कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथुक्रिमीन।
मेदोपचीविषप्लीहगुल्मगण्डव्रणान् हरेत।।
श्वेतः प्रोक्तगुणोज्ञेयो विशेषाद्दीपनः सरः।
प्लीहान विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्तरक्तकृत्।।
मधुशिग्रुः प्रोक्तगुणो विशेषाद्दीपनः सरः।
शिग्रु वल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्तिहृत्।।
चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम्।
अवृष्यं कफवातघ्नं तन्नस्येन शिरोर्तिहृत्।।

—भा. प्र. नि.

शिग्रुस्तीक्ष्णो लघुर्ग्राही वन्हिदः कफवातजित्।
तीक्ष्णोष्णो विद्रधिप्लीहव्रणघ्नो रक्तपित्तकृत।।
मधुशिग्रुर्गुणैस्तद्वद्विशेषाद्दीपनः सरः।
तत्पुष्पङ्गुरू सङ्ग्राहि वातलङ्कफ शोथजित्।।

—म. विनोद नि.

शिग्रुः शोभाञ्जानस्तीक्ष्णः कटुतिक्तोष्णवीर्यकः।
दीपनः कफवातघ्नो रक्तपित्तप्रकोपणः।।
शूलप्रशमनो हन्ति विद्रधिश्वयथुक्रिमीन्।
गुल्मं गण्डं च तद् बीजं चक्षुष्यमञ्जनाद् भवेत्।।

—प्रि. नि.

शिग्रुस्तिक्त कटुश्चोष्णः कफसमीराजित्।
कृम्यामविषमेदोघ्नो विद्रधिप्लीहगुल्मनुत्।।

—ध. नि.

कटुः सक्षारमधुरः शिग्रुस्तिक्तोऽथ पिच्छिलः।
मधुशिग्रुः सरस्तिक्तः शोफघ्नो दीपनः कटुः।।

—सुश्रुत. सू. 46

शिग्रुतैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठ प्रमेहशिरोरोगपहराणि चेति *—सुश्रुत सू. 45*

शिग्रोः पुष्पं तु कटुकं तीक्ष्णोष्णं स्नायुशोथनुत्।
कृमिहृत् कफवातघ्नं विद्रधिप्लीहगुल्मजित्।।
मधुशिग्रोस्त्वक्षिहितं रक्तपित्तप्रसादनम्।।

—भा. प्र. नि.

शिग्रुश्च कटुतिक्तोष्णस्तीक्ष्णो वातकफापहः।
मुखामयहरो रूच्यो व्रणघ्नो दीपनो 'नृपे'।।
समीरक्रिमिप्लीहघ्नो विद्रधि विषनाशनः।।

—नि. शिरोमणिः

शोभाञ्जन को जीवाणु विकास को रोकने वाली आयुर्वेदिक औषधि के नाम से जाना जाता है। यह वाह्य एवं अन्तर्विद्रधि एवं अन्यपूयोत्पादक रोगों में लाभदायक सिद्ध हुआ है। किसी शस्त्र कर्म के पूर्व भी इसका प्रयोग स्वास्थ्य प्रद सिद्ध हुआ है—"शास्त्रकर्म के पूर्व शिग्रुत्वक् एवं वरूण क्वाथ को पूर्वकर्म की दृष्टि से देने पर देखा गया कि शल्यकर्मोत्तर स्वास्थ्य लाभ की अवधि में 25 प्रतिशत की कमी हुई"—प्र. ज. देशपाण्डे, गु. च. प्रसाद, स. दे. राय, प. सु. शंकरन, जर.रिस., इण्डि. मेडि., 1,1 1966, 15-28 (वा. अनु. दर्शिका)। यही नहीं कभी ऐसा भी हुआ है कि जहाँ शल्यकर्म आवश्यक समझा गया वहाँ इसके विधिपूर्वक प्रयोग से रोग का शमन हो गया और शल्यकर्म की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। शास्त्रों में वर्णित है—

पानलेपनभोज्येषु मधुशिग्रु द्रुमोऽपिवा।
दत्तावापो यथादोषमपक्वं हन्ति विद्रधिम्।।

—सु. चि. 16-31

शिग्रुमूलं जले धौतं जलपिष्टं प्रगालयेत्।
तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः।।

—वृ. मा.

शिग्रुदीप्यवरूणद्वियामिनीकुंजराशनकृतः कषायकः।
बोलचूर्णसहितोन्तरास्थितं विद्रधि प्रशमयेदसंशयम्।। —वै. जी.

शिग्रुरूबुवरूणैः सपिप्पलैयामिनीद्वययुतैः कषायकः
बोलचूर्णसहितोन्तरूत्थितं विदर्धि प्रशमयेदसंशयम्।। —वै. च. वि.

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिंगुसैन्धवसंयुतः।
अचिराद्विद्रधीन् हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः।।
—च.द.

वरूणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ।
ऊषकादिरजोयुक्तं पिवेच्छमनहेतवे।।
—शा. सं.

आचार्य सुश्रुत कहते हैं विद्रधि के प्रशमन के लिए पीने में, लेप करने में तथा भोजन में मीठे सहजने को उपयोग में लावें। आचार्य वृन्द कहते हैं कि सहजने की जड़ को जल से धोकर पानी के साथ पीस लें और कपड़े से निचोड़कर रस निकालें, इस रस में शहद मिलाकर पीने से अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है। आचार्य लोलिम्बराज अपनी एक रचना में लिखते हैं कि सहजने की छाल, अजवायन, बरने की छाल, हल्दी, दारूहल्दी और पीपलवृक्ष (अश्वत्थ) की छाल समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। इस क्वाथ में बोल का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से अन्तर्विद्रधि अवश्य नष्ट हो जाती है। अपनी एक अन्य रचना में अजवायन के स्थान पर एरण्ड की छाल और पीपल छाल के स्थान पर पिप्पली लेते हैं। अचार्य चक्रपाणिदत्त ने अपनी रचना चिकित्सासारसंग्रह (चक्रदत्त) में लिखा है कि सहिजन की मूल की छाल का क्वाथ बनाकर 125 मि.ग्रा हींग तथा एक ग्राम सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने से विद्रधि शीघ्र दूर होती है।

इसी प्रकार आचार्य शार्ङ्गधर ने भी कहा है कि वरूणादिगणोक्त द्रव्यों के क्वाथ में ऊषकादिगण में कहे गये द्रव्यों का चूर्ण एक ग्राम मिलाकर पान करने से मध्यकायस्थित विद्रधि रोग का प्रशमन होता है। वरूणादिगण और ऊषकादिगण का उल्लेख सुश्रुतसंहिता सू. स्था. 38 में किया गया है, तदनुसार उक्तश्लोक के आगे आचार्य शार्ङ्गधर ने भी किया है। वरूणादिगण के द्रव्य ये हैं—वरूण (बरना), बकुल, विल्वमज्जा/बेलगरी, अपामार्ग, चित्रक, छोटे-बड़े दोनों अग्निमंथ (अरणी) मीठा सहिजन, कड़वा सहिजन, छोटी-बड़ी कटेरी, तीनों सैरेयक (नीला पियावांसा, पीला, पीया वांसा और लाल पिया वांसा), मूर्वा, मेढ़ासिंगी, चिरायता, काकड़ासिंगी, कुन्दरू, घृतकरंज, लता करजं, शतावर। ऊषकादिगण- "ऊषकसैन्धवशिलाजतु-कासीसद्वयहिगूनि तुत्थकं चेति" (सुश्रुत. सू. 38-37) "ऊषकः क्षारमृत्तिका वाराणसी समीपे बड़तरदेशे बाहुल्येन भवति, अन्ये तद्भवं द्रव्यात्तरमाहुः कासीस द्वयं कासीसं भस्म सद्दशं किंचिदम्ल लवणरसं, द्वितीयं पुष्पकासीसमीषत्पीतं तुवररसं तद्भेद एव, तुत्थकं कर्पुरिकातुत्थं 'खपरिया' इति लोके, अन्ये मयूरग्रीवमाहुः"—डल्हणः। वरूणादिगण के द्रव्यों को 40 ग्राम की मात्रा में लेकर इसका विधि अनुसार क्वाथ बनाकर उसमें एक ग्राम ऊषकादिगणद्रव्यचूर्ण मिलाकर सेवन करना हितकारी है।

- बाह्यविद्रधि पर भी शोभाञ्जन का प्रयोग देखिए-

शिग्रुशेफालिकैरण्डयवगोधूममुद्गकैः।
सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ।
—शा. सं.

स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः।
—यो. र.

शिरीषकर्कटश्रृंगी शिग्रुत्वग्देवदारूभिः।
पिष्टैः सनागरैर्लेपो नाशनः श्लैष्मविद्रधेः।।
—भा. प्र.

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध हुआ है कि वातकफोल्वण कोष्ठविद्रधि में तथा बाह्यविद्रभि के शोथ एवं पीड़ा आदि का निवारण कर आरोग्य प्रदान करने में यह श्रेष्ठ है।

नवागढ़ (दुर्ग) निवासी डा. तेजबहादुर चौधरी ने इस पर विशेष अनुभव प्राप्त किया है। इस सम्बन्ध के इनके लेख कई बार आयुर्वेदीय पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। सर्व प्रथम आपका विस्तृत लेख01 अंग्रेजी भाष में सचित्र आयुर्वेद के मई-जून 1963 के अंकों में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद हिन्दी में सुधानिधि अक्टू. 76 के अंक में तथा सचित्र आयुर्वेद जन. 89 के अंकों में भी यह अनुभव प्रकाशित हुआ था। आपने शोभाञ्जन का प्रयोग विद्रधि । में भी किया है। एक अनुभव प्रस्तुत है—

आयुर्वेदिक एण्टीबायोटिक शोभाञ्जन कल्प—

परमपूज्य गुरूवर स्व. श्री उपेन्द्रनाथ दास जी प्रो. तिब्बया कालेज देहली का एक लेख धन्वन्तरि में बीसियों वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था और उन्होंने विद्रधि बाह्य तथा आभ्यान्तरिक दोनों पर शोभाञ्जन का लघु कल्प लिखा था। संयोगवश उनको मैं जब एक रोगी, दिखाने के लिए देहरादून लेजा रहा था उस वक्त चर्चा चली। उनके उस लेख पर मैंने उनसे शोभाञ्जन के प्रयोग की विस्तृत व्याख्या के लिए आग्रह किया तब उन्होंने उदारता से यही बताया कि शोभाञ्जन की छाल को बारीक पीसकर उसका स्वरस निकाला जाय। उसके साथ या तो पर्पटी (लौह या पंचामृत पर्पटी) अथवा पारद गन्धक की समभाग कज्जली को आयु के अनुसार बढ़ाते हुए प्रातः सायं मधु मिलाकर प्रयोग किया जाय। तथा 20 ग्राम शोभाञ्जन छाल कुचल 375 मि.लि. या आवश्यकतानुसार दूध लेकर उसी अनुपात से शोभाञ्जन पिष्टी डालकर पकाकर दूध शेष रहने पर उसे ही पीने को दिया जाय तथा शोथ अथवा विद्रधि पर उसी के कल्क को बांधा जाय अथवा उसी क्वाथ से स्वेदन किया जाए।

हम कज्जली का प्रयोग शोभाञ्जन स्वरस से मधु डालकर 125 मि.ग्रा. से 500-750 मि.ग्रा. तक बलाबल के अनुसार करते हैं। इस उपचार से प्रायः उन बाह्य एवं अन्तर्विद्रधियों में प्रारम्भिक अवस्था में आशातीत लाभ होते देखा गया है। जिन रोगों के नाम एलोपैथी में ITIS के साथ होते हैं यथा Appendicitis आन्त्रपुच्छ शोथ, Carditis हृत्शोथ, Pentonitis, Colitis, Hepatitis, Liver Abscees इत्यादि में प्रयोग विधि यही है।

20-25 वर्ष पहले मैं मुरादाबाद के एक सिविलसर्जन से मिला था। इन्होंने मुझे एपेण्डीसाइटिस की आयुर्वेदिक दवा पूछी। मैंने उक्त उपचार बतलाया। एक रोगी को यह उपचार शुरू किया। दूसरे दिन ही उसे पीड़ा में कमी महसूस हुई। ज्वर भी छठे दिन मिट गया। दर्द एक सप्ताह में नाममात्र का रह गया। एक सप्ताह तक यही क्रम चला और परीक्षा करते रहे। इसके बाद उन डाक्टर सा. ने और भी अनेक अन्तर्विद्रधियों में इसका प्रयोग कर आशातीत सफलता प्राप्त की। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात यही है कि जब विद्रधि आमावस्था में हो अर्थात् उसमें पीप न पड़ा हो तभी से इसका प्रयोग चालू कर दिया जाय।

सारांश यह है कि इसे किसी भी एन्टीबायोटिक की जगह प्रयोग किया जा सकता है। केवल जहाँ रक्तपित्त की शंका या लक्षण हो वहाँ जरा सावधानी रखनी चाहिए।

सुश्रुत में तो विद्रधि पककर फूट जाने पर भी इसका प्रयोग, उर्ध्व अथवा अधोमार्ग (Retentioneneme) द्वारा प्रयोग करने से सुश्रुतसंहिता चिकित्सा स्थान अध्याय 16-35/36 का विधान दिया गया है, जो हमने प्रयोग करके नहीं देखा। *—डा. तेजबहादुर चौधरी*

(सुधानिधि अक्टूबर 1976)

भारत के प्रसिद्ध वैद्य श्री उपेन्द्रनाथ जी के अतिरिक्त श्री ठाकुरदत्त जी एवं श्री लक्ष्मीराम जी स्वामीने भी इसे उपयोग में लाकर कई रोगियों को ठीक किया है।

डा. चौधरी जी की भाँति श्री पं. अवनीश मिश्रा ने भी शोभाञ्जन पर स्वानुभव प्रकट किया है जिसे आचार्य श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने वनौषधि विशेषांक में उद्धृत किया है। श्री मिश्रा के कथनानुसार—

"इसके स्वरस के एक भाग में 9 भाग Alcohohol Absolute मिलाकर 4–5 दिन तक धूप में रख दें, फिर फिल्टर पेपर द्वारा छानकर शुद्ध अल्कोहल द्वारा धुली शीशी में रख लेना चाहिये। इस प्रकार इसका मदर टिंचर बन जायेगा। प्रतिमात्रा में 5 से 15 बूंद या कुछ अधिक भी प्रयोग किया जा सकता है। हमारे प्रयोग द्वारा किये हुए अनुभव में हमें इसके अधिक मात्रा में सेवन करा दिये जाने पर भी कोई विषैला लक्षण प्रकट हुआ नहीं जान पड़ता। हाँ इतना अवश्य है कि रोगी को मल-मूत्र खुलकर आने लगता है जो पतला होकर अतिसार का भी रूप धारण कर सकता है। किन्तु मात्रा कम कर देने अथवा एक-एक औषधि बन्द रखने से सम्भवत: लक्षण दूर हो जाते हैं। वमन का होना इसकी उग्र तथा अप्रिय गन्ध के कारण हो सकता है इसके अतिरिक्त आमाशय में खराश करने के प्रभाव से भी वमन आ सकता हैं किन्तु आज तक वमन होने का दृष्टान्त मुझे अपने रोगियों में नहीं मिला। यह औषधि आभ्यन्तरिक विद्रधि में अपना महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाती ही है, किन्तु बाह्य में भी उसी प्रकार गुणकारी सिद्ध हुई है। इसका प्रभाव प्राय: 24 घन्टे के अन्दर ही आरम्भ हो जाता है और साथ ही एक सप्ताह में रोगी को मृत्यु के मुंह से निकालने में समर्थ हो जाती है। इसका विशेष प्रभाव इन रोगों में पाया गया-उदर में उत्पन्न होने वाली अन्तर्विद्रधियां, आन्त्रपुच्छ शोथ (आमजतथा सपाक), यकृत् विद्रधि, प्लीहा विद्रधि, हृदयशोथ, फफ्फुस प्रदाह, निमोनियां, अश्मरी, मूत्रकृच्छ, गुदपाक, उदरकृमिजन्य उपद्रव, अर्शांकुर प्रदाह, आन्त्रिक शोथ, कर्णपाक, मुखपाक, गलशोथ, मस्तिष्कावरण प्रदाह, पीनस, जीर्ण शिरोरोग, बाह्यप्रयोगार्थ में सशोथ व्रण, संक्रमित व्रण, विसर्प, शोथ तथा व्रण शोथ आदि।"

उक्त व्याधियों में शोथ को दूर करने के लिए शोभाञ्जन के साथ पुनर्नवा, शिलाजतु, मण्डूर आदि का अन्त: प्रयोग लाभप्रद होता हैं आन्त्रशोथ, पूयमेह, उदरकलाशोथ आदि से शुक्रवह स्रोतस भी प्रभावित होते है और वहाँ वात की प्रबलता मानी जाती है। "वातान्वितं हिता: शुक्रे निरूहा: सानुवासना:" के अनुसार प्रथम रास्नास्नेह द्वारा स्नेहन करके फिर गुदा द्वारा शोभाञ्जन क्वाथ में रास्नास्नेह मिलाकर बस्ति देनी चाहिये। इससे आभ्यन्तरिक शोथ का निवारण होता है तथा उन अवयवों को बल मिलता है। आवश्यकता समझी जाने पर शोभाञ्जन की छाल के साथ पुनर्नवादि क्वाथ की भी बस्ति दी जानी चाहिए। इससे बहुत से पुरुष रोगों में लाभ प्राप्त किया जा सकता है। बाह्य शोथ में इसे पुनर्नवा सोंठ, सर्षप और देवदारू के साथ कांजी में पीसकर लेप करना हितकारी है—

पुनर्नवा दारूशुण्ठीं, सिद्धार्थं शिग्रुमेव च।
पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेप: सर्वशोथजित्।।
—शा. सं.

वातज, कफज, कुष्ठ रोगों में चित्रक के साथ में इसे दही के मण्ड में मिलाकर प्रयुक्त करना चाहिये—

चित्रकशोभाञ्जनकौ.................।
दधिमण्डयुता: सर्वे देया:
षण्मारुतकफकुष्ठघ्ना:।। —चरक. चि.

श्री उग्रदित्याचार्य ने किटिभ, दक्षु, कच्छू आदि अनेक कुष्ठ प्रकारों में शोभाञ्जन, करंज, चित्रक, त्रिकटु, कनेर, असगंध, रामतुलसी को तक्र में पीसकर लेप करने के लिए लिखा है—कल्याणकारक कफरोगाधिकार। गण्डमाला, अर्बुद, अपची आदि में भी इसका लेपार्थ प्रयोग मिलता है—

सर्षपा: शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवा:।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत्।।

गण्डमालार्बुदं गण्डं लेपेनानेन शाम्यति।।

—शा.सं.

शोभाञ्जनं देवदारूं कञ्जिकेन तु पेषितम्।
कोष्णं प्रलेपतोहन्यादपचीमतिदुस्तराम्।।

—च. द.

शोभाञ्जन की छाल का क्वाथ अपने व्रण शोथ-निरोधी (Anti Septic, Antiphaugistic, Decongrstent) गुणों से मुखपाक, कर्णपाक, आदि में भी उत्तम कार्य करता है। इसका गण्डूष के रूप में, प्रक्षालन के रूप में या पीने के लिए भी प्रयोग करना चाहिए। कर्णकीट को नष्ट करने के लिए भी इसका प्रयोग बतलाया गया है—

स्वरसं शिग्रुमूलस्य सूर्यावर्तरसं तथा।
त्र्यूषणं चूर्णितं चैव कपिकच्छूजटारसम्।।
कृत्वैकत्र क्षिपेत्कर्णे कर्णकीटहरं परम्।।

—शा. सं.

कर्णशूल शमनार्थ इसके रस से कर्णपूरण करना हितावह है—

लशुनार्द्रकशिग्रूणां तुलस्या मूलकस्य च।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्ण पूरणे।।

—अ. हृ. उ. 18

उर्ध्वजत्रुगत रोगों में इसके नस्य के अतिरिक्त शोभाञ्जन का अर्क, स्वरस आदि भी देने चाहिये इससे शीघ्र लाभ होता है—

मधुशिग्रूद्भवो (अर्कः) हन्याद् विद्रधिश्वयथुकृमीन्।
शिग्रुजो विषहृन्नेत्र्यो नस्येनाक्षिशिरोर्तिहा।।

—अर्कप्रकाश

नेत्ररोगों में इसके पत्रस्वरस किंवा धृष्टमूल के प्रयोग का उल्लेख मिलता है—

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुधृष्टस्ताम्रसम्पुटे।
घृतेन धूपितो हन्ति शोफधर्षाश्रुवेदना।।

—अ. हृ. उ. 16

शिग्रुमूलं वचां क्षौद्रैधृष्ट्वा नेत्रं प्रपूरयेत्।
निष्पिष्यार्द्रां निशां वाथ सद्यः शूले सुखावहः।।

—र. र. स.

आयुर्वेद विकास (डाबर) पत्रिका के फरवरी 1988 के अंक में वैद्य श्री देशमुख और वैद्य वार्ष्णेय के द्वारा ''नेत्राभिष्यन्द में शिग्रुपत्रादि की उपयोगिता'' नामक लेख प्रकाशित हुआ था। महाराष्ट्र के अमरावती जिले में श्री गुरूदेव आयुर्वेद महाविद्यालय गुरूकुंज आश्रम है। यहाँ पर कुल 317 रोगियों को शिग्रुपत्रादि विंदु का प्रयोग किया गया जिसका परिणाम सन्तोष प्रद रहा। (श्री आयुर्वेद रसशाला में यह शिग्रुपत्रादि विंदु इस प्रकार बनाया गया—

शिग्रुपत्रस्वरस	एक ग्राम
मधु	एक ग्राम
सेंधव	0.4 ग्राम

नेत्राभिष्यन्द के रूग्णों को यह औषधि दिन में तीन बार आंखों में डालने को कहा गया। इन 317 रोगियों में अधिकतर 10 वर्ष से 30 वर्ष की आयु के थे तथा उनमें 37 स्त्रीलिंग थे और शेष पुलिंग थे। इनमें अधिकतर रोगियों को इसके तीन दिन के प्रयोग से लाभ प्राप्त हुआ। अतः कहा जा सकता है कि उक्त शिग्रुपत्रादि विंदु भी एक अत्यन्त उपयोगी और परिणामकारक औषधि अभिष्यन्द व्याधि शमनार्थ है। बीजों का अंजन भी नेत्ररोगों में करते हैं। शोभाञ्जन उष्ण होने से हृदयोत्तेजक है अतः हृदय की दुर्बलता को दूर करता है। इसके प्रयोग से रक्तभार बढ़ता है। हृदयशोथ का निवारण इससे होता है। शोभाञ्जन त्वक्, अर्जुन त्वक्, लघु पंचमूल, पुनर्नवा मूल आदि का क्वाथ बनाकर हृदयरोगी को देना हितकारक कहा गया है।

वरूणादिगण की औषधियों को मेदोरोगहर कहा गया है। अतः शोभाञ्जन का क्वाथ मेदोरोग में भी हितकारी है। गूगल एवं शिलाजीत के साथ इसका प्रयोग अधिक

सुखावह है। मेद के अतिरिक्त यह शुक्र को भी नष्ट करता है। यह विषघ्न होने से विष की अवस्थाओं में लाभप्रद है तथा आर्तवजनन होने से कष्टार्तव एवं रजोरोध को भी दूर करता है। कुछ चिकित्सक इसे सन्ततिनिग्रह हेतु भी उपयोगी बतलाते हैं। किन्तु बी. भादुरी, सी. आर. घोष, ए. एन. बोस आदि अनुसन्धाताओं ने इसे इस हेतु अनुपयोगी पाया है।

कफघ्न होने से यह कास में उपयोगी है। हृदयविकारजन्य तमकश्वास में भी इसे उपयोग में लाते हैं। मूत्रकृच्छ्र में तथा मूत्रगत अम्लाधिक्य में इसका प्रयोग करते हैं किन्तु वृक्क विकारों में इसे उपयोग में नहीं लाते हैं क्योंकि इससे वृक्कों में क्षोभ उत्पन्न होता है। आचार्य चरक ने अश्मरी एवं मूत्रकृच्छ्र में इसके प्रयोग कहे हैं—

विल्वप्रमाणों घृत तैल भृष्टो
यूषः कृतः शिग्रुकमूलकल्कात्।
शीतोऽष्मभित् स्याद् दधिमण्डयुक्तः
पेयः प्रकापं लवणेन युक्तः।।
जलेनशोभाञ्जनमूलकल्कः
शीतो हितश्चाश्मरिशर्करासु।
सितोपला वा समयावशूका
कृच्छ्रेषु सर्वेष्वपि भेषजं स्यात्।।

—चरक. चि. 26

बस्तिशूल, हृदयशूल आदि में—

"शिग्रुक्वाथयुतः पीतः सक्षोद्रो यवशूकजः."

—र. तर.

यह कटु–उष्ण होने से रोचन, दीपन, पाचन, विदाही, ग्राही, शूलप्रशमन और कृमिघ्न है। अतः अरूचि, अग्निमांद्य, गुल्म, कृमिरोग, उदरशूल एवं उदररोगों में इसे उपयोग में लाया जाता है। मधुशिग्रु अपनी मधुरता एवं पिच्छिलता के कारण सारक (दस्तावर) होता है। अरूचि में इसके बीजों के प्रयोग का वर्णन मिलता है—

अष्टादशशिग्रु फलानि दश मरिचा[illegible] विंशतिश्चपिप्पल्यः
आर्द्रकपलं गुड़पलं प्रस्थत्रयमारनालस्य।।
एतद्विडलवणयुतं खजाहतं सुरभिगन्धाढ्यम्।
व्यञ्जनसहस्रघाति ज्ञेयं कलहंसकं नाम।।

—च. द

विसूचिका जन्य खल्ली में आचार्य सुश्रुत [illegible] शोभाञ्जन छाल, रास्ना, अगरू आदि को कांजी में पीसकर लेप करने को कहा है—

कुष्ठश्चागुरूपत्रञ्च रास्ना शिग्रुत्वचो वचा।
पिष्टमम्लेन तच्छ्रेष्ठं विषूच्यामङ्गमर्द्दनम्।।

भैषज्यरत्नावलीकार ने इसमें शतपुष्पा और जटामांसी भी समाविष्ट की है तथा इन द्रव्यों से तैल सिद्ध कर उपयोग में लाने हेतु लिखा है।

कफोदरे—

सदैव शोभाञ्जनकार्द्रकाणां
रसेन पपक्वपयः प्लवान्नम्।
कषायतिक्ततिकटुप्रकारै-
स्सुशाकवर्गैस्सह भोजयेत्तम्।।—कल्याणकारक

प्लीहोदरे—

पीतः प्लीहोदरं हन्यात् पिप्पलीमरिचान्वितः।
अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्वाथः ससैन्धवः।।
शोभाञ्जनकनिर्य्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम्।
पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत्।।

—च. द

कृमिरोगे—

शोभाञ्जनसर्षपराजिकार्क
रसोनसिन्धुत्थ कणानिविश्वा।
एतैः कृतैः चूर्ण मिदं निहन्ति
शतक्रिमिणां च तुषोदकेन।।

शिग्रुत्वक त्रिफलाभ्यां तु कृतः क्वाथो निषेवितः।
जठरस्थान् कृमिन् क्षिप्रभुन्द्ररत्यविचारतः।।

—ग. नि.

इसके अतिरिक्त शोभाञ्जन तैल को भी आचार्य सुश्रुत ने कृमिहर कहा है।

आचार्य शार्ङ्गधर ने अतिनिद्रा में इसके बीजों का अंजन उपयोगी कहा है—

नीलोत्पलं शिग्रुबीजं नागकेशरकं तथा
एतत्कल्कैः कृता वर्तिरतिनिद्रां निवारयेत्।।

बीजों का तैल शोथहर होने के साथ वेदनास्थापन भी है अतः वातरोगों में उपयोगी है। वातरोगों में इसके गोंद को भी उपयोग में लाते हैं। शोभाञ्जन की छाल, एरण्डमूल की छाल, सोंठ आदि के क्वाथ में सेंधानमक या कालानमक मिलाकर सेवन करना वातव्याधि में हितकर है—

सोंठ सुहागा हींग रज शोभाञ्जन का क्वाथ।
विविधि रोग वातजहरे सौवर्चल के साथ।।

एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

सोंठ सुहागा सेंधा गाँधी
सहिजन के रस में बरिया बाँधी।
सत्तर शूल और अस्सी बाई।
कहे धनन्तर छन में जाई।।

वैसे तो स्वेदोपग वनौषधि होने से यह शोभाञ्जन स्वेदवहस्रोतस् पर विशेष प्रभाव डालता है किन्तु विशिष्ट प्रीति (विशिष्ट कर्म) इसकी वज्जवह स्रोतस पर होती है—

"कुछ द्रव्यों की कुछ विशिष्ट स्रोतों या अवयवों के प्रति विशिष्ट प्रीति होती है। आमलकी का रस और रसवहस्रोतस् पर प्रभाव, मंजिष्ठा का रक्त और रक्तवह स्रोतस् पर प्रभाव, भल्लातक का मांस और मांसवह स्रोतस पर प्रभाव, शिलाजतु का मेद और मेदोवह स्रोतस् पर प्रभाव, प्रवालपिष्टी का अस्थि और अस्थिवह स्रोतस् पर प्रभाव, शोभांजन का मज्जा और मज्जावह स्रोतस् पर प्रभाव और कपिकच्छू बीज का शुक्र और शुक्र वह स्रोतस पर प्रभाव विशिष्ट प्रीति (Elective Affinity) के उदाहरण हैं"

—डा. श्री शिवचरण ध्यानी
(द्रव्यगुणसिद्धान्त)

वातरक्त, उरूस्तम्भ आदि रोगों में इसके बाह्य प्रयोगों का वर्णन मिलता है—

मधुशिग्रोर्हितं तद्वद्वीजं धान्याम्लसंयुतम्।
मुहुर्तं लिप्तमम्लश्च सिंचेद्वातकफोत्तरे।।

—चरक. चि. 29

तर्कारीशिग्रुसुरसाविश्ववत्सकनिम्बजैः।
पत्रमूलफलैस्तोयं श्रृतमुष्णं च सेचनम्।।

—चरक. चि. 27

अर्थात् वातकफप्रधान वातरक्त में पहले मीठे सहिजन के बीजों को कांजी में पीसकर लेप करना हितकर होता है। थोड़े समय लिप्त रहने के पश्चात् अम्लवर्ग के द्रव्यों (विशेष कर के कांजी) से परिषेक करें।

जयन्ती, सहिजन, तुलसी, सोंठ, इन्द्रजौ, नीमके पत्ते, जड़ फलों के साथ उबाले जल का परिषेक उरुस्तम्भ विनाश के लिए करना चाहिये।

शोभाञ्जन एक स्वेदजनन द्रव्य होने से शीत ज्वर में उपयोगी है। शीतज्वर में रूक्षता विशेष होने से वात का और स्निग्धता विशेष होने से कफ का अनुबन्ध माना जाता है। अतः वातशामक या कफशामक या वातकफनाशक क्रियाक्रम शीतज्वर में किये जाते हैं। आचार्य चरक ने "अधोष्णाभिप्रायाणां ज्वरितानामभ्यङ्गादीनुपक्रमानुपदेक्ष्यामः" कह कर जिस अगुर्व्वादि तैल का वर्णन किया है, इस तैल में शोभाञ्जनद्वय का उल्लेख

है। इस तैल की रोगी के मालिश करने से उसका शीतज्वर शान्त होता है। इसी तैल में वर्णित द्रव्यों को बारीक पीसकर सुखोष्ण प्रलेप, इन्हीं द्रव्यों से उबाले सुखोष्ण जल में अवगाहन किंवा परिषेक करना भी शीतज्वर में लाभप्रद है। ज्वर के उतर जाने पर जो रोगी को पथ्य दिया जाता हैं उसमें इसकी फलियों का शाक देना हितप्रद कहा गया है। यह शाक अन्य रोगों में दिया जाता है। लोक में इस शाक की बड़ी प्रशस्ति है। वस्तुतः शिग्रु नाम की शाक का पर्याय है—"शाकं हरितकं शिग्रुः"-अमरकोष। फलियों के गुण इस प्रकार कहे गये हैं—

शोभाञ्जनफलं स्वादु कषायं कफपित्तजित्।
शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्मघ्नं दीपनं परम्।।—यो. र.

उक्त रोगों में इस फली का शाक उपयोगी है किन्तु ये फलियां कड़ी और रेशेदार न हो तब ही इन्हें उपयोग में लाया जाना चाहिए। इनके अधिक रेशेदार हो जाने पर ये अनुपयोगी हैं क्योंकि इनसे पेट में आध्मान हो जाता है। तब ही तो आचार्यों ने इसे हरित वर्ग में वर्णित किया है। जो द्रव्य हरी या आर्द्र अवस्था में प्रयुक्त होते हैं उन्हें हरित वर्ग में वर्णित किया है। माघ-फाल्गुन में ये फलियां आनी प्रारम्भ हो जाती हैं। शाक के अतिरिक्त कहीं इसका अचार भी बनाकर खाया जाता है। दाल व अन्य शाकों में मिलाकर बनाया गया फली का शाक उत्तम स्वादिष्ट होता है। दाल या कढ़ी में इसकी फली को छीलकर टुकड़े कर डाल देने से फली भी पक जाती है फिर इस फली को चूसकर खाते हैं। अकेली फली को भी पानी में उबालकर उपयोग में लाया जाता है। फली के मुलायम हो जाने पर नीचे उतार कर उसमें से गर पदार्थ को निचोड़कर रख लेते हैं। इसमें चावल, दलिया, खिचड़ी आदि मिलाकर खाते हैं। इस सुप में धनियां (हरा) जीरा, अदरक, नमक, राई डालकर पुनः गर्म कर भी उपयोग मं लाया जाता है। यह कृमिनाशक एवं विबन्धहर है। वातविकारों में इस फली का शाक उपयोगी है।

पत्तों का शाक भी बनाया जाता है। इन पत्तों रोटी में ही मेथी की तरह सेककर खाना वातविकार रक्तविकारों में हितकारी है। यह किटिभकु (सोरायसिस) में भी हितकर है। इससे दस्त भी आता है।

पुष्पों की चटनी या शाक बनाकर खाना भी प्रकार लाभप्रद है। ये पुष्प शोथ एवं कृमिरोगी के लि विशेष हितकारी है। मधुशिग्रु का पुष्प चक्षुष्य एवं रक्त शामक कहे गये हैं। पुष्पों की चटनी बनाकर खाना में रोगी के लिए उपयोगी है। पुष्पों के साथ अदरख, पुदी लालमिर्च आदि पीसकर चटनी तैयार कर लें, इसे भोज के साथ खावें। इससे भोजन रूचिकर लगेगा।

यूनानी मत—यूनानीमतानुसार यह तीसरे दर्जे में गर और खुश्क होता है। इसकी जड़ कड़वी, शरीर के लि पौष्टिक विशेषतः फेंफड़ों के लिए पुष्टिकारक होती है यह कफनिःसारक, मृदुरेचक, मूत्रल और रक्तवर्धक है गले के रोग, छाती के रोग, शोथ, जख्म, खांसी, बवासी प्रमेह, कटिवात आदि में फायदा करती है। इसके फ कृमिनाशक, कफनिःसारक और पित्तविकारहर हैं। यूना हकीम इस फली को तिल्ली-यकृत् की वृद्धि में, जोड़ की सूजन दर्द में, लकवे में उपयोग में लाते हैं।

डाक्टरी मत—डाक्टर देसाई के मतानुसार शोभाञ्ज की जड़ की ताजी छाल कड़वी, तीक्ष्ण, गर्म, रूचिकारक दीपन, पाचन उत्तेजक, मूत्रल, कफघ्न, कोष्ठ वायु को दूर करने वाली तथा व्रणों के लिए हितकारी है। यह एक उत्तम अग्निवर्धक द्रव्य है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया यूरोप में पैदा होने वाली हार्स रेडिस नामक औषधि की क्रिया के समान होती है। इसकी पाचक क्रिया अनान तथा पपीता के समान प्रत्यक्ष रूप से नहीं होती, बल्कि यह गौंण रूप से आमाशय की रक्त संचालन क्रिया को बढ़ाकर अधिक पाचक रस उत्पन्न करती है। इससे आंतों को उत्तेजना मिलकर दस्त साफ हो जाता है। अड़से के

जिस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से कफ छूटता है वैसा इससे नहीं छूटता परन्तु मज्जातन्तु और हृदय को उत्तेजना मिलने की वजह से रोगी की खांसने की शक्ति बढ़ जाती है।

इसकी पसीना लाने वाली स्वेदन क्रिया मज्जा तन्तुओं के द्वारा रक्तवाहिनियों के द्वारा खास स्वेदपिण्ड पर होती है। इससे शरीर में दाह भी उत्पन्न होता है। मूत्रपिण्ड पर इसकी क्रिया स्पष्ट रूप से होती है। इसके प्रयोग से मूत्र का परिमाण और उसमें रहने वाले क्षारों का परिमाण तत्काल बढ़ जाता है। इसकी छाल को कुचल कर त्वचा पर बांधने से वह लाल हो जाती है वहाँ रक्तवाहिनियों का विकास होकर रक्त में सफेद कण जमा हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप व्रण की सूजन उतर जाती है। इसके साथ ही इसका अन्त: प्रयोग करने से पसीना और पेशाब होकर व्रण का विष निकल जाता है।

उदररोगों में इसकी छाल का फाण्ट बनाकर दिया जाता है। इसके साथ अन्य मूत्रल और विरेचक औषधियां भी दी जाती हैं। उदररोगों में (जलोदर, प्लीहोदर, यकृतदाल्युदर आदि में) शास्त्र के निर्देशानुसार नमक और पानी का परहेज आवश्यक है। ऐसी स्थिति में शोभांजन का अर्क देना उपयोगी है। यदि मूत्र पिण्ड में खराबी और सूजन आई हो तो सहजना कभी नहीं देना चाहिए। क्योंकि इससे मूत्रपिण्ड में दाह पैदा होकर विकृति बढ़ जाने की संभावना रहती है। ज्वर में इसके प्रयोग से पसीना और पेशाब होता है, मज्जातन्तु तथा हृदय को उत्तेजना मिलती है। कफज्वर में इसकी छाल का रस उपयोगी है।

डा. खोरी के अनुसार यह आक्षेपनिवारक, कफनिस्सारक व मूत्रल है। मूल का प्रलेप त्वचा पर उत्तेजना पैदा करता है। मूत्र में यूरिक एसिड़ जन्य पीड़ाओं में मूत्रल औषधियों की तरह यह दिया जाता है। अन्तर्विद्रधि, अश्मरी, अपस्मार, वातव्याधि, शोथ, कास आदि रोगों में यह लाभप्रद है।

डा. मुदीन शरीफ का कथन है कि मैंने इसकी जड़ का स्प्रिट में एक्सट्रैकट (Compound Sprit) बनाकर उपयोग किया है। मैं यह कह सकता हूँ भ्रम, मूर्च्छा, मज्जातन्तुओं की कमजोरी, आंतों का आक्षेप, हिस्टीरिया और कोष्ठवायु इत्यादि रोगों में यह बहुत ही उपयोगी है।

कर्नल चौपरा के अनुसार इसमें विद्यमान तत्व पेशाब की मात्रा बढ़ाते हैं। स्नेहिक गतिशील तन्तुओं पर असर डालते हैं तथा हृदय व सारे शरीर की कोमल मांसपेशियों में रहने वाले सूक्ष्म ज्ञानतन्तुओं पर अपना उत्तम प्रभाव डालता है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्यप्रयोग—

1. कालाजार—इस रोग में यकृत और प्लीहा बढ़ जाते हैं। अत: संहिजन की छाल का कपड़छन चूर्ण कर उसमें गोमूत्र मिलाकर औटावें तथा सुखोष्ण ही रोगी के यकृत प्लीहा क्षेप पर लेप कर दें।

2. कर्णरोग—(क) सहिजन की छाल के रस में बराबर तिल का तैल मिलाकर गर्म कर कान में डालने से कर्णशूल मिटता है। केवल ताजा रस भी डाल सकते हैं।

(ख) इसकी छाल और राई को पीसकर लेप करने से कान के नीचे की सूजन समाप्त होती है।

(ग) सहिजन के गोंद को बारीक पीसकर कान में भुरभुराने से कान से पीव आना बन्द हो जाता है।

3. शिर:शूल—पत्रस्वरस में कालीमिर्च पीसकर नस्य लें। इससे सिर का दर्द कम होता है।

4. स्नायुक (नहरूआ)—सहिजन की छाल, सहिजन के पत्ते और सेंधानमक समान मात्रा में लेकर सबको कांजी में पीसकर लेप करने से स्नायुक का नाश होता है।

5. वातरक्त—सहिजन की छाल और वरने (वरूण) की छाल को कांजी में पीसकर लेप करने से वातरक्त की वेदना शीघ्र शान्त हो जाती है।

6. प्लीहावृद्धि—सहिजन की छाल, देवदारू की छाल और मकोय के समभाग चूर्ण को गोमूत्र में पीसकर प्लीहा प्रदेश पर लेप करें।

7. अर्बुद—सहिजन के बीज, मूली के बीज, सरसों, चीड़ का काष्ठ चूर्ण, जौ और कनेर की जड़-इन सभी को समान मात्रा में लेकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण को तक्र में पीसकर लेप करने से अर्बुदादि का नाश होता है।

8. अपची—सहिजन की छाल और देवदारू के चूर्ण को कांजी में पीसकर लेप करने से अपची में लाभ होता है। लेप करने से पहले इसे गर्म कर उपयोग में लाना अधिक लाभदायक है।

9. गठान (उभार)—गठान की सूजन को बिखेरने के लिए सहिंजन के गोंद को पानी में पीसकर हल्का लेप करना चाहिये। पुनः लेप करने पर गर्म पानी से स्थान को धो लेना चाहिए।

10. विद्रधि—(क) सहिजन के रस में मधु मिलाकर या सहिजन छाल को पानी में पीसकर पतला लेप करें।

(ख) बैलाडोना प्लास्टर की तरह इसकी छाल को बारीक पीसकर इसे अपक्व विद्रधि पर बांध कर ऊपर से कपड़े की गीली पट्टी बांध देनी चाहिये।

(ड़) सहिजन मूल छाल, एरण्डमूल छाल, हारश्रृंगार की छाल का सुखोष्ण लेप वातज विद्रधि के लिए हितकारक है।

(च) सहिजन, सोंठ और काकड़ासिंगी का लेप कफज विद्रधि पर हितकर है।

11. शोथ (सूजन)—किसी चोट, व्रण आदि के कारण से या किसी अन्य कारण से शरीर के किसी अंग में सूजन आ गई हो तो सहिजन की ताजा जड़ को पीसकर पुल्टिस बनाकर बांधने से वह सूजन उतर जाती है। किन्तु यह पहले भी लिखा जा चुका है कि इसके लेप से त्वचा पर जलन होती है यहाँ तक कि कभी कभी फुन्सियाँ भी हो जाती हैं। अतः इसके किसी प्रकार के लेप करने से पहले पूरा ध्यान रखें।

12. दारूणक (सिर की रूसी या डेण्ड्रफ)—सहिजन के पत्तों का रस निकालकर सिर में मलना चाहिये। इस रस को तीन-चार घन्टे रख कर फिर अरीठे के पानी से सिर को धोना चाहिये।

13. दन्तरोग—(क) सहिजन का गोंद मुँह में रखने से दाँतों का सड़ना बन्द होता है। ऐसे रोगी को कुछ दिन यह प्रयोग निरन्तर करना चाहिये।

(ख) इसकी छाल का क्वाथ बनाकर इस क्वाथ के कुल्ले (गरारे) करने से दन्तकृमि नष्ट होते हैं।

14. त्वचारोग—सहिजन की जड़ की छाल को कूटपीस कर कल्क (लुगदी) बनाकर इसे सरसों के तैल में डालकर खूब पका लें। फिर इस तैल को छानकर रखें। इस तैल में लगाने से खाज-खुजली, सूजन आदि मिटते हैं।

15. नेत्ररोग—(क) किसी भी दोष के कारण आँख दुखने आई हो तो सहजन के पत्तों के रस में समान भाग उत्तम मधु मिलाकर टपकाने से वेदना होती है।

(ख) इसकी कोमल शाखाओं के रस में शहद मिलाकर नेत्रों में टपकाने में रतौंधी मिटती है।

16. दूषितजल—इसके बीजों का चूर्ण पानी की गन्दगी को भी दूर करता है। अतः दूषित जल को शुद्ध करने हेतु इसे उपयोग में लाना चाहिये।

17. आमवात—(क) बीजों को पानी में पीसकर थोड़ा गर्मकर जोड़ों पर लेप करने से आमवात का दर्द कम होता है।

(ख) ताजा जड़, सरसों और अदरख को पीसकर लेप तैयार कर लें। इसका कुछ दिन प्रयोग करना आमवात के रोगी के लिए हितकर है।

(घ) इसके बीजों को यन्त्र में दबाकर निकाले हुये तैल की मालिश करने से जोड़ों का सूजन और उनमें होने वाली वेदना का शमन होता है।

18. सुजाक—60 मि.लि. के लगभग शोभांजन की छाल के स्वरस को कुछ गरम कर ठन्डा कर पिचकारी द्वारा मूत्राशय में प्रविष्ट करना चाहिये। इस प्रकार नित्य दिन में दो बार के प्रयोग से इस रोग में चमत्कारिक गुण देखने को मिलते हैं।

19. स्वरभेद—इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर थोड़ा ठन्डा कर इससे गरारे करें। इससे गले का बैठना, गले की खराश, स्वरभंग और मुंह के छालों में आराम मिलता है। इससे तुण्डिकेरी (टान्सिल) में भी लाभ होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

1. जलोदर—सहिजन की जंड़ की छाल का स्वरस या इसका क्वाथ बनाकर पिलाने से जलोदर, तिल्ली और यकृत की सूजन में फायदा होता है। यह प्रयोग पथरी के रोगी के लिए भी लाभप्रद है।

2. वृक्कशूल—सहिंजन और सोंठ के क्वाथ में शु. हिंगु चूर्ण मिलाकर रोगी को पिलावें। इससे वृक्कशूल के रोगी को लाभ मिलता है। साथ में अन्य भी उपयोगी योगों का सेवन भी आवश्यक है। ऐसे रोगों में विशेष चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

3. अश्मरी—(क) सहिंजन की छाल, वरूण, गोखरू, मकोय, पुनर्नवा सोंठ और अमलतास समान भाग लेकर इसके 20 ग्राम द्रव्यों का क्वाथ बनाकर दिन में दो बार देने से अच्छा लाभ होता है।

(ख) सहिजन और वरूण के क्वाथ में एक ग्राम यवक्षार मिला कर रोगी को पिलावें।

(ग) सहिजन के छाल के रस में एक ग्राम कलमी शोरा मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र के साथ अश्मरी का शमन होता है।

4. मूत्रकृच्छ्र—(क) इसके फूलों को पीसकर मिश्री मिलाकर सेवन करना मूत्रकृच्छ्र हितकारी है।

(ख) सहिजन का गोंद 10 ग्राम का चूर्ण दही में मिलाकर सेवन करना मूत्रकृच्छ्र में लाभदायक है। इसे सात दिनों तक निरन्तर सेवन करें।

5. आमवात—(क) सहिंजन छाल का स्वरस 25 मि.लि. लेकर उसमें डेढ़ ग्राम सेंधानमक और 10 ग्राम शहद मिलाकर दें। इसी प्रकार शाम को भी अर्थात् दिन में दो बार दें।

(ख) इसकी जड़ की छाल का क्वाथ पिलाना आमवात के रोगी के लिए लाभदायक होता है। इस क्वाथ के पीने से जिन व्यक्तियों के हाथ-पैरों में बायंटे आते हैं उन्हे भी आराम मिलता है।

6. अर्श (बवासीर)—सहिजन के जड़ की छाल को सुखा कर इसका चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में छोटी हरड़ का चूर्ण और पीपर का चूर्ण भी मिला लें। तीनों चूर्ण की मात्रा बराबर होनी चाहिये। इस मिश्रण के बराबर मिश्री को पीसकर भी मिला लें। यह चूर्ण 4-5 ग्राम सेवन करने से सभी प्रकार के अर्श में लाभ होता है।

7. विद्रधि—(क) सहिजन की अन्तर्छाल का रस 20 मि.लि. में मधु मिलाकर पिलावें।

(ख) कज्जली (पारद गन्धक की) में सहिजन रस की 10-12 भावना देकर सुखाकर 250 मि.ग्रा. कज्जली प्रातः सायं शहद के साथ सेवन करावें।

(ग) शोभाञ्जन छाल 35 ग्राम को दो लिटर पानी में औटाकर छानकर पीने से लाभ होता है।

(घ) 20 ग्राम कुचली हुई इसकी छाल को 375 मि.लि. दूध और 125 मि.लि. पानी में औटाकर दूध मात्र शेष रहने पर छानकर विद्रधि के रोगी को भूख लगने पर पिलाना चाहिये।

(ङ) सहिजन की छाल, बरने की छाल, अजवायन, हल्दी, दारूहल्दी और पीपलवृक्ष की छाल सब समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनाकर इसमें बोलचूर्ण डालकर रोगी को पिलावें।

8. उदरशूल—सहिंजन के गोंद का चूर्ण 3 ग्राम को गरम जल से देने से उदरशूल तत्काल बन्द हो जाता है।

9. रक्तचाप—रक्तचाप में शोभाञ्जन पत्रस्वरस या पुष्पस्वरस अथवा छाल का क्वाथ अथवा फली का साग ये सभी उपयोगी हैं अतः इनमें से किसी भी उपाय से रक्तचाप को नियंत्रण करने का प्रयास करना आवश्यक है। क्वाथ में मधु मिलाकर देना दोनों रक्तचाप में हितकर है।

10. कृमिरोग—(क) इसके बीजों का चूर्ण पेट के कीड़ों को नष्ट कर देता है। साथ में पुष्करमूल चूर्ण मिलाकर देना अधिक हितकारी है।

(ख) शोभाञ्जन और अग्निमाथ का क्वाथ बनाकर पीना भी कृमिरोगनाशक है।

(ग) शोभाञ्जन और त्रिफला का क्वाथ पीना भी हितकारक है।

(घ) सहिजन, सरसों, राई, अर्कमूल, सैन्धव, पिप्पली, चित्रक और सोंठ के चूर्ण को तुषोदक के साथ सेवन करें।

11. श्वास रोग—मूल का रस औरं अदरक का रस मिलाकर पिलावें।

12. कुष्ठरोग—शोभाञ्जन, चित्रक को दही के मण्ड में मिलाकर वातज, कफज कुष्ठ रोगी को सेवन करावें। साथ में ही इस शोभाञ्जन के पत्तों का शाक बनाकर रोगी को खिलावें।

12. प्रतिश्याय—पुष्पचूर्ण का सेवन उष्णजल के साथ सेवन करना प्रतिश्याय में लाभप्रद है।

13. वातरोग—सहिजन के क्वाथ के साथ में सोंठ, कालानमक, शु. सुहागा और शुद्ध हींग का समभाग चू[illegible] बनाकर सेवन करें।

14. श्वानविष—सहिंजन के पत्तों के रस में लहसु[illegible] हल्दी, नमक और कालीमिर्च को पीसकर पिलाना [illegible] लेप करें।

15. प्लीहोदर—(क) सहिजन के क्वाथ में पिप्प[illegible] कालीमिर्च, अम्लवेत और सेंधानमक का सममात्रा [illegible] एक ग्राम चूर्ण मिलाकर सेवन करावें।

(ख) सहिजन की छाल के क्वाथ में चित्रक, पीप[illegible] सैंधव चूर्ण मिलाकर या यवक्षार व पलाशक्षार मिला[illegible] सेवन करावें।

16. शिरःशूल—पत्रस्वस में कालीमिर्च चू[illegible] मिलाकर पिलाना वातज, कफल, शिरःशूल में हितक[illegible] कहा गया है। इसका दिन में दो बार कुछ दिनों त[illegible] नियमित सेवन करना चाहिये।

17. कटिशूल-सहिजने का गोंद एक ग्राम, पी[illegible] (अश्वत्थ) के फल का चूर्ण एक ग्राम और अश्वग[illegible] चूर्ण एक ग्राम सुबह सेवन करना चाहिये। इसी प्रक[illegible] तीनों का तीन ग्राम चूर्ण सायं काल भी सेवन कर[illegible] चाहिये। इसमें अनुपान हेतु सोंठ का चूर्ण डालकर औट[illegible] दूध पीना चाहिए। यह कटिशूल की उत्तम औषधि है[illegible] इससे विशेषतः स्त्रियों को होने वाला कटिशूल दूर हो[illegible] है।

18. मेदोरोग—सहिजन की अन्तः छाल 10-1[illegible] ग्राम को 200 मि.लि. जल में उबालकर 50 मि.लि[illegible] रखकर इसमें एक ग्राम शिलाजीत और दो ग्राम गु[illegible] मिलाकर कुछ दिनों तक पिलाना मेदोरोग में लाभदा[illegible] है।

विविध कल्प—

1. शोभांजनवटी—सहिजन की छाल ए[illegible] किलोग्राम लेकर एवं उसके पत्ते एक किलो लेकर औं[illegible] कर सात लीटर पानी में औटावें जब एक लीटर [illegible]

शेष रहे तब उसे छानकर उस छने हुये क्वाथ को कढ़ाई में डालकर आग पर चढ़ाकर पुनः गरम करें और उसमें सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल 20-20 ग्राम, असली हीरा हींग घी में भुनी हुई 5 ग्राम, कालानमक 40 ग्राम का कपड़छन चूर्ण मिलाकर इतना गर्म करें कि गोली बनने योग्य गाढ़ा हो जाये फिर इसकी मटर बराबर गोलियां बनाकर सुखाकर रख लें। इसे वायु रोगों में उचित अनुपान के साथ प्रयोग करावें। *—धन्व. जुलाई 2003*

2. शोभांजन गुग्गुल—एक किलो शोभांजन की छाल को चार लिटर पानी में औटाकर एक लिटर शेष रहने पर छानकर पुनः पकावें। जब वह गाढ़ा हो जाय तो उसके बराबर उसमें शुद्ध गुग्गुल डालकर भली प्रकार से मिश्रण कर लें। किंचित् घृत के सहयोग से इस गाढ़े मिश्रण की एक-एक ग्राम मात्रानुसार गोलियाँ बनाकर सुखा लें। सेवन काल में दो-दो गोली दिन में दो बार चबाकर पानी के साथ दें। शरीर पर कहीं भी व्रणशोथ-विद्रधि आदि हुये हों रोगी को दें। अनुपान में शोभांजन पत्रस्वरस देवें तो अधिक लाभप्रद है।

—सुधा. अगस्त 92

3. शोभांजन पाक—सहजने का गोंद 250 ग्राम लेकर उसके छोटे टुकड़े कर उसे घी में तल लेना चाहिये। फिर गेहूँ का थोड़ा मोटा आटा 500 ग्राम लेकर उसे 500 ग्राम घी में भूनकर उसमें 500 ग्राम गुड़ और सोंठ चूर्ण 45 ग्राम मिलाकर उसमें गोंद मिलाकर 30-35 ग्राम के लड्डू बनाकर सेवन करने से गृध्रसी, उरूस्तम्भ, शीतवात आदि रोग मिटते हैं। मात्रा एवं अनुपान रोगानुसार निर्धारित करना चाहिये। *—वनौ. चन्द्रोदय*

4. शोभांजनादि कलहंस (काञ्जिक)—सहिजने की बीज नग 18, कलीमिर्च नग 10, छोटी पीपल 20, अदरक 50 ग्राम, गुड़ 50 ग्राम, कांजी 2 लिटर 350 मि. लि., विडलवण 50 ग्राम लेकर स्वच्छ बर्तन में रखकर मथानी से मथना चाहिये। फिर इसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर का चूर्ण मिश्रित 50 ग्राम डाल दें। मात्रा-20-25 मि.लि.। इसके सेवन से सभी प्रकार के व्यंजन भली प्रकार से पच जाते हैं। इसे कलहंस कांजी कहते हैं। *—च.द.*

कांजी निर्माण विधि—चावलों को जल में पका, मिट्टी के घड़े में तीन गुने जल में डाल, घड़े के मुंह को कपड़े से बांधकर सात दिनों तक रख दें। खट्टा हो जाने पर छानकर उपयोग में लावें। यही कांजी है।

5. शोभांजनादि तैल—सहिजन के बीज, भटकटैया के बीज और जमाल गोटे के बीज, त्रिकटु, बेल के पत्ते समान भाग लेकर कल्क बना कर, कल्क से चतुर्गुण तैल डालकर तैल सिद्ध कर लें। इसे फिर छानकर रखें। इस तैल का पीनस के रोगी को नस्य देना चाहिए।

—शालाक्य तंत्र

6. शोभांजनादिलेप—सहिजन की छाल, हरसिंगारपत्र, एरण्डमूल, जौ, गेहूँ और मूंग-इन छः द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर जल में पीसकर थोड़ा गर्म कर वातज विद्रधि (लाल एवं खुरदरी विद्रधि) पर लेप करना चाहिये। *—शा.सं.*

7. शोभांजनादिनस्य—सहिजन की जड़ का रस और तुलसी के पत्तों का रस (या पत्रचूर्ण) एकत्र मिलाकर नस्य देने से सन्निपात की मूर्च्छा जाती रहती है। *—ग. नि.*

पेटेन्ट प्रयोगों में शोभाञ्जन—

अश्मरी रोग से पीड़ित रोगी को प्रतिदिन चरक की कैलक्यूरी गोली देनी चाहिये। इस कैलक्यूरी गोली में सहजनाछाल, धमासा, गोखरू, पलाशपुष्प, इलायची, शिलाजीत, हजरूलयहूदभस्म आदि हैं। दो-दो गोली दिन में दो-तीन बार लेना लाभदायक है।

श्री रूद्रदेव आयुर्वेद भवन नयागाँव-सारण (बिहार) का एक महत्वपूर्ण उत्पादन है-"बक्टो कैपसूल"। इसे आयुर्वेदिक एण्टीबायोटिक कहा जा सकता है। इसमें शोभाञ्जन छाल के अतिरिक्त स्वर्णक्षीरी, कालीमिर्च,

गूगल, अमृता त्रिफला और शुद्ध पारद-गन्धक है। पारद-गन्धक की कज्जली के साथ उक्त सभी द्रव्यों को खूब घोटकर कैपसूलों में दवा भरी जाती है। एक-एक कैपसूल दिन में तीन बार दिया जाना चाहिए। इसके सेवन से फोड़े-फुन्सी, उपदंश, सुजाक, घाव, सूजन, न्यूमोनिया एवं अन्य संक्रमण जन्य व्याधियों का प्रशमन होता है। एक शूलान्जिन कैपसूल भी इनके द्वारा तैयार किया जाता है जो अपने नाम के अनुरूप शिरः शूल आदि विभिन्न प्रकार के दर्दों से छुटकारा दिलाता है। तीव्रावस्था में दो कैपसूल अन्यथा एक-एक कैपसूल सुखोष्ण जल से लिया जाता है। इसके घटकद्रव्य है-शोभांजननिर्यास (गोंद), स्फटिक भस्म, सुरंजान, पिप्पली, रसोनसत्व, गैरिक, अतीस और गोदन्ती भस्म।

कौशिक आयुर्वेद भवन का एक उपयोगी योग है-'रूमारन सीरप' जो समस्त वातरोगों की असरदार दवा है। हृदयरोगी और आमवात के रोगी के लिए यह बहुत लाभदायक है। इसमें शोभांजन की छाल, दशमूल, घृतकुमारी, असगन्ध, विषतिन्दुक, रसोन, अजमोद, सोंठ, हींग आदि हैं। दो-तीन चम्मच दवा दिन में तीन बार अन्य किसी योग के साथ अनुपान के रूप में उपयोगी है। दवा के साथ उष्ण जल का मिश्रण आवश्यक है।

अंजनी फार्मास्युटिकल्स मण्डी दीप के द्वारा चेहरे पर निखार व चमक लाने के लिए 'निखार लेप' प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रयोग से मुंहासे, काले धब्बे, झांइयां आदि मिटती हैं। इस लेप में सहिजन की छाल, हल्दी, दारूहल्दी, रक्तचन्द्र, समुद्रफेन और मुलेठी आदि हैं।

'डाययूरिस्टोन टेबलेट्स' के निर्माता हैं-अजमेरा फार्मास्युटिकल्स। यह टेब अश्मरी-मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में उपयोगी है। इसमें वरूण, एरण्ड, कंकोल, गोखरू, पाषाणभेद, सारिवा आदि में सहजना, वरूण गोखरू, अम्यामलकी आदि के स्वरस-क्वाथ की भावना दी जाती है। एक दो गोली दिन में तीन बार दें।

मेडिलिंक्स लेबोरेटरीस के द्वारा बनाये गये "पावरे कैपसूल" में सहिंजन, असगन्ध, पीपल, कबाब चीनी आदि हैं। यह नाड़ीशूल, कमरदर्द, सन्धिवात आदि में उपयोगी है। दूध के साथ दो कैपसूल रात में खाने के बाद देने चाहिये। मेडिलिंक्स के 'अलरका लेहम्' में भी सहिंजन है। यह खांसी की उत्तम दवा है। एक-एक चम्मच दिन में तीन बार देना ठीक है। इसमें अकरकरा, शतावरी, सारिवा, मधु, गुड़ आदि हैं।

संधिगत वात पीड़ा के उपचार के लिए "रूमालि सीरप" गोस्वामी ड्रग्स द्वारा तैयार किया जाता है जिसे दो-दो चम्मच दिन में तीन बार उष्ण जल मिलाकर दिये जाते हैं। इसमें शोभांजन, प्रसारिणी, इन्द्रायनफल, मकोय, कुमारी आदि हैं।

हिमालय ड्रग कम्पनी द्वारा जो गेसेक्स टिकिया बनाई जाती है इसमें कई गैसहर द्रव्यों में सहिंजन, पोदीना, पीपता आदि के स्वरस-क्वाथ की भावना दी जाती है जिससे यह अधिक प्रभावशाली बनती है।

अनुभूत प्रयोग—

1. गृध्रसीहर उत्तम प्रयोग—सहजने की जड़ की छाल की अन्तर छाल 100 ग्राम को 500 मि.लि. जल में एक या दो घन्टे डालकर अच्छी तरह मसलकर आंच पर रख दें। आठवां भाग शेष बचने पर अच्छी तरह मसलकर छान लें। उसमें अजवायन 500 मि.ग्रा., सोंठ 500 मि. ग्रा. और शुद्ध हींग 125 मि.ग्रा. डालकर शीतल होने पर पीयें। इससे गृध्रसी मात्र तीन दिनों में तथा गठियावात, पक्षाघात, अर्धाङ्गवात एवं अन्य वातज रोग पन्द्रह दिनों में नष्ट हो सकते हैं। इसका सेवन दोनों समय (प्रातः सायं) खाली पेट करना चाहिए। प्रयोग सेवन के समय वातरोगों के अनुसार पथ्यापथ्य का भी पालन आवश्यक है।

—डा. श्री विजयकुमार पाठक
(कल्याण) आरोग्य अंक 2001

2. अष्ठीलाशोथहर प्रयोग—पुरूषों में 60 वर्ष के पश्चात् अधिकतर रात्रि में बहुमूत्रता एवं प्रदाहपूर्वक मूत्र

या मूत्रावरोध के साथ यह रोग पाया जाता है। रोगी को मूत्र निष्कासन के लिए कैथीटर तक लगा देना पड़ता है। इसमें शिग्रु एवं वरूण का संयुक्त क्वाथ 15 दिन में ही लाभ करना आरम्भ कर देता है। अपानवायु के वेग को दूर करने एवं मूत्रवह स्रोतस की पेशी को ऊर्जा एवं बलप्रदान के लिए हिंगु-कुपीलु चूर्ण 500 मि.ग्रा. की मात्रा में उक्त क्वाथ के साथ दिया जाता हैं अष्ठीला शोथ के निराकरण के लिए कम से कम तीन मास तक इस क्वाथ का प्रयोग करना चाहिए। यह वृक्क शोथ में भी कार्य करता है। ***—प्रो. ज्योतिर्मित्र आचार्य***

(सुधा. मई 2004)

3. मूत्रवह संस्थान और सामान्यतया हृदय को ठीक रखने के लिए एक प्रयोग—सहिजन की छाल, वरूण छाल, अर्जुन की छाल, पुनर्नवामूल, लघु पंचमूल (सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू), तृणपंचमूल (कुस, कास, दर्भ, सरकण्डा और गन्ने का मूल) और त्रिफला को समानभाग लेकर यवकुट करके 25 ग्राम प्रतिदिन प्रातः मृतपात्र में उबालकर क्वाथ बनाकर पीना चाहिये। यह योग हृदय तथा मस्तिष्क के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इससे मूत्र और शौच साफ आता है। ***—वैद्य श्री दयाराम अवस्थी***

(धन्व. जन. 2004)

4. वेदनान्तक कवच—सहजने का उत्तम दानेदार गोंद पीसकर एक ग्राम को कैपसूल में भर लें। एक-एक कैपसूल गर्म दूध के साथ आवश्यकतानुसार दें। शरीर के किसी भी भाग में वेदना हों शीघ्र शमन करते हैं।

—श्री मोहम्मद सिद्दीकी

(सुधा. जुलाई 75)

5. जलोदर में उपयोगी प्रयोग—सहजने के बीज का चूर्ण खरल में डालकर ऊपर से इतना थूहर का दूध डालें कि चूर्ण अच्छी तरह ढक जावे। फिर से खरल करते करते गाढ़ा कर 350 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। आवश्यकतानुसार एक-दो गोली प्रातः सायं जल के साथ देने से जलोदर में जल शोषण होकर लाभ होता है।

—पं. श्री शिव शर्मा

(धन्व. उदररोगांक)

6. कटिशूलहर प्रयोग—सहजने का गोंद पिसा हुआ, पीपल के फल का चूर्ण और अश्वगन्धाचूर्ण तीनों बराबर मात्रा में लेकर मिश्रित कर रखें। सोंठ डालकर औटायें गोदुग्ध के अनुपान से दिन में दो-तीन बार 3-3 ग्राम चूर्ण सेवन करें। सभी प्रकार के कटिशूल की यह प्रशस्त औषधि है। यह विशेषतः स्त्रियों के लिए हितकर है। निरन्तर 15-20 दिनों तक देने से उत्तम लाभ होता है। इसके सेवन से पूर्व यदि एरण्डस्नेह दे दिया जाय तो अधिक लाभ होता है। ***—वै. गोपीनाथ पारीक***

(सुधा. अनु. प्रयोग रत्नाकर)

7. सर्पविषहर प्रयोग—सहजने के बीजों को सिरस के पुष्प स्वरस में सात दिनों तक भावित कर खरल करते रहें। बाद में गोलियां बनाकर रख लें। गोलियों का नेत्रों में अंजन करने, नस्य देने एवं इन्हें खिलाने से सर्पविष में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

—कविराज श्री रूद्रनारायण सिंह

(सुधा. विष चिकित्सांक जुलाई 1976)



● सम्पादकीय टिप्पणी—

गुद विद्रधि में शिग्रु गूगल का प्रभाव एक अनुभव

गुदविद्रधि (एनल फिसर) में शिग्रू गूगल का अप्रतिम प्रभाव देखने को मिलता है। हमने ऐसे कई गुदविद्रधि के रोगी जो शल्य चिकित्सा के लिए तैयार थे शिग्रु गूगल एवं जात्यादि तैल के प्रयोग से ठीक किए हैं। शिग्रु गूगल 1-2 गोली सुबह-शाम जल के साथ 3-4 माह प्रयोग करने एवं जात्यादि तैल का पिचु धारण करने से इस रोग से स्थाई लाभ मिल जाता है। शिग्रु गूगल निर्माण इसी प्रकरण में 221 पृष्ठ पर प्रकाशित शोभाञ्जन गूगल के अन्तर्गत दिया गया है पाठक उसे देखकर बना सकते हैं।

—वैद्य गोपालशरण गर्ग

सप्तपर्ण
(Alostonia Scholaris)

प्रातः काल उठते ही मनुष्य अपने अच्छे प्रभात की कामना करता है, क्योंकि प्रभात अच्छा रहने पर सारा दिन अच्छा बीतता है। इस अच्छे प्रभात के लिए जिनसे प्रार्थना की जाती है उनमें सप्तसागर, कुल, पर्वत, ऋषि आदि भी हैं—

सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

इन सात सात के समूहों में सप्त वृक्ष भी है—

विल्वो निम्बः कदम्बश्च पिप्पलः सप्तपर्णकः।
सहकारः शिरीषश्च सप्तवृक्षा शुभाः सदा।।

इनका पर्यावरणीय महत्व है। प्रातः काल भ्रमण हेतु जब नगर के बाग-बगीचों में या ग्राम के बाहर जावें तो इन वृक्षों को नमन करें और अपने आरोग्य की कामना करें। सप्तवृक्षों में से जब सात सात पत्तों वाला सप्तपर्ण वृक्ष के पास आप जायें तो यही प्रार्थना करें—

हे सप्तपर्ण हे सप्तपर्ण
अब नमन तुम्हें करते हैं।
नित आरोग्य वितर हे तरूवर
यही विनय हम करते हैं।

वस्तुतः यह सप्तपर्ण बहुत उपयोगी वृक्ष है। भगवान् चरक ने तिक्तस्कन्ध और कषायस्कन्ध की वनौषधि को कुष्ठघ्न, उदर्द प्रशमन और शिरोविरेचन श्रेष्ठ कहा है। महर्षि सुश्रुत ने इसे अधोभागहर (विरेचनोपयोगी) कहा है तथा आरग्वधादिगण और लाक्षादिगण में इसकी गणना की है। इन दोनों गणों के गुणों को इन श्लोकों में व्यक्त किया गया है—

आरग्वधादिरित्येष गणः श्लेष्मविषापहः।
मेह कुष्ठज्वरवमीकण्डूघ्नो व्रणशोधनः।।

—*सुश्रुत. सू. 38-7*

लाक्षादिगण—

कषायस्तिक्तमधुरः कफ पित्तार्तिनाशनः।
कुष्ठकृमिहरश्चैव दुष्टव्रणविशोधनः।।

—*सु. सू. 38-65*

सप्तपर्ण कुटजकुल की वनौषधि है। इस कुल का अंग्रेजी नाम एपोसाइनेसी है। भावप्रकाश निघन्टु के वाटदिवर्ग में इसका वर्णन हुआ है। आचार्य प्रियव्रतजी ने विषमज्वरघ्न द्रव्यों में सर्वप्रथम इसका वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—सप्तपर्ण, विशालत्वक्, शारद, विषमच्छद।

हिन्दी—सतौना, छितवन, छतिवन

गुजराती—सातवण

मराठी—सातवीण

बंगला—छातिभ

पंजाबी—सतौना

तामिल—पाला

तेलगू—एड़ाकुलरिटि

मलयालम—पाला

कन्नड़—मड्डाले

अंग्रेजी—डिटा

लैटिन—ऐल्स्टोनिया स्कालरिस (Alstonia Scholaris)

प्राप्ति स्थान—समस्त भारत में उष्ण एवं समशीतोष्ण कटिबन्धीय प्रान्तों में जहाँ वर्षा अधिक होती है, इसके वृक्ष पाये जाते हैं। हिमालय प्रदेश में तीन हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह बंगाल एवं दक्षिण भारत के पश्चिमीतट प्रदेशीय जंगलों में विशेषत: पाया जाता है। स्थान स्थान पर बाग-बगीचों में, सड़क के किनारे लगाये हुए भी इसके वृक्ष देखे जाते हैं।

रासायनिक संघटन—इसकी छाल में डिटेमिन, एकिटेमिन, एकिटेनिन, एकिकाऊचिन, एकिसरीन, एकिटिन, एकिरेटिन, वसाम्ल तथा वसायुक्त रालमय पदार्थ पाये जाते हैं। कुल क्षाराभों में एकिटेमिन प्रमुख है।

वानस्पतिक परिचय—इसका चिरहरित वृक्ष 40-50 फीट ऊँचा होता है। इसका तना भूमि के पास प्राय: बहुत मोटा होता है और शाखायें प्राय: चक्रों में निकलती रहती हैं। इसकी छाल स्थूल होती है तब ही इसका नाम विशालत्वक् है। यह छाल भंगुर होती है। इस छाल में कोई विशिष्ट गंध नहीं होती पर इसमें स्थाई रूप से अत्यन्त तिक्त स्वाद होता है। यह छाल बाहर सफेद किन्तु भीतर प्राय: पीत होती है। छाल आदि वृक्ष के किसी अंग को काटने या छेदने से श्वेत दुग्ध निकलता है। पत्र लगभग सात की संख्या में (सप्तपर्ण), 4-6 इंच लम्बे तथा एक-डेढ़ इंच चौड़े होते हैं। इनका ऊपरी पृष्ठ चिकना-हरा तथा निचला पृष्ठ श्वेताभ होता है। इन पत्तों का आकार-प्रकार प्राय: सेमर (शाल्मली) के पत्तों जैसा होता है। तब ही इसके परिचय में कहा गया है—

सप्तपर्णः शाल्मलीपत्रसदृशो गजमदगन्धपुष्पः शरदि विकसनशीलः उच्चैर्वृक्षः *—डल्हण*

इसके पुष्प गुच्छों में (सप्तपर्णो गुच्छपुष्पः-शिवदत्त) हरिताभ श्वेतवर्ण के छोटे छोटे पांच पंखुरी वाले गजमद के समान सुगन्धित होते हैं। कहते हैं कि इन पुष्पों को सूंघने से शिर में दर्द होने लगता है—

तत्पुष्पमुग्रगन्धि स्याद्
घ्रणाच्छिरसिशूलकृत्। *—प्रियनिघन्टु*

इसकी फलियाँ लगभग एक फुट लम्बी, कुछ टेढ़ी व चपटी, दो-दो एक-एक साथ नीचे लटकी हुई होती हैं। बीज-छोटे, सफेद होते हैं जिनके दोनों किनारों पर रूई सी लगी होती है। फलियां पकने पर स्वयं फट जाती है और बीज हवा में उडकर विखर जाते हैं ये शीतकाल में लगती हैं।

रस—तिक्त, कषाय

गुण—लघु, स्निग्ध

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

दोषकर्म—कफपित्तशामक। धन्वन्तरि निघन्टु और सिद्धमन्त्र में इसे त्रिदोषहर कहा गया है।

उपयोगी अंग—छाल, दूध, पुष्प आदि। अधिकतर छाल ही उपयोग में लाई जाती है।

मात्रा—क्वाथ (छाल 10-20 ग्राम)—50-100 मि. लि.

स्वरस—10-20 मि.लि.

चूर्ण—3-6 ग्राम, घनसत्व—2-4 ग्राम

दूध—5 बूंद

संग्रह एवं संरक्षण—शीतकाल में पुराने वृक्षों से छाल ग्रहण कर छाया में सुखाकर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में सुरक्षित रखें।

वीर्यकालावधि—छाल—2 वर्ष पर्यन्त

सत्व—दीर्घकाल तक

साहित्य में सप्तपर्ण का वर्णन—शरद् ऋतु में सप्तपर्ण के पुष्पित होने से इसका एक नाम कोषा कारों ने शारद भी रखा है। इसी ऋतु में सहचर, असन आदि भी खिलते हैं। ऋतुवर्णक प्रसंग में सुश्रुतसंहिता में भी

(सूत्र-6) इसका वर्णन मिलता है। ऋतुओं का सरस काव्यात्मकवर्णन महाकवि कालिदास विरचित ऋतुसंहार में किया गया हैं। शरद् ऋतु के प्रसंग में सप्तपर्ण का वर्णन मिलता है–

नृत्य प्रयोगरहिताञ्छिखनो विहाय
हंसानुपैति मदनो मधुरप्रगीतान्।
मुक्त्वा कदम्बकुटजासर्जनीपान्
सप्तच्छदानुपगता कुसुमोग्दम श्रीः।।

अर्थात् हे प्रिये, शरद् ऋतु में कामदेव नाचने में अयोग्य मोरों को जानकर, उन्हें छोड़कर हंसों को प्राप्त कर रहा है और पुष्पों की उत्पत्तिश्री, कदम्ब-कटुज-अर्जुन और सर्ज आदि वृक्षों को त्याग कर सप्तपर्ण के वृक्ष पर जा रही है।

वनेचरों से वनौषधियों के नाम रूप तथा प्रयोग के ज्ञान की परिपाटी इतिहास सिद्ध है। सिनकोना का परिचय वनेचरों से ही संस्कृत समाज को हुआ, जिससे अन्त में क्वीनाइन निकाली गई। तमाखु का भी यही इतिहास है। इसी प्रकार यह सप्तपर्ण भी किरातों से ही विदेशों में जाना गया। संस्कृत भाषा के महाकवि भारवि का "किरातार्जुनीयम्" नामक महाकाव्य प्रसिद्ध है। इसमें किरातरूपधारी शिव और अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। सप्तपर्ण के पुष्पों की गन्ध और हाथियों के गण्डस्थल के झरने वाले मद की गन्ध में साम्यता प्रकट करने वाला इसी महाकाव्य के प्रथम सर्ग में एक श्लोक आया है जिसमें दुर्योधन के राजवैभव का वर्णन मिलता है–

अनेकराजन्यरथाश्वसंकलं
तदीयमास्थाननिकेतनाऽजिरम्।
नयत्ययुग्मच्छदगान्धिरार्दतां
भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः।।

इसी कथन की साम्यता का एक श्लोक रघुवंशमहाकाव्य के पंचम सर्ग में भी आया है–

सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाधाय मदंतदीयम्।
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा वभुवुः।।

अज की सेना का पड़ाव जब नर्मदा के तट पर पहुंचा तो नदी से एक जंगली हाथी निकला। अज की सेना के हाथी सप्तपर्ण के समान गन्ध वाले उस हाथी के मद को सूंघकर भागने लगे।

गुणधर्म विवेचन–

सप्तपर्णो व्रणश्लेष्मवातकुष्ठास्रजन्तुजित्।
दीपनः श्वासगुल्मघ्नः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः।।
—भा.प्र.नि.

सप्तपर्णः सुतिक्तः स्यादुष्णो वातकफापहः।
विषमज्वरकुष्ठास्रदोषजन्तु व्रणान् जयेत्।।
—प्रि.नि.

सप्तपर्णो व्रणश्लेष्मवातकुष्ठहरःसरः।
—म.वि.नि.

त्रिदोषशमनो हृद्यः सुरभिर्दीपनः सरः।
शूलगुल्मकृमीन् हन्तिकुष्ठं शाल्मलिपत्रकः।।
—ध.नि.

आचार्य भालुकि के अनुसार जो ज्वर गरमी या सर्दी लगकर अनियतकाल में आता है, जिसका वेग भी विषम होता है, उसे विषमज्वर कहते हैं–

यः स्यादनियतकालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमो ज्वरः सविषमः स्मृतः।।

इस विषमज्वर को ही मलेरिया भी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति दूषित जल के कारण तथा वर्षा ऋतु में अम्ल विपाक होने के कारण मानी जाती है। अतः आयुर्वेद के आचार्य इस विषमज्वर को भूताभिषङ्गजन्य विकृति मानते हैं–

केचिद् भूताभिषङ्गोत्थं वदन्ति विषमज्वरम्।

एलोपैथी में क्विनाइन विषमज्वर के लिए उत्तम



सप्तपर्ण (ALSTONIA SCHOLARIS)

नाम–सं०–सप्तपर्ण; हि०–सतौना, छितवन; गु०–सातवण; म०–सातवीण; अं.–डिटा; लै०–एल्स्टोनिया स्कालरिस।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारत विशेषतः बंगाल, दक्षिण भारत के पश्चिमी तट।

उपयोगी अंग–छाल (मुख्यतः), दूध। दोषशमन–कफपित्त शामक।

रोगोपयोग–विषमज्वर, रक्त विकार, कुष्ठ, प्रमेह आदि।

मुख्ययोग–सप्तच्छदादि क्वाथ, सप्तपर्ण घनवटी आदि।

औषधि मानी गई है। आयुर्वेद में इसके लिए सप्तपर्ण, कालमेघ, कुटकी, निम्ब आदि उपयोग में लाये जाते हैं। सप्तपर्ण इनमें मुख्य है। वैद्य श्री यादव जी विक्रमजी आचार्य ने अपने सिद्धयोग संग्रह में "सप्तपर्णघनवटी" का उल्लेख किया है, जो विषमज्वर की श्रेष्ठ औषधि है। इसे बालक, स्त्रियों आदि को निर्भयता पूर्वक दिया जा सकता है। विषमज्वर में लाभ करने वाली उत्तम सौम्य औषधि है। रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह के लेखक ने इस सप्तपर्ण घन के साथ कुटकी, चिरायता, करंज, कालमेघ आदि का संयोग कर सप्तपर्णघनादि वटी का वर्णन किया है। इससे कुछ मिलता हुआ ही योग वैद्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने बनाया है जिसे मलेरियासंहार वटी नाम दिया गया है। इसका वर्णन आपने "वैद्य सहचर' (वैद्यनाथ प्रकाशन) में विस्तार से किया है। इसे आपने कुनैन की भाँति लाभकारी आयुर्वेदिक निरूपद्रव महौषधि कहा है। इसका निर्माण इस प्रकार किया जाता है-कल्पनाथ (कालमेघ) सत्व, सप्तपर्णत्वक् सत्व, कुटकीसत्व, कुचलात्वक्सत्व 10-10 ग्राम, शुद्ध करंज बीज चूर्ण और रक्त स्फटिका 40-40 ग्राम लेकर पानी के साथ पीसकर 360 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। एक या दो गोली ज्वर आने से 12 घन्टे पूर्व या आवश्यकतानुसार चार घन्टे पूर्व एक घन्टे के अन्तर से देनी चाहिये।

इसी प्रकार सिद्ध योग संग्रह में पंचतिक्त घनवटी का भी वर्णन मिलता है। जिसमें सप्तपर्ण प्रथम घटक है। इन सभी योगों की निर्माणविधि का उल्लेख आगे किया जायेगा। कफजन्य ज्वर में आचार्य सुश्रुत ने सप्तच्छदादि क्वाथ को लाभप्रद कहा है—

सप्तच्छदं गुडूची च निम्बं स्फूर्जकमेव च।
क्वाथयित्वा पिबेत् क्वाथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे।।

—सुश्रुत. उ. तं. 39

यह सप्तपर्ण कटुपौष्टिक होने से ज्वर के उपरान्त उत्पन्न हुई दुर्बलता को भी दूर करता है। ज्वर हर प्रसिद्ध अरिष्ट अमृतारिष्ट में भी इसका मिश्रण किया जाता है।

यह कुष्ठघ्न होने से कुष्ठ, उदर्द आदि में प्रयुक्त होता है। आचार्य चरक ने एक सिद्धार्थक कषाय का उल्लेख किया है। इसमें (चरक. चि. 7) सप्तपर्ण, दारूहल्दी, नागरमोथा, मदनफल, अमलतास, इन्द्रजौ, कंजा, हरड़, बहेड़ा और आंवला है। इन द्रव्यों से सिद्ध जल से स्नान करना चाहिये, इनके क्वाथ का सेवन करना चाहिए और इन द्रव्यों के चूर्ण को शरीर पर मलना चाहिये। इससे कुष्ठ शोथ एवं अन्य चर्मविकार दूर होते हैं। इन द्रव्यों का कषाय भी स्नान एवं पान हेतु लाभप्रद है—

खदिरावघातककुभरोहीतकलोध्रकुटजधवनिम्बाः।
सप्तच्छदकरवीराः शस्यन्ते स्नानपानेषु।।

—चरक. चि. 7-128

सप्तच्छदादि महातिक्तघृत (चरक. चि. 7) का सेवन कुष्ठ रोग को हरने में बहुत लाभकारी है। आचार्य सुश्रुत ने भी आरग्वधादिगण को कुष्ठकण्डूहर कहा है और चिकित्सा स्थान के महाकुष्ठ चिकित्सा नामक दशम अध्याय में इन औषधियों का अवलेह बनाकर सेवन करने को कहा है। कफविसर्पनाशक प्रलेपों में भी आचार्य चरक ने इसे उपयोगी कहा है—

खदिरं सप्तपर्णं च मुस्तामारग्वधं धवम्।
कुरण्टं देवदारूं दध्यादालेपनं हितम्।।

—चरक. चि. 21

महामारिच्यादितैल में भी यह है। इसकी छाल का प्रयोग कुष्ठ के अतिरिक्त व्रणों के शोधन-रोपण हेतु भी उपयोगी है। इसका दुग्ध भी प्रयुक्त होता है—

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्ट व्रणं लेपात्

—भै. र.

मुखपाक में भी सप्तच्छदादि क्वाथ हितकर है—

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्त-
हरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च
क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य।। *—अ.हृ.उ. स्था. 22*

यह रक्तशोधक होने के साथ ही हृद्य भी है अतः रक्तविकारों में जिस प्रकार प्रयुक्त होता है उसी प्रकार हृदय रोगों में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। कफघ्न होने से यह कास श्वास में भी उपयोगी है। कफपित्तानुबन्ध युक्त श्वास में यह पिप्पली के साथ मधु मिलाकर सेवन किया जाना चाहिए—

सप्तपर्णस्य वा पुनः।
पिप्पलीमधुसंयुक्तः कफपित्तानुगे भतः।।
—चरक. चि. 17

इसे प्रमेहघ्न भी कहा गया है तब ही इसके प्रयोगों का उल्लेख मिलता है—

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि
वैभीतरौहीतक कौटजानि।
कपित्थपुष्पाणि च चूर्णितानि
क्षौद्रेण लिह्यात् कफपित्तमेही।।—चरक.चि. 7

कफजन्यप्रमेहों में इसे मधु के साथ तथा पित्तप्रमेहों में इसके चूर्ण को आंवले के रस के साथ सेवन करना चाहिए। कफजन्यप्रमेह लाला मेह में आचार्य चरक ने और सान्द्रमेह में आचार्य सुश्रुत ने इसे विशेष उपयोगी कहा है। कफज मूत्रकृच्छ्र में भी इसका एक प्रयोग लिखा गया है—

सप्तच्छदारग्वधकेबुकैला
धवाः करंजः कुटजो गुडूची।
साया जलेतेन पिबेत् यवागूं
सिद्धां कषायं मधुसंयुतं वा।।—चरक. चि. 26

प्रसूता स्त्रियों को सप्तपर्ण का सेवन कराना लाभप्रद कहा गया है। इससे उनकी भूख बढ़ती है, बल वृद्धि होती है, ज्वर का प्रतिषेध होता है और दुग्ध की वृद्धि होती है। आचार्य चरक ने इसे स्त्रियों की दुग्ध शुद्धि के लिए भी उपयोगी कहा है। ***(चरक. चि. 30)***

यह दीपन, अनुलोमन, यकृत् बल्य और कृमिघ्न है अतः अग्निमांद्य, उदरशूल, गुल्म, प्रवाहिका यकृत् दौर्बल्य तथा उदरकृमि में इसकी छाल का प्रयोग करते हैं। सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान 39-4 में जो विरेचन द्रव्य गिनाये हैं उनमें सप्तपर्ण को भी लिया है, वहाँ शेषाणां क्षीराणीति'' के अनुसार इसके क्षीर (दूध) को उपयोगी कहा गया। सामान्य विरेचन (अनुलोमन) हेतु इसकी छाल उपयोग में लानी चाहिए और विरेचन हेतु इसके दूध को उपयोग में लाना चाहिये। इसकी मात्रा 5 बूंद है। विद्यार्थियों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जो औषधियाँ मलों को परिपक्व, उनका संहनन (गांठ) तोड़कर, विबन्ध नष्ट कर उन्हें अधोमार्ग से निकालती है उन्हें अनुलोमन कहते हैं। जो औषधियां पक्व या अपक्व मलादि को पतला कर अधोमार्ग से बाहर निकाल देती हैं उन्हें रेचन या विरेचन कहते हैं।

आधुनिक मत—पाश्चात्य मतानुसार सप्तपर्ण की छाल वातरोग, आमवात एवं चर्मरोगों में उपयोगी है। पाचक होने से इसे पुराने उदररोगों एवं संग्रहणी में देते हैं। चिरकालीन अतिसार, प्रवाहिका एवं वृहदन्त्र की चिरकालज श्लैष्मिक कलाशोथ (Colitis) में इसकी छाल बहुत उपयोगी है। रम्फियास का कथन है कि इसकी छाल कफज संग्रहणी में विशेष लाभदायक है। रात को सोते समय एक ग्राम चूर्ण सेवन करना चाहिये। कोंकण देश में दूध के साथ साथ इसका प्रयोग कुष्ठ रोग में करते हैं। परीक्षा द्वारा यह निश्चित हो चुका है कि इसका द्रवसत्व अमोघस्तन्य स्रावी है। कम्पोडिया देश में इसे यकृत् सम्बन्धी शिकायतों में, पुराने उदररोगों में और तिल्ली की शिकायतों में काम में लाते हैं।

डाक्टर ग्रुप ने इसकी छाल में डिटेनिन नामक सत्व की खोज की। यह सत्व भी इसकी ताजी छाल की तरह निरूपद्रव ढंग से मलेरिया पर अपना प्रभाव डालता है। सर जार्ज वाट अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'दी इकानामिक प्राडक्ट्स आफ इण्डिया' में लिखते हैं कि यह छाल ग्राही, पौष्टिक, रक्तशोधक और कृमिनाशक होती है। यह एकातरा, तिजारी, चौथिया आदि मलेरिया के कीटाणुओं से सम्बन्ध रखने वाले ज्वरों में उपयोग में लाई जाती है। 'इण्डियन प्लांट्स एण्ड ड्रग्स' के लेखक डा. नाडकर्णी के अनुसार इसके गुणकारी तत्व डिटेनिन में सल्फेट आफ क्विनाइन के समान ही मलेरिया को रोकने की शक्ति है। क्विनाइन से होने वाली प्रतिक्रियाएँ भी इससे नहीं होती। डाक्टर कीमान ने भी इसके सत्व और काढ़े को मलेरिया ज्वर के कई रोगियों पर अजमाया, जिसका परिणाम सन्तोषजनक रहा। यद्यपि क्विनाइन के मुकाबले में इससे अधिक समय में फायदा होता है किन्तु इसमें ज्वरनाशक गुण निःसन्देह पाया जाता है। अदरख के साथ में यह पौष्टिक औषधि का काम करती है। इसके टिंचर की मात्रा 30 से 60 बूंद है और लिक्विड़ एक्स्टेक्ट एल्सटोनिया की मात्रा 4 से 8 मि0लि0 है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. कुष्ठ—(क) सतौना की छाल, दारूहल्दी, अमलतास, इन्द्रजौ, नागरमोथा और त्रिफला के बारीक चूर्ण का मर्दन या इन द्रव्यों के क्वाथ से स्नान करने से कुष्ठ रोगी को लाभ मिलता है।

(ख) सतौना, लोध्र, कुड़ा, धाय, कत्था और नीम की छाल का क्वाथ भी कुष्ठ रोगी के लिए स्नान हेतु लाभप्रद है।

(ग) सतौना की छाल के चूर्ण को तुवरक तैल या महामरिच्यादि तैल में मिलाकर लगाना चाहिये। इससे कुष्ठ-कण्डू ठीक होते हैं।

(घ) सतौना, कमीला, मुलैठी, फिटकरी, राल, नीलोफर और मैनसिल समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर इसे मक्खन में मिलाकर लेप करने से भी स्रावयुक्त कुष्ठ में लाभ होता है।

2. स्नायुक (नहरूआ)—इसकी छाल का कल्क बनाकर लेप करना चाहिये।

3. सन्धिवात—इसके दूध को शोथ-शूल वाले स्थान पर लगाना चाहिए। इससे लाभ होता है।

4. व्रण—(क) इसके कोमल पत्तों को गरम कर पानी में पीस पुल्टिस बना दूषित व्रणों पर बांधने से लाभ होता है।

(ख) इसका दूध भी व्रण के शीघ्र रोपण हेतु व्रण पर लगाना हितकारी है।

(ग) इसकी छाल का लेप भी व्रण के शोधन-रोपण हेतु लाभदायक है।

5. विसर्प—सतौना, कत्था, मोथा, अमलतास, धव, पियावांसा और देवदारू, इनको पानी में पीसकर लेप करना कफज विसर्प में लाभप्रद कहा गया है।

6. उदर्द—सतौना की छाल और चिरौंजी को पीसकर इन्हें नीम के तैल में मिलाकर लगाने से उदर्द का शमन होता है।

7. आमवात—सतौना की छाल को पानी में पीसकर कल्क बना गर्म कर लेप करना चाहिये अथवा इसकी पुल्टिस बनाकर बांधनी चाहिए।

अन्तः प्रयोग—

1. कुष्ठ—(क) सतौना, अर्जुन, कुटज और नीम की छाल का क्वाथ कुष्ठरोगी के लिए हितकारी है।

(ख) सतौना, नागरमोथा, दारूहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अमलतास और इन्द्र जौ का क्वाथ बना कर कुष्ठ रोगी को पिलाना चाहिये।

2. सूतिका रोग—(क) प्रसूतावस्था में इसे

सुगन्धित द्रव्यों (वचा, अदरख, कचूर आदि) के साथ लेकर क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर उतर जाता है और पुनः ज्वर नहीं आता, अन्न ठीक पचता है और दूध बढ़ता है।

(ख) सतौना छाल और गिलोय का क्वाथ सूतिका के दूध की शुद्धि करता है।

(ग) सतौना, सोंठ, गिलोय और अजमोदा का क्वाथ भी दूध को शुद्ध बनाता है।

3. रक्तपित्त—सतौना छाल के क्वाथ में एक-दो ग्राम चोपचीनी चूर्ण और दूध मिलाकर सेवन करना रक्तपित्त में लाभदायक है।

4. दाह—इसकी ताजा छाल का रस 30 मि.लि. लेकर उसमें 30 ग्राम मिश्री मिलाकर प्रातः सायं शर्बत जैसा बनाकर पीने से हाथ-पैरों की जलन मिटती है।

5. बालशोष—सतौना के फूलों के साथ कालीमिर्च, गोरोचन समभाग लेकर इन्हें चावलों के धोवन के साथ पीसकर अवस्थानुसार एक-दो ग्राम को दूध के साथ बालक को सेवन कराना चाहिये।

6. अग्निमांद्य—सतौना छाल चूर्ण 2 ग्राम, सेंधा नमक एक ग्राम और कालीमिर्च चूर्ण 250 मि.ग्रा. मिलाकर सेवन करने से अग्निमांद्य दूर होता है। जीर्ण ज्वर के साथ होने वाला अग्निमांद्य भी इससे दूर होता है।

7. उदररोग—(क) उदररोगों किंवा विबन्ध में विरेचन हेतु इसके दूध की पाँच बूंद सेवन करनी चाहिए।

(ख) इसकी छाल के चूर्ण को भी गर्म पानी के साथ सेवन करने से सामान्यतया दस्त साफ लग जाता है।

8. श्वास—सतौना छाल चूर्ण 2 ग्राम, पिप्पली चूर्ण एक ग्राम को शहद के साथ चाटने से कफ का शमन होकर श्वास रोग में लाभ मिलता है।

9. प्रमेह—(क) इसके चूर्ण को मधु के साथ सेवन करना कफजन्य प्रमेह हर है।

(ख) इसके चूर्ण को आंवले के रस के साथ सेवन करना पित्त जन्य प्रमेह हर है।

(ग) सान्द्रमेही को इसका क्वाथ बनाकर पीना लाभदायक है।

(घ) लालामेही को सतौना, चव्य, हरड़ और चित्रक का क्वाथ बनाकर पीना चाहिए।

(ङ) कफपित्तजप्रमेह में सतौना, कबीला, शाल से प्राप्त लकड़ी, बहेड़ा, रोहीतक की छाल और कुड़ा की छाल के चूर्ण में से दो-तीन या अधिक को मिलाकर चूर्ण को शहद के साथ सेवन करना चाहिये। उक्त द्रव्यों के चूर्ण को पानी के साथ पीसकर कल्क (चटनी) बनाकर इसमें आंवले का रस मिलाकर सेवन करना भी उक्त प्रमेह में लाभदायक है।

10. ज्वर—(क) सतौना की छाल का क्वाथ या फांट बनाकर दिन में दो-तीन बार पिलाने से कफज्वर एवं विषमज्वर में लाभ होता है।

(ख) इसकी छाल के क्वाथ में अदरख का रस मिलाकर पिलाने से कफज्वर दूर होता है। ज्वर के पश्चात् की अशक्ति भी इसके सेवन से दूर होती है। इसका क्वाथ एवं फाण्ट 12 घन्टों के बाद पुनः तैयार करना चाहिये। यह 12 घन्टों के पश्चात् बेकार हो जाता है।

(ग) सतौना की छाल, गिलोय, अडूसा के पत्ते, पटोलपत्र, भोजपत्र, नागरमोथा, खैर की छाल और नीम की अन्तरछाल समभाग लेकर जौकुट कर 40 ग्राम को 16 गुने पानी में पकाकर अष्टमांश जल शेष रह जाने पर छान कर पिलावें। इसकी तीन मात्रा कर दिन में तीन बार पिलावें। इससे सतत नामक विषमज्वर एवं अन्य कफज्वर का शमन होता है।

विशेष प्रयोग—(विविध कल्प)

क्वाथ—

1. सप्तपर्ण त्वक्, गिलोय, नीम की अन्तर छाल

और खजूर समभाग लेकर जौकुट कर 50 ग्राम को 400 मि.लि. जल में पकावें। शेष 100 मि.लि. रह जाने पर छानकर उसमें ठण्डा हो जाने पर 20 ग्राम शहद मिलाकर सेवन करने से कफ जन्य ज्वर में लाभ होता है।

—भा. भै. र.

2. सप्तपर्ण त्वक्, गिलोय, नीम और तेंदूवृक्ष की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करना भी ज्वर में लाभदायक है। —सु.

3. सप्तपर्णत्वक्, सुगन्धबाला, पटोलमूल, नागरमोथा, हरड़, चिरायता, कुटकी, मुलेठी, अमलतास का गूदा और चन्दन इनका क्वाथ बना कर इसका गण्डूष या कवल धारण करना या पीने में प्रयोग करना सामान्यतया मुखरोगों में लाभप्रद है। —अ. हृदय

4. सप्तपर्णत्वक्, अमलतास, क़ेवड़ा, इलायची, नीमछाल, धव, करंज, कुटकी और गिलोय मिलाकर क्वाथ सिद्ध कर ठन्डा होने पर उसमें शहद मिलाकर सेवन करने से कफजन्यमूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी जन्य मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। —चरक. सं.

ये क्वाथ द्रव्य समभाग मिश्रित कर 30 ग्राम लेकर दो लिटर जल में पकाकर एक लिटर शेष रह जाने पर इस जल से यवागू बना कर खिलाने से भी उक्त मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

वटी—1. सप्तपर्ण के वृक्ष की हरी-ताजी अन्तर छाल लेकर उसे अठगुने जल में पकावें। जब अष्टमांश जल बाकी रहे तब नीचे उतारकर ठंडा होने पर कपड़े से दो बार छान कर बर्तन में डालकर पुनः पकावें। पकते पकते क्वाथ जब करछी को लगे इतना गाढ़ा हो जाय, तब नीचे उतार कर बर्तन को धूप में रखकर सुखावें। जब यह घन गोली बनने योग्य हो जाय तब उसमें अतीस का चूर्ण (गोली बन सके इतना मिलावें) मिलाकर 360 मि.ग्रा. की गोलियाँ बना, धूप में सुखा कर रख लें। इसे सप्तपर्ण वटी या सप्तपर्ण घनवटी कहा जाता हैं। तीन-तीन घन्टे से तीन-तीन गोलियां जल के अनुपान से दें। इससे विषमज्वर दूर होता है। —सि.यो.

2. उपर्युक्त प्रकार से बनाया गया सप्तपर्णघन ... ग्राम लेवें एवं कुटकी, चिरायता, कांटेदार करंज के ... हुये बीजों का चूर्ण 150-150 ग्राम, कालमेघ 100 ग्रा. शुद्ध कुचला और दालचीनी का चूर्ण 25-25 ग्रा. सबको मिलाकर पानी के संयोग से 250 मि.ग्रा. की गोलियाँ बना लें। दिन में 3 बार 3-3 गोलियां जल के साथ दें। ये गोलियां सभी प्रकार के विषमज्वर, जीर्णज्वर, अपचनजनित ज्वर को दूर करती है। यह सामान्य औषधि होते हुए भी अच्छी लाभदायक सिद्ध हुई है।

—र.त.

3. सप्तपर्ण की ताजा अन्तरछाल, कंटकीकरंज ... ताजा पत्तियाँ, ताजी गिलोय, कालमेघ और कुटकी समभाग लेकर सबको कूट कर अठगुने जल में पकावें। अष्टमांश जल बाकी रहने पर छानकर पुनः पूर्ववत् विधि से इनका घन तैयार कर लें फिर इसमें चतुर्थांश अतीस का चूर्ण मिला 360 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। इनको पंचतिक्त घनवटी कहते हैं। विषमज्वर में ये उपयोगी है। तीन-तीन घन्टों से एक-दो गोलियां दें।

—सि.यो.

तैल—

1. सप्तपर्ण की छाल के क्वाथ के साथ अडूसा का क्वाथ या स्वरस तथा नीमपत्र या नीमछाल का क्वाथ या स्वरस सभी 2- लीटर लेकर उसमें 8 लिटर गोमूत्र ... हल्दी, दारू हल्दी, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रजौ, ... खैरसार, यवक्षार और सेंधानमक समभाग मिश्रित चूर्ण 200 ग्राम कल्क एवं 2 लिटर तिल तैल मिलाकर तैल सिद्ध करें। इस तैल की मालिश करने से त्वचा के ... नाखूनों के रोग, झांई आदि दूर होते हैं। यह कदर (आंटन) में भी हितकर है। यह सप्तच्छदादि तैल है।

2. सप्तपर्ण की छाल, करंज तथा मदार की ...

चमेली की पत्ती, कनेर का मूल, थूहर की जड़, शिरीषमूलछाल, चित्रक सफेदमदार या कोयलतला की जड़, करंज के बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हल्दी, दारूहल्दी, सरसों, विडंग, पंवाड़ के बीज सबको समान मात्रा में लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर एक किलो कल्क तैयार करें। इस कल्क से चौगुना तिलतैल या सरसों का तैल तथा तैल से चौगुना गोमूत्र लेकर तैल पाक करें। इस वज्रक नामक तैल के अभ्यंग से कुष्ठ, नाड़ीव्रण, तथा दूषित व्रण ठीक होते हैं। —च.द.

पेटेन्ट प्रयोगों में सप्तपर्ण—

पूर्व वर्णित सप्तपर्णघनादिवटी को ऊँझा आयुर्वेदिक फार्मेसी "ऊंझा एलस्टो पिल्स" के नाम से विक्रियार्थ तैयार करती है। ये विषमज्वर, जीर्णज्वर में उपयोगी है। ऊंझा फार्मेसी जो "मलेरिया मिक्स्चर" तैयार करती है। इसमें सप्तपर्ण की छाल, चिरायता, गिलोय, करंज आदि हैं। यह भी मलेरिया और पुराने बुखार में अच्छा काम करता है। इसे 3-3 चम्मच 3-3 घन्टों से पानी मिलाकर लेना चाहिए। सप्तपर्णघनादिवटी की तरह ही सिन्थोकेम द्वारा "केमोसीन नामक वटी बनाई जाती है। पूर्व में वैद्य सहचर नामक ग्रन्थ में वर्णित मलेरियासंहार वटी का वर्णन किया गया हैं इसमें उक्तद्रव्यों के अतिरिक्त मुक्ताशुक्ति पिष्टी का मिश्रण कर "मलेरिया दमन" नामक वटी श्री वनौषधि भण्डार द्वारा तैयार की जाती है जो दो-दो गोली दिन में तीन बार दो दिनों तक दी जानी चाहिये। मलेरिया से बचाव के लिए एक-एक गोली सुबह-शाम जल के साथ एक सप्ताह तक लेनी चाहिये। चरक फार्मास्युटिकल्स द्वारा जो 'क्यूरिल टिकिया' तैयार की जाती है, इसमें सप्तपर्ण, चिरायता, गुडूची आदि के सत्व मिलाये जाते हैं। हरीश फार्मा भी सप्तपर्ण युक्त 'विषमक्योर कैपसूल' बनाता है। यह भी ज्वरों में विशेषतः मलेरिया में लाभप्रद है। सप्तपर्ण घनसत्व के अतिरिक्त इसमें सुदर्शन, कुटकी, करंज घनसत्व आदि है। हर्ब इण्डिया 'त्वरित सीरप' बनाता है। यह सीरप मलेरियारोधी एवं यकृत सुधारक है। इसमें सप्तपर्ण, नीम, पटोलपत्र, कुटकी चिरायता आदि है। इसी प्रकार का 'फीबरेक्स शर्बत' (श्री धन्वन्तरि फार्मेसी) द्वारा बनाया जाता है जिसमें सप्तपर्ण भी है। 'चिराकिन' नामक मलेरिया रोधक औषधि झन्डू द्वारा निर्मित है। इसमें सप्तपर्ण, चिरायता और पूतीकरंज है। एक-एक गोली दिन में दो बार सात दिन तक देने से मलेरिया का प्रतिषेध होता है। रोग को दूर करने के लिए सप्ताह पर्यन्त दो-दो गोली दिन में तीन-बार दी जानी चाहिये। इसी प्रकार की "आयुष 64" औषधि है। यह मलेरिया में अच्छा लाभ करती है। प्रताप फार्मा 'विषमांत' और सिद्धि फार्मेसी "सप्तपर्णी" नामक सूचीवेध तैयार करते हैं। इनमें सप्तपर्ण क्षार है। ये विषमज्वर में उपयोगी है।

मधुमेह के रोगियों के लिए " जे.के. 22" गोलियों का निर्माण चरक फार्मास्युटिकल्स द्वारा किया गया है। इनमें बहुत सी औषधियों के साथ यह सप्तपर्ण भी है। इसी प्रकार चरक द्वारा "सेफाग्रेन" गोलियां और नोजल ड्राप्स भी आधासीसी के सिर दर्द के लिए तैयार किये गये हैं, जिनमें सप्तपर्ण मिश्रित किया जाता है।

अनुभूत प्रयोग—

1. **श्वेत कुष्ठ नाशक प्रयोग**—सप्तपर्ण की छाल 600 मि.ग्रा., गिलोय चूर्ण 600 मि.ग्रा. और चालमोगरा बीज चूर्ण दोनों के बराबर (एक ग्राम 200 मि.ग्रा.) लेकर प्रातः काल सेवन करें। इसी प्रकार दूसरी मात्रा सायंकाल सेवन करें। साथ में वावची, सरसों, करंज, हल्दी, विडंग, हरड़ और सेंधा नमक को गाय के दूध में पीसकर लेप करें। ये दोनों अनुभूत योग हैं। इसमें अम्ल, लवण और कटु रस का परित्याग करें।

—कवि. श्री पुरुषोत्तमदेव मुलतानी
(धन्व. रक्तरोगांक 1946)

2. **विषमज्वर हर प्रयोग (देशी कुनाइन)**—सप्तपर्ण

की छाल और चिरायता 200-200 ग्राम लेकर क्वाथ तैयार करें फिर इस क्वाथ में करंज गिरी, फिटकरी, छोटी पिपल, बड़ी हरड़ समान भाग मात्रा में लेकर बारीक चूर्ण बनाकर उपर्युक्त क्वाथ में आवश्यकतानुसार डालकर पुनः पकावें। जब यह कुछ अवलेह जैसा गाढ़ा हो जाय तब उतार कर शीतल होने पर मटर के बराबर गोलियां बना लें। इससे शीत-ज्वर, तिजारी, चौथैया दूर होते हैं। गुणों में यह कुनाइन की तरह है किन्तु कुनाइन से उत्पन्न होने वाले उपद्रव इससे नहीं होते। ज्वर आने के तीन घन्टे पहले एक गोली गर्म दूध से देवें।

—कवि. श्री केशवराव चौधरी

(धन्व.गु.सि.प्र. भाग 2)

3. मलेरिया में उपयोगी सप्तपर्णादिसत्व— सप्तपर्णत्वक्, करंज, हुलहुल तथा गिलोय प्रत्येक समभाग लें। सबसे चौगुने जल में इन्हें दो दिनों तक भिगोकर रखें। इसके पश्चात् खूब मलकर महीनवस्त्र से छानकर एक पहर तक पड़ा रहने दें। फिर निथरा हुआ पानी धीरे-धीरे गिरा दें, नीचे श्वेत सत्व मिलता है, इसे यत्नपूर्वक रख लें। एक ग्राम सत्व जल के साथ सेवन कराने से मलेरिया में लाभ हो जाता है।

—श्री छत्रधारी लाल

(धन्व. सि. योगांक)

4. विभिन्न ज्वरों में "आयुष-64" का प्रयोग— आयुर्वेद के क्षेत्र में जो कुछ नये औषध कल्प अस्तित्व में आये हैं उनमें आयुष 64 भी एक है। इसकी 500 ग्रा. की गोलियों में सप्तपर्ण त्वक् 100 मि.ग्रा., कु 100 मि.ग्रा., चिरायता 100 मि.ग्रा. और लताकरंज बीज 200 मि.ग्रा. लिया जाता है। यहाँ जिन रूग्णों की चिकित्सा का विवरण दिया गया है वे सभी श्री तापीबाई आयुर्वेदिक हास्पीटल भावनगर में चिकित्सा आये थे। इनमें विषमज्वर (एम. पी. अप्राप्त प्रकार) 21 रोगी थे। मलेरिया (5 बाईवेक्स, एक फाल्सी.) 6 रोगी थे। संधिगज्वर (रूमेटिक फीवर) के 3 रो थे। वातश्लैष्मिक ज्वर (फ्लू) के 3 रोगी तथा लीन ज्व (4 ज्वर रहित, 2 पुनरार्वक ज्वर, एक मधुमेही) के रोगी थे। इन सभी रूग्णों को आयुष 64 का प्रयो कराया गया था। इनकी मात्रा में कुछ अन्तर कराया ग था यथा प्रथम 3 दिन 2-2 गोली तीन बार शेष 4 दि 2-2 गोली दो बार जल से दी गई। एक सप्ताह के प्रयो से मिले परिणाम निम्नानुसार थे-

1. प्रवर लाभ—विषमज्वर 18. मलेरिया संधिक 3, फ्लू 3, लीन ज्वर 4 में प्राप्त हुआ ज्वरोपश

2. मध्यमलाभ—विषमज्वर 2, मलेरिया 1 तीव्र ज्वर 3 में मध्यम लाभ प्राप्ति।

3. अवर लाभ—विषमज्वर एक और मलेरिया में अवर लाभ एवं अलाभ मिला।

—वैद्य प्रो. श्री. पी. एस. अशु

(सुधा. अप्रेल 199

सर्पगन्धा
(Rauwolfia Serpentina)

वन्द्यो नास्त्येति पश्यन्निव चरण-
गतः पातु पुष्पांजलिर्नः,
शम्भोर्नृत्यावतारे वलयफणि-
फणाफूत्कृतैर्विप्रकीर्णः।।

एकदा भगवान् शिव नृत्य करने से पहले जब अपने इष्टदेव को पुष्पांजलि समर्पित कर रहे थे तो पुष्पांजलि, उनसे बड़ा अन्य कोई वन्दनीय नहीं है—यह सोचकर कर में कंकण के रूप में लिपटे सर्पों ने फुंफकार मारी, जिससे वह बिखर कर शिव के चरणों में ही गिर गई। इस पुष्पांजलि में जिस वनौषधि के पत्र पुष्प थे वह वनौषधि उनके निवास के समीप ही थी (सर्पगन्धाख्य-पुष्पचात्र हिमवत्सानुभूमिषु), सर्पों की फूत्कार से वह सर्पगन्धा हो गई। यह सर्पगन्धा विविध रोगों से हमारी रक्षा करे।

विविध रोगों को दूर करने वाली इस वनौषधि को महर्षि सुश्रुत ने अपराजित गण और एकसरगण के अन्तर्गत रखा है। इन दोनों गणों की कार्मुकता इस प्रकार व्यक्त की गई है—

एष सर्वविकारांस्तु मानसानपराजितः।
हन्यादल्पेन कालेन.......................।।

—सु. सं. उ. तं. 60-53

एष गणोऽपराजितो नाम सर्वविकारान् मानसान् अपस्मारोन्मादादीनल्पेन कालेन निहन्यादिति सम्बन्धः।

—डल्हणः

..........गणः एकसरः स्मृतः।
एकशो द्वित्रिशोवापि प्रयोक्तव्यो विषापहः।।

—सु. सं. क. स्था. 5-86

अयमौषधगण एकसरः एकसर संज्ञकः स्मृतः। स चौषधगण एकैकशः एकमेकं द्वौ द्वौ, त्रीन्, त्रीन् वां प्रयोक्तव्यः, प्रयुक्तश्च विषापहो भवति।

—डल्हणः

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह कुटज कुल (एपोसाइनेसी) की वनौषधि है। द्रव्यगुण विज्ञान (प्रि. व्र.) में निद्राजननरूप में मात्र इसका वर्णन किया गया है।

नाम—

संस्कृत—सर्पगन्धा, धवलविटप, चन्द्रमार

हिन्दी—धवलबरुआ

गुजराती—अमेलपोदी

मराठी—अड़कई, सायसन

बंगला—चाँदर, छोटा चाँद

बिहार में—धन मरवा, चँदमरवा, इसरगज, पागल की दवा

हरिद्वार में—सेत बड़वा

तमिल—चिवन अमेला पोड़ी, सोवन्ना मिलबोरी

तेलगू—पाटलागानि

आसामी—अरचोनतीता

कन्नड़—सूत्रनवी

मलयालम—चिवन अवलपोरी

उड़िया—सानो, चादो, पताल गरुड़

लैटिन—रावोल्फिया सर्पेन्टिना (Rauwolfia Serpentina)

प्राप्ति स्थान—सर्पगन्धा का मुख्य स्थान भारतवर्ष

है। हिमालय की तराई में सतलज से आसाम तक समुद्रतल से चार हजार फुट की ऊँचाई तक आर्द्र जंगलों तथा छायादार स्थानों में विशेषत: देहरादून, गोरखपुर आदि स्थानों में इसके स्वयं जात पौधे प्रचुरता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, केरल, महाराष्ट्र आदि में भी इसके पौधे पाये जाते हैं। देहरादून, लखनऊ जम्बू, इन्दौर आदि केन्द्रों में इसकी उपज की जाती है। भारत के बाहर वर्मा, श्याम, लंका, चीन, जापान और पाकिस्तान आदि में भी यह इतस्तत: पाई जाती है।

सर्पगन्धा की खेती—सर्पगन्धा की फसल से बीज एवं जड़ें दोनों ही उपयोगी हैं अत: दोनों से कृषकों को आमदनी हो सकती है। प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर से 2 लाख रु. तक की आय संभव है। सभी प्रकार की हल्की चिकनी मिट्टी में इसकी खेती की जा सकती है, जिसमें जीवांश की बहुलता, अधिक जलधारण क्षमता हो एवं अच्छा जल निकास का प्रबंध हो। इसकी खेती हेतु पानी की बहुत आवश्यकता नहीं होती है परन्तु पानी देने से इसकी उपज बढ़ जाती है। सामान्यत: वर्षाकाल में सर्पगन्धा की फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। अन्य समय माह में एक बार तथा गर्मियों में महीने में दो बार सिंचाई करनी चाहिये।

बीज को सीधे खेत में बोने पर अंकुरण 20 से 50 प्रतिशत ही प्राप्त होता है अत: बीज को नर्सरी में बोकर उगा लेना चाहिये तथा पौधे जब 4 से 5 इंच बड़े हो जाये तब पौधों को खेत में रोपण करके पानी देना चाहिये। अधिक समय तक धूप में सुखाया गया तथा अधिक समय तक संग्रहित किया हुआ बीज का अंकुरण काफी कम हो जाता है। प्रति हेक्टेयर नर्सरी में 8-10 किलोग्राम बीज लगाना चाहिये। बीज को बुवाई पहले 24 घन्टे पानी में डुबोकर रखें फिर पानी को निकाल कर बीज की ऊपरी सतह थोड़ी सूख जाने पर कोई फफूंदनाशक दवा तीन ग्राम प्रति किलो बीज दर से मिलाकर बीजोपचार किया जाये। अप्रेल में बोई गई नर्सरी के पौध रोपण के लिये जून के अन्तिम सप्ताह या जुलाई के प्रथम सप्ताह तक तैयार हो जाते हैं। इसकी फसल 18 से 24 माह में तैयार हो जाती है।

इसके बीजों से पौधों का अंकुरण उतना आशा जनक नहीं होता जितना इसके काण्डों व मूलों के कतरनों से। पौध तैयार करने के लिए आठ से दस सेन्टीमीटर लम्बी जड़ें काटनी चाहिये। जड़ों की मोटाई 15 मिलीमीटर से अधिक न हो।

सर्पगन्धा की जड़ें 18 से 24 माह के बीच खोदने योग्य हो जाती है। जड़ों की खुदाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। यदि सिंचाई उपलब्ध हो तो खुदाई के 8-10 दिन पहले सिंचाई करना उपयुक्त होगा। खुदाई के बाद जड़ों को 15-20 से. मी. के टुकड़ों में काटकर धूप में अच्छी तरह सुखाकर जब नमी 10-12 प्रतिशत रह जाय भण्डार किया जावे।

रासायनिक संगठन—उत्पत्ति स्थान के अनुसार इसमें 1.7 से 3 प्रतिशत तक क्षाराभ होते हैं। रावोल्फिया की विभिन्न जातियों में लगभग 80 क्षाराभ पाये जाते हैं जिनमें रेसर्पिन प्रमुख है। इसके अतिरिक्त डेसर्पिडिन, रेसर्पिनि, सर्पेन्टिन, सर्पेन्टिनिन, सर्पाजिन, अजमलीन, आइसोअजमलीन, राबुल्फिनिन, योहिबिन (राबुल्फिन) आदि क्षाराभ पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका सरल, सदाहरित क्षुप एक से तीन फुट तक ऊँचा होता है। ये चिकने और सुन्दर लगते हैं। काण्ड—बेलनाकार, पीली छाल युक्त होता है जिसको तोड़ने पर पाण्डुरवर्ण का चिपचिपा दूध सा रस निकलता है। पत्र 3-7 इंच लम्बे, 2-2½ इंच चौड़े अण्डाकार भालाकार या अभिलट्वाकार तीक्ष्णाग्र या लम्बाग्र होते हैं। नीचे की ओर इनका रंग हलका हरा और ऊपर की ओर गहरा हरा होता है। पत्र सिरायें 8-12



सर्पगन्धा (RAUWOLFIA SERPENTINA)

नाम—सं०—सर्पगन्धा; हि०—धवलबरूआ; गु०—अमेलपोदी; म०—अड़कई; लै०—रावोल्फिया सर्पेन्टिना।

प्राप्तिस्थान—हिमालय की तराई विशेषतः देहरादून, गोरखपुर।

उपयोगी अंग—छाल सहित मूल। **दोषशमन**—कफवात शामक।

रोगोपयोग—रक्तचापाधिक्य, अनिद्रा, उन्माद आदि।

मुख्ययोग—सर्पगन्धा योग, सर्पगन्धा घनवटी आदि।

पत्रवृन्त 1/4-1/3 इंच लम्बा होता है। प्रत्येक काण्डपर्व से 3-4 पत्र निकलते हैं। पुष्प-श्वेत या गुलाबी, गुच्छों में होते हैं। इनका आभ्यन्तर नाल प्रायः टेढ़ा होता है। फल मटर के समान चिकने हरे और पकने पर काले होते हैं। ग्रीष्मकाल में इस पर पुष्प और वर्षाकाल में फल लगते हैं। औषधि में इसकी छालयुक्त जड़ का व्यवहार होता है। इसकी जड़ दृढ़, 40 से.मी. लम्बी और 2 से. मी. व्यास की होती हैं। यह टेढ़ी-मेढ़ी, जगह जगह गांठ्दार, शाखायुक्त तथा अनुलम्ब धारियों से युक्त होती है। तोड़ने पर इसके टुकड़े छोटे और अनियमित होते हैं। यह जड़ गन्धहीन एवं अति तिक्त होती है। इसकी छाल कपिशपीत (भूरी पीली) या कपिश (भूरी) होती है जिसका काष्ठ पाण्डुर पीत वर्ण का होता है। बीच का सार भाग कोमल होता है।

भेद—सर्पगन्धा के लगभग 24 भेदों की खोज हो चुकी है। इसकी ये जातियाँ विभिन्न स्थानों में पाई जाती है। रावोल्फिया सर्पेण्टिना विशेषतः भारत, पाकिस्तान, वर्मा में होती है। रावोल्फिया का नेसेंस भी सर्पगन्धा के नाम से खूब प्रचलित है। यह जाति बंगाल में प्रचुरता से पायी जाती है। रावोल्फिया डेन्सिफ्लोरा यह दक्षिण भारत में अधिक मिलती है। रावोल्फिया मीक्रान्था जाति मलावार के समुद्रतटीय मैदानों में अधिक पायी जाती है। दक्षिण भारत में इसकी जड़ भी बाजारों में बिकती है। सर्पगन्धा की अत्यधिक मांग को देखते हुये कई संग्रह कर्त्ता इन अन्य जातियों की जड़ें भी असली सर्पगन्धा की जड़ों में मिला देते हैं। रावोल्फिया ट्रेटाफाइला के पौधे भी भारत के कई स्थानों में पाये जाते हैं। इसके पौधे विशेषतः आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं। अमेरिका में भी ये पाये जाते हैं। रावोल्फिया वोमिटोरिया अफ्रीका में होता है। ऊँचाई में सबसे बड़ा (100 फीट ऊँचा) इसका पौधा पेरू में पाया जाता है, जो रावोल्फिया पेराकाक्स के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार रावोल्फिया जाति का सबसे छोटा पौधा अफ्रीका में होता है, जिसे रावलफिया नोरा कहते हैं। यह केवल सात इंच ऊँचा होता है। इनके अतिरिक्त अन्य कई जातियाँ मिलती हैं। नयी नामावली में तो इसकी ... जातियों का उल्लेख किया गया है।

रस—तिक्त

गुण—रुक्ष

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

प्रभाव—निद्राजनन

दोषकर्म—कफवात शामक

उपयोगी अंग—छालयुक्त मूल

मात्रा—रक्तभार कम करने के लिए—300 से 600 मि.ग्रा.।

निद्रा लाने के लिए—एक से तीन ग्राम।

उन्माद में—2-3 ग्राम।

संग्रह एवं संरक्षण—सर्पगन्धा के कार्य कारी तत्व मूल की छाल में 90 प्रतिशत पाये जाते हैं। अतः इसके मूल का संग्रह छाल सहित ही जाड़ों में करना चाहिये। इसके लिये तीन वर्ष से चार वर्ष के पौधे ही चुनने चाहिये। इन जड़ों को मिट्टी आदि से अच्छी प्रकार साफ कर छाया में सुखा लें और मुखबन्द पात्रों में अनार्द्रशीतल स्थान में संरक्षित रखें।

सावधानी—उत्तेजित और बलवान रोगियों पर ही इसका प्रयोग करना चाहिये। दुर्बल और मनोवसाद युक्त रोगियों पर इसे सावधानी पूर्वक प्रयोग में लावें।

वीर्यकालावधि—2 वर्ष पर्यन्त

रोग नाशक संज्ञा—1. सर्पगन्धा—सर्पान् गन्धयति अर्दयति इति सर्पो को दूर भगावे, सर्पविष को दूर करे।

2. चन्द्रमार—चद्रमाल्हादं मारयति—जो मन की तीव्रता को शान्त करे।

3. **धवलविटप**—धावति शोधयति मनोदेहंच इति—जो मन और शरीर को शुद्ध करे।

गुणधर्म विवेचन—

सर्पगन्धाऽतितिक्तोष्णा रूक्षा कटु विपाकिनी।
पित्त वृद्धिकरा रुच्या शूलप्रशमनी सरा।।
कफवातहरा निद्राप्रदा हृदवसादिनी।
कामावसादिनी चैव हन्ति शूलज्वर कृमीन्।।
अनिद्रां भूतमुन्मादमस्मारं भ्रमं तथा।
अग्निमांद्यं विषं रक्त-वाताधिक्यं व्यपोहति।।

—द. गु. वि.

सर्पगन्धाऽतितिक्ता सरा निद्राप्रदायिनी।
हन्ति शूलज्वरोन्मादक्रिमिरक्तसमीरणान्।।

—प्रि. नि.

अतितिक्तन्तु सरोष्णं निद्राकृत् सर्पगन्धिकामूलम्।
उग्रोन्मादे शूले परिशस्ता रक्तवाते च।।

—षो. हृ.

कतिपय आयुर्वेदक विद्वानों की मान्यता है कि प्राचीन ...युर्वेद मनीषी इसं वनौषधि से अनभिज्ञ थे। सुतरां ...युर्वेदीय निघन्टु ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। ...कविराज श्रीगणनाथ सेन का यही विचार था कि यह ...मान काल की एक नवीन खोज है। इसका नूतन नाम ...राज जी ने 'महेश्वर' रखा। अधिकतर विद्वान् ...राज जी के उक्त कथन से सहमत नहीं हैं। प्राचीन ...त संहिता में सर्पगन्धा को मनोरोगोपयोगी एवं विषहर ...है जो उपयुक्त है, अतः वर्णित सर्पगन्धा ही आज की ...न्धा है। ऐसी स्थित में इस वनौषधि के अन्य ...करण की आवश्यकता नहीं है। आयुर्वेद के विद्वानों ...अतिरिक्त डा. वामन गणेश देसाई, डा. के. एम. ...कर्णी आदि ने भी इसी तथ्य को स्वीकार कर ...न्धा के नाम से ही अपने औषधि ग्रन्थों में इसका वर्णन ...या है।

सर्पगन्धा के नाम से आज प्रत्येक चिकित्सक एवं साधरण जन भी परिचित हैं। सन् 1923 में जब रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) का ज्ञान प्राप्त हुआ और इसकी उचित औषधि की खोज की जाने लगी तब चिकित्सकों का ध्यान इसकी ओर गया। सन् 1930 में महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन सरस्वती और उनके सहयोगी डा. श्री कार्तिकचन्द्र वसु का ध्यान इसकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इसका विश्लेषण किया गया। सन् 1932-33 तक डा. श्री सिद्दिकी ने इसमें तीन उपक्षार तत्व विश्लेषित किये और पागलपन के समुचित वस्तुतत्व का खोज किया। इसके रक्तचापहर गुण के ज्ञात होते ही चारों ओर इस पर अनुसंधान हुये। देहरादून की हिमालय ड्रग कम्पनी ने इसकी टिकिया बना डाक्टरों के समक्ष उपस्थित कर तहलका मचा दिया। अखिल भारतीय ड्रग रिसर्च इन्स्टीटयूट लखनऊ ने इस पर विशेष अनुसन्धान किया।

भारत में उत्पन्न होने वाली सर्पगन्धा (रावोल्फिया सर्पेण्टिना) इसकी सब जातियों में प्रशस्त है—

भारते जायमाना हि सर्पगन्धा विशिष्यते।
प्रभावाद् गुणग्रामात् प्रशस्तं हि जगतीतले।।

—श्री रामेश वेदी

यह वनौषधि वातसंस्थान (Nervous system) पर विशेष प्रभाव डालती है। यह शामक एवं निद्राजनन है। वातशामक होने से यह मस्तिष्कगत उत्तेजना को शान्त करती है। उन्माद और अपस्मार में जब रोगी बहुत उत्तेजित रहता हो तब इसे उपयोग में लाना चाहिये। लोक में इसी कारण यह पागल की दवा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके सेवन से रोगी का मन शान्त रहता है, और धीरे-धीरे मस्तिष्क विकार दूर हो जाता है। इससे रोगी को अच्छी नींद आने लगती है और मस्तिष्कगत उत्तेजना को शान्त करने के लिए अच्छी नींद का आना आवश्यक है। नींद लाने के लिए इसे रात में सोते समय घी के साथ देना हितावह है।

सर्पगन्धा में मुख्यतया तीन कर्म पाये जाते हैं जो विशेष महत्व के हैं। यह नाड़ी संस्थान पर संशामक (Sedative) क्रिया करती है, यह निद्राजनन (Hypontic) है और रक्त चाप को कम करती (Hypotensive) है। अतः उन्माद-अपस्मार आदि रोगों में भी रक्तचाप की परीक्षा कर लेनी चाहिये। जब किसी रोगी का रक्तचाप कम (लो ब्लड प्रेशर) हो तो उस पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि खूब उत्तेजित और बलवान रोगियों पर ही यह लाभ पहुँचाती है। दुर्बल, निस्तेज और मनोवसाद (Melancholy) ग्रस्त रोगी पर इसे सावधनी से प्रयोग करना चाहिय। उन्माद में प्रयोग करते समय रोगी को पथ्य रूप में दही, भात का प्रयोग कराना उत्तम रहता है। वातप्रकृति मनुष्यों को इसे दूध के साथ देना चाहिए।

चिकित्सा में सर्पगन्धा का प्रधान उपयोग रक्तचाप कम करने के लिए किया जाता है। रक्तचाप वृद्धि (High Blood Pressure) में आजकल इसका भूरिश प्रयोग हो रहा है। समस्त विश्व में यह इस रोग की सर्वोत्तम औषधि मानी जाती है। इसके सेवन से रक्तचाप में कमी आ जाती है। रोगी को समय पर नींद आ जाती है। भ्रम आदि मानसिक विकार भी शान्त रहते हैं और अन्य किसी प्रकार का कोई उपद्रव उत्पन्न नहीं होता डा. श्री शिवचरण ध्यानी का कथन है कि जिस प्रकार अर्जुन का हृदय पर, कुमारी का यकृत पर, पुष्करमूल का फुफ्फुसों पर शरपुंखा का प्लीहा पर प्रभाव होता है उसी प्रकार सर्पगन्धा का प्रभाव रक्तवाहिनियों पर होता है (द्रव्यगुण सिद्धान्त)। भैषज्य रत्नावली के परिशिष्ट में आचार्य श्री राजेश्वरदत्त ने इसकी कार्मुकता इन श्लोकों में व्यक्त की है—

सर्पगन्धाश्लक्ष्णचूर्णं वस्त्रेण परिशोधितम्।
माषकैकं द्विमाषं वा घृतमिश्रं विधाय च।।
भक्षयेत् प्रत्यहं प्रातः सायं चोन्मादरोगयुक्।
तेन निद्रा समुदन्यादुन्यादहितकृत् परम्।।
भवेदिदं सर्पगन्धाचूर्णं पूर्णं न संशयः।
एतेन रक्तभारेऽपि न्यूनता जायते प्रशम्।।
बहुष्वामयेषु प्रायः परीक्ष्य च मुहुर्मुहः।
इति प्रोक्त भिषग राजेश्वरदत्तेन शास्त्रिणा।।

सुधानिधि के जटिल रोग चिकित्सांक (1976) "रक्तदाब-आधुनिक सभ्यता का एक व्यापक रो... नामक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें लेखक ... कविराज देशराज लिखते हैं कि—'सर्पगन्धा को अ... घटकों के साथ मिलाकर योग के रूप में प्रयोग में लि... जाता है। सर्पगन्धा की अपनी स्वतन्त्र द्रव्य शक्ति ही इ... अधिक होती है कि अन्य घटक मिलाना कोई अर्थ न... रखता। दो-तीन ग्राम सर्पगन्धा चूर्ण एक कप गुलाब... में प्रातः भिगो देना चाहिये। बीच बीच में इसे हिला... चाहिये। रात्रि में ठीक सोने के समय इसे छानकर रोगी... पिला देना चाहिये। यह एक ही मात्रा 24 घंटे के लि... पर्याप्त होगी। अन्य कोई सहायक औषधि लक्षणों... अनुसार दिन में दी जा सकती है। वृक्क, यकृद् और ... आदि यदि विकार ग्रसित हों तो इनके रोगों का भी उ... करना चाहिये। विबन्ध नाश के लिये त्रिफला का से... कराना चाहिये। यह त्रिदोषनाशक और रसायन ... रक्तभार जब नियन्त्रित हो जाय तो सर्पगन्धा का प्रयोग ... कर देना चाहिए। प्रातः 3-4 ग्राम अश्वगन्धा चूर्ण दू... साथ सेवन कराना चाहिये और सायं ब्राह्मी चूर्ण तीन ग्रा... जल के साथ। इसी प्रकार चिकित्सा के क्रम से शेष ... शान्त होकर रोगी अवश्य स्वास्थ्य लाभ करेगा।

सर्पगन्धा आमपाचन एवं ज्वरघ्न होने से तीव्रज्व... इसका प्रयोग करने से ज्वर कम हो जाता है। प्रलाप, अ... आदि ज्वर के उपद्रव भी इससे शान्त हो जाते हैं। तरुण... में आमदोष के पाचन हेतु तिक्तरसवाली सर्पगन्धा ला... है, क्योंकि कहा गया है—

लंघनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः।
पाचनान्य विपक्वानां दोषाणां तरुणे ज्वरे।।

विषघ्न होने से सर्पविष में इसका प्रयोग किया जाता है। सुश्रुतोक्त "एकसर-गण' विषघ्न है और इस गण की सर्पगन्धा भी मुख्य औषधि है। यह कृमिघ्न होने से कृमिरोग में तथा स्रंसन होने से बिबन्ध में उपयोगी है। कोष्ठ में लगे मल को जो कि पचने वाले होते हैं उनको बिना पकाये ही बाहर निकाल देने वाले द्रव्य स्रंसन कहे जाते हैं। कामावसादक होने से अकारण शिश्नोत्थान एवं कामातिशय की अवस्था में इसका प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद विज्ञान में लिखा हुआ है कि अकारण शिश्नोत्थान से जिनकी नींद अचट जाती हो और सिर दर्द रहता हो उन्हें इसके सेवन से लाभ होता है। पूयमेह (सुजाक) के परिणाम स्वरूप अत्यन्त शिश्नोत्थान से जिनका शिश्न टेढा हो जाता है, उन्हें भी इसका सेवन कराना चाहिये। स्त्री और पुरुष दोनों पर इसकी समान क्रिया होती है। यह गर्भाशय संकोचक होने से कष्ट प्रसव में तथा आर्तव जनन होने से कष्टार्तव में भी उपयोगी है।

सामान्य प्रयोग—

1. उदरशूल—आमज विबन्ध शूल को दूर करने के लिये एक भाग सर्पगन्धामूल, दो भाग कुटजत्वक् और तीन भाग कंटकारी-एरण्डमूलत्वक् के चूर्ण 3-4 ग्राम का दूध के साथ सेवन करना चाहिए।

2. अपस्मार—सर्पगन्धा, इलायची बीज, ब्राह्मी और वंशलोचन सभी समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। चार-चार ग्राम चूर्ण पानी के साथ सेवन करें।

3. योषापस्मार—(क) सर्पगन्धा, ब्राह्मी, बच और दालचीनी के 500-500 मि.ग्रा. चूर्ण को ठन्डे पानी में पीसकर नारियल के पानी में मिलाकर पिलावें।

(ख) सर्पगन्धा 40 ग्राम, ब्राह्मी 20 ग्राम, जटामांसी 10 ग्राम, सफेद चन्दन, गुलाब के फूल, बड़ी इलायची तीनों 5-5 ग्राम लेकर इनका कपड़छन चूर्ण बनाकर एक-दो ग्राम चूर्ण को दूध के साथ सेवन करते रहने से लाभ होता है। यह निद्रा हेतु भी उपयोगी है। रक्तचाप में 500 मि.ग्रा. दें।

4. शिरःशूल—(क) सर्पगन्धाचूर्ण 500 मि.ग्रा. और गोदन्ती भस्म 500 मि.ग्रा. को मधु के साथ सेवन करें।

5. अंगशूल (वातज पीड़ा)—सर्पगन्धा, सोंठ, मेथी बीज, अश्वगन्धा, निर्गुण्डीमूल की छाल, एरण्ड मूल छाल और पिप्पलीमूल को समान मात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण बनालें। दो-दो ग्राम चूर्ण दिन में दो-तीन बार गाय के गरम दूध से सेवन करने से शरीर के किसी भी अंग में होने वाला दर्द मिटता है।

6. हृदय रोग—सर्पगन्धा का कफ एवं वातज हृदय रोग में महत्वपूर्ण स्थान है। अनुपान में सोंठ का क्वाथ देना चाहिये।

7. हिक्का—सर्पगन्धा चूर्ण 2 ग्राम को अजवायन के क्वाथ के साथ सेवन कराने से हिक्का का शमन होता है।

8. कुक्कुरकास (काली खांसी)—सर्पगन्धा का चूर्ण 250 मि.ग्रा. प्रमाण में तीन-तीन घन्टे से शहद के साथ देने से लगातार होने वाली खांसी बन्द होती है।

9. उन्माद—(क) सर्पगन्धा का चूर्ण 2-3 ग्राम को शर्करायुक्त दूध के साथ सेवन करावें।

(ख) सर्पगन्धा, शंखपुष्पी और ब्राह्मी का चूर्ण बनाकर दूध के साथ सेवन करें। मात्रा 2-3 ग्राम।

(ग) सर्पगन्धा, मालकांगनी के बीज और जटामांसी का चूर्ण 3-3 ग्राम सेवन करें।

(घ) सर्पगन्धा, वचा, कूठ, गिलोय और त्रिफला का चूर्ण बनाकर सेवन करने से भी उन्माद में लाभ होता है। अनुपान—जटामांसी अर्क।

10. अनिद्रा—(क) सर्पगन्धा चूर्ण 2-3 ग्राम को घृत में मिलाकर चाटने से अनिद्रा दूर होकर नींद आती है।

(ख) सर्पगन्धामूल चूर्ण 2 ग्राम, छोटी इलायची 5, कालीमिर्च 5 सबको तीन घन्टा तक गुलाब अर्क में भिगोकर ढंडाई की तरह पीस मिश्री मिलाकर देने से लाभ होता है।

(ग) सर्पगन्धा चूर्ण और कालीमिर्च चूर्ण समान लेकर एक-दो ग्राम चूर्ण को दूध के साथ देने से भी लाभ होता है।

11. रक्तचाप वृद्धि—(क) सर्पगन्धा चूर्ण 300-400 मि.ग्रा. की मात्रा में दूध, जल अथवा गुलाब के अर्क के साथ दिन में दो बार देने से लाभ होता है।

(ख) सर्पगन्धा और खुरासानी अजवायन का चूर्ण 600-600 मि.ग्रा. लेकर इन दोनों के बराबर शक्कर मिलाकर सादे जल से लेने से रक्तचाप वृद्धि में लाभ होता है। रात में सोने से दो घण्टे पहले इसके सेवन से अच्छी नींद आती है।

(ग) सर्पगन्धा चूर्ण 300 मि.ग्रा. छोटी इलायची का चूर्ण 125 मि.ग्रा. और शुद्ध शिलाजीत 250 मि.ग्रा. मिलाकर सबको दूध के साथ सुबह-शाम सेवन करने से भी रक्तचाप कम होता है।

(घ) सर्पगन्धाचूर्ण 500 मि.ग्रा., गिलोय चूर्ण एक ग्राम और आंवला चूर्ण दो ग्राम लेकर जल के साथ प्रातःकाल सेवन करें। इसी प्रकार एक मात्रा सायंकाल भी जल से सेवन करें। इससे भी उत्तम लाभ होता है। मिश्री के पानी से देना अधिक उपयोगी है।

(ङ) सर्पगन्धा, ब्राह्मी, अर्जुनछाल, गिलोय और असगन्ध का समभाग चूर्ण तैयार कर लें। एक-दो ग्राम चूर्ण दूध के साथ दिन में एक बार सेवन करें।

(च) यदि मलावरोधजन्य रक्तचापवृद्धि हो तो सर्पगन्धा के साथ में गुलकन्द, हरड़ का मुरब्बा या मुनक्का भी साथ में दें। मधुमेह हो तो साथ में शिलाजीत भी दें।

(छ) सर्पगन्धा 15 ग्राम सूखा, आलुबुखारा 25 ग्राम और त्रिफला चूर्ण 50 ग्राम का बारीक चूर्ण कर इसमें विल्वपत्र स्वरस100 मि.लि. मिलाकर खूब घोटकर बेर के समान गोलियां बनालें। एक-एक गोली दिन में दो-तीन बार जल के साथ साथ देने से रक्तचाप नियंत्रित होता है। इन गोलियों को भृंगराज स्वरस या आमलकी स्वरस के साथ देने से अधिक लाभ होता है।

(ज) सर्पगन्धा 10 ग्राम, ब्राह्मी 10 ग्राम, मालकांगनी 10 ग्राम, वचा 5 ग्राम, जटामांसी 5 ग्राम का बारीक चूर्ण बनाकर एक-दो ग्राम चूर्ण शंख पुष्पीस्वरस या शंख पुष्पी शर्बत के साथ दिन में एक-दो बार सेवन करावें।

(झ) सर्पगन्धा चूर्ण 500 मि.ग्रा. नित्य दिन में दो बार फलासव या सारस्वतारिष्ट 20 मि.लि के साथ देने से भी लाभ होता है।

(ञ) सर्पगन्धा चूर्ण 500 मि.ग्रा. को सर्पगन्धा स्वरस या लहसुन स्वरस (एक पोथिया लहसुन हो तो अधिक उपयोगी है) की एक-दो चम्मच के साथ देने से रक्तचाप नियन्त्रित होता है।

12. श्वास—सर्पगन्धा चूर्ण 1.5 ग्राम, शहद के साथ दमा के शुरू होते ही चाटने से दमा रोगी को आराम मिलता है।

13. प्रवाहिका—पेचिश में बार बार दस्त होने, वेदना होने और रक्त जाने पर कुटजमूल 5 ग्राम के क्वाथ के साथ या कुटजारिष्ट के साथ सर्पगन्धा चूर्ण 250 मि.ग्रा. (एक मात्रा) दो-दो घन्टे पर तीन-चार बार देने से पेचिश का वेग कम हो जाता है, रक्तस्राव बन्द हो जाता है और वेदना में भी कमी हो जाती है।

14. मदात्यय—मदिरा का अति व्यसन हो जाने के बाद निद्रानाश, बुद्धिभ्रम, दाह, अग्निमांद्य, वमन, तृषा, अतिसार, अतिस्वेद आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी स्थिति में एक एक ग्राम सर्पगन्धा को सुबह गुलाब जल में भिगो, शाम को पीस बिना छना पिला देवें। इसी तरह शाम को भिगोकर सुबह पीस पिलावें।

15. कष्ट प्रसव—सर्पगन्धा चूर्ण एक एक ग्राम दो-दो घन्टे के अन्तर से दो-तीन बार शहद के साथ देने से गर्भाशय का आकुंचन होता है और प्रसव वेग बलपूर्वक उत्पन्न होता है। इससे वेदना का मान कम होता है।

16. गर्भस्राव जन्य पीड़ा—गर्भस्राव हो जाने के बाद कुछ दोष अन्दर रह जाने से पीड़ा होती है और

रक्तस्राव जारी रहता है ऐसी स्थिति में इसे 500-600 मि.ग्रा. की मात्रा में दो-दो घन्टे से 3-4 बार शहद के साथ देना चाहिये। इससे भी गर्भाशय का आकुंचन होकर दोष बाहर निकल जाते हैं और रक्तस्राव भी बन्द हो जाता है।

17. सर्पविष—सर्पगन्धा 20 ग्राम और कालीमिर्च तीन ग्राम को कुचलकर एक लिटर जल में उबालते हैं। आधा लिटर शेष रह जाने पर छान लेते हैं। उसे ठन्डा कर थोड़ा-थोड़ा जल पिलाते हैं। साथ में सर्पगन्धा को जल में घिसकर दंश स्थान पर मोटा लेप भी करते हैं। आधा घन्टे बाद उस लेप को हटाकर दूसरा लेप करते हैं। इस प्रकार पूरा जल पिला देने पर तथा 5-6 बार लेप कर देने पर सर्पविष का शमन हो जाता है। उपचार में बिलम्ब होने पर जब रक्तस्राव हो रहा हो तो सर्पगन्धा चूर्ण एक-एक ग्राम दिन में तीन बार शहद के साथ 8-10 दिनों तक देते रहने से विष निवृत होकर रक्तस्राव भी बन्द हो जाता है।

विशेष योग (विविध कल्प)—

1. सर्पगन्धाचूर्ण योग—अत्यन्त बारीक पीसा हुआ रससिंदूर 1.5 ग्राम और सर्पगन्धा का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण 30 ग्राम एकत्र मिला एक घण्टा मर्दन करके रख लें। इसकी 24 पुड़िया बनाकर सुबह-शाम एक-एक पुड़िया जल, दूध या गुलाब के अर्क के साथ दें। इससे अनिद्रा, उन्माद, अपतंत्रक (हिस्टीरिया) और नये अपस्मार में इससे लाभ होता है। *—सि.यो.सं.*

2. सर्पगन्धा घनवटी—सर्पगन्धा 10 किलोग्राम, खुरासानी अजवायन की पत्ती या बीज 2 किलो, जटामांसी एक किलो और भांग एक किलो इनका जौकुट चूर्ण कर, उसको आठगुने जल में मन्दी आंच पर पकावें और हिलाते रहें। जब अष्टमांश जल बाकी रहे तब ठंडा होने पर दो बार कपड़े से छानकर फिर मन्द आंच पर पकावें। जब क्वाथ करछी के लगने लगे, गाढ़ा हो जाय तब उसको नीचे उतारकर धूप में सुखावें। जब गोली बनने योग्य हो जाय तब उसमें 125-250 ग्राम पीपलामूल का चूर्ण मिला 260 मि.ग्रा. की गोलियां बना सुखाकर रखलें। दो-तीन गोली रात को सोते समय जल या दूध के साथ लेने से अच्छी नींद आती है। *—सि. यो. सं.*

3. सर्पगन्धादि वटी—(क) सर्पगन्धा 30 ग्राम, काली मिर्च 2 ग्राम और पीपलामूल 6 ग्राम का बारीक चूर्ण बनाकर जल के संयोग से 500 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। एक-एक गोली दिन में तीन बार जल, निम्ब का स्वरस 10 मि.लि., शहद 10 ग्राम मिलाकर इसके साथ दें। इसे एक दिन से तीन दिन तक देना चाहिये। इससे पेट साफ हो जाता है और रक्तभार कम हो जाता है।

—वैद्य सहचर

(ख) सर्पगन्धा 50 ग्राम, कूठ असली 50 ग्राम, मालती के फूल 50 ग्राम, ब्राह्मी 50 ग्राम, बच 50 ग्राम, शंखपुष्पी 50 ग्राम, इन्द्रायण की जड़ 50 ग्राम, बालछड़ (जटामांसी) 50 ग्राम, बड़ी हरड़ का बक्कल 50 ग्राम, नीलोफर 50 ग्राम इन सबका बारीक चूर्ण कपड़छन कर गुलाब जल में एक दिन घोटकर चना बराबर गोलियां बनावें। दो-दो गोली प्रातः सायं शंखपुष्पी के क्वाथ अथवा अर्क से दें। यह रक्तचापाधिक्य और अनिद्रा में लाभदायक है। *—धन्व. यू. चि. वि.*

4. सर्पगन्धा पानक—सर्पगन्धाचूर्ण 25 ग्राम, छोटी इलायची 60 के बीजों का चूर्ण, 60 काली मिर्च के चूर्ण को 725 मि.लि. अर्क गुलाब में शाम को कांच के बर्तन में भिगो देवें। सुबह खूब पीस कर छानकर 100 ग्राम मिश्री मिलाकर पतली चासनी बनाकर शर्बत तैयार हो जाने पर ठन्डा कर बोतल में भर लेवें। इसे 15-20 मि.लि. लेकर चौगुने पानी में मिलाकर पिलावें। यह उन्माद के रोगी को देने से अच्छा लाभ होता है। *—चिकित्सादर्श*

5. सर्पगन्धादि अर्क (शैव रसायन अर्क)—सर्पगन्धा 200 ग्राम, शतावरी 100 ग्राम, ब्राह्मी 50 ग्राम, शंखपुष्पी 50 ग्राम, मेदा, महामेदा, अनन्तमूल असगन्ध, सहदेई, मकोय और अर्जुन की छाल प्रत्येक 25-25 ग्राम,

चन्दन सफेद, गुलाब के फूल, गोरखमुण्डी, बड़ी इलायची, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू और गिलोय प्रत्येक 12.5-12.5 ग्राम इन सबको जौ कुट कर 8 लिटर पानी में बारह घंटों तक भिगो दें। फिर वाष्पयन्त्र से चार लिटर अर्क खींच लें। इस अर्क में 750 ग्राम मिश्री मिलाकर शर्बत भी बनाया जा सकता है। कोई केवल सर्पगन्धा से ही अर्क निकालकर उपयोग में लाते हैं। यह अर्क या शर्बत मस्तिष्क को शीतलता प्रदान कर अच्छी नींद लाता है। इसे अन्य दवाओं के अनुपान के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। *—वनौ. शतक*

6. सर्पगन्धा पाक—सर्पगन्धा एक किलो के महीन चूर्ण को दो किलो मावा (खोवा) में मिलाकर घी में सेकें। सिकने के बाद 250 ग्राम बच और 250 ग्राम शंख पुष्पी का चूर्ण प्रक्षेप रूप में मिला दें। फिर चार किलो चीनी की चासनी ग्वार पाठे के रस में कर के उन सबको मिलाकर 20-20 ग्राम की मात्रा में सुबह शाम धारोष्ण दूध के साथ देने से पागलपन में अत्यन्त लाभ होता है। कब्ज रहने पर साथ में कब्जनाशक औषधि भी दें। इस पाक को 40 दिनों तक लगातार सेवन करने से पागलपन चला जाता है तथा स्मरण शक्ति तीव्र हो जाती है। यदि उष्ण काल हो तो 6 ग्राम शंखपुष्पी को रात में एक मिट्टी के बर्तन में भिगो दें, सुबह 8 बादाम की मिंगी तथा 6 काली मिर्च मिलाकर ठण्डाई की तरह घोटकर मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिये। साथ में बादाम रोगन एवं चन्दन तैल को सिर में मलना भी चाहिए। *—धन्व. वनौ. विशे.*

7. सर्पगन्धारिष्ट (चन्द्रकलारिष्ट)—सर्पगन्धा 5 किलो, बला, असगंध, जटामांसी प्रत्येक आधा-आधा किलो। शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, नागबला, गम्भारी की छाल, गोखरू, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकालोली, पीपल की छाल, वट की छाल, पलाश की छाल, गूलर की छाल, खस, गन्ध तृण, कुश की जड़, काश की जड़, शरकण्डा की जड़, ईख की जड़, रास्ना, कचूर, बड़ी हरड़, कूठ, मुलेठी प्रत्येक 120-120 मि.ग्रा. इनको जौ कुट कर 60 लिटर पानी में पकावें जब 20 लिटर जल शेष रहे तब नीचे उतार कर चीनी 5 किलो, मधु 4 किलो, धाय के फूल एक किलो 500 ग्राम इन सबको अच्छी तरह मिला दें फिर नागकेशर, प्रियंगु, तालीसपत्र, तेज पात, दाल चीनी और शीतल चीनी प्रत्येक 60-60 ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर प्रक्षेप रूप में इसमें मिलाकर सन्धिबन्धन कर दें। अरिष्ट बनाने के विधानानुसार एक महीने के बाद इसे छानकर बोतलों में सुरक्षित रख लें। यह अरिष्ट हाई ब्लड प्रेशर एवं इससे सम्बन्धित विकारों में बहुत अच्छा लाभ करता है। इससे वायु का विकार नष्ट होकर शान्ति होती है। ऊर्ध्वगामी वायु के कारण होने वाले उपद्रवों का इससे शमन होकर हृदय और मस्तिष्क को शान्ति मिलती है। अनिद्रा और हिस्टीरिया पर भी इसका बहुत अच्छा प्रभाव होता है। वायु शामक तथा जीवनीय औषधियों के संयोग से सर्पगन्धा का कार्यक्षेत्र और भी बढ़ जाता है। गुर्दों पर भी इसकी क्रिया अच्छी होती है। इससे पेशाब साफ होकर रक्त की गर्मी का मादा बाहर हो जाता है। मात्रा—15-25 मि.लि. बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दें। *—वनौ. शतक*

यूनानी योग—यूनानी चिकित्सक दवाएं जुनून (उन्माद की औषधि) के नाम से सर्पगन्धा को ही उपयोग में लाते हैं। वैद्यराज हकीम ठा. श्री दलजीत सिंह ने अपने यूनानी सिद्ध योग संग्रह (वैद्यनाथ प्रकाशन) में लिखा है कि तिब्बिया कालेज लाहौर के भूतपूर्व प्रिन्सिपल स्वर्गवासी डाक्टर जेबुर्रहमान महाशय इसका प्रचुरता से प्रयोग करते थे। हिन्दुस्तानी दवाखाना दिल्ली की यह प्रख्यात औषधि है। जहाँ इसे 'दवा उश्शिफा' भी कहते हैं। वैद्यों के बीच यह सर्पगन्धा के नाम से प्रसिद्ध है। यह उन्माद, अपस्मार और अपतंत्रक (हिस्टीरिया) में अतीव लाभकारी है। वात शामक और स्वापजनक भी है। इसे सबेरे और शाम दो-दो ग्राम साधारण जल के साथ देना चाहिये।

एलोपैथिक योग—एलोपैथिक चिकित्सक भी इसे रक्तचाप कम करने हेतु, नींद लाने हेतु एवं मस्तिष्क के अन्य रोगों में प्रयुक्त करते हैं। इसके आफिशंल योग ये हैं—

1. लिक्विड एक्सट्रेक्ट आफ रावोल्फिया (सर्पगन्धा का प्रवाही घनसत्व)-इसमें एक प्रतिशत रावोल्फिया के अल्कलायड्स होते हैं। इसका उपयोग टिंचर रावोल्फिया बनाने में किया जाता है। मात्रा 3-6 बूंद।

2. ड्राई एक्सट्रेक्ट आफ रावोल्फिया (सर्पगन्धा का सत)—इसमें चार प्रतिशत रावोल्फिया के अल्कलाइड्स होते हैं। मात्रा—15-60 मि.ग्रा.।

3. टिंचर आफ रावोल्फिया—इसमें 0.25 प्रतिशत रावोल्फिया के अल्कलाइड्स होते हैं। मात्रा 12 से 30 बूंद।

इसके व्यावसायकि योगों में कुछ रिसर्पीन (शुद्ध क्रिस्टलीय रूप में) युक्त ये हैं—

क्र.	कम्पनी	दवा	घटक	मात्रा	स्वरूप
1.	सीबा	1. सर्पासिल	रिसर्पीन	0.25 मि.ग्रा.	गोली, इन्जे.
		2. एलल्फेन	1. रिसर्पीन	0.1 मि.ग्रा.	गोली
			2. डाइहाइड्रोलैजीन	10.00 मि.ग्रा.	
2.	सुहृद गायगी	हाइग्रोटोन - रिसर्पीन	1. रिसर्पीन	0.25 मि.ग्रा.	गोली
			2. क्लोरथैलिडोन	50.00 मि.ग्रा.	गोली
3.	फाइजर	नैफ्रिलआर	1. रिसर्पीन	0.25 मि.ग्रा.	गोली
			2. पोलीथाएजाइड	1.00 मि.ग्रा.	गोली
4.	हैक्स्ट	टर्बोलन	1. रिसर्पीन	0.1 मि.ग्रा.	गोली
			2. फ्यूरोमाइड	15.0 मि.ग्रा.	गोली
5.	बंगाल इम्यूनिटी	रिसर्पीन	रिसर्पीन	2.5 मि.ग्रा.	गोली
6.	ग्लूकोनेट	1. रिसर्पीन	रिसर्पीन	0.1 मि.ग्रा.	गोली
		2. रिसर्पीन	रिसर्पीन	1.00 मि.ग्रा.	इन्जे.
		3. आर. एस. फोर्ट.	रिसर्पीन	1.00 मि.ग्रा.	इन्जे.
			सर्मीहाइड्रोक्लोराइड	1.00 मि.ग्रा.	इन्जे.
7.	बिडिल सीयर	1. रिसर्पीन	रिसर्पीन	0.25 मि.ग्रा.	गोली
				1.00 मि. ग्रा.	गोली
		2. सर्पीलेट	रिसर्पीन	0.25 मि.ग्रा.	गोली
		3. सर्पीलेट फोर्ट	रिसर्पीन	1.00 मि.ग्रा.	गोली

सर्पगन्धा को समग्र रूप में लेकर बनाई गई औषधियां ये हैं—

1.	हिमालया ड्रग	सर्पीना	टोटल अल्कलाइड	4 मि.ग्रा.	गोली (प्रति)
2.	ग्लूकोनेट	आर. एस. 51	रावोल्फिया सर्पे.	10 मि.ग्रा.	गोली "
3.	यूनिकेम	यूनीटेंशन	1. सर्पगन्धामूल	28 मि.ग्रा.	गोली "
			2. मेनिटोल हेक्सा.	16 मि.ग्रा.	गोली "
			3. अमोनोफाइलीन	64 मि.ग्रा.	गोली "
			4. थायेमीन–हाइड्रोक्लोराइड	5 मि.ग्रा.	गोली "
			5. नियासीन	30 मि. ग्रा.	गोली "
4.	स्विव	1 हाइरोडिक्सिन	1. सर्पगन्धामूल	50 मि.ग्रा.	गोली "
			2. हाइड्रोफ्लूमैथेजाइड	25 मि.ग्रा.	गोली "
		2. हाइरोडिक्सिन फोर्ट	1. सर्पगन्धा	50 मि.ग्रा.	गोली "
			2. हाइड्रोफ्लू.	50 मि.ग्रा.	गोली "

विशेष वक्तव्य—यह कभी न भूलना होगा कि सर्पगन्धा मूल की क्रिया धीरे-धीरे होती है। जो लोग यह सोचते हैं कि इसको दिया उधर इससे लाभ हुआ वे गलती पर हैं। सामान्यत: 3 से 10 दिनों में सर्पगन्धा रक्तचाप पर अपना प्रभाव दिखलाती है। जो लोग इसे लगातार देते रहते हैं, उन्हें अच्छा लाभ होता है। हमने कई रक्तचाप से पीड़ित चिकित्सकों को इसे एक दो दिन देकर बन्द करते हुए और अन्य उग्र औषधियां देखा है। पर जो लाभ रक्तचापाधिक्य में सर्पगन्धा से होता है वह अन्य किसी भी दवा से नहीं होता यह तथ्य निर्विवाद हैं।

रिसर्पीन नामक अल्कलाइड रावोल्फिया सर्पेन्टिना नामक पौधे का सर्वाधिक सक्रिय भाग है। जहाँ सर्पगन्धा समग्र अपना प्रभाव दस दिन में दिखा पाती है वहाँ रिसर्पीन से यह प्रभाव एक से तीन दिनों के अन्दर ही प्रकट हो जाता है। विद्वानों ने यह सुझाव दिया है कि केन्द्रीय वात नाड़ी संस्थान के कुछ स्थलों को निष्क्रिय करके अथवा नोर-एड्रिनलीन को उन्मुक्त करके रिसर्पीन ब्लड प्रेशर को घटाती है रिसर्पीन के द्वारा विष रक्तता भी देखी जा सकती है अत: इसे पूर्ण निरापद नहीं कहा जा सकता जबकि सपर्गन्धा समग्र में ऐसा प्राय: नहीं होता। विषजन्य प्रभाव के कारण नाक का भर जाना, मुख का सूखना, आलस्यातिरेक और अतिसार के लक्षण मिल सकते हैं। इससे काम वासना घट जाती है। वजन बढ़ने लगता है। अधिक गम्भीर होने पर रोगी का मन कभी कभी तो इतना अधीर हो जाता है कि वह आत्महत्या की इच्छा करने लगता है। अपस्मार के रोगी को अधिक मात्रा में या अधिक दिनों तक रिसर्पीन या सर्पगन्धा भी नहीं देनी चाहिये। उन्हें रिसर्पीन विषता के कारण दोरों की संख्या व समय बढ़ सकता है। सर्पगन्धा समग्र के देने से कामवासना का शैथिल्य, भयंकर अवसाद जैसे लक्षण (रिसर्पीन के द्वारा जिनकी संभावना रहती है) उत्पन्न नहीं होते हैं। अत: अधिकतर चिकित्सक सर्पगन्धा समग्र देने के पक्ष में हैं। हाँ दीर्घकाल तक सेवन से सर्पगन्धा के कारण भी साधारण रेचन, शिथिलता, अवसादक या

डरावने स्वप्न आना आदि होते हैं पर ये रिसर्पीन की अपेक्षा स्वल्प होते हैं।

—आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
(सुधा. रक्तदाबांक)

पेटेन्ट प्रयोगों में सर्पगन्धा—सर्पगन्धा के प्रसार-प्रचार में हिमालया ड्रग कंपनी का महत्वपूर्ण योगदान है। इसकी सर्पिना टिकिया सर्वप्रसिद्ध है। रक्तचाप तथा चिन्ताजन्य संवेदनाओं को शान्त करने हेतु यह श्रेष्ठ योग है। प्रत्येक 'सर्पिना' की टिकिया में रासायनिक रूप से प्रमाणित सर्पगन्धा के सम्पूर्ण अलकलाइड (चार मि.ग्रा.) हैं। मृदु रक्त चापाधिक्य में आधी से एक टिकिया दिन में 2-3 बार, तीव्र रक्तचाप में 2 टिकिया दिन में तीन बार, उन्माद-अपस्मार में 1-3 टिकिया दिन में तीन बार देनी चाहिये। हृदय, रक्तसंवहन संस्थान तथा वृक्क की विकृतियों से उत्पन्न रक्तचाप वृद्धि में यह बहुत लाभदायक है। इसे अतिरिक्त रक्तचाप के कारण उत्पन्न हृदयावरोध, तीव्र उन्माद, अपस्मार, योषापस्मार, वात नाड़ियों में क्षोभ, मानसिक चिड़चिड़ाहट, हृदयशूल, बच्चों में शय्यामूत्र, अनिद्रा, बुढ़ापे तथा धमनीकाठिन्य के कारण मानसिक अवसाद, अति मैथुन जन्य निर्बलता, चुल्लिका ग्रन्थि स्राव का विष प्रभाव आदि में भी यह उपयोगी है। दीर्घकाल तक इसके सेवन से नाक का बन्द होना (खुश्की), हृदय की गति का मन्द होना, साधारण रेचन, शिथिलता, अवसाद एवं डरावने सपने आना आदि साधरण दुष्प्रभाव होने लगते हैं, वहाँ एक-दो सप्ताह के लिए इसे बन्द कर देना चाहिये। सर्पिना के अतिरिक्त हिमालया ड्रग की ल्युकोल टिकिया (प्रदरहर) और स्पेमेन फोर्ट टिकिया (स्वप्नमेह हर) में भी इस सर्पगन्धा का मिश्रण किया जाता है। इसी प्रकार 'अबाना' में भी यह है।

निर्मल आयुर्वेद संस्थान द्वारा विर्निमत 'रक्तचापारि कैपसूल' में सर्पगन्धा, खुरासानी अजवायन, जटामांसी आदि हैं। इसके सेवन से रक्तचाप कम होता है और अच्छी नींद आती है। अनिद्रा में 'निद्राकारकवटी' (नि. आ. सं.) भी लाभप्रद है। आवश्यकतानुसार एक-दो गोली दूध के साथ रात में सोते समय देनी चाहिये। यह वटी सर्पगन्धा, खुरासानी अजवायन, जटामांसी के घनसत्व, पीपलामूल से बनाई जाती है।

गर्ग वनौषधि भण्डार के रक्तचापान्तक कैपसूल में सर्पगन्धा घनसत्व, ब्राह्मीशंखपुष्पी घनसत्व, बच, पीपलामूल आदि हैं। यह हृदय की धड़कन नियमित करके रक्त चाप को ठीक करता है। एक-एक कैपसूल प्रातः सायं जल के साथ देना चाहिये। रोग की विशेष तीव्रता में तीन-तीन घन्टे के अन्तर से दे सकते हैं। अपस्मार रोग में गर्ग एपीलैप कैपसूल देने चाहिये। इसमें सर्पगन्धा घनसत्व, जटामंसी घनसत्व, ब्राह्मी शंखपुष्पी घनसत्व, वच, अश्वगन्धा घनसत्व, स्मृति सागर रस है। एक-दो कैपसूल सुबह-शाम जल के साथ 4-6 माह तक देने चाहिये।

उच्च रक्तचाप में उपयोगी 'हर्टिना' नामक कैपसूल का निर्माण धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा किया जाता है। ये कैपसूल भी हृदय की धड़कन को ठीक करके रक्तचाप को नियमित करते हैं। इनमें भी सर्पगन्धा, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, प्रवाल पिष्टी आदि हैं।

इसी प्रकार के कैपसूल श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़ द्वारा भी बनाये जाते है, जिनका नाम रखा गया है—"रक्तचाप हारी कैपसूल"। इनमें सर्पगन्धा, खुरासानी अजवायन, पीपला मूल आदि के अतिरिक्त शु. विजया भी है।

झन्डू फार्मा द्वारा जो 'हिप्नोटेन्सन टेबलेट' बनाई जाती है, इनमें सर्पगन्धा, ब्राह्मी, बच, भृंगराज, जीवन्ती आदि हैं। ये उच्च रक्तचाप, अपस्मार, योषापस्मार आदि में हितकारक हैं। दिन में दो-तीन बार 2-2 टेवलेट देनी चाहिये। झन्डू की 'ब्रेंटो' गोली में भी सर्पगन्धा है जो

मानसिक दौर्बल्य, स्मृतिमांद्य आदि में उपयोगी है। बुद्धिजीवी वर्ग के लिए यह उपयोगी योग है। इसका गोलियों के अतिरिक्त प्रवाही (पेय) भी आता है। जिसमें भी सर्पगन्धा, वचा, मुलेठी, जायफल आदि हैं।

मेडिकल इथिक्स आफ इण्डिया का भी "इथीनोर सीरप" आता है जो एक-दो चम्भच भोजनोपरान्त दिया जाता है। यह स्नायुमण्डल के विकार अपस्मार, योषापस्मार आदि में लाभदायक है। इसमें सर्पगन्धा के अतिरिक्त अर्जुन, अनन्तमूल, अश्वगन्धा, वच, ब्राह्मी आदि हैं।

सर्पगन्धा, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, असगन्ध आदि द्रव्यों के द्वारा ऊंझा आयुर्वेदिक फार्मेसी द्वारा भी 'सर्पालीन" नामक टेबलेट बनाई जाती है। सर्पगन्धा, जटामांसी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, पिप्पली से निर्मित 'कार्डिमेप' नामक टेबलेट महर्षि आयुर्वेद का उत्पादन है। चरक फार्मास्युटिकल्स की 'सपेरा' नामक गोलियों में भी बहुत से द्रव्यों के साथ सर्पगन्धा भी है। शिल्पा केम (इन्दौर) द्वारा बनाये गये सायनिल नामक टेबलेट और कैपसूल में सर्पगन्धा, पीपलामूल, जटामांसी, अश्वगन्धा, वचा आदि हैं। सरपेन्टीना नामक कैपसूलों का निर्माण श्री रुद्रदेव आयुर्वेद भवन (नयागांव-सारन) द्वारा किया जाता है। इसमें भी सर्पगन्धा, ब्राह्मी, जटामांसी, खुरासानी अजवायन, अर्जुन, मालकांगनी, गोखरू, हरीतकी आदि हैं। ये सभी योग उच्च रक्तचाप एवं तज्जनित उपद्रवों (यथा सिरका भारीपन, सिर दर्द, कब्ज, चक्कर आना, बेचैनी, नींद की कमी आदि) को शान्त करते हैं। ये चिन्ता, तनाव से भी मुक्ति दिलाते हैं। ये उन्माद अपस्मार में भी उपयोगी हैं। तनाव दूर करने की अनेक आधुनिक औषधियों की भाँति इनका कोई प्रतिकूल असर नहीं होता है।

देशरक्षक औषधालय लिमिटेड कनखल-हरिद्वार द्वारा एक "निद्रायणी" नामक योग (टेवलेट) तैयार किया जाता है। इसमें सर्पगन्धा घनसत्व, खुरासानी अजवायन घनसत्व, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, कायफल, कड़वी कूठ, मालकांगनी, विजया बीज, केसर, मुक्ताशुक्ति, रससिंदूर आदि हैं जिनमें जटामांसी के क्वाथ की भावना देकर इन गोलियों को तैयार किया जाता है। अनिद्रा में उत्तम योग है।

अनुभूत योग—

1. रक्तचापहर सर्पगन्धा योग—सर्पगन्धा चूर्ण 100 ग्राम, रस सिन्दूर, मुक्ता शुक्ति पिष्टी, जहर मोहरा खताई पिष्टी और गुडूची सत्व प्रत्येक 5-5 ग्राम को खूब घोटकर शीशी में रखें। एक-एक ग्राम प्रात: सायं जल से या अर्क गुलाब से दें। रक्तचापाधिक्य को शीघ्र नियन्त्रण में लाता है। इससे शान्त निद्रा आती है।

—कविराज श्री गिरिधारी लाल मिश्रा

(स्वास्थ्य मार्च 1982)

2. रक्त चापहर मूत्रल योग—सर्पगन्धा चूर्ण 500 मि.ग्रा., श्वेत पर्पटी 500 मि.ग्रा. की एक मात्रा देने से तत्काल मूत्र की प्रवृत्ति होती है तथा मूत्र त्याग होकर रक्तचाप घट जाता है। एलोपैथिक की लेसिकस टेबलेट की तरह इसके द्वारा शीघ्र मूत्र प्रवृति होती है, तत्काल लाभप्रद है।

—कवि. डा. श्री गिरिधारीलाल मिश्रा

(आयुर्वेद विकास नव. 92)

3. उच्चरक्तचापान्तक मिश्रण—सर्पगन्धा घनसत्व 20 ग्राम, अश्वगन्धा घनसत्व 20 ग्राम, वच घनसत्व 20 ग्राम, ब्राह्मी शंख पुष्पी घनसत्व 20 ग्राम, अकीक पिष्टी 20 ग्राम यह कुल 100 ग्राम योग हुआ, इसकी बराबर बराबर 60 पुड़िया बनालें। एक-एक पुड़िया सुबह शाम कच्चे दूध के साथ रोगी को दें।

—वैद्य श्री गोपालशरण गर्ग

(सुधानिधि जन. 93)

4. रक्तचापवृद्धि में अद्भुत प्रयोग—यह प्रयोग श्री वैद्य राधेश्याम व्यास नोखा (बीकानेर) वालों का है।

औषधि प्रयोग के साथ-साथ इसका भी प्रयोग करते रहना चाहिये। प्रयोग—सर्पगन्धा, अश्वगन्धा और आश्विन मास की विजया तीनों समभाग पीसकर चूर्ण बना लें। फिर तेल का दीपक जलाकर, थोड़ी सी दवा बत्ती पर भी डालें। पांच मिनट जलते दीपक को एकटकी लगाकर देखकर रोगी सो जाय। दीपक सावधानी पूर्वक दूर जलता रहे। उस कमरे में अन्य कोई दूसरा नहीं सोवे। तेल इतना ही डालें कि दो घन्टे में तेल तथा बत्ती दवा के साथ जल जावे। रोगी को नींद आने लगेगी और बेचैनी शान्त हो जायेगी। दवा की मात्रा 6 ग्राम है। मेरा मत है कि रक्तचाप किसी भी कारण से हो इस प्रयोग को उपयोग में लाकर गुण देखना चाहिये। साथ में रोग के कारणानुसार चिकित्सा व्यवस्था भी करनी चाहिए।

—वैद्य श्री विद्यानन्द शुक्ल (स्वास्थ्य मार्च 82)

5. निन्द्रद कैपसूल बनाम (सर्पगन्धादियोग) स्वानुभूत एवं वैद्यवरानुमोदित सफल सिद्ध प्रयोग—सर्पगन्धा 10 ग्राम, ज्योतिष्मती 10 ग्राम, विजया घनसत्व 5 ग्राम, वचा 10 ग्राम, जटामांसी 10 ग्राम, अश्वगन्धा 10 ग्राम, पीपलामूल 10 ग्राम, छोटी इलायची बीज 10 ग्राम, रस सिंदूर 10 ग्राम, जहर मोहरा पिष्टी 10 ग्राम, वंशलोचन 10 ग्राम। सर्व प्रथम रस सिन्दूर को खरल में सूक्ष्म घुटाई करें तदनन्तर जहरमोहरा पिष्टी, वंशलोचन एवं विजया घनसत्व को सुपिष्ट कर मिला दें। बाद में सभी अन्य द्रव्यों को सुचूर्णित कर मिलाकर इसे सुरक्षित रखें। इसे 500 मि. ग्रा. की मात्रा में दिन में 2-3 बार चूर्ण रूप में या कैपसूल में भरकर उचित रोगानुसारी अनुपान या सादा पानी से देवें। यह मस्तिष्क की वातनाड़ियों के सूक्ष्म तन्तुओं (स्नायुओं) की रूक्षता को दूर कर उन्हें बल प्रदान करता है। मस्तिष्कगत उत्तेजना को प्रशमित करता है। समृति दौर्बल्य, उच्च रक्तचाप (H.B.P.) अपस्मार, अनिद्रा आदि दूर कर मस्तिष्क कोषाओं को बल प्रदान करता है।

विशेष—सुधानिधि के सम्पादक प्रवर वैद्य श्री गोपालशरण गर्ग द्वारा भी चिकित्सा अनुभवांक (वर्ष 2000) में अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में निन्द्रद कैपसूल को उपयोग करने के बाद सन्तोष व्यक्त करते हुए प्रशंसा अंकित की गयी है।

—आयु. चक्र. वैद्य श्री हरीशंकर शांडिल्य
(वनौ. रत्ना. के लिए प्रे. प्र.)

6. रक्तचापशामक सर्पगन्धा रसायन—250 ग्राम सर्पगन्धा को एक दिन तक गुलाब के अर्क में डुबोकर रखें। फिर छाया में सुखाकर बारीक चूर्ण बना लें। इसमें 250 ग्राम मिश्री और 50 ग्राम छोटी इलायची के दाने पीसकर मिला लें और सुरक्षित रखें।

मात्रा—चौथाई से आधा चम्मच सुबह-शाम गाय के दूध अथवा पानी से लें। इससे बढ़ा हुआ ब्लड प्रेशर तत्काल नियमित हो जाता है तथा अच्छी नींद आती है। सिर दर्द एवं चक्कर आना आदि भी इसके सेवन से बंद हो जाते हैं।

—डा. श्री सुरेश कुमार शर्मा
(निरोगी दुनिया रक्तचाप विशे.)

7. ब्लड प्रेसर की अनुभूत चिकित्सा—सर्पगन्धा 500 मि.ग्रा. से एक ग्राम तक, शंखपुष्पीक्षार 250 मि.ग्राम और वासा क्षार 125 मि.ग्रा.। प्रातः सायं अर्क गुलाब में सेवन करें। साथ में पेट साफ रखने के लिए त्रिफला हिम सेवन करें। ब्लडप्रेसर (उच्च रक्तचाप) में यह योग विशेष लाभकारी है।

—वैद्य पं. श्री शिव शर्मा
(धन्व. रक्तरोगांक 46)

8. रक्तचापाधिक्य पर अनुभव सिद्धयोग 'मनस्विनी'—सर्पगन्धा चूर्ण 50 ग्राम, शुद्ध शिलाजीत 25 ग्राम, अश्वगन्धा, जटामांसी, आमलकी और अकीक पिष्टी 10-10 ग्राम। सब औषधियों को अलग-अलग कूट कपड़छान चूर्ण तैयार करके फिर सबको मिलावें।

एक दिन खूब अच्छी प्रकार मर्दन करें और बाद में भृंगराज, शंखपुष्पी, जटामांसी, ब्राह्मी और सर्पगन्धा इन पांच औषधियों के स्वरस अथवा क्वाथ की एक एक भावना देकर खूब मर्दन कर 240 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। एक-दो गोली दूध के साथ प्रातः सायं दें। इससे रक्तचापाधिक्य, चित्तभ्रम, अनिद्रा, मानसिक दौर्बल्य आदि रोग दूर होकर शान्त निद्रा आती है। ये दिल और दिमाग को शान्ति प्रदान करती है। इसक कुछ दिन धैर्यपूर्वक निरन्तर सेवन करने से बहुत अच्छा लाभकर है।

—वैद्य दयाशंकर दीक्षित

(अनु. यो. मा. जन. 74)

9. उन्मादनाशिनी वटिका—सर्पगन्धा 100 ग्राम, दुधवच 50 ग्राम, शंखाहुली 40 ग्राम, उदसलीव 10 ग्राम, ब्राह्मी 50 ग्राम, अफीम 10 ग्राम। अफीम को छोड़कर शेष औषधियां कूट-कपड़छन कर रखलें। एक खरल में अफीम डालें और थोड़ा सा ब्राह्मी स्वरस या क्वाथ मिलाकर घोटें। जब अच्छी तरह घुटकर लेह के समान होजाय तब उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर ब्राह्मी स्वरस के साथ 6 घन्टे मर्दन कर मटर के समान गोलियां बनाकर सुखा लें।

उन्माद के रोगी को एक-एक गोली दिन में तीन बार अर्क केवड़ा 50 मि. लि. के साथ प्रारम्भ करें। एक-एक गोली दूसरे तथा तीसरे दिन बढ़ावें और आगे भी बढ़ाते जावें, साथ में केवड़े के अर्क की मात्रा भी बढ़ावें। जब रोगी को नींद खूब आने लगे तब मात्रा बढ़ाना बन्द कर दें और धीरे-धीरे घटाते जावें। भोजन में दूध और घृत की मात्रा अधिक दें। उन्माद के रोगी को अवश्य लाभ होगा। परीक्षित योग है।

—वैद्य कुंवर श्री मानसिंह चौहान

(प्रयोग मणिमालांक)

10. शीत पित्तहर प्रयोग—सर्पगन्धा का वस्त्रपूत चूर्ण और मुक्ता शुक्तिभस्म दोनों को समान भाग लेकर खरल कर एक जीव बना रखना। मात्रा—250 मि.ग्रा. दिन में तीन बार जल से दें। यह शीतपित्त-पित्ती उछलना का एक अत्यन्त लाभदायक आशुप्रभावक औषध है। शतशोऽनुभूत है। नवीन शीतपित्त में यह शीतपित्त कुठार केवल 8-10 दिन खिलाना पर्याप्त है। इससे फिर पित्ती उछलने नहीं पाती।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य

(सुधा. अनु. प्र. संग्रह)

● **सम्पादकीय टिप्पणी—**

चित्तविभ्रम (अवसाद) में उपयोगी सर्पगंधादि योग

चित्तविभ्रम (अवसाद-डिप्रेसन) वर्तमान का एक प्रचलित रोग है इसके जीर्ण अवस्था में पहुँचने पर घातक परिणाम देखने को मिलते हैं। निम्न अनुभूत योग जो हमने स्ट्रेसक्योर कैपसूल के रूप में प्रस्तुत किया है इस अवस्था में परम हितकारी प्रमाणित हुआ है पाठक इसका निर्माण कर सकते हैं।

घटक—सर्पगधा घनसत्व 100 मि.ग्रा., वचघनसत्व 50 मि.ग्रा., स्मृतिसागर रस 50 मि.ग्रा. लेकर 500 मि. ग्रा. के कैपसूल में भर लें या वैसे ही चूर्ण रूप में सुबह शामं जल से सेवन करें। यह योग अवसाद के साथ अनिद्रा, उच्चरक्तचाप, मानसिक तनाव को दूर करने में भी सहायक है।

—वैद्य गोपालशरण गर्ग

सारिवा
(Hemidesmus Indicus)

उस अनन्त शक्ति और विभूतियों से युक्त अनन्त दया के सागर भगवान को प्रणाम करते हुये भक्त कहता है—

नमोऽस्त्वनन्ताम सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरूबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः।।

उस ईश्वर की अनन्त विभूतियों में अनन्त गुणों से परिपूर्ण ये अनन्त वनौषधियां भी हैं। इन वनौषधियों में अनन्तमूल वाली सारिवा भी मुख्य है, जिसके विषय में यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

भगवान् चरक ने मधुरस्कन्ध की इस वनौषधि को स्तन्यशोधन, पुरीषसंग्रहणीय, ज्वरहर, दाहप्रशमन दशेमानि में स्थान दिया है। महर्षि सुश्रुत ने विदारिगंधादिगण, सारिवादि गण और वल्लीपंचमूल के अन्तर्गत सारिवा का उल्लेख किया है। विदारिगंधादिगण में सारिवा (श्वेत सारिवा) और कृष्णसारिवा दोनों को लिया है। यह गण वात पित्त शामक होता है जो शोष, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और कास विनाशक कहा गया है। सारिवादिगण के द्रव्य और गुण इस प्रकार हैं—

सारिवामधुक चन्दन कुचन्दन पद्मक काश्मरीफल मधूक पुष्पाप्युशीरं चेति।

सारिवादि पिपासाघ्नो रक्तपित्तहरोगणः।
पित्तज्वर प्रशमनो विशेषाद दाहनाशनः।।
—सु. सू. स्था. 38

वल्ली पंचमूल—

विदारीसारिवार जनीगुडूच्योऽजशृंङ्गी चेति वल्लीसंज्ञः। *—सु. सू. स्था. 38*

विदारी विदारीकन्द, रजनी हरिद्रा, अजश्रृङ्गी मेढिकः, कर्कटशृङ्गीत्यपरे। वल्लीसंज्ञः पंचमूलमितिशेषः। *—डल्हणः*

इनमें विदारीकंद, सारिवा और गिलोय तीनों की लतायें होती है, हलदी का क्षुप तथा मेढासिंगी या काकड़ासिंगी के वृक्ष होते हैं। वल्ली पंचमूल के गुण—

रक्तपित्तहरो ह्येतो शोफत्रयविनाशनः।
सर्वमेहहरश्चैव शुक्रदोष विनाशनः।।

इन गुणकर्मों के अतिरिक्त सारिवा मुख्यतया रक्त प्रसादन (रक्तशोधक) है अतः द्रव्यगुण विज्ञान (प्रि. व्र.) में रक्तप्रसादन द्रव्यों के अन्तर्गत सर्वप्रथम इसका वर्णन किया है। भावप्रकाश निघन्टु के गुडूच्यादिवर्ग में इसका वर्णन मिलता है। प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह वनौषधि अर्ककुल (ऐस्क्लीपिएडेसी) की कही गई है।

नाम—

संस्कृत—सारिवा, अनन्ता, गोपी, गोपकन्या, गोपवल्ली।

हिन्दी—अनन्तमूल, कपूरी, गौरीसर
गुजराती—उपलसरी, कपूरी मधुरी
मराठी—उपरसाल, उपलसरी
बंगला—अनन्तमूल
तामिल—नान्नारि
तेलगू—मुत्तवपुलगमु
कन्नड़—सोगड़े
मलयालम—नरूनिन्ति
अंग्रेजी—इण्डियन सार्सापरिला

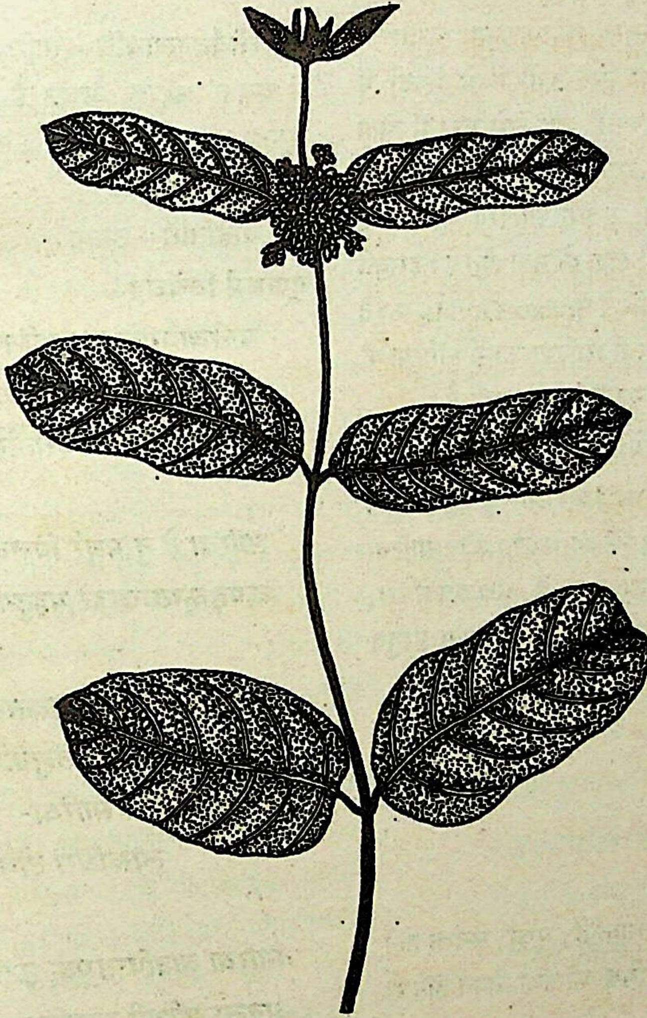
लैटिन—हेमिडेस्मस इण्डिकस (Hemidesmus Indicus)

प्राप्ति स्थान—गंगा के उत्तरी मैदानी भाग से लेकर पूरब में बंगाल तक तथा दक्षिण में मध्य प्रदेश से लंका तक इसकी स्वयंजात लताएं प्रचुरता से पायी जाती हैं। मुंबई में पश्चिमी घाट के जांगल भू-भागों में भी इसकी लताएं पायी जाती हैं।

रासायनिक संघठन—इसके मूल में एक उड़नशील तैल होता है, जिसके कारण मूल में सुगन्ध आती है। यह अल्पमात्रा में होता है। इसके अतिरिक्त हेमिडेस्टेरोल-हेमिडेस्मोल नामक दो स्टेरोल तथा रेजिन, टैनिन्स, सैपोनिन, शर्करा, अल्पमात्रा में एक ग्लाइकोसाइड आदि तत्व पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय—सारिवा की बहुवर्षायु तथा गुल्म स्वभाव की बहुशाखी लता होती है, जो जमीन पर फैलती है अथवा समीपस्थ पौधे का आश्रय लेकर चढ़ती है यह चारों ओर फैल जाती है। इसे तोड़ने पर दूध सा निकलता है। यह लता 5 से 15 फुट लम्बी होती है। शाखायें—गोल, चिकनी या मृदुरोमावृत अथवा अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्म धारियों से युक्त होती है। यह पर्वों पर अपेक्षाकृत अधिक मोटी होती हैं। पत्र—अभिमुख क्रम से स्थित रूप रेखा में अण्डाकार आयताकार से लेकर रेखाकार भालाकार तक विभिन्न रूप रेखा की ओर 2 इंच से 4 इंच लम्बे एवं 1/3 इंच से 1¼ इंच तक चौड़े होते हैं। चौड़ाई में बड़ी भिन्नता पायी जाती है। पत्तियों का निचला पृष्ठ हलके रंग का श्वेताभ तथा ऊपरी पृष्ठ श्वेत रेखांकित होता है। पुष्प-पत्रकोणीय मंजरीक गुच्छों में बाहर हरिताभ और अन्दर बैंगनी रंग के होते हैं। फल—पतले, श्रृंगाकार, दो-दो एक साथ किन्तु अपसारी, 4-5 इंच लम्बे होते हैं। इसके अन्दर सफेद रूई युक्त अनेक, चपटे, काले बीज होते हैं। मूल और कांड ऊपर से रक्तवर्ण और अन्दर से श्वेत होते हैं। मूल की छाल खाकस्तरी आका लिये गाढ़े भूरे रंग की होती हैं। वा... से कपूर जैसी गन्ध आती है। पुष्पागम काल—... सावन। फल—शरद् ऋतु में पकते हैं।

भेद—सारिवा दो प्रकार की होती है—श्वेत ... कृष्ण। उपर्युक्त वर्णन श्वेत सारिवा का है। जहाँ के... सारिवा या अनन्तमूल ही लिखा गया हो वहाँ श्वेत स... का ही ग्रहण किया जाता है। सारिवाद्वय लिखे होने पर... एवं कृष्ण दोनों प्रकार की सारिवा लेने का शा... विधान है। कृष्ण सारिवा का मूल कृष्ण वर्ण होता है। कृ... सारिवा के नाम पर आज कल दो द्रव्य ग्रहण किये ... हैं—1. क्रिप्टोलेपिस बुकेनाना—इसे जम्बूपत्रा सारिवा ... कहते हैं। इसके पत्र बड़े लम्बे चौड़े जामुन के पत्तों ... समान होते हैं। इन्हें तोड़ने पर बहुत दूध निकलता है। इ... मूल की त्वचा पतली और कृष्ण वर्ण होती है। इसे ह... पर रक्ताभ मोटी त्वचा दिखाई पड़ती है। यदि उसे भी ... दिया जाय तो नीचे श्वेताभ पीतवर्ण का काष्ठ का ... दिखाई पड़ता है। उत्तर भारत के बाजारों में प्रायः इ... काण्ड एवं मूल ताजा तथा सूखे टुकड़ों में कृष्ण सारि... के नाम से उपयोग में लायी जाती है वह है—इक्नोकार्... फ्रुटिसेन्स। यह कुटज कुलकी वनौषधि है। इसके मूल ... सुगन्ध नहीं होती। इसके पत्र छोटे, अंडाकार, लंबो... होते हैं। यह हिमालय, बंगाल, बिहार और दक्षिण कोंक... में होती है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने लिखा है कि कृ... सारिवा से जम्बू पत्रा सारिवा (क्रिप्टोलेपिस बुकेनान...) का ग्रहण करना चाहिये। यही मत श्री विश्वनाथ द्विवे... श्री रामसुशील सिंह और श्री बनवारीलाल मिश्र आ... वनौषधि विशेषज्ञों का है किन्तु श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी ... मतानुसार कृष्ण सारिवा से इक्नोकार्पस फ्रुटिसेन्स ग्र... करना चाहिये। आपने अपने वक्तव्य में कहा है कि "कृ... सारिवा या बंगाली सारिवा को लेटिन में इक्नोकार्... फ्रुटिसेन्स कहते हैं न कि क्रिप्टोलेपिस बुकेनाना (... लेटिन शब्द वास्तव में दूधी वेल' का वाचक है) जैसा ... कई महानुभावों की मान्यता है।



सारिवा (श्वेत) (HEMIDESMUS INDICUS)

नाम—सं०—सारिवा; हि०—अनन्तमूल, गौरीसर; गु०—उपलसरी; म०—उपरसाल; अं०—इण्डियन सार्सापरिला; लै०—हेमिडेस्मस इण्डिकस।

प्राप्तिस्थान—हिमालय की तराई विशेषतः बंगाल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र।

दोषशमन—त्रिदोष शामक।

उपयोगी अंग— मूल।

रोगोपयोग—रक्तविकार, चर्म विकार, विषविकार आदि।

मुख्ययोग—सारिवादि वटी, सारिवाद्यासव आदि।

इनके अतिरिक्त सारिवा जंगली (Smilax Zeylanica) और सारिवा विलायती (Smilax Officinelis) भी हैं। सारिवा जंगली की एक स्निग्ध कंटकयुक्त आरोहिणी बड़ी लता होती है। सारिवा विलायती जिसे हिन्दी में सालसा कहते हैं, विदेशी द्रव्य हैं, यह अमेरिका में होता है। उसके प्रतिनिधि रूप में सारिवा जंगली प्रयुक्त होती है। विलायत से आने वाली सच्ची सालसा या सारसा परीला सारिवा विलायती की लता के मूल होते हैं। इसकी एक भारतीय जाति होती है जिसे Smilax Ornata कहते हैं, यह सारसा परिला के नाम से ब्रिटिश फार्माकोपिया के अन्तर्गत औषधि निर्माणार्थ सप्लाई की जाती है।

ये सभी सारिवा रक्त शोधन हेतु प्रयुक्त होती हैं।

रसगुणवीर्यादि—सारिवा श्वेत और कृष्ण के गुण धर्मो में प्रायः समानता है फिर भी आधिक्येन श्वेत सारिवा ही औषधि हेतु उपयोग में लाया जाता है, अब इसके रस, गुण, वीर्य आदि एवं स्तम्भानुसार अन्य विवेचना प्रस्तुत है।

रस—मधुर, तिक्त

गुण—गुरू, स्निग्ध

वीर्य—शीत

विपाक—मधुर

दोषकर्म—यह त्रिदोषशामक है। मधुर, स्निग्ध होने से वात को, शीतवीर्य होने से पित्त को तथा तिक्त होने से कफ का शमन करती है।

उपयोगी अंग—मूल।

मात्रा—फाण्ट—50-100 मि.लि.

कल्क—5-10 ग्राम

चूर्ण—3-6 ग्राम

सारिवा के मूल सुगन्धित तथा उड्डयनशील तैल से युक्त होते हैं अतः इनका क्वाथ यथा संभव नहीं करना चाहिये। यदि करना ही आश्वयक हो तो इसे अधिक नहीं उबालना चाहिये, वैसे फाण्टरूप में ही देना ज्यादा उत्तम है।

वीर्यकालावधि—सारिवा का प्रयोग ताजी अवस्था में करना अधिक अच्छा है। संग्रह करने पर इसकी सुगन्ध नष्ट हो जाती है। अतः यह दो-तीन माह में विकृत हो जाती है।

प्रतिनिधि—उसवा।

गुणधर्म विवेचन—

सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरू।
अग्निमांद्यारूचिश्वासकासाम विषनाशनम्।
दोषत्रयास्रप्रदर ज्वरातीसारनाशनम्।।

—भा. प्र.

सारिवा द्वे तु मधुरे पित्तवातास्रनाशने।
कण्डूकुष्ठज्वरहरे मेहदुर्गन्धनाशने।।

—ध.

विध्वस्तप्रदरज्वरा गुरूतरा
स्निग्धातिशुक्रोत्तरा
विट्सारं स्यति सारिवा-
ल्परूधिरा दोषोत्किरा भो नराः।

—सि. भे. म.

सारिवा वातपित्तासृक् तृटछर्दिज्वरनाशिनी।
अनन्ता ग्रहिणी रक्तपित्त प्रशमनी हिमा।।

—राजवल्लभ

सारिवाद्वयमग्रयं स्याद्रक्तशोधनकर्मणि।
स्वादु बल्यंच संग्राहि दीपनं विषनाशनम्।।

—प्रि.

गोपानां वल्ली या श्वेता कृष्णा च सारिवा द्विविधा
वन्हेर्दीप्तिकरी सा बल्या रक्तप्रसादकरी।।

—हे.

सारिवा रक्तविकार और चर्मविकार की श्रेष्ठ औषधि के रूप में प्रसिद्ध है। रक्त और चर्म दोनों बाह्य रोग मार्ग शाखा के अन्तर्गत आते हैं—"तत्रशाखा रक्तादयो धातवस्त्वक् च, स बाह्योरोगमार्गः (चरक. सू. 11-48)। इस पर व्याख्याकार श्री चक्रपाणिदत्त लिखते हैं कि "त्वक् शब्देन तदाश्रयो रसोऽपिगृह्यते सुतरां चर्म विकार रसवहस्रोतस् की व्याधि है और रक्तविकार रक्त वह स्रोतस् की व्याधि है। किन्तु आचार्य सुश्रुत ने शारीर स्थान अध्याय चार में वर्णन किया है कि जैसे दूध में विलीन तत्वों से ही संतानिका (मलाई) का निर्माण होता है, उसी प्रकार शुक्रशोणित (शुक्र + स्त्री बीज) के अन्तर्निहित तत्वों से ही त्वचा का निर्माण होता है। शुक्र सौम्य रस प्रधान द्रव्य है और आर्त्तव रक्त प्रधान द्रव्य है। अतः त्वचा रचना एवं क्रिया दोनों ही दृष्टि से रसरक्त धातु का अंग है तब ही तो रक्तवहस्रोतस् के मूल यकृत और प्लीहा की विकृति में त्वचा में भी परिवर्तन होते हैं। त्वचा के प्रायः रोगों में भी रक्तविकृति पायी जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि रक्त एवं रस सम्बन्धी विकारों का सम्बन्ध सहकारी अवयव के रूप में त्वचा से ही होता है। आचार्य चरक ने रक्त दोषज रोगों के वर्णन में (च. सू. 24-28) बहुत से चर्म विकारों का भी वर्णन किया है। फिर भी उपदंश, फिरंग, श्लीपद, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद, वातरक्त, रक्तपित्त, रक्तचाप, शीतपित्त आदि रक्त विकार तथा कुछ कण्डू, विसर्प, विस्फोट, श्वित्र, उदर्द, चर्मदल स्वेदाधिक्य आदि चर्म विकार कहे जाते हैं। इन रोगों में अन्य भी स्रोतस् विकृत होते हैं। रक्त रोगों में प्रधानतः पित्त शामक चिकित्सा की जाती है और चर्मरोगों में प्रधानतः वातशामक चिकित्सा की जाती है। इनमें अन्य दोष भी विकृत होते हैं। रक्तरोगों में विरेचन का अधिक महत्व है तो चर्मरोगों में स्नेहन, लंघनपरक विरेचन की उपादेयता प्रकट की गई है। सारिवा त्रिदोषहर एवं रक्त प्रसादन होने से उक्त सभी प्रकार के रोगों में लाभप्रद सिद्ध होती है। वातरक्त, उपदंश, फिरंग, श्लीपद, गण्डमाला आदि रक्तविकारों में तथा कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट आदि चर्म विकारों में प्रयुक्त होती है।

सारिवा की पतली जड़ औषधि के रूप में उपयोग में लानी चाहिये। मोटे मूल की त्वचा लेना हितावह है। यह तनु मूल एवं मूलत्वचा त्वचा के रोगों को दूर करती है। रस धातु की विकृति त्वचा पर मुख्यतः प्रतीत होती है। सारिवा रस धातु में शीतता, स्निग्धता और प्रसन्नता उत्पन्न करती है। सारिवा अपने शीतवीर्य से पित्त तथा रक्त का प्रसादन करती है अतः अनेक रक्तविकारों में शीतता-स्निग्धता उत्पन्न कर उनका शमन करती है। इसका विषघ्न कर्म इसमें सहायक होता है। रक्त विकार एवं चर्म विकारों में सारिवादिक्वाथ, सारिवादि लौह, सारिवादि घृत (श्यामादि घृत) और सारिवाद्यासव आदि सारिवांयुक्त योगों की यथावश्यक योजना करनी चाहिये। सारिवादि क्वाथ प्रमेहपिडका में, सारिवादि लौह वातरक्त पिडिका, प्रमेह पिडका, वातरक्त, अर्श, चर्म विकारों में, सारिवादिघृत वात रक्त, रक्तपित्त, प्रमेह पिडिका में, सारिवाद्यासव उपदंश, वातरक्त, भगन्दर, प्रमेह पिडका में लाभप्रद होते हैं। रक्त विकारों में यह कषाय भी लाभप्रद है—

पर्ण्यौ हरीतकी श्यामानन्तैला नीलनी तथा।
वृद्धदारकबीजानि त्रिवृदारग्वधः शटी।।
देवप्रसूनंचैतेषां कषायः साधु साधितः।
प्रमेहपीड़िकाः हन्ति तथान्यां रक्तविकृतिम्।।

—भै. र.

केवल सारिवा का लेप व्रणों का शोधन करने हेतु उत्तम कहा गया है—

एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्।

—च. द.

वातरक्त में सारिवादि तैल, पिण्डतैल, महापिण्डतैल उपयोगी कहे गये हैं—

सारिवासर्जयष्टयाह्वमधुच्छिष्टैः पलोन्मितैः।
सिद्ध मेरण्डजं तैलमभ्यंगाद्वातरक्तनुत्।।

—यो. र.

समधूच्छिष्टमंजिष्ठं ससर्जरससारिवम्।
पिण्डतैलं तदभ्यंगाद् वातरक्तरूजापहम्।।
सारिवा सर्जमंजिष्ठा यष्टिसिक्थैः। पयोऽन्वितैः।
तैलं पक्वं विमंजिष्ठे रूवोर्वा वातरक्तनुत्।

—च. द.

एक अन्य सारिवादि तैल (र. र. वातरक्त) वाक्तरक्त कुष्ठ, विपादिका, चर्मदल, पामा, विसर्प, व्रण, शोथ, भगन्दर आदि रोगों को नष्ट करता है। कुष्ठ रोग में जिन द्रव्यों को आचार्य चरक ने अन्तः परिमार्जन एवं बहिः परिमार्जन हेतु उपयोगी कहा है, उनमें सारिवा भी है—

वासा त्रिफला पाने स्नाने चोद्वर्तने प्रलेपे च।
वृहतीसेव्यपटोलाः स सारिवा रोहिणी चैव।।

—चरक. चि. 7

चरक संहिता के चिकित्सा स्थान के रक्तपित्त चिकित्सित नामक चतुर्थ अध्याय में सारिवा, चन्दन, प्रियंगु आदि से वासित जल को शर्करामिश्रित कर पीना रक्तपित्त के रोगी के लिए लाभदायक कहा गया है—

प्रियंगु का चन्दन लोध्रसारिवा
मधूक मुस्ताभय धात की जलम्।
सशर्करं रक्तनिबर्हणं परम्।।

इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रयोग में भी सारिवा को रक्तपित्त विनाशन कहा है—

सारिवाब्दशतावर्य्यमृद्वीकामधुकोद्भवम्।
सिताक्षौद्रान्वितं तोयं निहन्त्यसृजमूर्ध्वगम्।।

—क्वा. म. मा.

एक पूयमेह (सुजाक) हर योग है—

सारिवाक्वासंयुक्तो यवक्षारस्तु शीलितः।
औपसर्गिकमेहोत्थां बाधामाशु विनाशयेत्।।

—र. तर. 13

अन्य पित्त जन्य प्रमेहों में भी यह लाभप्रद है। मूत्रजनन होने से मूत्रकृच्छ्र में भी लाभदायक है। बाह्याभ्यन्तर प्रयोगों से यह दाह का शमन करता है और शोथ को दूर करता है। दाह प्रशमन होने के साथ ही यह ज्वरघ्न भी है सुतरां विविध ज्वरों में इसको उपयोग में लाया जाता है। यह त्रिदोष शामक होने से प्रायः सभी प्रकार के ज्वरों में उपादेय है। कतिपय प्रयोग प्रस्तुत हैं—

वातज्वरे—

गोपस्त्रीमिषिमधुराभिधोपकुल्या-
कौन्त्यःस्युस्तरलतराक्षि पूर्व तुल्याः।

—सि. भे. म. मा.

गोपस्त्री सारिवा, मधुरा द्राक्षा, तरलतराक्षि संबुद्धिः, पूर्वतुल्याः मरूज्ज्वरघ्न्यः।

—श्रीलक्ष्मीरामकृत टिप्पणी

पित्तज्वरे—

सारिवा पद्मकिंजल्कमधुकं चन्दनद्वयम्।
धान्यदुःस्पर्शको मुस्तद्राक्षापर्पटकं तथा।।
एतैः समं श्रृतं तोयं ससितं माक्षिकान्वितम्।
पीतं पीतज्वरं हन्याद् व्याधि घातफलान्वितम्।।

—क्वा. म. मा.

कफज्वरे—

सारिवातिविषाकुष्ठपुराख्यैः सदुरालभैः।
मुस्तेन च कृतः क्वाथः पीतोहन्यात् कफज्वरम्।।

—सुश्रुत उ. त. 39

दशेमानि ज्वरहर द्रव्यों में सारिवा एक द्रव्य है। आचार्य चरक ने जो विषमज्वरघ्न पंच कषाय कहे हैं उनमें सतत ज्वरोपयोगी कषाय में सारिवा को लिया है—"पटोल सारिवा मुस्तं पाठा कटुरोहिणी"।

यह ज्वर दिन रात में (24 घन्टों में) दो बार आ जाता है। सततज्वर रक्तधातुगत होता है—रक्तधात्वाश्रयः प्रायोदोषः सततकं ज्वरम्''। रक्तगत ज्वर की तीव्रता और विष का शमन करने में सारिवा श्रेष्ठ कही गयी है। यह रक्त की शुद्धि कर ज्वर का शमन करती है। यह कषाय पाण्डु में भी लाभदायक है। अपने स्निग्ध गुण के कारण यह वातज पाण्डु को तथा अपने शीतवीर्य से पित्तज पाण्डु को दूर करती है। त्रिफला, त्रिवृत् एवं लौह भस्म के यथावश्यक संयोग से पाण्डुहर होती है। रसायन होने से दुर्बलता को शीघ्र हर लेती हैं। पुष्टिकर, शीतवीर्य, स्निग्ध गुरू गुण तथा मधुर रस प्रधान होने से यह वृष्य भी है। इसके सेवन से शुक्र की दुर्बलता दूर होकर ओज की वृद्धि होती है।

स्त्रियों के लिए यह गर्भस्थापन कही गयी है। गर्भस्थापना के पश्चात् गर्भवती के लिए विदारिगंधादिगण के उपयोग को प्रशस्त कहा गया है। गर्भ को सुरक्षित रखने के लिए आचार्य सुश्रुत ने इसे शतावरी, मुलेठी, क्षीरकाकोली आदि के साथ दूध में सिद्ध कर सेवन करने का निर्देश किया है—''वृहतीद्वयोत्पल शतावरीसारिवापयस्यामधुक सिद्धं वा पयः दृष्टशोणित वेदनायां पाययेत् एवं विप्रमुपक्रान्ताया उपावर्तन्ते रुजो गर्भश्चाप्यायते। इसी प्रसंग में आचार्य ने कुछ ऐसे द्रव्यों के उपयोग को भी प्रशस्त कहा है जिनके सेवन से गर्भवती किसी प्रकार की विपत्ति से ग्रस्त नहीं होती है। इसे मासानुमासिक औषधिक्रम कहा जाता है। सामान्यतया कोई कष्ट उत्पन्न हो भी जाय तो इनके सेवन से उसका निवारण हो जाता है। इस मासानुमासिक क्रम में तृतीय, चतुर्थ और नवम माह में सारिवा को उपयोगी कहा गया है। सुश्रुत संहिता के शारीर स्थान के अन्तिम अध्याय में कहा गया है कि—

(तृतीये) वृक्षादनी पयस्या च लता सोत्पल सारिवा।
(चतुर्थे) अनन्ता सारिवा रास्ना पद्ममा मधुकमेव च।
नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत्।।

अर्थात् तृतीय माह में गर्भवती बांदा, क्षीरकाकोली, लता (गिलोय या प्रियंगु) और सारिवा द्रव्य दूध के साथ या दूध में सिद्ध कर पीवें। इसी प्रकार चतुर्थ माह में सारिवा, कृष्णसारिवा, रास्ना, पद्मा और मुलेठी तथा नवम माह में मुलेठी, सारिवा, कृष्णसारिवा और क्षीर काकोली से साधित दूध को पीवें।

आचार्य भावमिश्र ने इसे प्रदरनाशन कहा है कर्ण-रोगाधिकार में वर्णित सारिवादिवटी के गुणों में भी कहा गया है—सारिवादिवटी हन्यात् स्त्रीगदानरिवलानपि (भै. र.)। स्त्रियों के योनिव्यापत् के अतिरिक्त हृदय रोग, रक्तपित्त, अर्श, जीर्णज्वर आदि को भी यह वटी दूर करती है। सारिवा, अशोक, लोध्र लज्जालु, गोरोचन, लक्ष्मणा, दुग्धिका आदि आर्तव वह स्रोतस् पर प्रभाव करने वाली वनौषधियाँ हैं। सारिवा के सेवन से रक्त का प्रसादन होकर रक्तप्रदर बन्द हो जाता है तथा साथ में शक्ति वर्धन भी होता है। स्त्रियों के दूषित दुग्ध की भी यह शुद्धि करती है। चरकोक्त स्तन्य शोधन गण में सारिवा, कुटकी, चिरायता, इन्द्रजौ, गिलोय, मूर्वा, मुस्तक, देवदारू, सोंठ और पाठ में दश द्रव्य हैं। इन द्रव्यों का सम्मिलित या एक एक द्रव्य का क्वाथ लिया जा सकता है। रसज व रक्तज विकारों में जिस प्रकार सारिवा उपयोगी है उसी प्रकार रसज स्तन्य के विकारों में भी यह लाभ पहुंचाती है। विकृत दूध के कारणों को दूर कर यह दुग्ध वृद्धि में सहायक होती है। पित्त जन्य दुग्ध दुष्टि को यह शतावरी गुडूची, निम्ब, चन्दन, कुटकी आदि के साथ शीघ्र दूर कर देती है। इसी प्रकार द्राक्षा, विदारीकंद, मधुयष्टी के साथ दुग्ध की विरसता को समाप्त करती है।

बालकों के स्वास्थ्य, बल, बुद्धि और आयु की वृद्धि हेतु सारिवा, वचा, शतावरी आदि द्रव्यों से सिद्ध किये घृत को आचार्य सुश्रुत ने लाभप्रद कहा है—

क्षीराहाराय सर्पि पायपेत् सिद्धार्थकवचामांसी पयस्यापामार्गशतावरी सारिवा ब्राह्मी पिप्पली हरिद्रा कुष्ठसैन्धवसिद्धम्। —सु. शा. 10-48

सुश्रुतोक्त इन द्रव्यों में से घृतरहित आठ द्रव्यों से जो घृत तैयार किया जाता है, इसे अष्टमंगलघृत कहा गया है—

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च।
सारिवा सैन्धवंचापि पिप्पली घृतमष्टमम्।।
मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यंच दिने दिने।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत्।।
न पिशाचाः न रक्षांसि न भूताः न च मातरः।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमंगलम्।।

—च. द.

इसी प्रकार के एक अन्य घृत का आचार्य वाग्भट ने उल्लेख किया है जो बालग्रहों को नाशता है—

सारिवासुरभीब्राह्मीशंखिनी कृष्णसर्षपैः।
वचाश्वगन्धासुरसायुतैः सर्पिर्विपाचयेत्।।
तन्नाशयेद् ग्रहान्सर्वान् पानेनाभ्यंजनेन च।।

—अ. हृ. उ. 3

जब शिशु के मुख से लार बहुत टपकती हो तो उसमें मुख प्रक्षालनार्थ एक सारिवायुक्त योग कहा गया है—

सारिवातिललोध्राणां कषायोमधुकस्य च।
संस्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा।।

—भा. प्र.

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने अपने शिष्यों को जो उपदेश दिये उनमें एक महत्वपूर्ण यह भी कही है कि—

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरूपक्रान्ताश्च ये गदाः।
सम्यक् साध्या न सिध्यन्ति रक्तजांस्तान् विभावयेत्। **—च. सू. 24-17**

संतर्पणोत्थ रोगों में अपतर्पणपरक और अपतर्पण जनित रोगों में संतर्पणस्वरूप जो चिकित्सा हम करते हैं, यदि उसमें लाभ द्रष्टिगोचर नहीं हो तो उन्हें रक्तज रोग मानकर उनकी रक्तप्रसादन चिकित्सा करनी चाहिये। इन रोगों में रक्तपित्तहरी क्रिया, विरेचन, उपवास और रक्त स्रावण जैसे उपक्रमों को महत्वपूर्ण कहा गया है। इन रोगों की शमन चिकित्सा के रूप में सारिवा महत्वपूर्ण लाभप्रद द्रव्य हो सकता है। वैवर्ण्य, अग्निसाद, पिपासा, गुरु-गात्र, संताप, अतिदौर्बल्य, अरुचि, शिरोरुजा, अन्नपाक से विदाह (अम्लपित्त) तिक्ताम्लोग्दिरण, क्लम, क्रोधप्रचुरता, बुद्धिसंमोह और लवणास्यता आदि बहुत से ऐसे रोग हैं जिन पर इस बात का विचार किया जाना चाहिए।

क्षुधानाश एवं अपचन जन्य रोगों में सारिवा आमाशय को शक्ति प्रदान करती है और भोजन के प्रति रूचि को जगाती है क्योंकि यह दीपन पाचन और रोचन है। इसके अतिरिक्त यह अनुलोमन होने से अपान वायु को अपने मार्ग पर लाकर सुखपूर्वक मलादि को बाहर निकाल देती है। चरक-सुश्रुत के विचारों के समन्वयक आचार्य वाग्भट्ट ने अष्टांगहृदय के चिकित्सा स्थान के ग्रहणी दोष नामक दशम अध्याय में एक श्रेष्ठ कोष्ठवातहर योग का उल्लेख किया है, जिसमें सारिवा, पिप्पली, पाठा आदि हैं—

पिप्पलीं नागरं पाठां सारिवां वृहतीद्वयम्।
चित्रकं कौटजं क्षारं तथा लवणपञ्चकम्।।
चूर्णीकृतं दधिसुरातन्मण्डोष्णाम्बुकांजिकैः।
पिबेदग्निविवृद्धयर्थं कोष्ठवातहरं परम्।।

ऐसे योग ग्रहणी प्रवाहिका आदि पाचन संस्थान के रोगों में लाभप्रद हैं। यकृत् वृद्धि में सारिवा को नवसादर के साथ देना लाभदायक है—

अनन्तमूलक्वथितनीरेण नवसादरः।
निपीतो नियमादाशु यकृद्वृद्धिहरोमतः।।

—र. त.

सूर्यावर्त (वातपित्तज शिरोवेदना) और अर्धावभेदक (वातकफज शिरोवेदना) पर यह सारिवादिलेप हितकर है—

सारिवाकुष्ठमधुकवचा कृष्णोत्पलैस्तथा।
लेपः सकांजिकस्नेह सूर्यावर्तार्धभेदयोः।

—शा.

इसके अतिरिक्त शरीर का वर्ण सुधारने में तथा चेहरे की कांति बढ़ाने के लिए भी इसे उपयोग में लाया जाता है। त्वग्गत भ्राजक पित्त के प्रकोप को यह शान्त कर उसका प्रसादन कर त्वचा में शीतता तथा प्रसन्नता उत्पन्न करती है।

यूनानी मत—सारिवा ठण्डी और तर औषधि है। यह पेशाब का बनना बढ़ाती है, बढ़े हुये को बाहर निकालती है और पसीना लाकर रक्त का शोधन कर देती है। हकीम दलजीत सिंह जी के अनुसार यह जीवन की चयापचय क्रिया को बढ़ाती है। इस प्रभाव के कारण यह चर्म रोगों, फिरंग, श्वेतप्रदर, जीर्ण आमवात, व्रण, वृश्चिक दंश आदि में लाभ करती है। इससे शरीर की दुर्गन्ध दूर होती है और सारे शरीर में रक्तप्रवाह बढ़ता है। दिमाग और यकृत के रोगों में भी यह लाभदायक है।

होम्योपैथी मत—होम्योपैथी में इस औषधि के मदर टिंक्चर का प्रयोग अनेक प्रकार के चर्म रोगों, उपदंश, रक्तदोषजन्य व्याधियों के निवारणार्थ किया जाता है। भारतीय जाति हेमीडेसमस को सारसापरिला से अधिक महत्व दियाजाता है क्योंकि इसमें अधिक गुण जर्मन चिकित्सकों ने पाये हैं।

आधुनिक मत—सारिवा डा. आर. एन. खोरी के मतानुसार रसायन, स्वेदजनन, मूत्रल एवं अनुलोमक हैं। इसके चूर्ण को मक्खन में मिलाकर बच्चों के तालुशोष तृषा, मुखपाक में देते हैं। शहद के साथ यह वातवेदना तथा फोड़ों के लिए दी जाती है। मूत्र कारक होने के कारण इसका शीतकषाय गोदुग्ध के साथ मूत्राल्पता, मंजिष्ठमेह, रक्तमेह, अश्मरी में पान कराया जाता है। स्वेदजनन व बलप्रद होने के कारण यह ज्वर, अग्निमांद्य एवं अरुचि आदि में दी जाती है। रसायन होने के कारण पुराने वात रोग, चर्म विकार, गण्डमाला, फिरंग, धातुवैषम्य विशेष एवं दुर्बलेन्द्रिय आदि रोगों में यह सेवन करायी जाती है इसका शीत कषाय, प्याज का रस, या विशुद्ध नारियल के तैल के साथ अर्श के रोगी को पान कराया जाता है। सारिवा सारसापेरिला की उत्तम प्रतिनिधि है।

डा. वा. ग. देसाई के मतानुसार सारिवा का फांट मूत्रपिंड के शोथ का निवारण कर उनको संकुचित करने में श्रेष्ठ है। इसकी क्रिया त्वचा पर भी बहुत अच्छी होती है। ज्वर में इसका फांट देनेसे प्रस्वेद और मूत्र अधिक निकलता है जिससे शरीर की उष्मा कम होती है और पाचन क्रिया बढ़ती है। यह रक्तदोषोत्पन्न पाण्डु में अच्छा लाभ पहुंचाती है। बालरोगों में यह उत्तम लाभकारी है। बच्चों के सूखा रोग में इसे बायबिडंग के साथ देना चाहिये। इससे इस रोग में अच्छा लाभ होता है। बच्चों के उत्तम स्वास्थ्य के लिये इसका फांट शर्करायुक्त उष्ण दुग्ध के साथ देना चाहिये।

इण्डियन फार्मेकोपिया की भांति ब्रिटिश फार्मेकोपिया में भी सारिवा का महत्वपूर्ण स्थान है। 'वेल्थ आफ इण्डिया' के विद्वान् लेखकों के अनुसार यह विशुद्धतः एक रक्त शोधक औषधि है। यह स्वेदजनन तथा मूत्रल है ही। इस कारण यह कुपोषण जन्य शोथ, पुरानी गठिया, मूत्ररोग, कुष्ठ एवं अन्य चर्मरोगों में कुछ दिन निरन्तर सेवन से लाभ होने लगता है। रक्त में व्याप्त विष को यह मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकाल देती है। उपदंश में इसके क्वाथ में आयोडाइड आफ पोटेशियम मिलाकर देते हैं जिससे शीघ्र लाभ होता है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. **नेत्राभिष्यंद**—आंख के शोथ-लालिमा युक्त संक्रामक रोगों में इसका रस डालते हैं जिससे लाभ होता है। सारिवा को पानी में घिसकर भी आंख में आंजा जा सकता है। इससे आंख की फूली भी कटने लगती है।

2. **कुष्ठ**—सारिवा दो भाग, गिलोय, पित्तपापड़ा, चिरायता, कुड़ा छाल, जामुन की छाल, आम के पत्ते, अडूसा के पत्ते, वांस के पत्ते, अमरूद के पत्ते और नीबू

के पत्ते एक-एक भाग लेकर इन सबका क्वाथ बनाकर इस क्वाथ की भाप कुष्ठ (गलित) के रोगी पर देनी चाहिये। इससे लाभ होता है।

3. युवान पिडका (मुंहासे)—सारिवा मुलेठी के एक एक चम्मच चूर्ण को नीबू के रस या कच्चे दूध में मिलाकर चेहरे पर लगाने से कील-मुंहासे ठीक होते हैं। इनके कारण या तेज धूप के कारण चेहरे पर यदि काले निशान हो गये हों तो वें भी इस लेप से ठीक हो जाते हैं।

4. शिरःशूल—(क) सारिवा, सर्पगन्धा, काली निशोथ और प्रियंगु इनको कांजी में पीसकर ललाट पर लेप करने से शिर का दर्द मिटता है।

(ख) सारिवा, नीलकमल, मुलेठी और अम्लवेत को पीसकर घी में मिलाकर लेप करने से शिरःशूल विशेषतः अर्धावभेदक, सूर्यावर्त मिटते हैं।

5. स्तन्यदोष (दुग्ध विकृति)—(क) सारिवा, उशीर, मंजीठ, लालचन्दन और लिसोड़ा का स्तनों पर लेप करने से दूध की विवर्णता दूर होकर दूध शुद्ध होता है।

(ख) सारिवा, मुलेठी, विदारीकंद और द्राक्षा को पीसकर स्तनों पर लेप करने से पित्तजन्य दुग्ध विकृति दूर होकर माताओं का दूध शुद्ध होता है। साथ में दुग्धशुद्धि हेतु वर्णित आभ्यान्तरीय प्रयोग का भी सेवन करें।

6. शोथ—सारिवा, अमरबेल और सहजने की छाल को गोमूत्र में पीसकर शोथ वाले स्थान पर लेप करने से शोथ दूर होता है।

7. दाह—सारिवाचूर्ण को शतधौत घृत (100 बार) धोया हुआ) में मिलाकर या आमले के रस में पीसकर लेप करने से दाह मिटता है।

8. सर्पदंश—चावल के धोवन में इसे घिसकर अंजन करावें।

अन्तः प्रयोग—

1. ज्वर (क) सारिवा, सौंफ, द्राक्षा पिप्पली तथा रेणुक बीज समान मात्रा में लेकर इनका फाण्ट बनाकर (गर्म पानी में कुछ देर ढक कर रखने के बाद छानकर) पीने से) अथवा इन द्रव्यों को थोड़ी देर पानी में उबालकर छानकर इस जल को पीने से वातजन्य ज्वर का शमन होता है।

(ख) सारिवा, कमलकेशर, मुलेठी, चन्दन, धनियां, पित्त पापड़ा और मुनक्का को पीसकर (पानी के साथ) इनका कल्क बनाकर 10 ग्राम की मात्रा में सेवन करने से पित्त ज्वर में लाभ होता है।

(ग) सारिवा, अतीस, कूठ, सोंठ, जवासा और नागरमोथा का क्वाथ बनाकर पीने से कफ ज्वर का शमन होता है।

(घ) सारिवा, पटोलपत्र, नागरमोथा, पाठा और कुटकी का क्वाथ रक्तगतज्वर एवं सततनामक विषम ज्वर को ठीक करने में उपयोगी है।

(ङ) पान (ताम्बूल) पर चूना-कत्था लगाकर इसमें सारिवा चूर्ण 2 ग्राम रखकर चबाकर खाने से भी विषमज्वर में लाभ होता है।

(च) सारिवा, खस, सोंठ, नागरमोथा और कुटकी समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनाकर पीने से सभी प्रकार के ज्वर दूर होते हैं।

2. मूत्र विकार—(क) सारिवा की छोटी मुलायम जड़ को कूटकर केले के पत्ते में लपेट आग की भूभल (राख) में रख दें। ऊपर का पत्र जल जाने पर अन्दर की लुगदी (कल्क) को निकाल कर उसे भुने हुये जीरे और शक्कर के साथ पीसकर गोघृत में मिलाकर प्रातः सायं सेवन करने से मूत्र और वीर्य सम्बन्धी विकार मिटते हैं।

(ख) सारिवा 20 ग्राम, ताजा गिलोय 10 ग्राम, भुना हुआ जीरा 5 ग्राम, मंजीठ 5 ग्राम इनका जौकुट बनाकर रखें। खौलते हुए जल 125 मि.लि. में 10 ग्राम मिश्रण डालकर एक घंटा तक ढक कर रखें। फिर इसको छानकर पीवें। इस प्रकार दिन में दो-तीन बार फांट तैयार कर पिलावें। इससे भी मूत्र विकारों का शमन होता है।

3. **केशवृद्धि के लिए**—दो-दो ग्राम सारिवा चूर्ण दिन में तीन बार एक माह तक सेवन करावें।

4. **दाह**—(क) सारिवा चूर्ण को घृत में भूनकर रखें। एक एक ग्राम यह चूर्ण बराबर शर्करा मिलाकर सेवन करने से शरीर की गर्मी शान्त होती है।

(ख) सारिवा, गिलोय, धनियां और खस का चूर्ण भी दाहशामक है।

5. **पाण्डु-कामला**—दो ग्राम सारिवा मूल की छाल और कालीमिर्च नग ग्यारह दोनों को 30 मि.लि. जल में पीसकर पिलाने से पाण्डु-कामला मिटते हैं। इससे कामला के कारण उत्पन्न अरुचि और ज्वर भी शनैः-शनैः दूर होते हैं। यह प्रयोग एक सप्ताह तक सेवन करें।

6. **छर्दि (वमन)**—पुटपाक विधि से ताजा सारिवा को वाष्पित कर उसमें थोड़ी हींग मिलाकर पीसकर घृत मिलाकर सेवन करने से छर्दि मिटती है।

7. **रक्तपित्त**—(क) सारिवा, नागरमोथा, शतावरी, मुनक्का और मुलेठी के समभाग क्वाथ में मिश्री तथा मधु मिलाकर सेवन करने से उर्ध्वग रक्तपित्त मिटता है।

(ख) सारिवा, खश, मुनक्का, मंजीठ, मुलेठी और कमल पुष्प के क्वाथ में मिश्री-मधु मिलाकर पीने से उर्ध्वग, अधोग रक्तपित्त, प्रदर, दाह युक्त विषमज्वर आदि रोगों में लाभ होता है।

(ग) सारिवा, महुआ, मोथा, चन्दन, लोध्र, प्रियंगु, हरड़ और धाय के फूल के यव कुट चूर्ण का शीतकषाय बनाकर इसमें शक्कर मिलाकर सेवन करना भी लाभप्रद है।

8. **रक्तप्रदर**—सारिवा, रसांजन और लोध्र का चूर्ण 3-3 ग्राम, तण्डुलोदक के अनुपान से सेवन करने से रक्तप्रदर में लाभ होता है।

9. **गर्भस्राव**—(क) सारिवा, शतावरी, क्षीरकाकोली, नीलकमल और मुलहठी से सिद्ध दूध पिलाने से गर्भस्राव मिटता है। इससे गर्भ सुरक्षित रहता और सभी प्रकार की वेदनाओं का शमन होता है।

(ख) दोनों सारिवा, दोनों कटेरी, मुलहठी और द्राक्षा को दूध में पकाकर सेवन करने से भी गर्भवती को लाभ होता है।

10. **स्तन्य विकार**—(क) पित्त जन्य दुग्ध विकृति को दूर करने के लिए प्रसूता को सारिवा, गिलोय, शतावरी, नीम की अन्तर छाल और चन्दन का क्वाथ बनाकर पिलावें।

(ख) सारिवा, मुलेठी, विदारीकन्द, द्राक्षा को दूध में पकाकर सेवन करनेसे भी पित्तजन्य दूध की विकृति दूर होकर स्त्री का दूध शुद्ध होता है।

11. **रक्त विकार**—(क) श्वेत सारिवा, कृष्णसारिवा, माषपर्णी, मुग्दपर्णी, इलायची, लवंग, कचूर इनका क्वाथ बनाकर इस क्वाथ में अमलतास के गुदे का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से प्रायः सभी प्रकार के रक्त विकार मिटते हैं।

(ख) सारिवा 10 ग्राम को 250 मि.लि. गोदुग्ध तथा 500 मि.लि. जल में पकाकर खीर जैसा बनालें। पानी को पूरा जलालें फिर ठन्डा होने पर मधु मिलाकर सेवन करें। यह रक्तविकार, अर्बुद आदि में हितकर है।

(ग) सारिवा, सुगन्धबाला, नागरमोथा, सोंठ, कुटकी चूर्ण 2-3 ग्राम पानी के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

(घ) सारिवा 50 ग्राम को एक लिटर 500 मि.लि. जल में भिगोकर रखें। रक्तविकारों में सारे दिन यह पानी थोड़ा-थोड़ा पीना हितकर है। इससे पेशाब खुलकर आता है और भूख भी बढ़ती है।

(ङ) सारिवा की ताजा छाल का चूर्ण 6 ग्राम लेकर उसे 125 मि.लि. औटाये हुये जल में डालकर ढ़क देवें। इसे 15 मिनट बाद छानकर आवश्यकतानुसार इसमें दूध और शक्कर मिलाकर सेवन करने से भी रक्तान्तर्गत संचित दोष दूर होकर आरोग्य की प्राप्ति होती है।

(च) सारिवा चूर्ण 100 ग्राम, सौंफ चूर्ण 50 ग्राम और दालचीनी चूर्ण 10 ग्राम लेकर तीनों को मिश्रित कर रखें। इस मिश्रण की भी उक्त विधि के अनुसार चाय की तरह पेय बनाकर पीने से भी उक्त लाभ होता है।

(छ) गिलोय के सत्व की भांति सारिवा का सत्व तैयार कर 250 मि.ग्रा. से 600 मि.ग्रा. की मात्रा में सेवन कर भी रक्त का शोधन किया जा सकता है। ये योग वातरक्त उपदंश आदि में हितकर हैं।

12. कुष्ठ—सारिवा, अडूसा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बड़ी कटेरी, सुगन्धबाला, पटोलपत्र और कुटकी का फांट या क्वाथ बनाकर पीने से कुष्ठ में लाभ होता है। इस क्वाथ से रोगी को स्नान भी कराना चाहिये। इन द्रव्यों का बारीक चूर्ण बनाकर इसे पीसकर लेप करना भी हितकर है। इसके क्वाथ से अंगों को खूब धोना चाहिए।

13. बच्चों के मुख से लार अधिक टपकने पर—सारिवा, तिल और लोध्र का क्वाथ बनाकर 5-7 बूंद पिलावें और इससे मुख को धोवें।

14. उपदंश—(क) सारिवा, चोपचीनी, मंजीठ, आंवला, गोखरू 50-50 ग्राम, कलमीशोरा 12.5 ग्राम और इलायची के बीज 12.5 ग्राम लेकर सबका चूर्ण बनाकर इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर रखें। यह चूर्ण 3-3 ग्राम सुबह-शाम पानी के साथ देने से उपदंश में लाभ होता है।

(ख) सारिवा का क्वाथ या फांट बनाकर उसमें 500 मि.ग्रा. यवक्षार मिलाकर कुछ दिन निरन्तर सुबह शाम सेवन करते रहने से उपदंश, सुजाक (पूयमेह) आदि रोगों में लाभ होता है।

15. पारद विकार—अशुद्ध पारद के सेवन से जो रक्त विकारादि उत्पन्न हो जाते हैं उन्हें दूर करने के लिए सारिवा और पित्त पापड़ा का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिए।

16. यकृद्वृद्धि—सारिवा का क्वाथ या फांट तैयार कर इसमें 300-400 मि.ग्रा. शु. नोसादर मिलाकर कुछ दिन पीने से बढ़ा हुआ यकृत ठीक होकर उत्पन्न विकारों का शमन होता है।

17. रक्तचाप वृद्धि—कृष्ण सारिवा 5 ग्राम और मुलहठी 10 ग्राम के क्वाथ में शु. शिलाजीत 250 मि.ग्रा. मिलाकर पिलाने से रक्तचाप नियंत्रित होता है।

18. प्रमेह—सारिवा, शतावरी, मुलहठी, गिलोय, विडंग और कूठ का चूर्ण बनाकर 3-3 ग्राम दूध के साथ सेवन करने से प्रमेह के रोगी को लाभ होता है। पित्त जन्य प्रमेहों में यह प्रयोग हितकारक है।

विशेष प्रयोग (विविध कल्प)—

क्वाथ—

1. सारिवा, अतीस, कूठ, जवासा और नागरमोथा को समान मात्रा में लेकर जौकुट चूर्ण तैयार करलें। इस चूर्ण में से 12 ग्राम लेकर इसे 200 मि.लि. जल में पकावें जब 50 मि.लि. शेष रह जाय तब उसे छानकर उसमें 500 मि. ग्रा. शुद्ध गूगल मिलाकर सेवन करने से कफजन्य ज्वर में लाभ होता है। —सु. सं.

2. दोनों सारिवा, द्राक्षा, निशोथ, सनाय, कुटकी, वासामूल, हरड़, नीम की छाल, हरिद्रा, दारूहरिद्रा, गोखरू को समान मात्रा में लेकर इनके 10 ग्राम यवकुट चूर्ण का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर छानकर इसमें शुद्ध हिंगुचूर्ण 250 मि.ग्रा. मिलाकर सेवन करने से प्रमेह पिडका एवं अन्य रक्तविकारों का शमन होता है। —भै. र.

3. सारिवा, कमल की केशर, मुलहठी, रक्तचन्दन, सफेद चन्दन, धनियां, जवासा, नागरमोथा, मुनक्का और पित्तपापड़ा को समान मात्रा में लेकर इनका क्वाथ बनाकर इस क्वाथ में मिश्री, मधु और अमलतास फलमज्जा मिलाकर सेवन करने से पित्तजन्य ज्वर दूर होता है। —क्वा. म. मा.

हिम (शीतकषाय)—

सारिवा, खदिर, आंवला, ब्राह्मी, नीलकंठी मीठी, चोपचीनी, मंजीठ, गिलोय, धमासा, रक्तचन्दन, गुलबनफ्सा,

खस, गोरखमुण्डी, शाहतरा, कमल के फूल, गुलाब के फूल, गूमा, पद्माख, जीवंतीमूल और शंखाहुली प्रत्येक समान भाग लेकर इनका मोटा चूर्ण करके रखलें। इसमें से 15 ग्राम चूर्ण को 100 मि.लि. गरम जल में मिट्टी या कांच के पात्र में भिगो, सबेरे हाथ से मसल कपड़े से छानकर पीने को दें। सबेरे इसी प्रकार फिर गरम जल में डालकर रखें और शाम को मसल छानकर पीने को दें। इसके सेवन से रक्तविकार, कण्डू, हाथ पांवों की जलन, अम्लपित्त, जीर्णज्वर आदि पित्त और रक्तदुष्टिप्रधान विकारों में इसका प्रयोग करें। *—सि. यो. सं.*

वटी—

सारिवा, मुलेठी, कूठ, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, फूलप्रियंगु, नीलोत्पल, गिलोय, लौंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला—इनका चूर्ण 10-10 ग्राम, अभ्रक भस्म, लोहभस्म 140-140 ग्राम लेकर सबको एकत्र मिला भांगरे के रस, अर्जुन के क्वाथ, मकोय के रस और गुंजा के जड़ के क्वाथ की एक-एक भावना देकर 360 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। एक एक गोली प्रातः सायं धारोष्ण दूध, शतावर का रस अथवा लाल चन्दन के क्वाथ के साथ देने से कर्णरोग, प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, रक्ताल्पता, नपुंसकता, अर्श, हृदयरोग, स्त्री रोग आदि नष्ट होते हैं। *—भै. र.*

लौह—

सारिवा, नील, रास्ना, गिलोय, छोटी इलायची के दाने, चित्रकमूल, मानकन्द, सूरण, चोर पुष्पी, निसोत, शुद्ध भिलावाऔर हरड़ इन 12 औषधियों को सम भाग लें। सबको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर सबके समान लौह भस्म मिलाकर बोतल में भर लेवें। दिन में दो बार 250-500 मि.ग्रा. सारिवासव या भृङ्गराजासव के साथ देवें। यह सरिवादि लौह प्रमेह पिडका, वातरक्त, अर्श और अन्य त्वचा रोगों को दूर करता है। इसका सेवन पथ्य पालन सह एक-दो माह तक करना चाहिये। *—भै. र.*

आसव—

सारिवा, मोथा, लोध्र, बरगद की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, कचूर, कृष्ण सारिवा, पद्माख, सुगन्धबाला, पाठा, आमला, गिलोय, खस, दोनों चन्दन, अजवायन, कुटकी प्रत्येक 40-40 ग्राम, छोटी बड़ी इलायची, कूठ, सनाय, हरड़ प्रत्येक 160-160 ग्राम लेकर सब को जौ कुट कर लें। फिर एक बड़े मटके में 25 लिटर 580 मि. लि. पानी डालकर उसमें यह चूर्ण और 15 किलो गुड़, 400 ग्राम धाय के फूल तथा 3 किलो मुनक्का डालकर सन्धान करदें और एक माह पश्चात् तैयार होने पर निकाल छानकर रखें। यह सारिवाद्यासव प्रमेह पिडका, उपदंश, वातरक्त, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, नाड़ीव्रण, फोड़े-फुन्सी आदि रोगों को नष्ट करता है। यह आसव रक्तशोधक, रक्त प्रसादक, मूत्रशोधक और पेशाब साफ लाता है। *—भै. र.*

शार्कर—

1. सारिवा 500 ग्राम को बारीक कूट पीस कपड़छान चूर्ण कर चार लिटर वाष्प जल में क्वाथ बनावें। एक लिटर जल शेष रह जाने पर मोटे वस्त्र से छानकर अलग बर्तन में रख पुनः एक किलोग्राम शर्करा डालकर आध घन्टे तक मंद आंच पर पकावें। चाशनी जब शर्बत की हो जाय तब उतार कर ठंडा होने पर बोतलों में भर रखें। भोजन के बाद 20-25 मि.लि. सेवन करने से रक्त का शोधन होता है, बलवृद्धि होती है तथा त्वचा की जलन मिटती है। ग्रीष्म ऋतु में यह अधिक उपयोगी है। *—ध. भै. क.*

2. सारिवा, मुलेठी, सनाय, सफेद मूसली, असगन्ध, उशवा और हरड़ ये सात 100-100 ग्राम, जवासा 50 ग्राम, लौंग, गोरखमुंडी, उन्नाव, सौंफ, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, गुलाब के फूल, छोटी इलायची, मंजीठ, दालचीनी ये 10 औषधियां 25-25 ग्राम लें। सबको जौकुट कर सोलह गुने जल में उबालकर क्वाथ

करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छान 5 किलो शक्कर मिलाकर शर्बत जैसी चाशनी बनालें। इसके सेवन से उपदंश, सुजाक एवं अन्य रक्त विकार दूर होते हैं।

—र. त. सा.

घृत—

दोनों सारिवा, कमल, लोध्र और नीलोफर 40-40 ग्राम लेकर सबको पानी के साथ पीस लें। दो किलो घी में यह कल्क और 8 लीटर दूध मिलाकर मंद अग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेष रह जाने पर छानकर रखें। यह घृत प्रदर, दाह और ज्वर में उपयोगी है। रक्तपित्त में इसका नस्य लेने से लाभ होता है। *—वनौ. विशे.*

अवलेह—

सारिवा 5 किलो लेकर कूट कर 32 लिटर जल में पकावें। शेष 8 लिटर जल रहने पर छान लें फिर उस जल को पुनः पकाकर गाढ़ा कर लें। इसके बाद उसमें गिलोय, शतावरी, विदारीकंद, जीवक, निशोथ, मुण्डी, त्रिफला, छोटी इलायची और चोप चीनी का चूर्ण 25-25 ग्राम मिला नीचे उतार लें। ठण्डा हो जाने पर एक किलो शहद मिलाकर सुरक्षित रखें। दूध के साथ 10 ग्राम यह अवलेह खाने से उपदंश, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और पारद जन्य समस्त विकार नष्ट होते हैं। इससे बल-वीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है। *—सचित्र वनस्पति गुणादर्श*

तैल—

सारिवा, मुलेठी, राल और मोंम 50-50 ग्राम, अण्डी का तैल 2 लिटर तथा गोमूत्र 8 लिटर एकत्र मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखें। इसकी मालिश से वातरक्त में लाभ होता है।

—च. द.

लेप—

सारिवा, कूठ, मुलेठी, बच, पिप्पली और नीलकमल इनको कांजी में पीसकर थोड़ा एरण्ड तैल मिलाकर लेप करने से सूर्यावर्त व आधा शीशी का शिर दर्द मिटता है।

—शा. सं.

इन योगों के अतिरिक्त चन्द्रकला रस (रक्त पित्त), महातिक्तक घृत (सुश्रुत-कुष्ठ), अष्टमांगल घृत (च.द. बालरोग), स्थिरादि घृत (चरक-वातरक्त), रक्तशोधक अर्क (र. त. सा.), पत्रंगासव (भै. र. स्त्री रोग), दशमूलारिष्ट (भै. र.), अश्वगन्धारिष्ट (भै. र.) अरविन्दासव (भै. र. बालरोग) चन्दन बलालाक्षादि तैल (यो. र.) आदि बहुत से योगों में सारिवा का उपयोग होता है।

पेटेन्ट प्रयोग में सारिवा—

हिमालया ड्रग कम्पनी ने शाहीकूल हर्बल शर्बत बनाया है जो प्राकृतिक ठंडक देने वाली जड़ी-बूटियों का मिश्रण है। यह एक मात्र ऐसा शर्बत है जिसमें सारिवा मौजूद है। इसमें रक्तविकार, ताप अस्वस्थता, तरल पदार्थ का असंतुलन, बदहजमी, आंत्रवायु, कमजोरी तथा भूख न लगना आदि ठीक करने के गुण भी हैं। इसमें फलों का गूदा और कोई कृत्रिम खुशबू नहीं है।

चरक फार्मास्युटिकल्स का "प्युरिला सिरप" चर्म-रोग की खास दवा है। यह विषैले द्रव को पतलाकर निकालने में मदद करता है। यह मूत्रवर्धक और रेचक भी है। इसमें सारिवा, चोपचीनी, मंजीठ, उशीर, शिरीष, चन्दन दारूहल्दी आदि हैं। दो-दो चम्मच दिन में तीन बार सेवन करना चाहिये।

अजमेरा फार्मास्युटिकल्स की टेबलेट्स डाययूरिस्टोन अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में उपयोगी है। इसमें सारिवा चूर्ण, पाषाण भेद सत्व, वरूणछाल, गोखरू घनसत्व आदि हैं। इसकी 2-2 गोली दिन में तीन बार देनी चाहिये।

जमना फार्मास्युटिकल्स द्वारा बनाया गया "जे. पी. निखार तैल" मुंहासों पर लगाने की दवा है। इसमें सारिवा, भृंगराज, मंजीठ, खस, हल्दी आदि घटक द्रव्य

रक्तशोधन होने के कारण चर्म रोगों को नष्ट करते हुये वर्ण को उज्ज्वल बनाने में अत्यंत प्रभावी हैं।

रक्त को शुद्ध करने वाला उत्तम पेय है—"रक्तगदान्तक सीरप", जिसका निर्माण कौशिक आयुर्वेद भवन सालासर (राज.) द्वारा किया जाता है। इसमें सारिवा दारूहरिद्रा, खदिर, कूठ, चन्दन, चिरायता, मंजीठ, नीम आदि हैं। यह ...लीय त्वचा को सामान्य बनाकर नया शुद्ध रक्त बनाने में सहायक है। शीतपित्त, विबन्ध, दाह, रक्त विषाक्तता, कील-मुंहासों आदि को यह नष्ट करता है।

साण्डू ब्रदर्स का हिमोक्लिन सीरप भी कुछ ऐसा ही सीरप है जो रक्तशुद्धि के लिए उत्तम औषधि है। इसमें सारिवा, गिलोय, मंजीठ, चिरायता, नीम, कुटकी, दारूहल्दी आदि हैं।

एक कार्यकारी प्राकृतिक रक्तशोधक है श्री रूद्रदेव आयुर्वेद भवन नयागांव (सारण) का "रक्त सुधाकर क्विड" इसमें सारिवा, मुण्डी, काकमांची, सनाय, ...द्रायणमूल, त्रिफला, ब्रह्मदण्डी, स्वर्णक्षीरीत्वक् आदि। इसके सेवन से रक्तदोष जन्य उपद्रव शान्त होते हैं, त्वचा सम्बन्धी अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं और रक्त निर्दोष हो जाता है।

"शिल्पा परीला कैपसूल" और "शिल्पा परीला सीरप" दोनों योग तमाम चर्मरोगों को दूर कर त्वचा की कांति बढ़ाकर उसे कुदरती रंग प्रदान करने के लिये उत्तम रक्तशोधक हैं। इन दोनों योगों में साम्यता है। सारिवा, ...स, वकायन, गोरखमुण्डी, मंजीठ, नीम आदि हैं।

हर्ब इण्डिया द्वाराभी "डर्मिन" नामक रक्तशोधक, ...हर, पित्तशामक सीरप एवं कैपसूल तैयार किये जाते हैं। इनमें सारिवा, मंजिष्ठ, धनियां, देवदारू, रेवन्द चीनी, ...रू आदि हैं।

"इक्यूरीन सीरप" और "डर्माक्लीन टिकी" नामक ...ट प्रयोग आर्य औषधि फार्मास्युटिकल द्वारा बनाये जाते हैं। इनमें सारिवा, उसवा, सिरस छाल, उन्नाव, ...लमेघ आदि हैं। ये दोनों योग रक्तशोधक, सारक, ...हर, कृमिघ्न हैं।

मेडिकल इथिक्स आफ इण्डिया "इथीनीर सीरप" नामक योग के निर्माता हैं। यह स्नायुमण्डल के विकार योषापस्मार आदि को दूर कर बुद्धि को बढ़ाता है। सारिवा, अश्वगन्धा, बच, शतावरी, जीवन्ती आदि हैं।

त्वचा की रक्तदोष युक्त समस्या का उत्तम उपचार है 'डरमोटेब' टेबलेट (निर्माता—गोस्वामी ड्रग्स रतनगढ़-राज.) है। दो-दो टेबलेट दिन में तीन बार दी जानी चाहिये। इसमें सारिवा के घनसत्व के अतिरिक्त वाकुची, चन्दन, वच, हरिद्रा घनसत्व आदि हैं। यह खाज-खुचली, कील मुंहासे तथा अन्य चर्म रोगों का समुचित उपचार कर त्वचा को कान्तिमय बनाने वाला योग है। इन्हीं रोगों में उपकारी दूसरा योग है—"रक्तसालसा सीरप"। इसमें सारिवा, पित्तपापड़ा, मंजिष्ठा, विडंग, हरीतकी, अमृता आदि के घनसत्व हैं। यह योग भी गोस्वामी ड्रग्स का है।

सिद्धि फार्मेसी प्रा. लि. ललितपुर द्वारा कई आयुर्वेदीय सूचीवेध (इन्जेक्शन) बनाये जाते हैं। इनमें एक सूचीवेध "अनन्तमूल" नाम से भी आता है। इसमें अनन्तमूल (सारिवा) का सत्व एवं क्षार होता है। रक्तविकार, अस्थिशोष, उपदंश, पूयमेह आदि विविध रोगों में यह सूचीवेध उपयोगी है।

अनुभूत प्रयोग—

1. रक्तशोधक बलवर्धक प्रयोग—सारिवा, चोपचीनी, मुलहठी, तेजबल, गुलाब के फूल, बीजबंद, बिहीदाना, हरड़, अमलतास और कबाब चीनी दो-दो ग्राम लेकर इनके जौकुट चूर्ण को 500 मि.लि. जल में पकावें। जब 125 मि.लि. जल शेष रहे तब उतार छानकर इस क्वाथ को सुबह-शाम दो बार पान करने से रक्त शुद्ध होता है। इससे पारद विष जन्य विकार और फिरंग-उपदंश आदि रोगों में भी लाभ होता है। साथ ही यह प्रयोग बल की वृद्धि भी करता है।

—कवि. श्री आशुतोष मजूमदार
(धन्व. रक्तरोगांक)

2. गर्भाशय विकृतिहर प्रयोग—गर्भवती स्त्री के विकारों का ठीक-ठीक उचित औषधोपचार न करने से अथवा प्रसूति के समय गर्भाशय में दूषित रक्त के रह जाने से या बार-बार गर्भस्राव-पात होने से आन्तरिक उष्मा के बढ़ जाने से गर्भाशय में दोष संचय होकर वह विकृत हो जाता है। इसके उपचार में मासिक स्राव के कुछ दिनों पूर्व स्निग्ध विरेचन के बाद यह योग सेवन करावें—सारिवा, मंजीठ, निशोथ, मुनक्का, शतावर, खरेंटी, सौंफ, पिप्पली, देवदारू, दारूहल्दी, जवाखार, सज्जीखार, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, त्रिफला, मोथा, मुलेठी, सोंठ और पांचों नमक समभाग ले महीन चूर्ण कर दो-दो ग्राम चूर्ण सारिवाद्यासव 20 मि.लि. (बराबर जल) के साथ उसमें थोड़ी हल्दी का चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल सेवन करावें। ***—पं. श्री नन्दकिशोर शर्मा***

(आयुर्वेद विकास अक्टू. 71)

3. कामला नाशक प्रयोग—सारिवा की जड़ की छाल 20 ग्राम, रक्तपुनर्नवा की जड़ की छाल 10 ग्राम, काली मरिच 15 नग। तीनों औषधियों को सिल पर पीसकर 250 मि.लि. पानी में घोलकर प्रातःकाल पीवें। इससे पाण्डुकामला में विशेष लाभ होता है। प्रस्तुत योग मेरा स्वकल्पित है और अत्यन्त साधारण होते हुये भी अच्छा लाभ करता है। ***—डा. श्री बांके बिहारी मिश्रा***

(सुधा. प्र. सं. अं. भाग प्रथम)

4. श्वेतकुष्ठहर बी-योग नामक प्रयोग—बी-योग में छः औषधि द्रव्य आते हैं—सारिवा, आंवला, बाकुची, तुलसी, विडंग और अजमोदा। इस योग में बाकुची दो भाग तथा शेष 5 द्रव्य एक-एक भाग होते हैं। 700 मि.ग्रा. की बी. योग की टिकिया बनाई गई। प्रतिदिन की 6 से 9 टिकिया उसकी मात्रा निश्चित की गई अर्थात् प्रतिदिन 2 से 3 गोली तीन बार दी जाती थी। इसके साथ सोमराजी तैल स्थानिक उपयोग करने हेतु दिया जाता था। बी-योग से निम्न परिणाम मिला—6 रोगियों में 100 प्रतिशत लाभ, 2 रोगियों में 75 प्रतिशत लाभ, 7 रोगियों में 50 प्रतिशत लाभ, 11 रोगियों में 25 प्रतिशत लाभ, 4 रोगियों में कुछ भी लाभ न हुआ तथा 2 रोगियों में रोग की वृद्धि देखने को मिली। इस प्रकार कुल 32 रोगियोंकी चिकित्सा का अध्ययन किया गया।

—कस्यचित् (सुधा. प्र. सं. चतुर्थ भाग)

5. वातरक्तहर उत्तम प्रयोग—सारिवा, नीम की छाल, गिलोय, अडूसा और अमलतास सबको समान मात्रा में लेकर क्वाथ करें। सुखोष्ण क्वाथ 60 मि.लि. में 20-25 मि.लि. शुद्ध एरण्ड तैल मिलाकर नित्य प्रातःकाल पिलावें। विरेचन शान्त होने पर गेहूँ के दलिया की गोदुग्ध में यवागु बनाकर या शाली चावलों की गोदुग्ध में खीर बनाकर खिलावें। ऐसा सात दिनों तक सेवन कराने से वातरक्त शान्त होता है। ***—श्री हर्षुल मिश्र***

● सम्पादकीय टिप्पणी—

प्रमेह में उपयोगी सारिवादि चूर्ण

पित्तज प्रमेह के रोगी जिन्हें कई प्रकार के उपद्रव होने लगते हैं उनके लिये सारिवादि चूर्ण की कल्पना विशेष लाभदायक प्रमाणित हुयी है सारिवादि चूर्ण का निर्माण इस प्रकार करें—

घटक—सारिवा 100 ग्राम, गिलोय 100 ग्राम, मुलहठी 100 ग्राम, असगंध 100 ग्राम तथा श्वेत चंदन 100 ग्राम मिलाकर चूर्ण बनालें। 1-1 चम्मच दिन में 2 बार जल के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग से शीघ्र मुक्ति मिल जाती है।

—गोपालशरण गर्ग

हरिद्रा
(Curcuma Longa)

महज मसाला समझी जाने वाली हल्दी एक बहुउपयोगी औषधि है। यह एक ऐसा मसाला है जो जन्म से मृत्यु तक प्रयुक्त होता है। घरेलू चिकित्सा में भी हल्दी हजारों रोगों की एक अचूक औषधि है। आज भी करोड़ों लोग हल्दी का इस्तेमाल दवा के रूप में करते हैं। कीटाणुरहित एवं कीटाणुनाशक गुणों की वजह से हल्दी भोजन, सौन्दर्यवर्धन, औषधि आदि रूपों में प्रयुक्त होती है। इसके बहुआयामी चिकित्सकीय गुणों के कारण ही इस पर आधिपत्य स्थापित करने की होड़ सी लगनी शुरू हो गई है। अभी हाल ही अमेरिका सहित कई देशों की कंपनियों ने हल्दी पर सात से भी ज्यादा पेटेंट हासिल करने का प्रयास किया। यह आश्चर्यजनक है आखिर इतनी जानी-पहचानी वनौषधि पर अमेरिकी पेटेंट विभाग ने पेटेंट कैसे दे दिया था, जबकि हल्दी का औषधीय गुण तो भारत के घर-घर में जाना-पहचाना है।

यह हल्दी एक ऐसी वनौषधि है, जो धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त्र पवित्र एवं सौभाग्य सूचक है—

हरिद्रा कुंकुमञ्चैव सिन्दूरादिसमन्वितम्।
कज्जलं कण्ठसूत्रादि सौभाग्यद्रव्यमुच्यते।।

—आ.सू.

विवाह के समय दूल्हा-दुल्हन के मस्तक पर इसे चढ़ाकर लोक गीतों के माध्यम से स्त्रियां प्रमुदित होकर गाती हैं।—

म्हारी हलदी रौ रंग सुरंग निपजै मालवै
हलदी मोल पसारी री हाट बनडैरे सिर चढ़ै
चिरजीवौ रायजादै रा बाबौजी चतर सुजाण।।

प्रत्येक मांगलिक अवसर के समय हल्दी और चूने के मिश्रण से तैयार रोली का ललाट पर टीका लगाया जाता है जिससे उत्सव की शोभा बढ़ती है तो दूसरी ओर देवताओं के मस्तक पर भी यह चढ़कर स्वंय पूजनीय बन जाती है। देवार्चन एवं अग्निहोत्र में जिन द्रव्यों को उपयोग में लाया जाता है उनमें चन्दन, अगरू, कपूर, केशर, गोरोचन आदि के साथ हरिद्रा को भी उपयोग में लाया जाता है। कर्मकाण्डी जिन दश औषधियों को सर्वोषधि के नाम से उपयोग में लाते हैं उनमें एक हरिद्रा भी है—

कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्।
वचाचन्दनमुस्ता च सर्वोषध्यो दशस्मृतः।।

आचार्य चरक ने तिक्तस्कन्ध की इन वनौषधि को शिरोविरेचन, कुष्ठघ्न, लेखनीय, कण्डूघ्न और विषघ्न गणां में लिखा है और आचार्य ने हरिद्रादि, मुस्तादि और श्लैष्मसंशमन गणों में लिखा है। आचार्य भावमिश्र ने इसे हरीतक्यादिवर्ग में तथा आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने कुष्ठघ्न द्रव्यों के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है। किंशुक (पलाश), कर्णिकार (अमलतास) और दोनों हरिद्रा पीतवर्ग के अन्तर्गत आते हैं—

किंशुकः कर्णिकारश्च हरिद्राद्वयं तथा।
पीतवर्गोऽयमादिष्टो रसराजस्य कर्मणि।।

—र. रा. सु.

कुल—आर्द्रककुल (जिंजिंबरेसी)

नाम—

संस्कृत—हरिद्रा, निशा, गौरी, योषित् प्रिया, गौरी आदि।

हिन्दी—हल्दी, हलदी, हरदी

गुजराती—हलदर

मराठी—हंलद

पंजाबी—हरदल

बंगला—हलुद

तामिल—मञ्जल

तेलगू—पसुपु

मलयालम—हलद

कन्नड़—आभिनिन्

अरबी—कुंकुम

फारसी—जर्दचोब

अंग्रेजी—टर्मेरिक (Turmeric)

लैटिन—कर्कुमा लौंगा (Curcuma Longa)

प्राप्ति स्थान—समस्त भारत में विशेषत: बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु प्रान्त में इसकी खेती की जाती है।

खेती—हल्दी उष्ण स्थानों, समुद्र के तटवर्ती तथा पहाड़ी क्षेत्रों में अधिक सफलता से उगती है। दुमटभूमि जिसमें कि जल निकास उत्तम होता है, हल्दी उत्पादन के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। सूरमा, रोमा, रश्मि और रंगा इसकी प्रमुख किस्में हैं। बीज के रूप में कंद लगाये जाते हैं। कंद बोने का उचित समय 15 जून से 15 जुलाई तक है। भूमि के अनुसार हल्की भूमि में जुलाई का प्रथम सप्ताह अच्छा रहता है और भारी भूमि में जून का अन्तिम सप्ताह। फसल में आवश्यकतानुसार दो-तीन बार मिट्टी चढ़ानी चाहिए। जब तने व पत्तियाँ पीली पड़ने लगे तब कंद की खुदाई कर इनसे पतली जड़ें, रेशे तथा मिट्टी आदि साफ कर कंदों को पानी के साथ मिट्टी के घड़े में उबालना संसाधन की वैज्ञानिक विधि है। तीन-चार घंटों में कंद उबलकर मुलायम हो जाते हैं। इसके बाद कंद गांठों को निकाल कर सुखा लें। सूखने में 6-7 दिन का समय लग सकता है। सूखने के बाद गांठों को खुरचकर छिलकों को हटाकर आवश्यकतानुसार धूप में रखकर सुखायें। इस रूप में यह मूल द्रव्यों का 17-25 प्रतिशत प्राप्त होता है।—औषधिय फसलों की वैज्ञानिक खेती

रासायनिक संघठन—हल्दी में 10-12 प्रतिशत जल, 4-12 प्रतिशत फैटी आयल, 5-13 प्रतिशत मिनरल्स होते हैं। इसका पीला रंग इसमें पाये जाने वाले कर्कुमीन नामक पदार्थ के कारण होता है। इसमें 70 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट होता हैं तथा विटामिन ए पाया जाता है। हल्दी से निकलने वाले तैल को टर्मेरिक आयल कहते हैं जिसमें अरजवावायोन तथा टर्मेरिक जैसे सक्रिय पदार्थ होते हैं जो इसके प्रमुख कार्यकारी तत्व हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका बहुवर्षायु क्षुप 2-3 फुट ऊँचा होता है जो प्राय: देखने में अदरख के पौधे जैसा होता हैं। पत्र आयताकार एक-दो फुट लम्बे व लगभग 6 इंच चौड़े जो इतने ही लम्बे पत्र वृन्त से लगे होते हैं। ये पत्र दोनों ओर चिकने और इन पर सूक्ष्म श्वेत बिन्दु होते हैं। पत्र की मुख्य पार्श्व सिरायें 20-30 ऊर्ध्व होती है। इनसे आम की सी गन्धआती है। पुष्पदण्ड—4-6 इंच लम्बा पंच कोष आवृत होता है जिसमें हल्दी के रंग के ही पीतवर्ण पुष्प निकलते हैं। ये पुष्प लगभग 1½ इंच लम्बे होते हैं। पुष्पदंड हल्के हरे रंग के होते हैं। आर्द्रकंद बादामी वर्ण का, अदरक के कन्द जैसा किन्तु उससे बड़ा (प्राथमिक कन्द स्थूल तथा द्वितीयकंद लम्बा होता है) जो भीतर की ओर चमकीला-पीला होता है। जो आर्द्रकंद बादामी रंग का होता है वह सूखने पर पीतवर्ण हो जाता है।

रस—तिक्त, कटु

गुण—रूक्ष, लघु

वीर्य—उष्ण

विभिन्न भू-भागों में उत्पन्न द्रव्यों के वीर्य में तर-तम का भेद आ जाता है। पृथक्-पृथक् प्रदेश में उत्पन्न हरिद्रा के कार्यकारी तैल में न्यूनाधिक्य पाया गया है।



हरिद्रा (CURCUMA LONGA)

नाम—सं०—हरिद्रा, निशा; हि०—हल्दी; गु०—हलदर; म०—हलद; अं.—टर्मेरिक; लै०—कर्कुमा लौंगा।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत विशेषतः बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु।

उपयोगी अंग—कंद।

दोषशमन—कफपित्त शामक।

रोगोपयोग—प्रमेह, कुष्ठ, पाण्डु कामला, शीतपित्त, कास-श्वास, व्रण आदि।

मुख्ययोग—हरिद्रा खण्ड, निशा तैल आदि।

विपाक—कटु

दोषकर्म—उष्णवीर्य होने से यह कफ-वात शामक, पित्तरेचक और तिक्त होने से पित्तशामक भी है।

यह तीनों दोषों से उत्पन्न रोगों में प्रयुक्त होती है किन्तु विशेषतः यह कफ-पित्तशामक है।

उपयोगी अंग—कंद

मात्रा—स्वरस-10-20 मि.लि.

चूर्ण—1-3 ग्राम

संग्रह एवं संरक्षण—लम्बी हरिद्रा गोल की अपेक्षा अधिक उत्तम समझी जाती है। विशेषतः औषधिय प्रयोग हेतु लम्बी हरिद्रा को ही उपयोग में लाना चाहिये। इसका चूर्ण कर मसाले के लिए या औषधि हेतु उपयोग में लाना चाहिये। पिसी हुई हरिद्रा विश्वसनीय स्थान से ही ग्रहण करनी चाहिये। अच्छा हो कि इसका चूर्ण हम घर पर ही तैयार करें। कई धूर्त व्यापारी इसमें अपमिश्रण (मिलावट) कर देते हैं। इसमें कई पीला लेडक्रोमेट मिला देते हैं जो नेत्रों की ज्योति को कम करता है। जिस पात्र में हरिद्रा चूर्ण रखा जाये उसे भली भाँति बंद कर उसे नमी एवं धूप से बचाये रखें।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष पर्यन्त।

अहितकर—हृदय के लिए

निवारण—बिजौरा और नीबू का रस

प्रतिनिधि—मंजिष्ठा (मंजीठ)

गुणप्रकाशक संज्ञा—हरिद्रा, कृमिघ्ना, मेहघ्नी

गुणधर्म विवेचना (आयुर्वेदीयशास्त्रानुसार)—

हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्तनुत्।
वर्ण्या त्वग्दोषमेहास्रशोष पाण्डुव्रणापहा।।

—भा. प्र. नि.

हरिद्रा तु रसे तिक्ता रूक्षोष्णा विषकुष्ठनुत्।
मेहकण्डूव्रणान् हन्ति देहवर्णविधायिनी।।
शोधनी कृमिहरा पीनसारूचिनाशिनी।।—ध.नि.

आचार्य वृद्ध वाग्भट ने "हरिद्रा प्रमेहहराणाम् (अ. सं.सू.) कह कर इसे प्रमेह की उत्तम औषधि बतलाया है। इस हेतु हरद्रि चूर्ण को आमलकीरस एवं मधु के साथ सेवन करना चाहिये—

धात्रीरसप्लुतां प्राह्णेहरिद्रां माक्षिकान्विताम्।

—अ.हृ.चि. 12

उग्रदित्याचार्य भी अपने ग्रन्थ में इसे आमलकीस्वरस में डाल संधान कर सेवन करने का परामर्श देते हैं—

निशां विचूर्ण्यामलकांबुमिश्रितां
घटे निषिक्य प्रपिधाय संस्कृते।
सधान्यकूपे निहितं यथाबलं
निहन्ति मेहान् क्रमतो निषेवितम्।।

—कल्याणकारक

प्रमेह में हरिद्रा चूर्ण किंबा कच्ची हल्दी का स्वरस दोनों ही हितकारी कहे गये हैं—

आर्द्रहरिद्रास्वरसो मधुना क्षिप्रं प्रमेहहारी स्यात्।
अथवा मधुना चूर्णं तस्याः लिह्यान्नरो मेही।।

—प्रि.नि.

आचार्य शार्ङ्गधर हरिद्राकल्क के साथ इन द्रव्यों का क्वाथ पिलाना सभी प्रकार के प्रमेह में हितकर कहते हैं—

फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः श्रृतं पिबेत्।
निशाकल्कयुतं सर्वप्रमेहविनिवृत्तये।।

—शा.सं.

योगतरंगिणीकार एवं वृद्धमाधवकार आदि ने इसमें मधु मिलाना अधिक उपयोगी कहा है। यह पूर्व में कहा गया है कि हरिद्रा त्रिदोषहर होते हुये भी विशेषतः कफपित्तहर है, सुतरां आचार्य चरक ने कफज एवं पित्तज प्रमेह में लाभप्रद हरिद्रा युक्त प्रयोग लिखे हैं—

उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गम् (कफघ्न)
निम्बार्जुनाम्रातनिशोत्पलानाम् (पित्तघ्न)

उपर्युक्त योग जो शार्ङ्गधरसंहिता, योग तरंगिणी, (वृ)न्दमाधव आदि में आया है यह वस्तुतः चरक संहिता (क)ा योग है किन्तु व्याख्याकार गंगाधर ने उक्त योग को (न)हीं पढ़ा है। सुश्रुतसंहिता में हरिद्रा के चार योग कहे गये (हैं)।

कुष्ठ-कंडू, उदर्द आदि त्वग् विकारों में तथा (र)विकारों में हरिद्रा का बहुशः प्रयोग होता है। इसे (उत्त)म रक्तशोधक कहा गया है तथा यह रक्तस्तम्भन तथा (बल)वर्धक भी है। शीतपित्त की यह श्रेष्ठ औषधि है। (क)हा गया—

दूर्वानिशायुतोलेपः कच्छूपामाविनाशनः।
क्रिमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः।।—च.द.
अमृतारजनीनिम्बधवयासैः कृतः श्रृतः।
प्राणिनां प्राणदश्चैव शीतपित्तहरः परः।।
—क्वा.म.मा.

किसी वस्तु के क्रमशः सेवन करते रहने से वह (विष)पूर्ण होते हुये भी दोष रहित हो जाती है। इसी प्रकार (ऐ)सा किसी वस्तु का सेवन किया जाय तो वह निर्दोश (हो)ते हुए भी किसी के लिए बहुत हानिकारक हो सकती (है।) प्रत्येक व्यक्ति में बाहरी वस्तु का प्रवेश होने पर (उस)के प्रति एक प्रतिक्रिया होती है परन्तु किसी व्यक्ति में (यह) प्रतिक्रिया विशेष होती है तब इसे अतिसंवेदनशीलता (कह)ते हैं। आयुर्वेदानुसार इसे असात्मयता कहा जा सकता (है।) उक्त संस्थानों की सुचारू क्रिया में सहायक होने से (हरि)द्रा इस रोग में लाभप्रद सिद्ध हुई है।

शीतपित्त के अतिरिक्त हरिद्रा इन रोगों में इस प्रकार (प्रयोज)नीय है—

पिष्ट्वा जलेन रजनी महिषीपुरीष
मध्ये निधाय मृदुना दहनेने पक्वा।
उद्वर्तनेन विदधाति शरीरमुद्य-
च्छीतांशुबिम्बरूचिरूत्तमचारूकान्तिः।
यः कुष्ठसर्षपतिलैर्निशयासदार्व्या
गात्रं प्रलिप्य सलिलैः कुरूतेऽभिषेकम्।
तस्य प्रतप्तवरकाञ्चनकान्तिगौर-
मुद्दामसौरभमतीव विराजते तत्।। —रा. मा.
रक्षोघ्नशर्वरीद्वयं मंजिष्ठा गैरिकाज्यवस्त पयः।
सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्विघुबिम्बवद् विभाति।।
हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः।
एतत् तैलमरूंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम्।।
रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मंजिष्ठानिम्बपल्लवाः।
त्रिवृत् तेजोवतीदन्ती कल्को नाड़ीव्रणापहः।।
अवल्गुजं कासमर्द चक्रमर्द निशायुतम्।
मणिमन्थेन् तुल्यांशं मस्तुकांजिकपेषितम्।
कंण्डूं कच्छूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराद्।।
निशासुधारग्वधकाकमाची-
पत्रैः सदार्वीप्रपुनाडबीजैः।
तक्रेण पिष्टः कटुतैलमिश्रैः
पामादिषूद्वर्त्तनमेतदिष्टम्।। —च.द.
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहापचीहरः।
—शा.सं.
हरिद्रा त्रिफला निम्बबलामधूकसाधितम्।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम्।।
त्रिफला द्वे हरिद्रे च कटुरोहिण्ययोरजः।
चूर्णितं क्षौद्रसर्पिर्भ्यां सलेहः कामलापहः।।
मंजिष्ठा रजनीद्राक्षा बलामूलान्वयोरजः।
लोध्रं चैतेषु गौडः स्यादरिष्टः पाण्डुरोगिणाम्।।
—चरक.चि. 16

यकृत को उत्तेजित कर उसे सबल बनाने में हरिद्रा

विशेष उपयोगी है। यकृत् शोथ जन्य कामला में हरिद्रा यकृत् कोशिकाओं में उत्पन्न शोथ को दूर करती है। यदि अवरोधजन्य कामला होता है तो हरिद्रा के सेवन से शोथ का शमन होकर अवरोध समाप्त होता है जिससे रूका हुआ पित्त कोष्ठ में जाकर मल के साथ शरीर से बाहर निकलता है और रोगी लाभ प्राप्त कर लेता है। हरिद्रा को पित्तविरेचक कहा गया है। यह विरेचन के द्वारा मल पित्त को बाहर निकाल देती है। अपने तिक्तरस से यह शेष मल पित्त का भी शमन करती है। कफशामक होने से अवरोधक कफ का शमन कर लाभ पहुंचाती है। इस प्रकार यह सभी प्रकार कामला में हितकारी है। जन साधारण में व्याप्त यह धारणा निराधार है कि हरिद्रा पीतवर्ण होने से शरीर को पीत बना देने वाले रोग कामला में यह हितकर नहीं हो सकती है। एतावता चरकानुसार चक्रपाणिदत्त भी लिखते हैं–

तुल्या अयोरजः पथ्या हरिद्रा क्षौद्र सर्पिषा।
चूर्णिता कामली लिह्यात्... ।।
धात्रीलौहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः।।
लीढ्वा निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि।।

—च. द.

पित्तरेचक, अनुलोमन होने के साथ ही यह रूचिवर्धक और कृमिघ्न है, अतः अरूचि, उदरकृमि आदि में हितकारी है। चरकसंहिता के ग्रहणी चिकित्सित अध्याय में वर्णित मूलासव (जिसका हरिद्रा प्रथम घटक द्रव्य है) अग्निमांद्य, रक्तपित्त, आनाह, हृद्रोग, पाण्डुरोग और अंगसाद (शारीरिक शैथिल्य) आदि में लाभप्रद कहा गया है। हरिद्रादिक्षार भी अग्निवर्धक है–

हे हरिद्रे वचा कुष्ठं चित्रकं कटुरोहिणीम्।
मुस्तंच छागमूत्रेण दहेत् क्षारोऽग्निवर्द्धनः।।

—च. चि. 15-182

आचार्य सुश्रुत ने जो हरिद्रादिगण (सू. 38) कहा है इसे आमातिसारशमन, दोषपाचन एवं स्तन्यविशोधन निर्देशित किया हैं इस गण में हरिद्रा, दारूहरिद्रा, पृश्निपर्णी, कुटजबीज (इन्द्रजौ) और मुलेठी हैं। आचार्य चक्रपाणि ने भी कहा है कि–

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेदामेषु बुद्धिमान्।।

—च. द.

यह कफघ्न होने से कास श्वासकष्ट आदि में लाभप्रद है–

सिंहास्यरससंसिद्धहरिद्राखण्डचूर्णकम्।
दुग्धसंतानिकालीढ़ं शुष्क कास निबर्हणम्।।
कसनश्वसनबलासैर्बलवद्भिर्यदि विशिष्य परिभूतः।
लवणहरिद्रासंमृतधत्तूरफलस्य भस्म भुङ्क्ष्व सखे।।
अर्धदग्धां हरिद्रां द्राक् पिदधीत् शरावतः।
तत्कोकिलरजः क्षौद्रैर्द्विमाषं श्वासकासजित्।।

—सि. भे. म. मा.

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम्।
जह्यात् तैलेन विलिहन् श्वासान् प्राणहरानपि।।

—च. द.

श्वास में कफ का निर्हरण करना ही मुख्य उद्देश्य रहता है। क्योंकि कफ ही प्राणोदानवाही स्रोतसों को अवरूद्ध करके प्रकुपित हुये वात से श्वासोत्पत्ति में समर्थ होता है इस कारण इस ग्रथित कफ को स्नेहन स्वेदन से पिघलाकर वमन या धूम द्वारा निकालना ही एकमेव चिकित्साक्रम है। सारा उपक्रम करने के बाद भी यदि कुछ दोष शरीर में विलीन हो जावें तो उसको बुद्धिमान् वैद्य धूमयोगों से निकालें–

लीनश्चेद्दोषशेषः स्याद् धूमैस्तं निर्हरेद् बुधैः।।

—च. चि. 15

इन धूम योगों में हरिद्रा का विशेष महत्व है। एक योग आचार्य ने लिखा है–

हरिद्रां यवमेरण्डमूलं लाक्षां मनःशिलाम्।
सदेवदार्वबलं मांसीं पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत्।।
तां घृताक्तां पिबेद् धूमम..................।।

अहमदाबाद के मान्स प्रोडक्ट्स नामक संस्था द्वारा भी आयुर्वेदिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए "निर्दोष" नाम से फिल्टर धूमवर्ति (बीड़ी) का निर्माण किया जो विशेषतः श्वास-कास में लाभदायक है। धूम्रपान करने वाले शौकीन यदि तम्बाकू संयुक्त धूम्रपान त्याग करना चाहते हैं तो उनके लिए भी यह "निर्दोष" बहुत उपयोगी है। इसमें हल्दी, अजवायन, तुलसी, सुगन्धबाला, मुलेठी, कूठ, गूगल, तमाल पत्र और तेंदू के पत्ते हैं। ऐसी ही एक धूमवर्तिका कौशिक आयुर्वेद भवन सालासर (राज.) द्वारा भी तैयार की जाती थी।

ईसनोफिल श्वेतकणों का एक विशिष्ट प्रकार है, जिसकी वृद्धि को ईसनोफिलिया कहते हैं। इस रोग की साम्यता प्रायः श्वासरोग से होती है। आयुर्वेदज्ञों ने इस रोग का नाम 'उषसिप्रियता' रखा है। इस रोग में हरिद्रा बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई है। बहुत से चिकित्सक इसको उपयोग में लाकर रोगियों को लाभान्वित कर रहे हैं। कई चिकित्सक इसमें मल्ल को उपयोग में लाते हैं। विशेषतः इस रोग के शमन हेतु गर्ग वनौषधि भडार (विजयगढ़) द्वारा 'ईसोफिल" नामक कैपसूल तैयार किये जाते हैं। एक कैपसूल में घटकों की मात्रा इस प्रकार है-हरिद्रा सत्व 200 मि.ग्रा., कालीमरिच, पिप्पली, श्वासकुठार 100-100 मि.ग्रा. और मल्लसिन्दूर व अभ्रक भस्म 25-25 मि.ग्रा.। एक-दो कैपसूल सुबह-शाम जल के साथ रक्त में ईसनोफिल सामान्य होने तक सेवन कराने चाहिये।

एकौषधि के रूप में हरिद्रा चूर्ण 3-4 ग्राम दिन में तीन बार पानी के साथ देना अभीष्ट है। सुधानिधि पत्र के आदि सम्पादक स्व. श्री रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी हरिद्रा की भाँति देवदारू को भी "एन्टी एलर्जिक ड्रग" के रूप में सफलतापूर्वक उपयोग में लाते थे। यदि इन दोनों द्रव्यों का मिश्रण कर इस रोग में प्रयुक्त किया जाय तो अधिक लाभ की आशा की जा सकती है।

हरिद्रा गर्भाशयशोधन एवं दुग्ध शोधन होने से प्रसूता के लिए विशेष उपयोगी है। प्रसव होने के बाद उसी दिन से दशमूलक्वाथ के साथ हल्दी, पीपली, पीपलामूल, सोंठ आदि तीन दिन तक प्रसूता को अवश्य देने चाहिये। इन द्रव्यों की प्रसूता की प्रकृति एवं मौसम के अनुसार मात्रा का निर्धारण करना चाहिये। इन द्रव्यों को गुड़ की चाशनी बनाकर, उसमें पकाकर घृत एवं नारियल की गिरी के साथ देना चाहिये। तीन दिन अन्न का परित्याग करना चाहिये। इसके बाद भी लगभग 20 दिनों तक एक-दो ग्राम हरिद्रा चूर्ण नित्य फांकते रहना चाहिये। बंगाल में प्रसव के 3-4 दिनों बाद प्रसूता को जिस दिन पहला भात खाने को दिया जाता है उस दिन पहला ग्रास एक कच्ची हल्दी के साथ खिलाया जाता है इसे बंगाली में 'झालबडि' कहते हैं। महाराष्ट्र में "गुड़हल्दी" के नाम से प्रसूता को गुड़ के साथ हल्दी खिलाई जाती है। अन्यत्र भी इसे खिलाया जाता है। कहीं-कहीं प्रसूता स्त्री के 'कूंआपूजन" के समय बिना धुले कपड़े पर हरिद्रा का मांडना लगाकर सिर पर ओढाते हैं। ताकि प्रसूता को किसी भी प्रकार का बाहरी जीवाणु असर नहीं करता है क्योंकि हरद्रिा जीवाणुनाशक है। जीवाणु कई प्रकार के कवच बनाकर अपना प्रभाव दिखाते हैं। हरिद्रा स्थित उत्पत् तैल इस कवच को भेदन कर जीवाणुओं को मारने की क्षमता रखता है।

हरिद्रा कटुपौष्टिक होने से सामान्य दुर्बलता को दूर करती है एवं विषघ्न होने से विष की अवस्थाओं में लाभ पहुंचाती है। एक विषनाशक अगद वर्णित है—

शिरीषं तगरं कुष्ठं शालिपर्णी सहा निशे।
अहिण्डुकाभिर्दष्टानामगदो विषनाशनः।।
—सुश्रुत. क. 8-52

सहा-मुपग्दर्णी। निशे पिण्डहरिद्रादारूहरिद्रे।

—डल्हण

हरिद्रा वेदना स्थापन होने से अभिघातज वेदना एवं नाड़ीशूल में हितकारी कही गई है। चोट लगे स्थान पर हल्दी का लेप एवं इसे मुंह से खिलाने का घरेलू स्वरूप सुपरिचित है। भावप्रकाश के अनुसार थूहर के दूध से सात बार भावित हल्दी के चूर्ण में भिगोया हुआ सूत्र मस्सों (अर्श) पर दृढ़ता से बांधने से ये नष्ट हो जाते हैं। इससे भगन्दर भी नष्ट होता है—

भावितं रजनीचूर्णं स्नुहीक्षीरैः पुनः-पुनः।
बन्धनात् सुहृदं सूत्रं छिनत्यर्शो भगन्दरम्।।

आजकल वाराणसी, ग्वालियर, जयपुर के आयुर्वेद महाविद्यालयों में इस क्षारसूत्र का व्यापक उपयोग किया जा रहा है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कल्याणावलेह का जो वर्णन मिलता है इसमें हरिद्रा, वच, कुष्ठ आदि हैं। इसे घृत के साथ मिश्रित कर सेवन किया जाता है। यह मूकता को दूर करता है तथा स्वर को मधुर बनाता है।

स्तनयोरपि मूले च रूग्भवेद् यदि वेगिनी।
निशाशम्बूकसहित चूर्णलेपो जयेद्रुजम्।।

—वै.भ.र.

उक्त श्लोक में कहा गया है कि हल्दी और शंख को पानी में पीसकर लेप करने से स्तनमूल की तीव्र पीड़ा शान्त हो जाती है। आजकल कैंसर के लिए हरिद्रा बहुत लाभकारी सिद्ध हुई है। उक्त श्लोक में भी यह तथ्य ध्वनित होता है। स्त्रियों को होने वाले स्तन कैंसर में इसे उपयोग में लाकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है। स्तन कैंसर ही क्यों, अन्यत्र होने वाले कैंसर में भी यह लाभप्रद है। कई पत्र पत्रिकाओं में यह तथ्य प्रकाशित हुआ है—

न्यूयार्क में बल्हला स्थित अमरीकन हैल्थ फाउंडेशन के भारतीय मूल के वैज्ञानिक बंडारू रेड्डी द्वारा किये गये अध्ययन और शोध के आधार पर कहा जा रहा है कि हल्दी खतरनाक बीमारी कैंसर के इलाज में सहायक हो सकती है। रेड्डी द्वारा किये गये शोध से पता चलता है कि हल्दी में पाए जाने वाले 'कर्क्यूमिन' नामक तत्व में संभवतः कैंसर रोधी गुण हैं। *—स्वास्थ्य जून 1998*

हरिद्रा को खाने में इस्तेमाल करने से कैंसर से भी बचा जा सकता है। राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद ने हल्दी के इस खास गुण का पता लगाया हैं हल्दी से रोग रोकने के गुणों का तो पता था लेकिन हल्दी के कैंसर निरोधी गुणों का अभी पता चला है।

—जनसत्ता दैनिक 27 जून 1990

हल्दी न सिर्फ एक मसाला ही है, बल्कि यह शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा को भी नियंत्रित करती है। हृदय की कई बीमारियों में भी यह असरदार भूमिका निभाती है। चिकित्सा विज्ञानी कमलाकृष्णा स्वामी के अनुसार हल्दी की अल्प मात्रा ही शरीर को कई रोगों से निजात दिलाती है। उनके अनुसार हल्दी की एक ग्राम खुराक व्यक्ति को कोलेस्ट्रोल से पैदा होने वाली जटिलताओं से मुक्ति दिला सकती है। यह शरीर के किसी भी अंग में ट्यूमर नहीं पनपने देने में भी अच्छी भूमिका निभा सकती है। *—आयुर्वेद धन्वन्तरि जन. 2004*

हल्दी में एक पीला रवेदार रंजक पदार्थ होता है जो एल्कोहल में पूरे तौर पर घुलकर पीले रंग का घोल बनाता है। इसमें कपूर की तरह गंधवाला 5 से 6 प्रतिशत उड़नशील तैल होता है। इनमें कोलेस्ट्रोल को घुलाने की प्रचुर क्षमता पाई गई है एवं कैंसर रोधी गुण पाया गया है। *—ईवनिंग पोस्ट 25 अप्रेल 2004*

हरिद्रा पित्तशामक एवं आमपाचन होने से ज्वरघ्न है। जीर्ण ज्वर में इसका प्रयोग विशेष किया जाता है। अशुद्ध जल के सेवन एवं जलग्रहण की विकृतिविधि से कई स्थों पर स्नायुकरोग बहुतायत से होता है। आज इस पर प्रायः विजय पाई गई है। इस रोग में भी हरिद्रा अच्छा

लाभ प्रदान करती है। वर्ष 1958-59 से 173-74 के मध्य आयुर्वेदीय अनुसंधान केन्द्र उदयपुर में किये गये स्नायुक आतुरों पर परीक्षित मुख्य भेषजों में हरिद्रा अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई—

	पूर्ण लाभ	सामान्य लाभ	अलाभ
1. हरिद्रा चूर्ण	103	3	—
2. विडंग चूर्ण	42	134	—
3. शतावरी चूर्ण	2	—	—
4. हिंग्वादि लेप	13	5	—

विविध व्रणों के पाचन, शोधन एवं रोपण हेतु इसे उपयोग में लाया जाता है। ग्रामीण जनता हरिद्रा को घी में पकाकर व्रणबन्धन कर लाभ प्राप्त करती रही है।

इसका नामकरण ही शरीर के वर्ण को ठीक करने के कारण किया गया है—"हरिं वर्णं द्राति संशोधयतीति हरिद्रा"। सौन्दर्य को उभारने में हल्दी का विशेष महत्व है। हल्दी और चन्दन आदि के लेप से सौन्दर्य वृद्धि होती है। रात्रि को सोने से पूर्व हल्दी का लेप लगाने तथा प्रातः उठकर कवोष्ण जल से मुँह धोने से चेहरा कान्तिमय, गौरवर्ण और सुकोमल बनता है। यही कारण है कि अनेक आयुर्वेदिक सौन्दर्य वर्धक लेपों एवं क्रीमों में हरिद्रा का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है। विवाह के समय इसे उबटन के रूप में उपयोग में लाया जाता है और दूल्हे-दुल्हन को धूप लगने से रोका जाता है। इसके लेप-उबटन के बाद धूप लगना ठीक नहीं है इससे वर्ण के निखारने में अभीप्सित लाभ नहीं मिलता हैं हरिद्रा का निशानाम होना शायद इसी ओर इंगित करता है। हरिद्रा के सूक्ष्म चूर्ण में एक-डेढ़ मास पर्यन्त रात-दिवस शयन करने से प्रसूता स्त्री का वर्ण स्वर्ण-केशर को भी पराजित करने वाला, उत्तम हो जाता है—

अध्यर्धमासमधिके रजसि रजन्या दिवानिशं सुप्ता।
प्रतिपद्यते प्रजाता जितकांचनकुंकुम रूपम्।।

—सि.भे.म.मा.

परिवार नियोजन हेतु भी इसकी उपादेयता प्रकट की गई है। एक विद्वान लेखक ने लोकाचार से इसका कैसा अद्भुत सामंजस्य बैठाया है—

"आर्ष पुरूषों ने जिस मैथुनाचार का उद्दात्तीकरण एंव नियोजन विवाह संस्कार द्वारा किया उसी के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले परिवार का भी नियोजन करने का विधान विवाह संस्कार के साथ ही साथ कर दिया था। विवाह के पूर्व ही लड़के और लड़की दोनों के हाथों में हल्दी की गांठ बांध दी जाती थी और 'हल्दी-हाथ' का संस्कार पाणिग्रहणसंस्कार के पूर्व कर दिया जाता था। 'हल्दी-हाथ' वाले दिन प्रत्येक माता का धर्म होता था कि वह कन्या के हाथ में हल्दी रखकर यह बता दे कि प्रत्येक मासिक धर्म के प्रारम्भ होने की तिथ से पाँच रोज तक हल्दी की केवल एक गांठ पानी में पीसकर बासी मुँह पी लिया करे ताकि अनैच्छिक संतति की प्राप्ति न हो सके। हल्दी को पानी में पीसकर ऐपन बनाया जाता था। इस ऐपन को 'हल्दी-हाथ' वाले दिन स्त्रियां अपनी पाँचों उंगलियों और हथेली में लगाकर लोगों की पीठ पर थापा लगाती थी सिर्फ यह सिद्ध करने के लिए कि परिवार केवल पाँच व्यक्तियों का ही होना चाहिए-तीन बच्चे और दो अपने स्वयं। मायके से विदा होते समय लड़की ऐपन की थाली हाथ में ले जाती थी। ससुराल में घुसने से पूर्व लज्जा की पुतली नई वधू सीमित परिवार रखने की स्वीकृति गृह के प्रवेश द्वार पर अपनी पांच अंगुलियों ऐपन लगाकर अंकित कर देती थी।

—डा. श्री पन्नालाल गर्ग (धन्व. मई 1974)

अन्तःकर्ण में जो नाड़ीव्रण हो जाता है जिसे कर्णनाड़ी कहा जाता है उसमें हरिद्रादि सिद्ध तैल लाभप्रद होता है—

निशागन्धपलेपक्वं कटुतैलं पलाष्टकम्।
धुस्तूरपत्रजरसे कर्ण नाड़ीजिदुत्तमम्।। —भै.र.

अन्त में इस शोध का उल्लेख कर इस प्रकरण को यही समाप्त करता हूँ—हल्दी ने एड्स से पीड़ित रोगियों के लिए आशा का नया संचार किया है। वैज्ञानिकों ने हल्दी के रसायन कुरकुमिन में एड्स विषाणु (एच. आई. वी.) के इन्टीग्रेट एन्जाइम को रोधित करने की क्षमता पायी है। इससे भविष्य में एड्स रोग की चिकित्सा-हेतु नवीन औषधि के निर्माण की सम्भावना प्रलब हो गयी है।"

—(सचित्र आयुर्वेद दिस. 2000)

डा. श्री सुनील कुमार पाण्डेय

यूनानी मतानुसार—यूनानीमत से हल्दी की प्रकृति तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इनके मतानुसार हल्दी कड़वी, शान्तिदायक, मूत्रल और फोड़े को पकाने वाली है। यह यकृत् की विकृति तथा पीलिया में भी लाभ पहुंचाती है।

डॉक्टरी मतानुसार—डा. देसाई के मत से जिन रोगों में श्लेष्म त्वचा से कफ अधिक मात्रा में निकलने लगता है उन रोगों में तथा प्रमेह प्रदर इत्यादि रोगों में हल्दी अच्छा काम देती है। हल्दी श्लेष्म त्वचा में रूक्षता उत्पन्न करके कफ का पैदा होना कम कर देती है। सर्दी में जैसे बच फायदा करती है। वैसे ही हल्दी भी करती है। सर्दी लग जाने पर इसकी धूनी दी जाती है और हल्दी को दूध में औटा कर गुड़ मिलाकर पिलाया जाता है। इसके सेवन से नाक के द्वारा सर्दी बहकर मस्तक का भार हल्का हो जाता है।

हल्दी में एण्टी हिस्टेमिनिक प्रभाव (एलर्जी प्रतिक्रिया का शमन तथा पिट्चरी एड्रीनल एक्सिस को प्रभावित करने वाले गुण हैं। हल्दी मानसिक उत्तेजना को घटाती है। उत्तेजना का कारण है स्ट्रेस इफेक्ट के कारण 'कांटिसाल' नामक रस का स्राव गुर्दे के ऊपर स्थिति एड्रीनल ग्रन्थि से उत्सर्जित इस रस को हल्दी तुरन्त रक्त में कम कर देती है। चोट के स्थान पर लगायी गयी हरिद्रा अपने जीवाणुनाशक गुणों के कारण ग्राम पाजिटिव एवं ग्राम नेगेटिव रोगाणुओं से मोर्चा लेकर उन्हें समाप्त कर देती है। इससे सूजन भी उतरती है तथा संक्रमण भी नहीं पनप पाता। वैज्ञानिक अन्वेषण यह सिद्ध करते हैं कि हल्दी में जो रसायन पाये जाते हैं वे शोथ को दूर करते हैं। इसका यह प्रभाव उतना ही समर्थ एवं बलशाली है, जितना कि एलोपैथी की खोजी गयी "हाइड्रोक्रासिमोन" नामक औषधि का। हल्दी के प्रायोगिक यह सिद्ध करते हैं। कि यह रक्त में ग्लूकोज का स्तर कम करती है ताकि प्रवेश पाये रोगाणुओं को पनपने का मौका न मिले। ग्लूकोज टालरेन्स के बढ़ने से जीवनी शक्ति भी बढ़ती है एवं श्वेतकणों तथा सुरक्षा के लिए उत्तरदायी जीवकोषों को चोट के स्थान पर पहुँचने में कोई परेशानी नहीं होती। इस प्रकार हल्दी में प्रतिशोथ (Anti-Inflammatory), प्रति-संधिवातीय (Anti-Rheumatic), प्रति जीवाणु, प्रति-विषाणु, प्रति-जारणकारी (Antioxidative) प्रति यकृत् विषालुता (Anti-Hepatotoic), वायुहर (Aarminative), मूत्रवर्धक (Diuretic) आदि बहुत से गुणधर्म पाये जाते हैं।

अभी तक ऐसा कोई तथ्य सामने नहीं आया है, जिससे यह प्रतीत हो कि हरिद्रा का मानव स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर पड़ा है। जानवरों पर हल्दी के तीक्ष्ण विषालुता का अध्ययन करने पर पाया गया कि अधिक मात्रा में देने पर भी इसका कोई विषालु प्रभाव नहीं हुआ। कुरकुमिन में विस्तृत रंगावलि जैविक सक्रियता (Broad Spectrum Biological Activity) भी पाई गई।

विश्व के कई देशों ने औषधि तथा खाद्य पदार्थों में संश्लेषित रंगों के इस्तेमाल पर रोक लगा दी है। फलस्वरूप प्राकृतिक रंग के रूप में हल्दी की मांग बढ़ती जा रही है।

हल्दी का प्रयोग प्रमुख औषधियों के निर्माण में किया जाता है। इनमें टोनोलिवर, अटीरेलेक्स, जेरिफोर्ट, हीयलेन, हर्बोसल्फ तथा बी.एच. पिल्स प्रमुख हैं।

सामान्य बाह्य प्रयोग—

1. कील-मुहांसे—(क) आधा चम्मच हल्दी चूर्ण, एक चम्मच बेसन, एक चम्मच सन्तरे के छिलकों का चूर्ण, एक चम्मच नारियल के तैल को लेकर उसमें यथावश्यक गुलाब जल मिलाकर चेहरे पर मलें। इसे चेहरे पर कुछ देर रहने दें।

(ख) आधा चम्मच हल्दीचूर्ण, एक चम्मच चन्दन चूरा, एक चम्मच मुलतानी मिट्टी चूर्ण को गुलाब जल मिलाकर चेहरे पर मलें 15-20 मिनट बाद चेहरे को धोवें।

(ग) 125 मि0ग्रा0 छिले हुये जौ लेकर उन्हें दूध में उबालकर फिर सुखाकर रख छोड़ें। उसमें से थोड़े से जौ लेकर उसमें थोड़ी हल्दी मिलाकर दोनों को पीसकर जल मिला मुंहासों पर लेप करें, लाभ होगा।

(घ) हल्दी, सोनापाठा, नेत्रबाला और इन्द्र जौ को पानी में पीसकर लेप लगावें।

(ङ) हल्दी, मंजीठ, सरसों और गेरू को बकरी के दूध में पीसकर लगावें।

(च) हल्दी, लोध्र, जामुन की गुठली और माजूफल को पानी में पीस लगावें।

(छ) हल्दी के चूर्ण को शहद और नींबू के रस में मिलाकर मुख पर लगावें।

(ज) हल्दी, तुलसी के सूखे पत्ते, जायफल और आम की गुठली की गिरी समान मात्रा में लेकर दूध में पीसकर मुख पर लेप करें।

(झ) हल्दी और तिलों को पीसकर लगाने से कील-मुंहासे, दाग-धब्बे, झाईयाँ आदि दूर होती हैं।

2. वर्ण निखारने हेतु—(क) हल्दी जल में पीसकर भैंस के गोबर के बीच में रखें और उसे सुखा लें। पश्चात् मृदु अग्नि से पकावें, इसका उबटन करने से शरीर चन्द्रमा की किरणों के समान अत्यन्त सुन्दर तथा कान्तिमान हो जाता है।

(ख) हल्दी, कूठ, सरसों, तिल और दारू हल्दी इनको जल में पीसकर शरीर पर लेप कर फिर स्नान करने से शरीर तपे हुये स्वर्ण के समान अत्यन्त सुन्दर गौरवर्ण तथा अत्यन्त कांतिमान हो जाता है।

(ग) हल्दी, दारूहल्दी, सफेद सरसों, मंजीठ तथा गेरू के चूर्ण को घी और बकरी के दुग्ध में मिलाकर मुख पर लेप लगाने से वर्ण में निखार आकर कान्तिमान् हो जाता है।

(घ) हल्दी से चौगुना बेसन लेकर इसे जैतून के तैल में मिलाकर उबटन करें तथा साबुन न लगावें। गौरवर्ण हेतु प्रशस्त उपाय है।

3. न्यच्छ-व्यंग (मुख पर चोकलेट के रंग के धब्बे)—हल्दी, दारूहल्दी, मंजीठ और गैरिक को दूध में पीस कर लेप करें। इससे नीलिका (आंखों के आस-पास या अन्यत्र काले धब्बे) भी मिटते हैं।

4. खाज-खुजली—(क) हल्दी, कसौंदी, बाकुची, चकवड़ और सेंधानमक इन को दही के पानी में या कांजी के साथ पीसकर लेप करने से खुजली नष्ट हो जाती है।

(ख) हल्दी, थूहर के पत्ते, अमलतास के पत्ते, मकोय के पत्ते, दारूहल्दी और पवांड के बीज को तक्र में पीस सरसों का तैल मिलाकर उबटन करने से पामा आदि चर्म रोग नष्ट होते हैं।

(ग) कच्ची हल्दी और दूब समान लेकर पीस उबटन करना चाहिये।

5. अर्कविष—हल्दी और तिलों को बकरी के दूध में महीन पीस लेप करें। आकड़े का दूध लगने से विषलक्षण होने लगे तो उपयोग में लावे।

6. भ्रम (चक्कर आना)—अधिक चक्कर आने पर हल्दी को पानी में पीसकर लेप करना चाहिये।

7. विपादिका (बिवाई)—सरसों का तैल लगाकर बिवाइयों पर हल्दी चूर्ण लगावें लाभ होगा।

8. मूषकविष—हल्दी, मंजीठ, धमासा और सैन्धव लवण को पानी के साथ पीसकर लेप करें।

9. लूताविष—हल्दी, दारूहल्दी, मंजीठ और नागकेशर समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बना ठन्ड़े पानी में पीस लेप करें।

10. जलौका दंश—हरिद्रा स्वरस या चूर्ण लगावें।

11. शीतपित्त—(क) हल्दी और सोना गेरू को जल में पीसकर लेप करें।

(ख) हल्दी तथा दूब को पीसकर लेप करें। इस लेप से दाद-खाज में भी लाभ होता है। यह लेप जूँ-लीख आदि बाह्य कृमियों को भी नष्ट करता है।

(ग) हल्दी, दारूहल्दी, कूठ, निम्बपत्र, पटोलपत्र समभाग लेकर गर्मजल के संयोग से पीसकर लेप करें।

12. मुखपाक—हल्दी को गुनगुने पानी में घोलकर कुल्ले करें और हल्दी चूर्ण को छालों पर लगावें।

13. उदर्द—(क) हरिद्रा को कटुतैल में मिलाकर लेप करें।

(ख) हल्दी, अजवायन, गुड़ और मोम की शरीर पर यथाविधि धूनी दें।

(ग) हल्दी, असगंध और श्वेत तुलसी को तक्र में मिला लेप करें।

14. योनिकण्डू—हल्दी, विडंग, सोनागेरू, कत्था, रसोंत और आम के बीज की गिरी को जल में पीसंकर लेप करें।

15. अण्डकोषों की सूजन—हल्दी और ऊँट के मींगनों को पानी में औटाकर गाढ़ा लेप करें।

16. कर्णरोग—(क) हल्दी की गांठ एक, नीम पत्ती का रस 15 मि.लि. को 100 मि.लि. सरसों के तैल में पकाकर ठण्डा होने पर कान में डालें इससे कान में कृमि नष्ट होते हैं।

(ख) हल्दी और फिटकरी का फूला मिलाकर कान में डालने से कान से निकलने वाला पूय (मवाद) बंद होता है।

17. व्रण—(क) हल्दी, दारूहल्दी, रसोंत, मंजीठ, नीम की पत्ती, निशोथ चव्य और दन्तीमूल का कल्क लेप करने से व्रण-नाड़ीव्रण ठीक होते हैं।

(ख) हल्दी, कूठ, तिल तथा तूतिया को मधु में मिलाकर लेप करने से व्रण, नाड़ीव्रण, भगन्दर ठीक होते हैं।

(ग) हल्दी और कत्थे को पीसकर शीतला के व्रण पर भुरकते रहने से वे जल्दी भर जाते हैं।

(घ) पिसी हुई हल्दी घी या तैल में मिलाकर गर्म कर उसमें रूई भिगो कर घाव पर पट्टी बांधने से घाव शीघ्र भरता है।

18. नेत्ररोग—(क) एक भाग हल्दी को 10 भाग जल में पकाकर छानकर आंखों में डालने से अभिष्यंद में लाभ होता है।

(ख) हल्दी, दारूहल्दी, रसोंत, चमेली और निम्ब पत्र समान मात्रा में लेकर गोबर के रस में पीसकर वर्तिका बनाकर नेत्रों में लगाने से रतोंधी मिटती है।

(ग) हल्दी को घी में भूनकर पलकों पर लेप करें शोथ, लालिमा आदि दूर होते हैं।

19. यकृत्प्लीहा वृद्धि—हल्दी को गोमूत्र में पीसकर इनके स्थान पर लेप करें।

20. हृदयशूल—हल्दी, अलसी, सेंधानमक, एरण्डतैल का जल के साथ हलुआ बनाकर हृदय प्रदेश पर लेप करें इससे दर्द कम होगा।

21. शिरःशूल—हल्दी, कायफल, छोटी इलायची बराबर लेकर चूर्ण बनाकर 100-200 मि. ग्राम लेकर इसका नस्य लेने से सिर का दर्द दूर होता है।

22. अर्श—हल्दी को पानी में पीसकर या थूहर के दूध में मिलाकर गुदा पर बांधने से अर्श, भगन्दर में लाभ होता है।

(ख) हल्दी, कड़वी तुरई और सेंधानमक इन्हें समान लेकर चूर्ण कर गोमूत्र में मिलाकर लेप करें। इसमें कुछ थूहर का दूध मिला देने से अधिक लाभ होता है।

23. श्वास-हिक्का—हरिद्रा, दारू हरिद्रा और मैनसिल इनको समान भाग लेकर जल में पीस छोटी-छोटी बत्तियां बना लें तथा आग से जला कर बीड़ी की तरह इसका धूम पीवें। इससे कफ बाहर निकल जाता है और श्वास में लाभ होता है। यह हिक्का में भी हितकारी है। केवल हरिद्राधूमपान भी हितकर है।

24. वृश्चिकदंश—(क) हल्दी को जल के साथ पीसकर लेप करें।

(ख) हरिद्रा चूर्ण को आग पर डालकर उसका धुंआ दंश स्थान पर लगाने से विष का प्रभाव कम होता है।

(ग) चिलम में रखकर चूर्ण का धूमपान करने से भी विष प्रभाव कम होता है।

25. आघात (चोट-मोच)—(क) हल्दी, पत्थर, का जमाया हुआ चूना और पुराना गुड़ बराबर भाग लेकर इन्हें घोटकर चोट लगे स्थान पर पतला लेप कर दें। इसे बारह घन्टे के अन्दर गरम पानी में धोकर दूसरा लेप करना चाहिये। इससे सूजन और दर्द कम होता है।

(ख) हल्दी, फिटकरी, सज्जीक्षार और सेंधानमक बराबर भाग लेकर चूर्ण कर मोटे वस्त्र में रख पोटली बना लें। एक कटोरे में 125 मि.लि. सरसों तैल डाल इसे गर्म करें। जब तैल गर्म हो जाय तब पोटली को तैल में डुबाकर ऊपर उठा लें और तैल टपक जाने पर चोट की जगह उससे सुहाता-सुहाता सेक करें। ठन्डी हो जाने पर पुनः पोटली को तैल में गरमा लें। इसी प्रकार दिन में तीन चार बार आधा-आधा घन्टे सेक करने से भीतरी चोट की पीड़ा शीघ्र दूर होती है।

(ग) हल्दी, प्याज, एलवा और कालीजीरी को जल के साथ पीसकर सरसों का तैल मिलाकर लेप करना चोट-मोच में लाभप्रद है।

(घ) हल्दी और सेंधानमक को गर्म पानी में उबालकर इस पानी में कपड़ा डुबो डुबोकर पहले चोट स्थान पर सेक करें फिर हल्दी सेंधानमक और गेंहू का आटा लेकर इसका गाय के घी में हलवा बनाकर चोट के स्थान पर बांध दें।

26. दन्तरोग—(क) हल्दी और नमक को पीसकर सरसों के तैल में मिलाकर मंजन करने से दांत मजबूत होते हैं। यह पायरिया में ठीक है।

(ख) हल्दी को भून कर बारीक पीसकर मलने से दांत का दर्द दूर होता है।

(ग) हल्दी, दारूहल्दी, कूठ, नागरमोथा, पठानी लोध इन्हें समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर मंजन करने से दन्तगत रक्तस्राव बन्द हो जाता है और दांत के दर्द में आराम मिलता है।

(घ) हल्दी और सेंधानमक बारीक पीसकर मंजन करने से दांतों का पीलापन दूर होता है।

27. श्वित्र—हल्दी और बाकुची को नींबू के रस में घोटकर छोटे बेर के समान गोलियां बना लें। इन गोलियों में से एक गोली लेकर इसे जल में घिसकर सफेद दागों पर लगावें।

आभ्यन्तर प्रयोग—

1. प्रसव होने पर—(क) प्रसव के बाद हरिद्रा चूर्ण को गोदुग्ध और मिश्री के साथ सेवन करने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इसके साथ-साथ बच्चा दानी शुद्ध हो जाती है और ताकत बढ़ती है तथा माता टिटनेस आदि रोगों से दूर रहती है।

(ख) हल्दी चूर्ण और फुलाई हुई फिटकरी को समभाग लेकर मिश्रित कर 5-5 ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार देते रहने से टिटेनिस होने का भय नहीं रहता तथा अन्य भी उपर्युक्त लाभ मिलते हैं।

(ग) हल्दी का चूर्ण 5-5 ग्राम, पुराना गुड़ 12

ग्राम, घी 20 ग्राम और 12 ग्राम गेंहूँ के चोकर को भिगोकर निचोड़ा हुआ 125 मि0लि0 जल इन्हें मिलाकर पकायें। थोड़ा गाढ़ा हो जाने पर उतारकर कुछ गरम रहे तब ही प्रसूता को सुबह पिलायें। यह हरीरा एक मास तक खिलावें। इससे अरूचि, मन्दाग्नि, सूजन, तीनों दोषों के विकार मिटते हैं।

(घ) हल्दी, अजवायन, सोंठ का चूर्ण को, गेंहूँ के मोटे आटे का घी गुड़ के मेल से बनाये गये हलुए में मिलाकर दोनों समय प्रसूता को खिलावें एवं गर्म दूध पिलावें। इससे उत्तम लाभ होता है।

2. प्रमेह—(क) हरिद्रा, शीतल चीनी, मोचरस और आंवला चूर्ण समान मात्रा में लेकर 4-5 ग्राम सेवन करने से प्रमेह विशेषत: स्वप्नप्रमेह में लाभ होता है।

(ख) हल्दी के चूर्ण को शहद और आंवले रस में मिलाकर प्रात: काल सेवन करने से सभी प्रमेहों में लाभ होता है। मात्र चूर्ण को मधु के साथ खाया जा सकता है। इसे विद्यावागीश रस कहते हैं।

(ग) हल्दी, नागरमोथा, देवदारू और त्रिफला का क्वाथ नियमित पीने से कफजन्य प्रमेह में रोगी को आराम मिलता है।

(घ) गीली ताजा हल्दी के रस में शहद मिलाकर सेवन करना भी हितकर कहा गया है।

(ङ) हल्दी का पहले कल्क (लुगदी) बनावें। आर्द्र हल्दी को तो पीसकर कल्क तैयार किया जा सकता है किन्तु शुष्क हल्दी का कल्क पानी के संयोग से तैयार किया जाना चाहिये। यह कल्क 5 ग्राम सेवन कर ऊपर त्रिफला, दारूहल्दी, इन्द्रायण और नागरमोथा का क्वाथ बनाकर पीवें। इससे सभी प्रकार के प्रमेहों का शमन होता है।

(च) हल्दी, दारूहल्दी, तगर और विडंग का क्वाथ कफजप्रमेह विशेषत: सान्द्रमेह में लाभप्रद है।

(छ) हल्दी, नीम की छाल, अर्जुन की छाल, अम्बाड़ा और कमल का क्वाथ पित्तजप्रमेह में हितकारी है।

(ज) हल्दी, हरड़, मेथीबीज और आंवले का बारीक चूर्ण बनाकर 4-5 ग्राम नित्य सेवन करें। यह मधुमेह में भी उपयोगी है। हल्दी 25 ग्राम अन्य द्रव्य 50-50 ग्राम लेकर चूर्ण बनावें।

(झ) हल्दी 500 मि0ग्रा0, धनिया, तालमखाना 1-1 ग्राम और त्रिफला 2 ग्राम इनका चूर्ण नित्य सेवन करना चाहिये।

(ञ) हरिद्रा, गुडूचीसत्व और पिप्पली के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें। अकेले हल्दी का चूर्ण भी दूध के साथ (मीठा बिना) लेना हितकारी है।

(ट) हरिद्रा, कालेतिल एक-एक ग्राम व गुड़ 2 गाम को उष्णजल से उदक में ही लें।

3. कनेर का विष—हल्दी को दूध में पीस उसमें मिश्री मिलाकर पिलावें।

4. अश्मरी (पथरी)—हरिद्रा चूर्ण में दुगना गुड़ मिलाकर उसमें से एक-एक ग्राम की मात्रा कांजी के साथ सेवन करावें। हरिद्रा-गुड़ को छाछ (तक्र) के साथ भी सेवन किया जा सकता है।

5. रक्तविकार—(क) हरिद्रा, मंजीठ, छोटी हरड़, आंवला के समभाग चूर्ण में बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करें।

(ख) हल्दी का चूर्ण 2 ग्राम को 5-6 ग्राम शहद में मिलाकर दिन में तीन बार दें। इससे कुष्ठ आदि रक्तविकारों में लाभ होता है।

(ग) हल्दी, कुटकी, चिरायता और मंजीठ का क्वाथ बनाकर उसमें शक्कर मिलाकर सेवन करने से भी रक्तविकरों में लाभ होता है।

6. त्वचा रोग—(क) 3 ग्राम हल्दी को 125 मि.

लि. गोमूत्र में मिलाकर पीने से कण्डू-पामा का नाश होता है।

(ख) हल्दी और नीम के पत्र को जल के साथ पीसकर कुछ दिन सेवन करें।

(ग) कच्चे हल्दी को पानी में पीसकर गाय के दूध में मिलाकर कुछ दिन पीने से चर्मरोग नष्ट होते हैं।

7. आमातिसार—हल्दी, दारूहल्दी, पृश्निपर्णी, इन्द्रजौ और मुलेठी का क्वाथ बनाकर सेवन करने से आमातिसार में लाभ होता है।

8. आमवात—हल्दी, कुटज छाल, आंवला और चोवचीनी समभाग लेकर चूर्ण बनाकर 4-4 ग्राम सुबह-शाम गर्म जल के साथ सेवन करें।

9. प्लीहावृद्धि—हरिद्रा चूर्ण 2-3 ग्राम को घीकुमार स्वरस 40 मि.लि. के साथ सेवन कराने से प्लीहावृद्धि और कण्ठमाला नष्ट होती है। इसे कालानमक के साथ मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है।

10. श्लीपद—हरिद्रा चूर्ण को गुड़ और गोमूत्र के साथ सेवन करना चाहिये। यह कुष्ठ में भी हितकारी है।

11. शीतपित्त—(क) 200 ग्राम हल्दी के टुकड़ों को 50 ग्राम घृत में भूनकर बारीक चूर्ण कर लें। दो-तीन ग्राम चूर्ण जल से 2-3 बार दें। अनूर्जा (एलर्जी) से उत्पन्न उपद्रव भी शान्त होते हैं।

(ख) हरिद्रा और अजवायन के चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करें।

(ग) हल्दी, गिलोय, नीम की अन्तर छाल और धनिया का क्वाथ बना कर रोगी को पिलावें। कई धनिया के स्थान पर यवासा मिलाते हैं।

(घ) हल्दी का चूर्ण 10 ग्राम, गेंहूं का आटा 25 ग्राम को 15-20 ग्राम घी में सेककर 125 मि.लि. गर्म जल एवं 25 ग्राम चीनी डालकर हलुआ बना लें। ठन्डा होने पर गाय के दूध के साथ प्रातःकाल एक सप्ताह तक खावें। चोट लगी होने पर यह हलुआ गुड़ में बनाकर गर्म ही खावें।

12. कृमिरोग—(क) कच्ची हल्दी 15-20 ग्राम को नमक के साथ खाने से कृमि शीघ्र नष्ट होते हैं। हल्दी के रस में मधु मिलाकर सेवन करना भी लाभप्रद है।

(ख) हल्दी 500 मि.ग्रा. हींग 125 मि.ग्रा, डीकामाली 250 मि.0ग्रा खुरासानी अजवायन चूर्ण एक ग्राम को चूर्ण बनाकर सेवन करने से कृमि मरते हैं।

(ग) हल्दी के चूर्ण को नारियल की गिरी के साथ खाने से निरन्तर 8 दिनों में कृमियों का सफाया हो जाता है।

(घ) हल्दी और गुड़ खाकर ऊपर विडंग का क्वाथ पीना लाभदायक है।

13. श्वेतप्रदर—पतला स्राव योनि से होने पर हल्दी रसौत को समान मात्रा में लेकर 2-3 ग्राम दें तथा गाढ़ा सफेद श्लेष्मा स्रावित होने पर हरिद्रा को गूगल के साथ लेकर 2-3 ग्राम दिन में 2 बार दें।

14. स्वरभेद—हरिद्रा चूर्ण को गर्म दूध में डालकर पीने से स्वरभेद दूर होकर लाभ होता है।

15. तुण्डीकेरी (टान्सिलवृद्धि)—(क) हल्दी, वच, कूठ, पीपर, सोंठ, जीरा, अजवायन, मुलेठी तथा सेंधानमक के बारीक चूर्ण को शहद में मिला गले में लगावें।

(ख) हल्दी, रसौंत और बहेड़ा चूर्ण मिलाकर सेवन करें।

16. मुखपाक—रात में सोते समय एक गिलास दूध में आधा चम्मच पिसी हल्दी और एक चम्मच घृत मिलाकर 8-10 दिनों तक सेवन करने से मुखपाक में लाभ हो जाता है।

17. हिक्का—नमक के पानी में 8 दिन भीगी हुई

हरिद्रा को भाड़ में भुनाकर इसके चूर्ण 2 ग्राम को 20 ग्राम शहद में मिलाकर चटावें। इससे हिक्का, श्वास कास मिटते हैं।

18. विष प्रकोप—मन्द विष के सेवन से विकृति को नष्ट करने हेतु 2-2 ग्राम हरिद्रा चूर्ण दूध के साथ सुबह-शाम सेवन करना चाहिये। इससे लीनविष नष्ट होता है।

19. कास—(क) हरिद्रा का बारीक चूर्ण 20 ग्राम, सेंधानमक बारीक पिसा हुआ 5 ग्राम को 15 ग्राम गुड़ में मिलाकर 500 मि.ग्रा. की गोलियां बना चूसें। दिन में 4-5 बार चूसना आवश्यक है। ठन्डा पानी न पीवें।

(ख) हल्दी, बिहीदाना, उन्नाव और काकड़ासिंगी समान लें क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर पिलावें।

(ग) हल्दी के टुकड़ों को अरडूसे के रस में भिगोकर फिर सुखाकर चूर्ण बना इस चूर्ण को दूध में मलाई के साथ लेने से सूखी खांसी शान्त होती है।

(घ) धतूरे के फल में से थोड़े बीज निकाल उसमें नमक और हरिद्रा के चूर्ण को भर कर कपड़मिट्टी करके कण्डों की अग्नि से उसकी भस्म बना लें। इस भस्म का सेवन शहद से करने से कास, श्वास, कफ का उग्रवेग शान्त होता है।

(ङ) बकरी के गर्म दूध में हरिद्रा चूर्ण और कालीमिर्च का चूर्ण मिला कर सेवन करने से खांसी-जुकाम में फायदा होता है।

(च) पान में (ताम्बूल में) हरिद्रा चूर्ण और यवक्षार एक-एक ग्राम रखकर धीरे-धीरे चबाकर चूसते रहने से भी खांसी में लाभ होता है।

(छ) आधी चम्मच हल्दी चूर्ण में एक चम्मच बाजरे का आटा मिला सेवन कर रात में बिना जल पिए सो जाए, खांसी में लाभ होगा।

20. श्वास—(क) हरिद्रा चूर्ण 3 ग्राम, सोमलता चूर्ण 2 ग्राम, मिश्री 5 ग्राम (पीसकर) मिश्रण को गरम जल से सेवन करने से लाभ होता है।

(ख) हल्दी, वासा, धनिया, गिलोय, भारंगी, पीपल, सोंठ और छोटी कटेरी एक-एक भाग लेकर उनका 16 गुने जल में अर्धावशिष्ट क्वाथ तैयार कर उसमें कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से श्वास में अच्छा लाभ होता है।

(ग) हल्दी, हींग और कालीमिर्च बराबर पीसकर एक ग्राम चूर्ण को तुलसी स्वरस एवं मधु के साथ सेवन करावें।

(घ) अर्धदग्ध हरिद्रा को एक शराब से शीघ्र ढक दें। इस हरिद्रा के कोयले की भस्म को एक-दो ग्राम प्रमाण में लेकर शहद के साथ देने से श्वास और कास पराजित हो जाते हैं।

(ङ) हल्दी, कालीमिर्च, मुनक्का, गुड़, रास्ना, पीपल और कचूर के चूर्ण को कड़वे तैल के साथ चाटने से प्राणघातक श्वास का भी शमन होता है। मात्रा-गुड़ 5 ग्राम अन्य द्रव्यों का चूर्ण 5 ग्राम और सरसों का तैल 5 ग्राम तीनों का मिश्रण कर सेवन करें। तीन सप्ताह लें।

(च) भुनी हुई हल्दी और त्रिकटु चूर्ण को अदरख स्वरस और मधु के साथ मिश्रित कर सेवन करने से श्वास कास प्रतिश्याय में लाभ होता है।

21. प्रतिश्याय—(क) घी में भुना हुआ हल्दी का चूर्ण, बकरी के मूत्र से भावित बहेड़ा चूर्ण और मुलेठी चूर्ण को 3-4 ग्राम की मात्रा में दिन में 2-3 बार शहद या वासा-कटेरी क्वाथ से सेवन करने से प्रतिश्याय एवं प्रतिश्याय जनित कास-श्वास में लाभ होता है।

(ख) दूध में हल्दी मिलाकर गर्म करें फिर उसे नीचे उतारकर उसमें गुड़ मिलाकर सेवन करें। यदि रोग पुराना हो गया हो तो उसमें घी भी मिला पकाकर सेवन करें।

(ग) हरिद्रा की गांठ को चूने के पानी में भिगो दें। प्रति दिन चूने का पानी बदलते रहें। एक सप्ताह बाद

इसका चूर्ण बनाकर यह चूर्ण 1-2 ग्राम गरम जल से सेवन करें। जीर्ण प्रतिश्याय में लाभप्रद है।

(घ) हल्दी एक चम्मच, आधा चम्मच अजवायन, 5 कालीमिर्च और एकआध गांठ सोंठ को पानी में उबालकर उसमें 50 ग्राम गुड़ डालकर एक गिलास पानी का आधा गिलास पानी रह जाने पर गर्म-गर्म ही पीवें। यह लाभ करेगा।

22. वातरोग—(क) हल्दी चूर्ण 2 ग्राम, सोंठ चूर्ण एक ग्राम और अश्वगन्धा चूर्ण 3 ग्राम को गर्म दूध या गर्म पानी से दें। इससे पैरों में होने वाला दर्द (सणफें चलना) मिटता है।

(ख) हल्दी, कालीमिर्च, पोकरमूल, फुलाई हुई फिटकरी (शुभ्राभस्म) और मिश्री समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर रखें। एक चम्मच चूर्ण (3-4 ग्राम) सेवन कर आधा घन्टा बाद गर्म जल पीवें। इससे पेशीशूल मिटता है।

23. जीर्ण ज्वर—हल्दी और पिप्पली के चूर्ण को गिलोय के स्वरस के साथ सेवन कराना जीर्ण ज्वर में हितावह है।

24. रोमान्तिका (खसरा)—हल्दी और आंवले के चूर्ण को हल्दी और दारूहल्दी के क्वाथ के साथ सेवन कराना लाभप्रद है।

25. हैजा—एक चम्मच हल्दी, एक चम्मच शक्कर खाने से हैजा में लाभ होता है। इसे थोड़ी-थोड़ी देर में सेवन करते रहना अधिक हितकर है।

26. अण्डकोषों की सूजन—हरिद्रा चूर्ण, पुनर्नवा चूर्ण को अदरख के रस के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

27. उष्णवात (सुजाक)—सुजाक के रोगी को हल्दी और आंवले का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये। इससे वेदनायुक्त बार-बार पेशाब का आना ठीक होता है।

28. स्तन्य दौर्गन्ध्य—जिस स्त्री के दूध में दुर्गन्ध आती हो उसे हल्दी, वचा और त्रिफला चूर्ण सममात्रा में लेकर 3-4 ग्राम खिलावें और चन्दन, उशीर और अनन्तमूल का लेप करावें।

29. तृष्णा—हल्दी के क्वाथ में मिश्री और मधु मिलाकर पीने से कफज तृष्णा मिटती है।

30. पाण्डु कामला—(क) हल्दी, मुनक्का, मंजीठ, बला की जड़, लोध्र, लौह भस्म और गुड़ से तैयार यह गौड़ अरिष्ट पाण्डु में हितकर है।

(ख) हल्दी, दारूहल्दी, त्रिफला के चूर्ण को घृत-मधु में मिलाकर सेवन करने से कामला दूर होता है।

(ग) हल्दी, हरड़ और लौह भस्म बराबर लेकर मधु और घी मिला कर सेवन करने से कामला ठीक होता है।

(घ) हल्दी, आमला, त्रिकटु और लौह भस्म समान भाग लेकर इसमें घी, शहद और शर्करा मिलाकर सेवन करना कामला में हितकर है।

(ङ) हल्दी चूर्ण 3 ग्राम को 60 ग्राम दही में मिलाकर सेवन करने से कामला ठीक होता है। भोजन में भी दही-भात या मट्ठा भात सेवन करना चाहिये।

31. आघात (भीतरी चोट)—(क) हल्दी, गुड़ और दूध मिलाकर गर्म कर पीने से लाभ होता है।

(ख) गेंहू के सिके हुये आटे में हल्दी गुड़ मिलाकर डालकर हलुआ बनाकर खिलाना भी चोट आदि के रोग के लिए लाभदायक है। इससे खून का जमाव बिखरता है।

32. सन्तति निरोध हेतु—(क) हल्दी का चूर्ण एक ग्राम जल के साथ ऋतु काल में तथा मासिक धर्म बन्द हो जाने के बाद तीन दिनों तक सेवन करने से गर्भधारण की संभावना उस मास भर नहीं रहती।

(ख) हल्दी, नागकेशर और पीपल समान मात्रा में

लेकर 4-5 ग्राम को शीतल जल के साथ मासिक धर्म के दिनों से लेकर निरन्तर 6-7 दिन सेवन करना भी सन्तति निरोध हेतु उपयुक्त है।

(ग) मासिक धर्म के आरम्भ होने की तिथि से पांच रोज तक हल्दी की एक गांठ को पान में पीसकर नित्य बासी मुंह पी लिया करने से अनैच्छिक सन्तति प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

33. बालकों के रोग—(क) हल्दी का चूने के पानी में आठ दिनों तक भिगोकर फिर ताजा चूने के पानी के साथ पीसकर 125 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। इन गोलियों को दिन में तीन बार सेवन कराने से हड्डी मजबूत होकर सूखा रोग मिटता है।

(ख) हल्दी, दारूहल्दी, मुलेठी, कटेली और इन्द्र जौ समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनावें। यह क्वाथ बालकों के ज्वरातिसार और स्तन्यदोष को समाप्त करता है।

विशेष प्रयोग (विविध कल्प)—

क्वाथ—हल्दी, नागरमोथा, चिरायता, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की छाल, वासा, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, भारंगी, कुटकी, सोंठ, पीपल, पटोल, पित्तपापड़ा, काकड़ा सिंगी, देवदारू, गन्धतृण, जवासा, बला, बेल की छाल, कुलथी, कायफल, कुड़े की छाल और निसोत एक-एक भाग और रास्ना 2 भाग लेकर जौकुट कर लें। इसमें से 20 ग्राम को 8 गुने पानी में पकावें चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर इसमें त्रिकटु चूर्ण मिलाकर पिलाने से सन्निपात ज्वर दूर होता है।—यो.चि.

लौह—हल्दी, दारूहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी इनका चूर्ण और लौह भस्म सभी समान मात्रा में लेकर खरल कर रखें। एक-एक ग्राम को घृत और मधु में मिला कर चाटने से पाण्डु-कामला दूर होता है। इसे निशादिलौह कहा जाता है।—र.सा.सं.

घृत—हल्दी, हरड़, बहेड़ा, आमला, नीम की छाल, खरेंटी की जड़ और मुलैठी प्रत्येक 30-30 ग्राम लेकर इन्हें पानी में पीसकर इनका कल्क तैयार कर लें। फिर क्वाथ के लिए उक्त प्रत्येक द्रव्य पृथक् से 300-300 ग्राम लेकर इन्हें 15 लीटर पानी में पकावें और 4 लीटर रहने पर छान लें। दो किलो ग्राम भैंस के घी में उक्त कल्क, क्वाथ तथा चार लीटर गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब जलांश शुष्क हो जाय तब घी को छान कर रखें। यह घृत कामला को नष्ट करता है। मात्रा 10-20 ग्राम। —भै.र.

खण्ड (हरिद्रा खण्ड)—हल्दी का चूर्ण 400 ग्राम, गाय का घी 300 ग्राम, गोदुग्ध 8 लीटर और शक्कर 3 किलो 100 ग्राम लेकर प्रथम हल्दी को घी में भूनें और फिर उसमें दूध तथा शक्कर मिलाकर मंद अग्नि पर पकावें। जब पाक तैयार होने के निकट आ जाय तब उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, विडंग, निशोत, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा और लौह भस्म इनका 50-50 ग्राम चूर्ण मिला दें। मात्रा—5-10 ग्राम। इसके सेवन से शीत पित्त, उर्दद, कोढ़, कण्डू, दद्रु आदि दूर होते हैं। —भै.र.

पाक—हल्दी का 200 ग्राम चूर्ण लेकर इसे 2 लीटर दूध में पकाकर खोआ बना लें। फिर खोओ को 150 ग्राम घी में भून लें। इसके बाद 500 मि.लि. जल में एक किलो 125 मि.ग्रा. शक्कर को डाल कर एक तार की चाशनी बनाकर खोओ में मिलाकर पाक तैयार कर लें। यह पाक 10-20 ग्राम खाकर गाय का दूध पीवें। इससे त्वग् विकारों का शमन होता है। —*हल्दी के उपयोग*

अवलेह—हल्दी, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजवायन, मुलैठी, सेंधानमक सबको समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर रखें। एक ग्राम चूर्ण को मात्रानुसार घी के साथ प्रतिदिन 21 दिनों तक सेवन करने से जड़ता, मूकता, हकलाना, तुतलाना आदि दूर होकर मधुर स्वर हो जाता है। इसे कल्याणावलेह कहते हैं। —च.द.

धूमवर्ति—हल्दी, जौ, एरण्ड की जड़, लाख

मैनशिल, देवदारू, हरताल, जटामांसी समान भाग लेकर जल में पीसकर बत्तियां बना लें। घी से चुपड़ी इस वर्ति के धुएं को पीने से हिक्का और श्वास में लाभदायक है।

—चरक संहिता

तैल—हल्दी और कल्क 50-50 ग्राम, सरसों का तैल 400 ग्राम, धतूरे का स्वरस 500 ग्राम लेकर सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध कर लें। इस तैल को कान में डालने से कर्णनाड़ी (नासूर), जीर्ण कर्णस्राव मिटते हैं। *—भै.र.*

2. जल के साथ पिसी हुई हल्दी का कल्क 125 ग्राम, दूब का स्वरस 500 ग्राम और सरसों का तैल 250 ग्राम इन्हें लोहे की कडाई में स्वरस जलाकर तैल सिद्ध कर लें। इस तैल की मालिश करने से सूखी या गीली खुजली नष्ट हो जाती है। *—भै.र.*

3. हल्दी, दारूहल्दी, चिरायता, आंवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल, लाल चन्दन इनका कल्क एक किलो, तिल तैल 4 किलो और पानी 16 किलो लेकर तैल पाक करें। इस तैल को सिर में लगाने से सिर में होने वाली फुंसिया (अंरूषिका) नष्ट होती है। *—च.द.*

लेप—हल्दी, इन्द्रायड़ की जड़, खस, सेंधानमक, दारूहल्दी, हिंगोट की जड़ इन्हें मिश्रित कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को आक के दूध में घोट कर लेप करने से सन्निपात ज्वर में होने वाली कान के पीछे की सूजन नष्ट होती है। *—भा.प्र.*

पेटेन्ट प्रयोगों में हरिद्रा—

अनूर्जता से होने वाले आम रोगों की परमौषधि है नवशक्ति आयुर्वेदालय की "एरिप्ट्रिट वटी"। इसका मुख्य घटक हरिद्रा है इसके अतिरिक्त दारूहरिद्रा, अजवायन, कुटकी आदि हैं। दिन में तीन बार 2-3 वटी दें। धन्वन्तरि कार्यालय सैन्ट्रल द्वारा निर्मित "सौन्दर्य वर्धक उबटन" शरीर की कालिमा को दूर कर रूप निखारता है। इसमें हल्दी, जायफल, छाड़ा, छड़िला, चन्दन आदि हैं। इस कार्यालय द्वारा जो योनिप्रक्षालन चूर्ण तैयार किया जाता है इसमें हल्दी, गैरिक, शुभ्रा आदि है। एक लीटर पानी में 10 ग्राम यह चूर्ण डालकर योनिप्रक्षालन करने से प्रदर एवं अन्य संक्रमण से मुक्ति पाई जा सकती है। "कृमिहारी कैपसूल" (निर्माता-निर्मल आयुर्वेद संस्थान) में हरड़, विडंग, ढाक के बीज आदि के साथ हरिद्रा भी है। अन्जनी फार्मा. के 'निखार लेप' में हल्दी, दारूहल्दी, कूठ, सुगन्धबाला, जटामांसी आदि हैं। इसके प्रयोग से मुखाकृति पर एक नया निखार आ जाता है। "श्रीकाफ कैपसूल" (मेडिलिक्स लेबोरेटरीस, मदुराई) में हल्दी, कण्टकारी, भारंगी, रास्ना, वासा आदि हैं। ये कैपसूल कफ-खांसी में लाभदायक है। आंव, कुपच, दस्तों में लाभप्रद "एन्ट्रामिक्स" गोलियों का निर्माण लक्ष्मी कैमीकल इन्ड मथुरा द्वारा किया जाता है। इनमें कुटज, हल्दी, सौंफ, सोंठ आदि हैं। आयुहर्बल्स बड़ौदा द्वारा तैयार 'हीमकेअर सायरप" (रक्तशोधक) "स्किनकेअर" (कील मुंहासों पर लगाने हेतु) और "स्टिम्युलक्ट कैपसूल" (दुग्धवर्धक-दुग्धशोधक) पेटेन्ट प्रयोगों में हल्दी है। गोस्वामी ड्रग्स रतनगढ़ (राज.) द्वारा निर्मित "रक्त सालसा सीरप" (चर्म विकार एलर्जी में उपयोगी) और "डरमोटेब टेबलेट" (रक्तअशुद्धि, शीतपित्त, कील-मुंहासों को दूर करने हेतु) में अन्य उपयोगी द्रव्यों के साथ हरिद्रा भी है। दाद-खाज आदि चर्म विकारों में उपयोगी "कटसक्रीम" में हरिद्रा, मंजीठ, नीम आदि हैं जिसका निर्माण वासु फार्मा. द्वारा किया जाता है। मूत्रवहसंस्थान के रोगों में लाभदायक 'यूरेक्सिनोल टेब.' बान द्वारा बनाई जाती है। इनमें हरिद्रा, पुनर्नवा, गोखरू, चोपचीनी आदि हैं। बान जो दो सोप (साबुन) बनाता है उनमें भी हरिद्रा मिलाई जाती है। एक है 'सेसा सोप' जो केशरोगों को दूर करने के लिए है और दूसरा है "डरमाफेक्स सोप" जो चर्मरोगों को नष्ट करने के लिए बनाया गया है। गर्ग वनौषधि भंडार द्वारा तैयार किये गये "ईसोफिल कैपसूल"

(इसोनोफीलिया-उषसिप्रियता में उपयोगी), "स्वप्ना कैपसूल" (स्वप्नप्रमेह में लाभप्रद), "अस्थि संधानक कैपसूल" (अस्थिसंधान हेतु हितकारी) और रूपनिखार उबटन (रूप में निखार लाने हेतु तथा मुंहासों को मिटाने के लिए) में हरिद्रा का मिश्रण किया जाता है।

अनुभूत प्रयोग—

1. श्वास पर अनुभूत प्रयोग—250 ग्राम गेंहूँ के आटे को गूंदकर उसकी एक रोटी बनाकर उसके ऊपर 60 ग्राम हल्दी के चार-चार टुकड़े करके रख दें, उसकी लोई बनाकर कीकर के अंगारों पर जलने तक रख दीजिए। जब ऊपर से जलकर काली हो जावे तब उतारे और शीत होने पर हल्दी निकालें। इसे पीस छान कर 3-3 ग्राम को गर्म जल से दिन में तीन बार देने से श्वास तीन दिन में ही नष्ट हो जाता है। यदि कुछ कमी रहे तो 3-3 दिन छोड़कर एक माह सेवन करने से श्वास-कास नितांत ठीक हो जायेगा।—कविराज श्री बी.एस. प्रेमी शास्त्री

—(धन्व. चि. वि. द्वितीय भाग)

2. प्रदरनाशक प्रयोग—हल्दी, रसौत, नागरमोथा, भिलावा शुद्ध, बेलगिरी, चिरायता, अडूसा 10-10 ग्राम। इन सब औषधियों को जौकुट करके आधा किलो पानी में भिगो दें कम से कम 6 घन्टा भीगने पर इसे औटावें जब चतुर्थांश शेष रह जाय तब छानकर पिलावें। यह श्वेत प्रदर नाशक बहु उपयोगी क्वाथ है।

—वैद्य श्री देवीशरण जी गर्ग

(सुधा.प्र.सं. भाग 2)

3. श्वास वेग शामक सोमशारदीय रजनीकल्प—रस सिंदूर एक भाग, सोमकल्प 5 भाग, सौ वर्ष पुराने अश्वत्थ की अन्तस्त्वक् 5 भाग, रजनी (हरिद्रा) 5 भाग, मिश्री चूर्ण 5 भाग। सर्वप्रथम रस सिंदूर की अच्छी तरह घुटाई करें फिर क्रमशः एक-एक चूर्ण को मर्दन करते हुये डालते जाय तथा सूक्ष्म चूर्ण बना लें। मात्रा-एक से दो ग्राम तक अवस्थानुसार शर्बत जूफा व वासावलेह अथवा मधु से दें। श्वास वेग शामक स्थायी लाभदायक योग हैं।

—वैद्य श्री अम्बालाल जी जोशी

(सुधानिधि श्वासरोग चिकित्सांक)

4. शीतपित्तहर प्रयोग—हल्दी 250 ग्राम, कालीमिर्च 125 ग्राम, फिटकरी 125 ग्राम, सोना गेरू 125 ग्राम, दूर्वास्वरस 150 ग्राम। सबको थोड़े पानी में घोटकर कपड़े में छान लें। फिर चूर्णोदक (लाइमवाटर) 5 किलोग्राम, शक्कर 2 किलो तथा उक्त अर्क मिलाकर शर्बत बना लें। मात्रा—एक-एक औंस नित्य 3 बार ठन्डे या गर्म जल में मिलाकर दें। यह शीतपित्त में बहुत लाभदायक योग है।

—वैद्य श्री सीताराम जी अजमेरा

(धन्व. जन. 1976)

5. हिक्काहर प्रयोग—हल्दी बारीक पिसी हुई चार ग्राम लें। इसमें तनिक सा पानी का छींटा लगाकर चिलम में रख लें। इसमें ऊपर आग रखकर कश लग वाएं। दो-चार कश लगाते ही भयंकर हिचकी जो किसी दवा से बन्द होने में नहीं आ रही, तुरन्त बन्द हो जाती है। अनेक बार का परीक्षित प्रयोग है। अद्वितीय दवा है, जितनी प्रशंसा की जाए उतनी ही कम है।

—परमहंस स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती

(चम. औषधियाँ)

6. आयुर्वेद सल्फा त्रिपाण योग—हल्दी, शुद्ध स्फटिक और शु. टंकण तीनों समान भाग लेकर मिलाकर बारीक कर रखें। बच्चों को एक-एक ग्राम दें और बड़ों को 3 से 6 ग्राम तक शहद के साथ दें। यह कास, श्वास, कफज्वर, श्वसनकज्वर में लाभप्रद है। बच्चों के लिए अमृत तुल्य है। इसे मैं चिकित्सा में सफलतापूर्वक प्रयोग में ला रहा हूँ। *—वैद्यरत्न श्री जे.के. दाधीच*

(सुधा.अनु.प्र.रत्ना.)

7. उषसिप्रियता (इसोनोफीलिया) में लाभप्रद प्रयोग—गांठ हल्दी 250 ग्राम, कली चूना 250 ग्राम। मिट्टी के बर्तन में डालकर एक लीटर जल डालें। खौलने लगे तब हल्दी डाल कर ढक कर कपड़ मिट्टी कर दें। बारह घन्टों के बाद हल्दी को निकाल सुखाकर चूर्ण बनावें। फिर इसे 250 ग्राम गोघृत में सोंधी गन्ध आने तक धीमी आंच पर भूनें। ठण्डा होने पर बर्तन में रख दें। एक चम्मच दवा दो चम्मच मधु के साथ दो बार दें। कफज पदार्थों से परहेज रखें। शर्तिया लाभ होगा इसमें 40 वर्षों का अनुभव है। सेवन काल 45 दिन।

—वैद्य श्री हरिवंशप्रसाद मेहता

(धन्व. चि. अनुभवांक)

8. सौन्दर्यवर्द्धक प्रयोग—हल्दी, गोखरू, सरसों, केशर, मोथा, सोंठ प्रत्येक दो-दो टंक (एक टंक 3 ग्राम), रक्तचन्दन 4 टंक लोंग, चिरोंजी दस टंक सबको जल में पीसकर सात दिनों तक उबटन करें तो मुख की शोभा बढ़े और कुरूपता, झांई, मुहांसा इत्यादि मिटे।

—भो.गो. कौशिक वैद्य

(स्वास्थ्य-मथुरा सित. 1937)

9. खाजनाशक प्रयोग—हल्दी का चूर्ण 150 ग्राम, जरे का आटा 100 ग्राम, चोक (कटुपर्णी) की लकड़ी का चूर्ण 25 ग्राम, चीनी 25 ग्राम, कपूर 10 ग्राम इन सबका महीन चूर्ण करके एक कांच के भांड में रख लें। इसमें से आवश्यकतानुसार चूर्ण लेकर इसमें सरसों का तैल तथा जल मिलाकर खाज वाले स्थान पर लगाकर मर्दन करें। इससे खाज-दाद नष्ट होते हैं

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर जी व्यास

(शुचि-दिस. 1995)

10. श्वेतकुष्ठनाशक प्रयोग—हल्दी 250 ग्राम, इमली के बीज 60 ग्राम कूटकर चार लीटर पानी में भिगो दें और रातभर भीगने के बाद सुबह आग पर पकावें। जब 500 मि.लि. पानी शेष रहे तब उतारकर छान लें और 500 मि.लि. सरसों का तैल इसमें मिला कर पकावें। जब पानी जल जाय तब इसको उतार ठन्डा कर बोतल में भरकर रख लें। इस तैल को सफेद दागों पर मलें, अच्छा लाभ होगा।

—डा. श्री रामचन्द्र साहू

(अनु.यो.मा.जन. 74)

11. मधुमेहान्तक प्रयोग—हल्दी का चूर्ण 100 ग्राम, मेथी का चूर्ण 100 ग्राम, गूंदी का चूर्ण 100 ग्राम, आंवले का चूर्ण 50 ग्राम, धतूरे के सूखे पुष्पों का चूर्ण 50 ग्राम इन सब चूर्ण को मिश्रित कर घीकुवार, आंवले का स्वरस, शतावरी स्वरस, गिलोय स्वरस, केले के कंद का रस, चन्दन का क्वाथ तथा दूध इन सबकी सात-सात भावना देकर 500 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। सुबह एवं रात को सोते समय 2-2 वटी दूध से लेवें। मधुमेह को नष्ट करने में यह वटी श्रेष्ठ है। बहुमूत्र में भी आशातीत लाभ करती है। सन् 43 में एक किसान का लड़का 32-33 वर्ष का चिकित्सा हेतु आया था। वह 24 घन्टे में एक घड़ा पेशाब करता था 40 दिनों में पूर्ण लाभ हुआ। एक साधु जैन सम्प्रदाय का भी आया इन्हीं गोलियों से लाभान्वित हुआ था। मधुमेह के भी कई रोगियों को दी गई लाभ हुआ। मांडले वर्मा में कोछिकाई नामक वर्मी को 3 महीने तक यह वटी सेवन करवाई गई पूर्ण लाभ हुआ।

—वै. श्री चन्द्रशेखर जी व्यास

(सुध. अप्रेल 1995)

12. वातरोगों पर उपयोगी बाह्य प्रयोग—कांटेदार नागफनी के एक तरफ से छील कांटे निकाल उस पर बारीक हल्दी चूर्ण बुरक गर्म कर दर्द वाले स्थान पर बांधे या सेक करें। इससे दर्द-सूजन दूर होंगे। निरन्तर 40 दिन प्रयोग करने पर रोग समूल नष्ट हो जाएगा-अनुभूत प्रयोग है।

—श्री रामप्रकाश सिंह (प्रेषित प्रयोग)

13. बालरोगोपयोगी उत्तम प्रयोग—हरिद्रा, शु. सुहागा, शु. फिटकरी समान भाग लेकर अदरख के रस में घोटकर चने बराबर गोलियां बना लें। एक-एक गोली शहद के साथ दें। बच्चों के श्वास-कास, जुकाम, न्यूमोनियां आदि में रामवाण की तरह काम करती है।

—डा. श्री रामप्रकाश अग्रवाल (प्रेषित प्रयोग)

आम्रगन्धि हरिद्रा (Curcuma Amada)— आयुर्वेद के अन्यतम निघन्टुकार आचार्य भावमिश्र ने हरिद्रा के प्रकरण में हरिद्रा की अन्य जातियों का भी वर्णन किया है। हरिद्रा के पश्चात् आम्रगन्धि हरिद्रा, अरण्य हरिद्रा और दाक हरिद्रा का वर्णन किया है। हम यहां पहले आम्रगन्धि हरिद्रा का वर्णन कर रहे हैं।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार उक्त हरिद्रा की जातियों में दारू हरिद्रा पृथक् कुल की वनौषधि है। यह दारूहरिद्रा कुल (बर्बेरिडेसी) की औषधि है। शेष सभी हरिद्रा आम्रगन्धि हरिद्रा आदि आर्द्रक कुल की वनौषधि हैं। इस कुल को जिंजीबरेसी कहते हैं। पहचान में सरलता के लिए इन वनौषधियों का जो वैज्ञानिक आधार पर वर्गीकरण किया गया उनमें इस कुल का प्रमुख स्थान है। इस सुगन्धित तथा औषधीय पौधों की बहुलता है। इस कुल में हरिद्रा आमाहरिद्रा, वन हल्दी और काली हल्दी का वर्णन मिलता है। हल्दी का वर्णन हो गया, आमाहल्दी का वर्णन प्रस्तुत है—

इस हल्दी के कंद में कच्चे आम की गन्ध आती है, अतः इसका संस्कृत नाम आम्रगन्धि हरिद्रा और अंग्रेजी में मैंगों जिंजर (Mango ginger) है। हिन्दी में इसे आमा हल्दी के नाम से जाना जाता है। इस लैटिन नाम करकुमा आमादा है।

इस वनौषधि का मूल निवास बंगाल है। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश, उड़ीसा तथा दक्षिण भारत (विशेषतः, तमिलनाडू) में इसके पौधे मिलते हैं। इन स्थानों में इसके कंद का अचार, चटनी आदि बनाकर उपयोग में लाया जाता है। इस कंद में एक उड़नशील तैल होता है। पौधे की लम्बाई 60-100 से.मी. तथा पत्तियाँ 40x12.5-17.5 सेमी. होती हैं। कंद संयुक्ताक्षी (Sympodial) तथा शाखान्वित होता है। कंद के टुकड़े 3-10 सेमी. लम्बे, 1-3.5 सेमी. चौड़े तथा बाहरी सतह हल्के भूरे रंग की होती है।

आम्रगन्धि हरिद्रा या सा शीता वातला मता।
पित्तहन्मधुरा तिक्ता सर्व कण्डू विनाशिनी।।

कंद पाचक, क्षुधावर्धक है। इसका प्रयोग चोट-मोच, गठिया तथा रक्तशोधक के रूप में किया जाता है। कंद में कोलेस्ट्राल कम करने का गुण पाया गया। इसके गुण आर्द्रक के समान दीपन तथा वातानुलोमक है किन्तु आर्द्रक उष्ण है और यह शीतल है। मिठाइयों में आम की गंध लाने के लिए इसके फाण्ट का व्यवहार करते हैं। औषधि हेतु इसकी सेवन मात्रा 3-4 ग्राम है। कंद चूर्ण को लताकरंज के पत्र के रस के साथ कृमिरोग में सेवन कराना चाहिये। आमाहल्दी, वाकुची और शुद्ध गंधक तीनों 5-5 ग्राम को पीसकर चूर्ण बनाकर रात्रि भर पानी में भिगोकर प्रातः ऊपर के पानी को निथार कर पीने से खाज-खुजली में लाभ होता है। नीचे का दरदरे चूर्ण को करंजतैल में मिलाकर उबटन करना चाहिये। उष्णवात (सुजाक) में आमाहल्दी का चूर्ण को शहद और 5-7 बूंद शुद्ध चन्दन के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये। इससे रोगी को शीघ्र लाभ हो जाता है, कुछ दिन सेवन करना आवश्यक है। पाण्डुरोग में पहले महातिक्तघृत से स्नेहन और त्रिवृत् (निशोथत्) 500 मि.ग्रा.+शक्कर 2 ग्राम देकर विरेचन कराकर आमाहल्दी का चूर्ण त्रिफला क्वाथ से दें। यह बहुत अच्छा लाभ करता है। रक्तविकारों में हरिताल भस्म 125 मि.ग्रा. को आमाहल्दी के स्वरस के साथ दें—

आम्रगन्धहरिद्रायाः स्वरसेन च शीलितम्।
सर्वरक्त विकाराणां तालकं परमौषधम्।।

—र.त.

अस्थिभग्न, चोट, मोच, आघात आदि में आमाहल्दी मैदा लकड़ी, रसौत, छोटी हरड़ एक-एक भाग और फिटकरी व एलुवा आधा-आधा भाग लेकर पीसकर हल्का गर्म कर लेप करें। प्लेट की गिल्टी पर आमाहल्दी को बिरोजा, तूतिया व मधु के साथ गर्म कर लेप करना चाहिये। आमाहल्दी, नारियल की गिरी और खोया को मिलाकर इसकी पोटली बनाकर गर्मकर इससे सेंक भी करना चाहिये। यह सेक मोच पर भी ठीक है। आमाहल्दी, मैदा लकड़ी, एरण्ड बीज की गिरी, नारियल की गिरी और हल्दी सम भाग लेकर महीन पीस आग पर कुछ गरम कर मोच पर गाढ़ा लेप करने से भी अच्छा लाभ होता है। सिर के दर्द में आमाहल्दी, मरोड़ फली, काकड़ासिंगी और रसोंत समान भाग लेकर बकरी के दूध में पीसकर लेप करना चाहिये। आमा हल्दी, नीला थोथा और खुरासानी बच को पानी में पीसकर अर्श के मस्सों पर लेप कर एरण्ड पत्र बांधने से मस्से नष्ट हो जाते हैं—

तुत्थमाम्रनिशा हौणी व चेति सकलं समम्।
पानीयेनैव सम्पिष्य प्रलिम्पेद् गुदजोपरि।।
आच्छाद्यैरण्डजैः पत्रैर्बध्नीयात् साधु बुद्धिमान्।
पतन्ति पायुजास्तेन सप्ताहान्नात्र संशयः।।

—सि. मन्जूषा

वनहरिद्रा(Curcuma Aromatica)—इसके पौधे का वानस्पतिक नाम करकुमा एरोमेटिका है। इसके पौधे समस्त भारत विशेषतः मैसूर, मलाबार में होते हैं। बंगाल और केरल में इसकी खेती की जाती हे। इसके कंद में कपूर के समान गन्ध आती है। यह गन्ध इस कंद में स्थित हरे भूरे रंग के उड़नशील तैल के कारण आती है। कंद में तैल के अतिरिक्त कुर्कुमिन नामक रंजक द्रव्य, स्टार्च आदि पाये जाते हैं। इसका अंग्रेजी नाम वाइल्ड टर्मेरिक (Wild Turmeric) है।

अरण्यरजनीकंदः कुष्ठवातास्रनाशनः।
सर्वदोषविषघ्नश्च हिध्माश्वसनकासजित्।।

—कै.नि.

कंद का प्रयोग चोट मोच तथा त्वचा रोगों में होता है। मसाले के रूप में भी इसे उपयोग में लाया जाता है। शिरःशूल में इसे लोहवान के साथ पीसकर लेप करते हैं। विस्फोटक ज्वरों में दानों को बाहर निकालने के लिए इसे 250 से 500 मि.ग्रा. तक खिलाते हैं तथा इसका बाह्य लेप भी करते हैं।

काली हल्दी—कालीहल्दी के पौधे का वानस्पतिक नाम करकुमा जिडोरिया है। पूर्व हिमालय तथा पश्चिमी समुद्र तट पर इसके पौधे स्वतः उगते हैं। बांगला देश में इसकी खेती की जाती है। इसके कंद को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर बाजार में बेचा जाता हैं यह वातशामक एवं भूख को बढ़ाने वाला है। यह स्टार्च का स्रोत हैं इसे जौ तथा अरारोट की जगह शिशुओं के भोजन के रूप में स्वास्थ्य लाभ हेतु उपयोग में लाया जाता है। चीन में कंद का प्रयोग कई प्रकार के अर्बुद (Tumors) को ठीक करने हेतु किया जाता है।



● **सम्पादकीय टिप्पणी—**

हरिद्रा युक्त एक बाल रोगोपयोगी प्रयोग

घटक—हरिद्रा, शु. सुहागा, शु. फिटकरी तीनों को समान भाग लेकर अदरक के रस में घोटकर चने बराबर गोलियाँ बना लें।

मात्रा—1-1 गोली पीसकर सुबह शाम शहद के साथ प्रयोग करावें।

उपयोग एवं अनुभव—यह साधारण प्रतीत होने वाला प्रयोग बच्चों के कास, न्यूमोनियां, प्रतिश्याय आदि कफज रोगों के लिए रामवाण योग है। इस योग को प्रत्येक चिकित्सक को अपने औषधालय में बनाकर रखना चाहिए। धर्मार्थ औषधालय के लिए तो यह श्रेष्ठ योग है। इसका उल्लेख इसी विशेषांक में पृष्ठ 288 पर भी दिया गया है।

—वैद्य गोपालशरण गर्ग

दारूहरिद्रा
(Berberis Aristata)

यह धरती यह वसुन्धरा इस पर रख विश्वास।
इसमें ही सब कुछ मिले निरख नहीं आकाश।।

ऊँचाई सजाने के लिए पहले जड़ को गहरी बनाना आवश्यक है और इसके लिए धरती की ओर ध्यान देना ही होगा। धरती की ओर ध्यान देने में कई सम्पदायें मिलती रहेंगी—यह तो वसुन्धरा है। वनौषधियाँ भी इसी की देन हैं। इन वनौषधियों में एक दारूहरिद्रा भी है। हरिद्रा के समान इसी दारू (लकड़ी) होने से ही इसे दारूहरिद्रा कहा गया है। वैसे इसका कुल एवं गुणधर्म प्रायः पृथक् हैं किन्तु आचार्य भावमिश्र की विवरण शैली का अनुसरण करते हुये हरिद्रा के पश्चात् इस दारूहरिद्रा का वर्णन किया जा रहा है।

आचार्य चरक ने इसे अर्शोघ्न, कण्डुघ्न एवं लेखनीय गण में कहा है और आचार्य सुश्रुत ने हरिद्रादि, मुस्तादि, लाक्षादि गण में लिया है। प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह दारूहरिद्रा कुल (बर्बेरिडेसी) कुल की औषधि है। आचार्य भावमिश्र ने हरीतक्यादि गण में हरिद्रा, आम्रगन्धि हरिद्रा और अरण्यहरिद्रा के बाद में इसका वर्णन किया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने यकृत् पर कर्म करने वाले द्रव्यों में सबसे प्रथम इसका ही वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—दारूहरिद्रा, दार्वी, कटंकटेरी, पंचपचा
हिन्दी—दारूहल्दी
गुजराती—दारूहलदर
मराठी—दारूहलद
बंगला—दारूहरिद्रा
पंजाबी—दारहल्दी
तामिल—मरमंजल
तेलगू—कस्तूरीपुष्प
फरसी—दारचोबा
अंग्रेजी—इण्डियन बर्बेरी (Indian Barberry)
लैटिन—बर्बेरिस एरिस्टेटा (Berberis Aristata)

प्राप्ति स्थान—हिमालय प्रदेश में 6–10 हजार फीट की ऊँचाई तक स्वंय जात झाड़ियाँ पायी जाती हैं। नेपाल और देववन में प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। इसके अतिरिक्त बिहार, पारसनाथ की पहाड़ी एवं नीलगिरि में पायी जाती है। श्रीलंका में भी यह पायी जाती है।

रासायनिक संघटन—इसके मूल में एक पीतवर्ण तिक्त क्षाराभ बर्बेरिन पाया जाता है। बर्बेरिस एशियाटिका में इसके अतिरिक्त आक्सीएकेन्थीन क्षाराभ होता है। बर्बेरिस लाइसियम में अम्बेलेटिन प्रमुख शाक्षाभ होता है। तने में सैपोनीन बर्बेरूगीन, जैट्रोरहेजिन, थेलिफेन्डीन पाल्मेटीन, डीमेथाइल, इण्डियरपीन आदि होते हैं। फल में चिंचाम्ल और सेवाम्ल होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका कंटकित गुल्म 6–18 फीट ऊँचा होता है। पत्र दृढ़, चर्मवत्, अभिलट्वाकार या आयताकार, अखण्ड या दूर-दूर पर स्थित कंटकीय दांतों से युक्त, 1–3 इंच लम्बा होता है। पुष्प मंजरी—2-3 इंच लम्बी, संयुक्त होती है जिसमें पीतवर्ण वृहत् पुष्प लगते हैं। पुष्पवृन्त रक्ताभ होता है। फल—अण्डाकार, नीले बैंगनी रंग के चमकीले होते हैं। इसे हकीम लोग, 'झरिष्क' कहते हैं। पुष्प अप्रेल जून में लगते हैं और इसके बाद फल आते हैं। इसका काष्ठ गहरे पीले रंग का स्वल्पगंधि होता है। उबालने पर भी काष्ठ का पीलापन



दारुहरिद्रा (BERBERIS ARISTATA)

नाम—सं०—दारुहरिद्रा, दार्वी; हि०—दारुहल्दी; गु०—दारुहलदर; म०—दारुहलद; अं.—इण्डियन बर्बेरी; लै०—बर्बेरिस एरिस्टेटा।

प्राप्तिस्थान—हिमाचल प्रदेश विशेषतः नेपाल।

उपयोगी अंग—मूल, काण्ड, फल, सत्व (रसांजन)

दोषशमन—कफपित्त शामक।

रोगोपयोग—कामला, यकृत के रोग, प्रमेह, व्रण, नेत्र रोग आदि।

मुख्ययोग—दार्व्यादिक्वाथ, दार्व्यादि तैल आदि।

बना रहता है दारूहरिद्रा से रसक्रिया विधि द्वारा जो घनसत्व तैयार किया जाता है वह रसांजन कहलाता है।

भेद—बर्बेरिस की लगभग 13 प्रजातियां भारत में पाई जाती हैं जिनमें उक्त बर्बेरिस एरिस्टेटा के अतिरिक्त बर्बेरिस एसिटिका, बर्बेरिस लाइसिम मुख्य हैं।

रस—तिक्त, कषाय

गुण—लघु, रूक्ष

वीर्य—उष्ण

विपाक—कटु

इसका फल मधुराम्ल और शीतवीर्य होता है।

दोषकर्म—कफपित्तशामक

उपयोगी अंग—मूल, काण्ड, फल और रसाञ्जन

मात्रा—क्वाथ—5-10 मि.लि., चूर्ण—3-5 ग्राम (मूलत्वक् चूर्ण), फल (जरिष्क)—5-10 ग्राम, रसाञ्जन—1-2 ग्राम।

वीर्यकालावधि—फल-एक वर्ष। दारूहल्दी, रसौंत—कई वर्ष तक।

संग्रह-संरक्षण—दारूहल्दी का संग्रह वर्षा ऋतु के बाद में कर अनार्द्र-शीतल स्थान में सुरक्षित रखना चाहिये। फल और रसौंत को भी नमी से बचाना चाहिये।

अहितकर—दारूहरिद्रा—उष्ण प्रकृति के लिए

जरिष्क—कफप्रकृति वालों के लिए

रसाञ्जन—प्लीहा रोग में

निवारण—**दारूहरिद्रा**—बिजौरा या नारंगी का अर्क

जरिष्क—शर्करा और लवंग

रसाञ्जन—अनीसून

अपमिश्रण—**बर्बे.** अरिष्टाटा में अन्य जातियों का मिश्रण कर दिया जाता है। अन्य वनौषधियों के टुकड़ों को पीले रंग में रंग कर मिला दिया जाता है।

रसाञ्जन निर्माण प्रकार—दारूहल्दी को पकाकर रसाञ्जन बनाकर उपयोग में लाने के कारण ही इसका एक नाम पचंपचा है। दारूहरिद्रा के छोटे-छोटे टुकड़े कर इन्हें 16 गुने जल में उबालें। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार कर छान लें। इसमें पुनः बराबर मात्रा में गाय या बकरी का दूध मिलाकर पुनः मंद अग्नि पर पाक करें। जब गाढ़ा हो जाय तब इसे उतार लें। यही रसाञ्जन (रसौंत) है।

शोधन—बाजारू रसाञ्जन के निर्माण में दुग्ध का प्रयोग नहीं किया जाता है और अन्य भी मिलावट कर दी जाती है। अतः इस रसौंत का शोधन आवश्यक है। इस हेतु—रसौंत को चौगुने गरम जल में घोलकर एक-दो घन्टे छोड़ दें। फिर इसे कपड़े से छानकर इसमें दूध मिलाकर मंद आंच पर पका लें या धूप में सुखा लें।

गुणधर्म विवेचन—

दार्वी निशागुणा किन्तु नेत्रकर्णास्यरोगनुत्।
रसांजनं कटु श्लेष्मविष नेत्रविकारनुत्।
उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत्।।

—भा.प्र.नि.

दार्वी दारूहरिद्रा स्यत्तिक्तोष्णा कफपित्तनुत्।
यकृद्रोगे प्रमेहे च रक्तदोषे व्रणे हिता।।
रसाञ्जनं कृतं दार्वीक्वाथेन क्षीर संमितम्।
तिक्तमुष्णं व्रणास्रावहरं नेत्र्यं परं मतम्।।

—प्रि.नि.

दारुहरिद्रा दीपन, ग्राही, यकृदुत्तेजक और पित्तसारक होने से अग्निमांद्य, प्रवाहिका, यकृद् विकार, अतिसार, कामला में बहुत लाभदायक है। आचार्य वाग्भट आदि ने लिखा है कि—

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसम्।
प्रातः प्रातर्मधुयुतं कामलार्त्ताय योजयेत्।।

—अ.हृ.चि. 16

दार्वी सत्रिफलाव्योष विडंगान्ययसो रजः।
मधुसर्पियुतं लिह्यात् कामलापाण्डुरोगवान्।।

—च.द.

त्रिफला द्वे हरिद्रे च कटुरो हिण्ययोरजः।
चूर्णितं क्षौद्रसर्पिभ्यां सलेहः कामलापहः।।

—चरक. चि. 16

इन योगों के अतिरिक्त चरकोक्त मण्डूरवटक प्रथम, पुनर्नवामण्डूर, व्योषादि घृत आदि योगों में भी दारूहल्दी का प्रयोग हुआ है। ये सभी योग पाण्डु-कामला रोग में उपयोगी हैं। डा. श्री विनोद कुमार शाही वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता नई दिल्ली ने इस वनौषधि पर हुए अनुसंधान पक्ष को व्यक्त किया है—"वैसे तो दारूहरिद्रा के विभिन्न प्रयोग शास्त्रों में मिलते हैं परन्तु वर्तमान में काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में इस पर विशेष कार्य किया गया। वहाँ पर दारूहरिद्रा का प्रयोग विभिन्न यकृत गत रोगों एवं कामला के भेदों पर किया गया और काफी उत्साहजनक परिणाम पाया गया। कामला एवं यकृत गत व्याधियों के 19 रोगियों को परीक्षण के लिए चुना गया। प्रारम्भिक अध्ययन से पता चला कि यह औषधि कोष्ठाश्रित कामला (Hepato cellular Jaundice) पश्चात् संक्रमण यकृतशोथ (Post Infective Hepatitis) रोगों में काफी प्रभावकारी रहा है। लेकिन औषधि का प्रभाव यकृत् वृद्धि (Cirrnosis of Liver) और शाखाश्रित कामला (Obstructive Jaundice) पर नहीं के बराबर रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह औषधि कमोवेश कुछ यकृत् गत रोगों को छोड़कर काफी यकृत् सम्बन्धित व्याधियों में प्रभावकारी है परन्तु यहीं पर यह अध्ययन समाप्त नहीं होना चाहिए बल्कि आगे भी इस पर अनुसंधान की आवश्यकता है।"।

—स.आयु. मार्च 1993,
सुधानिधि जनवरी 1996

"कामला के अंजनकल्पों में दारूहरिद्रा का भी उल्लेख किया गया है। इसमें कुछ स्रावण कर्म होने की कल्पना की जा सकती है। इसकी घन रसक्रिया रसांजन का नेत्रगत दोषों के स्रावणपूर्वक निर्हरण का विधान चरक ने किया है। स्वस्थवृत्त के प्रकरण में नेत्र रक्षाधिकार में उनने कहा है कि पाँच-पाँच अथवा आठ-आठ दिनों में एक बार स्रावण के प्रयोजन से रसांजन का व्यवहार करना चाहिये।—पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थे रसाञ्जनम्—च.सू. 5-15। संहिताओं के टीकाकारों के काल से ही रसांजन के अर्थ के विषय में मतभेद चला आ रहा है। आज भी यह विवाद प्रचलित है। कोई इसे 'ऐला आक्साइड आफ मर्क्युरी' मानते हैं तो अन्य दारूहरिद्रा की रस क्रिया (घनसत्व, रसौंत)। अपने रसामृत के परिशिष्ट में पूज्य गुरूवर्य आचार्य श्री यादव जी भाई ने दोनों पक्षों की स्थापना कर ऊहापोह पुरः सर रसांजन शब्द से दारूहरिद्रा के घन के ही ग्रहण को युक्तियुक्त कहा है।"

—वैद्य श्री रणजितराय देसाई
(निदानचिकित्सा हस्तामलक)

रसांजनादि चूर्ण अग्निमांद्य, उदरशूल और रक्तातिसार में लाभदायक है—

रसांजनं सातिविषं कुटजस्य फलं त्वचम्।
धातकीश्रृङ्गवेरञ्च प्रविवेत् तण्डुलाम्बुना।।
क्षौद्रेण युक्तं नुदति रक्तातिसारमुल्बणम्।
मन्दं दीपयते चाग्निं शूलञ्चापि निर्वत्तयेत्।।

—च.द.

अन्य अनुसंधान—

1. बर्बेरीन क्षाराभ जो दारूहरिद्रा से प्राप्त किया जाता है, विसूचिका की चिकित्सा में बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। विसूचिका कृमियों के जिस अंश से अतिसार के लक्षण होते हैं संभवतः उस द्रव्य को यह

क्षाराभ निष्प्रभावी करता है। यह क्लोरेम्फेनिकाल से अधिक अच्छा है। मात्रा—50 मि.ग्रा. प्रारम्भ में, फिर प्रत्येक 8 घन्टे पर 6 बार, फिर प्रत्येक 12 घन्टे पर पांचवे दिन तक या ठीक होने तक। यह लवण—जल चिकित्सा के साथ बहुत उपयोगी हैं।

2. बर्बेरीन क्षाराभ बढ़ी हुई केशिका पारगम्यता (Capillary Permeability) को घटाकर संभवतः अतिसार तथा विसूचिका में कार्य करता है क्योंकि परीक्षण में देखा गया कि जो पदार्थ पारगम्यता बढ़ाते हैं उनके प्रभाव को यह घटाता है।

3. प्राणियों में इसके सत्वों का अध्ययन अतिसारनाशक गुण की दृष्टि से किया गया। यह अमीबाजन्य आंत्रिक तथा यकृत विकारों में लाभप्रद है।

—डा. श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर)

(वान. अनु. दर्शिका)

अन्य प्रयोग—

रसाञ्जनं रसैः पिष्टं सहस्रसुमपत्रजैः।
स्रवच्छोणितधाराणां दुर्नाम्नां दर्पदारकम्।
रसाञ्जनं सकुटजं सम्पिष्य वटकीकृतम्।
अतिसारग्रहण्यर्शः प्रमेहप्रदरान्तकृत्।।
पथ्यानिम्बमहानिम्बफलमज्जरसाञ्जनम्।
अजस्रस्रवदर्शोर्हिस्रं घस्रैस्त्रिभिर्हठात्।।
ससौरकर्पूररसाञ्जनाख्यैः
पूर्णोदरं वै पिचुमन्दसारैः।
मूलं विपक्वं पुटपाकरीत्या
दुर्नामदुःखं दलयत्यवश्यम्।।

—सि. भै. मञ्जूषा

रसाञ्जनं पयः पूतं क्वथनात् सान्द्रतां गतम्।
तदङ्घ्रिनिम्बदलजं चूर्णमर्शसि तद् गुटी।।

—सि.भे.म.मा.

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्।।

—सुश्रुत. शा. 10-47

दार्वी गुडूचिं त्रिफला द्राक्षाजात्याश्च पल्लवाः।
यवासश्चेति तत्क्वाथः षष्ठांशक्षौद्रसंयुतः।।
शीतोमुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम्।।

—शा.सं.

रसांजन एक श्रेष्ठ रक्तस्तम्भन द्रव्य है अतः रक्तस्रावी रोगों में यह अकेला या अन्य रक्तस्तम्भन द्रव्यों के साथ सेवन कराया जाता है। दारूहल्दी उत्तम रक्तशोधक होने से रक्तविकारों में प्रयुक्त होती है। विसर्पचिकित्सा में आचार्य वाग्भट ने एक रक्तशोधक क्वाथ को सघृत पीने के लिए लिखा है—

दार्वीपटोलकटुकामसूरत्रिफलास्तथा।
सनिम्बयष्टीत्रायन्तीः क्वाथिता घृतमूर्च्छिताः।।

—अ.हृ.चि. 18

त्वग् विकारों में यह हितकारक होने से प्रयुक्त होती है—

दार्वी रसाञ्जनं वा गोमूत्रेण प्रबाधते कुष्ठम्।
एला कुष्ठं दार्वी शतपुष्पा चित्रको विडङ्गश्च।।
कुष्ठालेपनमिष्टं रसाञ्जनं चाभयाचैव।।

—चरक. चि.7

दारूहल्दी एवं रसांजन के आभ्यन्तर प्रयोगों की भांति बाह्य प्रयोग भी वर्णित हैं जो चरक चि. अ. 7 एवं चरक. सू. 3 में देखे जा सकते हैं। दारूहरिद्रा युक्त एक सिध्मनाशकलेप आचार्य शार्ङ्गधर ने भी लिखा है।

यह कफघ्न होने से कास में उपयोगी है। गर्भाशय के शोथ एवं स्राव को रोकने के कारण श्वेतप्रदर एवं रक्तप्रदर आदि स्त्री रोगों में उपयोगी है। इसका प्रसिद्ध योग दार्व्यादि क्वाथ (शा.सं.) अति उत्तम है। यह क्वाथ

मधु मिलाकर पीने से प्रदर तथा आर्तवविकार नष्ट होते हैं। इस क्वाथ में स्थित दारूहल्दी, रसाञ्जन, वासा आदि द्रव्य आमपाचक तथा रक्तशोधक होने से मूलविकृति को दूर कर प्रदर को निर्मूल करते हैं। दारूहल्दी और रसांजन शोथहर, वेदना स्थापन, व्रण शोधन एवं व्रणरोपण हैं अतः इन कर्मों हेतु इन्हें उपयोग में लाया जाता है।

दारूहल्दी से मूत्र की शुद्धि होती है एवं वस्ति शोथ दूर होता है सुतरां प्रमेहरोग में यह प्रयुक्त होती है—

दार्वीसुराह्वात्रिफलाः समुस्ताः
कषायमुत्क्वाथ्य पिबेत् प्रमेही।

—चरक. चि. 6

आचार्य चरक ने इसे सान्द्रमेह, शुक्लमेह, शीतमेह आदि में भी लाभप्रद कहा है। आचार्य सुश्रुत ने भी पिष्टमेह (शुक्लमेह) इसे उपयोगी कहा है—पिष्टमेहिनं हरिद्रा दारूहरिद्राकषायं पाययेत् (सुश्रुत.चि. 11-9)। सामान्यतः दारूहल्दी और गिलोय के क्वाथ को सर्वप्रमेहहर कहा गया है—

दार्वी गुडूचिकाक्वाथो माक्षिकेण समन्वितः।
सर्वदा सर्वदोषोत्थे मेहे दद्याद् विचक्षणः।।

आमलकी एवं उशीर के साथ यह मूत्रदाह को भी दूर करती है—

दार्वी धात्र्यमृतोशीरकषायः शर्करान्वितः।
प्रमेहं मूत्रदाहश्च देहदाहश्च नाशयेत्।।

—क्वा. म. मा.

यह स्वेदजनन, वर्ण्य, कटुपौष्टिक होने के साथ उत्तम चक्षुष्य है। यह विडालक (नेत्रों के बाहर से पलकों पर लेप,) वर्ति, अंजन आदि के रूप में बहुशः प्रयुक्त होती है। इस हेतु रसांजन को उपयोग में लाया जाता है। यह नेत्राभिष्यन्द, कुछ अंश में रहना संभाव्य है। धन्वन्तरिनिघन्टु, राजनिघन्टु तथा राजबल्लभ में इसे नेत्रों के लिए हितावह कहा है। शार्ङ्गधरोक्त दार्व्यादिरसक्रिया और रसांजनादि रस क्रिया के प्रयोग से नेत्रदाह, नेत्रस्राव, नेत्रशूल, नेत्रकण्डू आदि दूर होते हैं। एक अंजननामिका (गुहेरी) हर प्रयोग वर्णित है—

रसांजनं व्योषयुतं सपिष्टं वटकीकृतम्।
कण्डूं पाकान्वितां हन्ति लेपादञ्जननामिकाम्।।

—शा.सं.

यह ज्वरघ्न और विषमज्वर प्रतिबन्धक है। सामान्यज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर में इससे अच्छा लाभ होता है। विषमज्वर में जब जीवाणु यकृत् में स्थित हो जाते हैं तब औषधियों का प्रभाव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में रसौंत के प्रयोग से जीवाणु बाहर निकल आते हैं और उन पर औषधियों की क्रिया ठीक होने लगती है। इस प्रकार यह मलेरिया के निदान में भी सहायक है। ज्वर के पश्चात् आई हुई अशक्ति में दारूहल्दी बहुत ही फ़ायदा पहुंचाती है।

दारूहल्दी का फ़ल (जरिष्क) शीतल, ग्राही, तृषाशामक, रूचिवर्धक, रक्तशोधक, दीपन-पाचन, पित्तशामक, दाहशामक और कफहर है। सगर्भा की वमन, अतिसार, नाड़ीव्रण और त्वचा रोगों को दूर करता है। इन फ़लों से शर्बत, सिरका और सिकंजबीन (सरके में से बनाया हुआ शर्बत) बनाकर विविध रोगों में उपयोग में लाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार दारूहल्दी पहले दर्जे में शीत एवं रूक्ष तथा रसौंत (उसारए दारहलद) एवं जरिष्क दूसरे दर्जे में शीत एंव रूक्ष (खुश्क) होते हैं। यह पीलिया, आंखों के रोग, दांत के दर्द और दमे में लाभदायक है। इसका लेप दाह और सूजन को मेटता है। चोट की जगह पर इसका लेप करने से खून नहीं जमता। खराब नासूर भी इसके उपयोग से भर जाते हैं। तर और सूखी खुजली, जहरबाद और पेट के कीड़े भी इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं। सफूफजरिष्क, जवारिशजरिष्क, कुर्सजरिष्क आदि इसके मुख्य यूनानी योग हैं।

आधुनिक मत—डा. देसाई के मत से दारूहल्दी कड़वी, उष्ण, कटुपौष्टिक, सौम्य ग्राही नियतकालिक, ज्वर प्रतिबन्धक (Andi Periodic) स्वेदजनक, ज्वरहर, श्लेष्मघ्न और स्वर दोष हर है। रसौंत शोधघ्न, श्लेष्महर, नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक, स्वेदल, ज्वरघ्न और सारक् है। दारूहल्दी थोड़ी मात्रा में यह जोरदार स्वेदल, ज्वरहर और मृदुरेचक है। बड़ी मात्रा में यह पर्यायज्वर प्रतिबन्धक होती है तथा इसकी क्रिया कुनैन की भांति होती है।

आर. एन. खोरी के अनुसार दारूहल्दी की छाल और काष्ठ दोनों ही बलप्रद, उष्ण, पाचक, ज्वरनिवारक और मदुरेचक हैं। यह मलेरिया ज्वर, अतीसार, ग्रहणी, आमरक्तातिसार, कम्पज्वर तथा अन्य तीव्र पीड़ा जनित दौर्बल्य में व्यवहृत होती है। दोषहर होने से यह यकृत दोष, शोथ एवं कामला रोग में प्रयुक्त होती है। इसका फल अम्ल एवं शीतल होने से ज्वर, अतिसार में प्यास को शान्त करने में अधिक गुणकारक है। रसौंत वेदनाहर, बल्य एवं नेत्ररोगोपयोगी है। यह शहद के साथ मर्दन करके मुख के क्षत में लगाया जाता है। कैन्सर या न्यूरालजिया के दर्द के प्रशमन के लिए भी रसौंत का प्रलेप किया जाता है।

डा. रामसुशील सिंह के कथनानुसार दार्वी सत्व (बरबेरीन सल्फेट) दारूहल्दी के त्वक्, काण्ड आदि से रासायनिक क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह चमकीले पीले रंग में क्रिस्टल्स या गहरे पीले रंग के चूर्ण रूप में अत्यन्त तिक्तसत्व होता हैं इसका मुख्य उपयोग उष्णकटिबन्धीय लीशमन पिण्ड के उपसर्ग से होने वाले प्राच्यव्रण (शत पोनक भगन्दर की तरह शरीर पर होने वाला व्रण) में किया जाता है। यह त्वचा के नीचे की धातुओं एवं श्लैष्मिक कला के लिए स्थानिक रूप से सौम्य स्वापजनक होने के कारण वेदनास्थापनार्थ इंजेक्ट किया जाता है। *—पा.द्र.गु.वि.*

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. नेत्ररोग—(क) 250 मि.ग्रा. रसौंत को 25 मि. लि. गुलाब जल में मिलाकर नेत्रों में डालने से नेत्राभिष्यन्द ठीक होता है।

(ख) पलकों पर रसौंत का लेप नेत्रशोथ में हितकर है।

(ग) रसौंत, मुसब्बर (एलवा), फिटकरी, हरीतकी, लोध्र और अफीम समान भाग लेकर जल या बकरी के दूध में पीसकर नेत्रों के बाहर के भाग पर लेप (बिड़ालक) करना नेत्र रोगों में हितकारी है।

(घ) दारूहल्दी, हल्दी, रसौंत, चमेलीपत्र और निम्बपत्र को गोबर के रस में भावित कर बनाई गई वर्ति का अंजन रतौंधी को नष्ट करता है।

(ङ) रसौंत, सोंठ, कालीमिर्च और पिप्पली इन चार द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर पीस कर गोलियां बना लें। गोली को घिसकर (जल में) लेप करने से खुजली और पाक युक्त अंजननामिका (गुहेरी) नामक नेत्र पलकपर होने वाली फुंसी मिटती है।

(च) रसौंत, त्रिफला, मुलैठी को नारियल के जल में पकाकर आठवां भाग जल शेष रखकर उसे गाढ़ाकर उसमें कपूर, सेंधानमक, मधु मिलाकर अंजन करने से पैत्तिकतिमिर नष्ट होता है।

(छ) रसौंत, राल, जस्ते का पुष्प, मैनसिल, समुद्रफेन, सैन्धव, गेरू और मरिच को मधु के साथ पीसकर अंजन करने से अंखों में आने वाला क्लेद और कण्डू मिटते हैं।

(ज) दारूहल्दी का मोटा चूर्ण 60 ग्राम को 2 लीटर जल में पकावें। आधा शेष रहने पर छानकर 60 ग्राम शुद्ध शहद मिलाकर यथाविधि फिल्टर कर लें और स्वच्छ बोतल में भर ऊपर से उत्तम तुत्थ 240 मि.ग्रा. पीसकर

मिला दें। दो-दो बूंद नेत्रों में टपकाने से नेत्रों के विकार स्राव, कण्डू, आरम्भिक परवाल, कुकरे, लालिमा आदि दूर होते हैं।

2. कर्णरोग—(क) 2 भाग रसांजन को 100 भाग परिस्रुत जल में विलयन तैयार कर 3-4 बूंद रोगी के कान में दिन में 3 बार डालने से कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णशूल और कर्णशोथ का शमन होता है।

(ख) रसांजन को सुदर्शन पत्र स्वरस एवं नींबू स्वरस में मिलाकर कान में डालने से कान का दर्द एवं बहना बंद होता है।

(ग) रसांजन को स्त्री के दूध में घिसकर शहद मिलाकर कान में डालने से कर्णस्राव ठीक होता है।

(घ) दारूहरिद्रा मूलत्वक् का बारीक चूर्ण कर कान में डालने से भी लाभ होता है।

3. मुख रोग—(क) उष्णजल में 2 प्रतिशत रसांजन डालकर गण्डूष (कुल्ले) दिन में तीन बार करना चाहिये। इस विलयन के गरारे करने से गले की खराश, स्वरभंग और कास दूर होते हैं।

(ख) दारूहल्दी के क्वाथ में गेरू का चूर्ण और शहद मिलाकर मुख में लगाने से मुखपाक में आराम होता है।

(ग) दारूहल्दी के मूल की छाल का चूर्ण, मुलेठी चूर्ण और हरड़ चूर्ण समान भाग लेकर इसमें शहद और चमेली के पत्तों का स्वरस मिलाकर मुख के छालों पर लगावें।

4. उपदंश के व्रण—दारूहल्दी और रसौंत को गोबर के रस में पीसकर उसमें घी मिलाकर व्रणों पर लेप करने से लाभ होता है।

5. अन्य व्रण—रसौंत के द्रव से व्रण धोना एवं रसौंत का लेप करने से व्रणों का शोधन एवं रोपण होता है।

6. योनिशोथ—दारूहरिद्रा के क्वाथ से योनि का प्रक्षालन करने से लाभ होता है।

7. प्रदर—प्रदर में रसौंत की उत्तरबस्ति देनी चाहिये।

8. उन्माद—पुष्य नक्षत्र के दिन इसकी जड़ को शहद में घिसकर अंजन करने से उन्माद में लाभ होता है।

9. कुष्ठ—(क) दारूहल्दी, इलायची, कूठ, सौंफ, चित्रक और विडंग को पानी के साथ पीसकर लेप करना श्रेयस्कर है।

(ख) रसौंत तथा हरड़ को पीसकर लेप करना चाहिये।

(ग) दारूहल्दी, नागरमोथा, मदनफल, त्रिफला, कंजा, अमलतास, इन्द्रजौ और सप्तपर्ण से सिद्ध जल से स्नान सिद्धार्थक स्नान कहलाता है। इस स्नान से कुष्ठ, त्वग्दोष, शोथ का शमन होता है।

10. शंखक (एक प्रकार का तीव्र शिरःशूल)—दारूहल्दी मंजीठ, नीम की छाल, खस और पद्माख समभाग लेकर पानी के साथ पीसकर लेप करने से यह रोग शान्त होता है।

11. व्रणशोथ—दारूहरिद्रा, काले तिल, सैन्धव, मुलेठी और निसोत के समभाग चूर्ण में घृत मिला लेप करें।

12. गुदपाक—रसांजन को गर्म जल में पीसकर ठण्डा कर गुदा पर लेप करने से विशेषतः बालकों का गुदपाक ठीक होता है।

13. गुदभ्रंश—रसांजन को पानी में खौलाकर इसकी पिचकारी गुदा में देने से लाभ होता है।

14. भगन्दर—रसांजन को डंडाथूहर एवं आक के दूध में मिलाकर बारीक बत्तियां बनाकर छायाशुष्क कर रखें। भगन्दर के छेदों में बत्ती डालकर ऊपर से रसांजन का लेप लगा पट्टी बांधते रहने से पूय, सड़ा हुआ मांस निकल जाता है, कीड़े नष्ट हो जाते हैं तथा थोड़े ही दिनों

में व्रण भर जाते हैं। दीर्घकाल से हुए, पूयस्राव युक्त भगन्दर के अतिरिक्त नाड़ीव्रण (नासूर) में भी ये बत्तियां लाभदायक हैं। रसांजन के स्थान पर दारूहल्दी की मूल-छाल का महीन चूर्ण बनाकर भी उपयोग में ला सकते हैं। इन बत्तियों को कुछ दिन निरन्तर उपयोग में लाना चाहिये।

आभ्यन्तर प्रयोग—

1. कामला—(क) दारूहन्दी की छाल के ताजा छाल का रस निकाल कर पीना या इसका क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर पीवें।

(ख) दारूहल्दी के क्वाथ में हल्दी का चूर्ण मिलाकर सेवन करना हितकारी है।

(ग) दारूहल्दी, हल्दी, कुटकी एवं मूलेठी के चूर्ण को मधु के साथ दें।

(घ) दारूहल्दी और त्रिफला का क्वाथ बनाकर इसमें मधु मिलाकर सेवन करना लाभदायक है।

2. पाण्डु—दारूहल्दी, कुटकी, नीमपत्र, पुनर्नवा और पटोल पत्र इनका क्वाथ दिन में दो बार देना पाण्डुरोग में हितावह है।

3. हलीमक (पाण्डु रोग में ज्वर युक्त नीलवर्ण होना)—दारूहल्दी, हल्दी, कुटकी, खिरैंटी मूल, मुलेठी और मिश्री का समभाग चूर्ण बनाकर शहद एवं घी के साथ में 3-3 ग्राम सेवन करना लाभदायक है।

4. प्लीहावृद्धि—दारूहल्दी 10 ग्राम, कुटकी 4 ग्राम, गिलोय 4 ग्राम, सफेद पुनर्नवा 4 ग्राम का विधिवत् क्वाथ तैयार कर उसमें 5 ग्राम मधु मिलाकर पीवें।

5. यकृत् के रोग—दारूहरिद्रा के क्वाथ पान से यकृत् के रोग शोथ, कामला, प्रमेह, श्लीपद, मेदोवृद्धि आदि ठीक होते हैं। यकृत् प्रदाह होने पर रसांजन के योग न दें।

6. अरोचक—दारूहरिद्रा, दालचीनी और अजवायन समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर 3-4 ग्राम सेवन करें।

7. अतिसार—(क) दारूहल्दी का क्वाथ बनाकर ठण्डा हो जाने पर उसमें मधु मिलाकर पान करें। अतिसार में रसांजन न दें।

(ख) दारूहरिद्रा के जड़ की छाल का चूर्ण 2 ग्राम सेवन करें।

(ग) दारूहल्दी, बच, लोध्र, इन्द्रजौ और सोंठ का सम भाग चूर्ण 3-4 ग्राम सेवन कर ऊपर अनार का रस पीने से वातपित्तज अतिसार मिटता है।

8. विसर्प—दारूहल्दी, पटोलपत्र, कुटकी, मसूर, त्रिफला, निम्ब पत्र, मुलेठी और त्रायमाण इन द्रव्यों का क्वाथ बनाकर उसमें घृत मिलाकर पिलाना विसर्प में लाभप्रद है।

9. प्रवाहिका—रसौंत 50 ग्राम, कमली शोरा 3 ग्राम और नोसादर 3 ग्राम मिलाकर चने बराबर गोलियां बना लें। सुबह-शाम 2-2 गोली सेवन करने से जीर्ण प्रवाहिका में लाभ होता है।

10. छर्दि—दारूहल्दी के फलों (जरिष्क) को अर्क गुलाब में पीसकर छानकर पिलाने से उल्टियां मिटती हैं। इससे पित्तज्वर का भी शमन होता है। साथ ही इसके सेवन से यकृत् और आमाशय की उष्णता दूर होकर वे सशक्त होते हैं।

11. अश्मरी (पथरी)—दारूहरिद्रा, सोंठ, हरड़ और यवक्षार का समभाग चूर्ण 5-5 ग्राम को दही के साथ सेवन करावें। शीघ्र लाभ होगा।

12. उदरकृमि—मूल चूर्ण को उष्ण जल के साथ सेवन करने से उदर कृमि एवं उदरशूल का नाश होता है।

13. वातजन्य शूल—(क) जड़ की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें गुड़ मिलाकर सेवन कराते हैं।

(ख) दारूहल्दी, लशुन और दशमूल क्वाथ वातजन्य रोगों को शान्त करता है।

14. अर्श—(क) रसांजन को मूली के स्वरस से

भावित कर चने के बराबर गोलियां बनाकर सेवन करने से रक्तार्श में लाभ होता है।

(ख) रसांजन से चतुर्थांश नीम के छाया में सुखाये कोमल पत्तों का चूर्ण मिलाकर 2-2 ग्राम सेवन करना अर्श में उपयोगी है। इनकी गोलियां भी बनाकर सेवन की जा सकती हैं। इन गोलियों को वातार्श में आर्द्रक स्वरस के तथा रक्तार्श में आमलक स्वरस से देवें।

(ग) रसांजन को गुलहजारा के पत्तों के रस में पीसकर चने बराबर गोलियां बनाकर सेवन करने से रक्तार्श ठीक हो जाता है।

(घ) रसांजन को कुडे की छाल के साथ 3-4 ग्राम की मात्रा में सेवन करने से अर्श, अतिसार, ग्रहणी, प्रमेह और प्रदर में अच्छा लाभ होता है।

(ङ) रसांजन, हरड़, नीम और बकायन के फलों की गिरि इन चारों को पीसकर चने बराबर गोलियां बनाकर सेवन करें गोलियां गुलाब के अर्क में पीसकर बनाना अधिक हितकर है।

(च) रसांजन 300 मि.ग्रा., नीम बीज की गिरी 120 मि.ग्रा. और बीज रहित मुनक्का 500 मि.ग्रा. इन्हें एकत्र घोटकर पीसकर तीन गोलियां बनावें। एक गोली प्रतिदिन रात्रि में सोते समय सेवन करना अर्श नाशक है।

(छ) रसांजन को नवनीत के साथ खिलाना रक्तार्श में लाभप्रद है।

15. प्रमेह—(क) दारूहरिद्रा और हरिद्रा के क्वाथ को दिन में दो बार पीना लाभदायक है।

(ख) दारूहल्दी, देवदारू, त्रिफला और नागरमोथा का क्वाथ सर्वप्रमेहहर है।

(ग) दारूहल्दी, हल्दी, तगर और विडंग क्वाथ सान्द्रमेह में लाभ करता है।

(घ) दारूहल्दी, अरबी, पाठा और त्रिफला का क्वाथ बनाकर पीना शीतमेह नामक कफजन्य प्रमेह में लाभप्रद है।

(च) दारूहल्दी, उत्पल, मुस्तक का क्वाथ पित्तजन्य प्रमेहों में हितकारी है। उक्त सभी क्वाथों में शहद मिलाकर ही पीना चाहिए।

(छ) दारूहल्दी और हल्दी का समभाग चूर्ण लेकर चार ग्राम को शहद के साथ चाटकर आंवले का रस पीना प्रमेह में लाभप्रद कहा गया है। इसी प्रकार अन्य कफ एवं पित्तजन्य प्रमेहों में इसे उपयोग में लाकर लाभ पहुचाया जा सकता है।

16. त्वग् विकार—(क) दारूहल्दी रसांजन के चूर्ण को गोमूत्र के अनुपान से सेवन करना लाभदायक है।

(ख) इन दोनों के क्वाथ में घृत मिलाकर सेवन करना लाभप्रद है।

17. मुखरोग—दारूहल्दी की जड़, चिरायता, खैर की छाल व इरिमेद (दुर्गन्धित खैर) की छाल डालकर क्वाथ बनाकर इसे छानकर इसमें गैरू का चूर्ण मिलाकर गाढ़ाकर इसमें शक्कर मिला फिर ठन्डा होने पर शहद मिलाकर चिकने पात्र में रखें। इसके सेवन से मुखरोग, दन्त रोग ठीक होते हैं।

18. तृष्णा—अधिक प्यास लगने पर जरिष्क के शर्बत का पान करना हितकारी है।

19. ज्वर—(क) सोम्य विरेचन देने के बाद दारूहल्दी और चिरायता का क्वाथ पिलाने से पित्तप्रधान एवं विषमज्वरों में लाभ होता है। इस क्वाथ से यकृत् प्लीहा वृद्धि में भी लाभ होता है।

(ख) दारूहल्दी, शुण्ठी, दशमूल, पिप्पली, त्रिफला, भारंगी, काकड़ासिंगी और दुरालभा के क्वाथ में एक ग्राम सैन्धव या एक ग्राम शुद्ध हींग डालकर पिलाने से सन्निपातिक ज्वर, सूतिकाज्वर एंव सन्ध्या के समय आने वाला ज्वर दूर होता है।

20. नेत्ररोग—दारूहल्दी, मुलेठी, गिलोय और

त्रिफला का क्वाथ प्रातः सायं पीने से सर्वदोषज नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

21. मूत्रकृच्छ—(क) छाल का चूर्ण आंवला स्वरस व मधु के साथ पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्र में सेवन करें।

(ख) छाल चूर्ण, मुलेठी चूर्ण, ककड़ी बीज चूर्ण 3 ग्राम तण्डुलोदक से सेवन करें।

22. प्रदर—(क) दारूहल्दी, रसांजन, वासापत्र, मुस्तक, चिरायता एवं विल्वफल की गिरी को समान मात्रा में लेकर क्वाथ बना उसमें शहद मिला कर पिलाने से श्वेत प्रदर मिटता है।

(ख) दारूहल्दी के क्वाथ में शिलाजीत 3 ग्राम तक मिलाकर सात दिनों तक सेवन करने से भी प्रदर रोग में उत्तम लाभ होता है।

23. स्तन्यदोष—हरिद्रादिगण की औषधियों का क्वाथ बना कर दिन में दो बार सेवन कराने से स्तन्य दोष दूर होता है।

24. अण्डवृद्धि—दारूहरिद्रा के छाल के चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन कराने से लाभ होता है।

25. उष्णवात—दारूहरिद्रा मूल की छाल का चूर्ण 3-3 ग्राम आंवले के रस तथा मधु के साथ सेवन करावें।

विशेष प्रयोग (विविध शास्त्रीय कल्प)—

क्वाथ—1. दारूहल्दी, रसौंत, नागरमोथा, शुद्ध भिलावा, बेल की गिरी, वासापत्र और चिरायता-इन सात द्रव्यों के क्वाथ में मधु मिलाकर पान करने से गर्भाशयिक शोथ जन्य प्रदर एवं अन्य सभी प्रकार के प्रदर रोग नष्ट होते हैं।—शा.सं.

कई चिकित्सक भिलावे के स्थान पर भिलावे के वृक्ष की छाल या लालचन्दन लेना उपयुक्त समझते हैं।

2. दारूहल्दी, गिलोय, चमेली के पत्र, मुनक्का, अजवायन (या यवासा) और त्रिफला का क्वाथ बनाकर ठण्डा हो जाने पर उसमें शहद मिलाकर पीने से मुखपाक दूर होता है।

चूर्ण—रसौंत, अतीस, कूडे की छाल, इन्द्र जौ, धाय के फूल, सोंठ सब बराबर लेकर बारीक पीसकर 2-3 ग्राम चूर्ण चावलों के धोवन और मधु के साथ चाटने से उग्र रक्तातिसार दूर होता है। मन्द अग्नि प्रदीप्त होती है तथा उदरशूल नष्ट होता है। —च.द.

वटी—रसांजन 50 ग्राम और देशी शुद्ध कपूर 6 ग्राम लेकर एकत्र कर मूली के स्वरस में 6 घन्टों तक खरल कर 350 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। इन्हें बनाते समय दालचीनी के बरीक चूर्ण में डालते जावें तथा पात्र को बार-बार हिलाते रहें, जिससे गोलियां परस्पर चिपके नहीं। दिन में तीन बार 2 से 4 गोली जल के साथ देते रहने से रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द होता है। इनके सेवन से नाड़ीव्रण, सगर्भा का वमन और ज्वर में भी लाभ होता है। *—वनौ. विशे.*

लौह—दारूहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, बायविडंग और लौहभस्म समान भाग लेकर चूर्ण कर एक एक ग्राम की मात्रा में शहद और घृत के साथ चाटने से कामला और पाण्डुरोग दूर होते हैं। *—र.रा.सु.*

यह "दार्व्यादिलौह" के नाम से जाना जाता है।

घृत—1. दारूहल्दी, इन्द्र जौ, पिप्पली, सोंठ, द्राक्षा और कुटकी का समभाग मिश्रित कल्क 55 ग्राम तथा इन 6 द्रव्यों के समभाग मिश्रित जौकुट का क्वाथ (2 किलो में 16 लीटर पानी मिला सिद्ध किया हुआ चतुर्थांश क्वाथ) और एक किलो घृत एकत्र मिला घृत सिद्ध कर लें। इस घृत को पेया या मण्ड के साथ पीने से त्रिदोषज अतिसार भी नष्ट हो जाता है। इस घृत को षडङ्गघृत भी कहते हैं। *—च.सं.चि. 16*

2. दारूहल्दी, हल्दी, शालपर्णी, मरोड़फली, सारिवा, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, गिलोय, मुलेठी, कमल का केशर, पद्मकाष्ठ, कमल, खस, शतावर, हरीतकी, बहेड़ा, आंवला, पंचवल्कल (बड़, गूलर, पीपल, पाकर और

वेंत की छाल) प्रत्येक 10-10 ग्राम लेकर कल्क बनावें। घृत 640 ग्राम में इस कल्क को डालकर पाक करें। परिपाक हो जाने पर छान कर सुरक्षित रख लें। यह 'गौराद्यघृत'' विसर्प, मकड़ी के फफोले और कीटविषजन्य व्रणों को नष्ट करता है। यह घृत विषहरण में उत्कृष्ट है।
—शा. सं.

रसक्रिया—दारूहल्दी, परवल के पत्ते, मुलेठी, नीम की छाल, पद्माख, नीम कमल, श्वेत कमल इन सात द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर जौकुट करें और चतुर्गुण जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। इस छने हुए क्वाथ को पुनः पकावें। क्वाथ के गाढ़ा हो जाने पर चूल्हे पर से उतार कर ठण्डा हो जाने पर इसमें चतुर्थांश मधु एवं मिश्री मिला दें। इस दार्व्यादि-रसक्रिया को नेत्रों में लगाने से आंखों की जलन, नेत्रस्राव, नेत्रों का सदा लाल बने रहना एवं नेत्रशूल रोग नष्ट होते हैं। *—शा. सं.*

लेप—दारुहरिद्रा, मूली के बीज, हरिताल, देवदारू, ताम्बूल पत्र प्रत्येक 12-12 ग्राम लेकर इसमें शंख चूर्ण 3 ग्राम मिलाकर जल में पीसकर लेप करने से समस्त प्रकार के सिध्म (सेहुँआ) रोग नष्ट होते हैं। *—शा. सं.*

तैल—एक लीटर दारूहल्दी का काढ़ा, एक लीटर दशमूल का काढ़ा, एक लीटर मुलेठी का काढ़ा, एक लीटर कदली कन्द का स्वरस और एक लीटर तिल तैल में कूठ, बच, सहिजन की छाल, सौंफ, रसोंत, देवदारू, यवक्षार, सज्जीक्षार, विड़नमक और सेंधानमक सब 25-25 ग्राम लेकर पीस कर कल्क बनाकर उसी में छोड़कर तैल सिद्ध करलें। इस तैल को कान में डालने से कर्णशूल, कर्णनाद, बधिरता, पूतिकर्ण, कर्णपाक, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्ण शोथ आदि सम्पूर्ण कर्णरोग नष्ट होते हैं। *—भै. र.*

पेटेन्ट प्रयोगों में दारुहरिद्रा—धर्मानी ड्रग्स गुड़गांव (सैक्टर 4) द्वारा विनिर्मित ''लिवप्लस'' नामक सिरप व टेबलेट में दारुहल्दी, मकोय, कासनी, पुनर्नवा आदि हैं। ये योग यकृत् की सभी बीमारियों को दूर कर पाचन क्रिया को सुधारते हैं। हिमालया ड्रग की पाइलेक्स टिकिया अर्श में वेदना रक्तस्राव और शोथ को शान्त करने में श्रेष्ठ है। इसमें सर्वाधिक मात्रा दारू हरिद्रासत्व (रसौंत) की है। इसके अतिरिक्त त्रिफलासत्व, अमलतास, महानिम्ब बीज, गूगल आदि भी हैं। रक्तप्रदरं, श्वेतप्रदर, रजोनिवृत्तिकाल की अनियमितता जनित समस्त गर्भाशयिक विकारों को दूर करने वाला योग है ''लेडीटोन सीरप''। जिसका निर्माण कौशिक आयुर्वेद भवन सालासर (राजस्थान) द्वारा किया जाता है। इसमें अशोक, अनार, दाना, शतावरी, मुनक्का, चन्दन आदि के साथ दारुहरिद्रा भी है। अतिसार एवं रक्तातिसार के नियंत्रण हेतु बान ने 'एनटरोडरीन' नामक टिकिया का निर्माण किया है। इसमें सोंठ, मोचरस आदि के साथ दारुहरिद्रा-विल्व-कुटज एक्स. हैं। दिन में तीन-चार बार 2-4 टिकिया देना हितकर है। गर्ग वनौषधि भंडार जो ''डायनौल सीरप'' तैयार करता है, इसमें दारुहरिद्रा, धाय पुष्प, कुटज, दाडिमत्वक्, सौंफ आदि हैं। यह बच्चों के अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार आदि में उपयोगी है। साण्डू का ''बर्बेन्टेरोन कम्पाउन्ड'' एवं ''बर्बेन्टेरोन पेडियाट्रिक सस्पेन्शन'' अतिसार, प्रवाहिका के लिए उत्तम योग है। इनमें दारूहरिद्रा की सर्वाधिक मात्रा है। साण्डू के ''हिमोक्लिन सीरप'' (रक्तशोधक) में भी दारूहरिद्रा है। चर्म रोगों की कारगर औषधि ''रसांजनादि'' कैपसूल हैं। इनमें रसांजन, कुटकी, खदिर आदि हैं। शर्मा मेंडिको के आमवातारि कैपसूलों में भी दारूहल्दी है।

अनुभूत प्रयोग—

1. रक्तार्श का रक्त रोकने वाला प्रयोग—शुद्ध रसौत, बकायन के बीजों की मींगी, छिलका हरड़ 10-10 ग्राम, नीम के बीजों की मींगी 10 ग्राम। सबको अत्यन्त बारीक पीसकर 500 मि.लि. कुकरोन्दा के रस में घोटकर चणक प्रमाण गोलियां बना लें। प्रातः प्रतिदिन एक गोली ताजा जल के साथ प्रयोग करने से रक्तार्श का रक्त बन्द होता है। ***—श्री पं. बाबूराम शर्मा***

(आयु. संसार अप्रेल 1937)

2. नेत्रामृत विन्दु—शुद्ध रसौत, भुनी हुई फिटकरी, शुद्ध सफेद कत्था तीनों 70-70 ग्राम, भीमसेनी कपूर या शुद्ध देशी कपूर 40 ग्राम, उत्तम गुलाब जल आधी बोतल (250 मि.लि.) लेकर पहले गुलाब जल में रसौत को गलाकर छानकर उसमें कत्था डाल दें। जब कत्था गल जाय तब सब चीजें महीन पीस पूर्वोक्त अर्क में डालकर घोलकर छान लें। इससे दुखती हुई आँखें जल्द ठीक हो जाती हैं। हम इसे वर्षों से रोगियों को व्यवहार करा रहे हैं। इससे आंखों की लाली, धुन्ध, रतौंधी, पानी का आना और रोहे आदि नेत्र सम्बन्धी रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं।

—श्री उदयलाल महात्मा जैन

(वैद्य मासिक पत्र जून 1937)

3. कर्ण बिन्दु—दारुहल्दी, बादाम रोगन 12-12 ग्राम, अजवायन, सौंठ, मुलेठी प्रत्येक 3-3 ग्राम, हींग, इन्द्रायन का गूदा, सौंफ, कपूर प्रत्येक 1-1 ग्राम, मूली का रस, करेले के पत्तों का रस, मूली रस और सुदर्शन के पत्तों का रस प्रत्येक 12-12 ग्राम। सभी को इतना पकावें कि द्रव जल जावे। फिर उतार कर तारपीन का तैल 50 ग्राम मिलाकर रखलें। सोते समय रोज दो माह तक कान में डालने से बधिरता, कर्णशूल, कर्णस्राव नष्ट होते हैं।

—डा. श्री राजेन्द्र प्रसाद साहू

(धन्व. जरा व्याधि चिकित्सांक)

4. व्रण रोपक मलहम—दारुहल्दी चूर्ण, मुलहठी चूर्ण, निम्प पत्र चूर्ण, काले तिलों का चूर्ण (कल्क) सभी समान भाग लेकर थोड़े गोघृत में 3 दिनों तक घोटें फिर उचित मात्रा में गोघृत में पुनः घोटकर मलहम बनालें। घाव को नीम की पत्ती 10 ग्राम को 200 मि.लि. पानी में पंका छान कर धोवें। घाव को सुखाकर कपड़े पर मलहम लगा चिपका दें। यह एक सप्ताह में घाव भर देता है। अनेक व्रणनाशक मलहमों से यह उपयोगी मलहम है। अनेक असाध्य, दूषित व्रणों पर इस मलहम के प्रयोग से लाभ हो जाता है।

—पं. श्री विश्वेश्वर दयाल

(गु. सि. प्र. भाग 4)



● **सम्पादकीय टिप्पणी—**

नेत्र विकारों पर रसांजन मधु योग पर एक अनुभव

यह प्रयोग धन्वन्तरि वनौषधि विशेषांक के छटवें भाग में प्रकाशित हुआ है। कई वर्ष पहले हमने इस योग का निर्माण कर एक नेत्र विकार के रोगी जो नेत्र पटल के विकार से असाध्य अवस्था में था प्रयोग कराया था जिसे आशातीत लाभ हुआ था यह योग अन्य नेत्र विकारों में भी श्रेष्ठ कार्यकर हो सकता है। इस योग पर विशेष अनुसंधान कर सुधानिधि के विद्वान पाठक अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

योग—सूखे आंवला 100 ग्राम को लगभग 1 किलो जल में डालकर औटावें। चौथाई शेष रहने पर उसे छान लें। शेष भाग में रसौत 50 ग्राम तथा गाय का घृत 50 ग्राम डालकर पुनः पाक करें। गाढ़ा होने पर उतार लें। शेष द्रव्यों में बराबर शहद मिलाकर शीशी में भरकर रख लें। मात्रा—1-2 चम्मच सुबह शाम दूध के साथ दें।

उपयोग—यह विभिन्न नेत्र विकारों के लिए श्रेष्ठ योग है। यदि इसका प्रयोग सप्तामृत लौह के साथ किया जाये तो और लाभकर होता है।

—वैद्य गोपालशरण गर्ग

हरीतकी
(Terminalia Chebula)

कलित विविधस्वरूपा विगलितदोषा मुदं वितन्वाना।
स्फुरतु सदायतिसुखदा श्री पथ्या सर्व जनपथ्या।।

आयुर्वेद मार्तण्ड विश्रुतकीर्ति श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी ने इस आर्या छन्द से हरीतकी और भगवती के गुणों का बखान किया है। इसको वे स्वयं व्याख्यायित करते हैं—''हरीवकीपक्षे सत्या शोभनया आयत्या उत्तर कालेन सुखदा, पक्षे सदा सर्वदायत्या विच्छेदसंज्ञिकया सुखदा पक्षे सदा यतीनां यतात्मनां सुखदेति। हरीतकी, पथ्यार्या छन्दोविशेषः भगवती चेति त्र्यर्थोयमार्या''।

''पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्'' चरकोक्त इस उक्ति के अनुसार पथ (स्रोतस) के वैगुण्य को समाप्त कर सुख पहुचाने वाला प्रिय आहार-विहार पथ्य कहलाता है। युक्तिव्यपाश्वय चिकित्सा में औषधव्यवस्था की अपेक्षाँ पथ्य व्यवस्था का विशेष महत्व है। पथ्य की उक्त व्यापक परिभाषा से औषध भी पथ्य ही है सुतरां आरोग्य संरक्षण करने वाले और आरोग्य प्रदान करने वाले सभी द्रव्य-अद्रव्य पथ्य कहे जाते हैं। इन पथ्यों की बहुत बड़ी सूची है। इन पथ्यों में हरीतकी सर्वोत्तम पथ्य है (हरीतकी पथ्यानाम्-च.सू. 25)। तब ही तो इसे पथ्या के नाम से भी जाना जाने लगा। यह पथ्या ''स्वस्थवृत्तौ हितम्'' और 'दोषप्रशमनम्'' दोनों ही दृष्टियों से हितकर है। यह उत्तम पथ्य होने के साथ ही उत्तम औषधि भी है—''रोगहरत्वे हरीतकी प्रकर्षवतीति कृत्वा हरीतक्यग्रेऽभिहिता'' (च. चि. 1-1-29 की टीका में चक्रपाणि)। मदनपाल नृपति भी लिखते हैं—

हरते सर्वरोगांश्च तस्मात् प्रोक्ता हरीतकी।

इसके साथ ही यह रसायन (जराव्याधिहर) भी है अतः सभी दृष्टियों से इसकी महत्ता सर्वोपरि है। जिस द्रव्य का आचार्यों ने सर्वप्रथम वर्णन किया उस का हम वर्णन अन्त में कर रहे हैं क्योंकि हम आकारादि क्रम की परिधि में बंधे हुये हैं। इस विवशता का हमें खेद है।

बहुत से रोगों का हरण करने वाली इस हरीतकी को मुख्यतः ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, कासघ्न, अर्शोघ्न और प्रजास्थापन (च. सू. 4) कहा गया है। त्रिफला, आमलक्यादि और परुषकादि गणों में भी (सुश्रुत. सू. 38) इसकी गणना की गई है। आचार्य भाव मिश्र ने अपने निघन्टु के प्रथम हरीतक्यादि वर्ग में इसका सर्व प्रथम वर्णन किया है तब ही तो इस प्रथम वर्ग को ''हरीतक्यादि वर्ग'' नाम दिया गया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने जिन सात रसायन द्रव्यों का वर्णन किया उनमें हरीतकी का सर्वप्रथम वर्णन किया है। प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार भी यह हरीतकी कुल (काम्ब्रेटेसी) की वनौषधि है।

नाम—

संस्कृत—हरीतकी, अभया, पथ्या
हिन्दी—हरड़, हर्रे
गुजराती—हरडे
मराठी—हरडे
बंगला—हरीतकी
तामिल—कदुक्काई
तेलगू—करक्काई
उड़िया—कारेबी
अरबी—हलीलज
फारसी—हलील
अंग्रेजी—चेबुलिक मिरोबेलन (Chebulic Myrobalan)

लैटिन—टर्मिनेलिया चेबुला (Terminalia Chebula)

प्राप्ति स्थान—यह समस्त भारत विशेषतः कांगड़ा, मुंबई, पश्चिम बंगाल और आसाम में एक हजार फुट से तीन हजार फुट तक की ऊँचाई पर होती है। अमृतसर व होशियारपुर इसके मुख्य बाजार हैं।

रासायनिक संगठन—टैनिक अम्ल (20 से 40 प्रतिशत तक); गैलिक अम्ल और राल आदि होते हैं। टैनिन के घटकों में चेबुलेजिक एसिड, चेबुलिनिक एसिड और कोरिलेजिन प्रमुख हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका वृक्ष 50 से 80 फुट तक ऊँचा होता है। इसका तना सीधा और मजबूत होता है जिस पर गहरे भूरे रंग की छाल प्रायः लम्बाई में फटी हुई होती है। शाखायें गोल एवं कोमल होती हैं। पत्र—3 से 8 इंच लम्बे, 2 से 4 इंच चौड़े, आकार में वासा के पत्तों के समान, मसृण, हरित तथा लगभग अभिमुख क्रम से स्थित होते हैं। पत्रवृन्त के शीर्ष भाग पर दो बड़ी ग्रन्थियां होती हैं और पत्र सिरायें 6 से 8 जोड़ी होती हैं। पुष्प—छोटे, पीताभ श्वेत तथा लम्बी मंजरियों से युक्त होते हैं। फल—एक-दो इंच लम्बे, कठोर होते हैं। आर्द्रावस्था में ये फल गोल होते हैं सूख जाने पर इन के पृष्ठ भाग पर पांच रेखायें दृष्टिगोचर होती हैं। ये कच्चे हरे तथा पकने पर पीताभ धूसर होते हैं। प्रत्येक फल में एक बीज होता है।

फरवरी मार्च में पत्र झड़ जाते हैं। अप्रेल-मई में नवीन पत्रों के साथ पुष्प आते हैं। फल शीतकाल में आते हैं। पके हुये फलों का संग्रह जनवरी से अप्रेल तक किया जाता है।

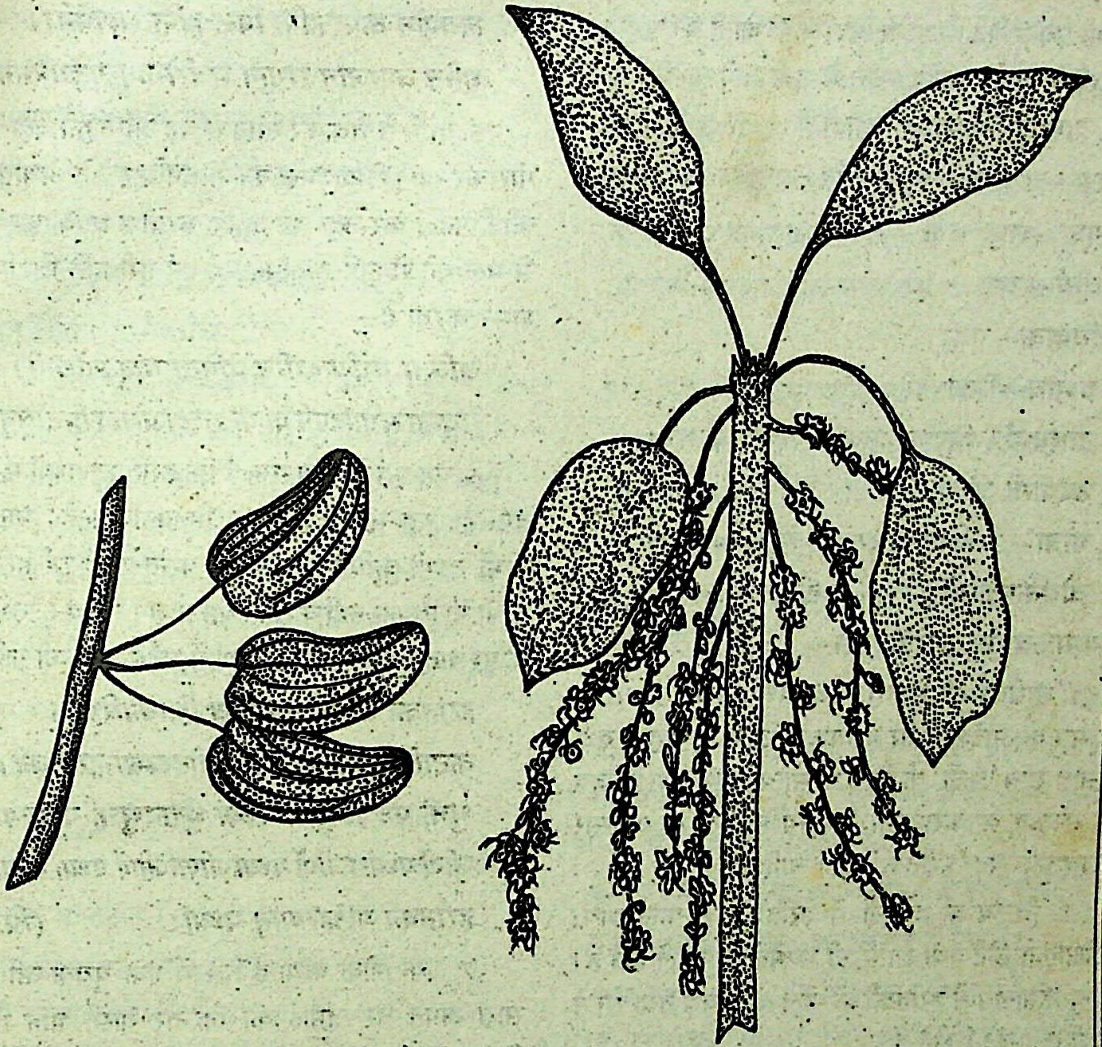
भेद—आचार्य भावमिश्र ने इसके सात भेदों (जातियों) का वर्णन किया है—विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभ्या, जीवन्ती और चेतकी। चेतकी भी दो प्रकार की कही गई है श्वेत और कृष्ण। श्वेत चेतकी छः अंगुल लम्बी तथा कृष्ण छोटी एक अंगुल होती है। यह वर्गीकरण देश भेद एवं गुणकर्म भेद के अनुसार किया गया। चेतकी हरीतकी के लिए कहा गया है कि इसे हाथ में रखने मात्र से ही रेचन हो जाता है तथा इसके पेड़ के नीचे से गुजरने से ही रेचन होने लगता है। आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि—"मैंने मध्यप्रदेश के उपसंचालक काल में शहडोल की यात्रा करनी पड़ी। वहाँ एक कहानी सुनाई गई कि यहाँ एक ऐसा हरड़ का पेड़ा था कि उसके नीचे जाते ही मलत्याग हो जाता था। एक अंगरेज अफसर उसके नीचे तम्बू गाड़ना चाहता था। जब उसने यह दुर्दशा देखी तो उसे भूतों का अड्डा समझकर जलबा दियां।" वैसे प्राचीनों ने चेतकी का उत्पत्तिस्थान हिमाचल कहा है। राजनिघन्टुकार ने इन सभी प्रभेदों का उत्पत्ति स्थान बतलाया है।

अवस्था भेद से एक ही हरीतकी फल तीन प्रकार का होता है—

1. गुठली होने से पूर्व कच्चे कोमल फल स्वयं ही वृक्ष से गिर जाते हैं या तोड़कर सुखा लिये जाते हैं। इसे बाल हरीतकी, चेतकी हरड़, जुवा हरड़, जोंगी हरड़, काली हरड़, छोटी हरड़ नाम से जाना जाता है। यह प्रायः गन्धहीन और स्वाद में कषाय तथा किंचित् तिक्त होती है। इसका वर्ण भूरा काला होता है। इस पर उन्नत रेखायें होती हैं। इसे यूनानी चिकित्सक "हलीलए स्याह" कहते हैं। यह अपक्वफल होता है।

2. अर्धपक्वफल इस हरीतकी को पीली हरड़ कहते हैं। फारसी में इसे "हलीलए जर्द" (यूनानी) कहते हैं। इसका वर्ण भूरा-पीला होता है। यह स्वाद में कसैला होता है। ये गुठली होने के बाद प्रोढ़ावस्था में अर्धपक्व फल संग्रहित किये जाते हैं।

3. पूर्ण पक्व फल को बड़ी हरड़ कहा जाता है। इसे काबुली हरड़, अम्बिया हरड़, अमृतसरी हरड़ भी कहते हैं। इसे यूनानी चिकित्सक "हलीलए काबुली" कहते हैं।



हरीतकी (TERMINALIA CHEBULA)

नाम—सं०—हरीतकी, अभया; हि०—हरड़; गु० म०—हरड़े; अं.—चेबुलिक मिरोबेलन; लै०—टर्मिनेलिया चेबुला।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत विशेषतः पश्चिम बंगाल, आसाम, मुंबई आदि।

उपयोगी अंग—फल।

दोषशमन—त्रिदोष शामक।

रोगोपयोग—अर्श, गुल्म, विबन्ध, आनाह, शोथ, पाण्डु, उदररोग, कास आदि।

मुख्ययोग—पथ्यादि क्वाथ, अभयारिष्ट, अभयादि मोदक आदि।

यह सभी प्रकार की हरड़ों से श्रेष्ठ कही जाती है। यह नई, बड़ी, छोटी गुठली वाली, जल में डूब जाने वाली, बजन में 20 ग्राम की श्रेष्ठ कही जाती है।

रस—पंचरस (लवणवर्जित) प्रधानतः कषायरस

गुण—लघु, रूक्ष

वीर्य—उष्ण

विपाक—मधुर

प्रभाव—त्रिदोषहर

दोषकर्म—त्रिदोषशामक विशेषतः वातहर।

उपयोगी अंग—फल।

मात्रा—3-6 ग्राम (रसायन हेतु 3-4 ग्राम)

वीर्यकालावधि—एक से तीन वर्ष तक।

अन्य महत्वपूर्ण जानकारियाँ—

1. हरीतक्यादिभ्यश्च (अष्टाध्यायी-4-3-167) इस सूत्र के आदेशानुसार हरीतकी संज्ञा का व्यवहार वृक्ष के साथ साथ 'फल' के लिए भी मान्य किया गया है, जब कि संस्कृत व्याकरण की सामान्य मान्यता के अनुसार फलवाचक पद 'हरीतक' होना चाहिये।

2. विन्ध्य के जंगलों में हरीतकी के फल प्रायः अपेक्षाकृत छोटे तथा रंग में भी मटमैले या काले होते हैं। किन्तु हिमालय में हरीतकी के फल बहुत बड़े तथा रंग में भी पीले (जर्द) होते हैं।

3. हरीतकी मधुर तिक्त कषाय होने से पित्त का, कटुतिक्त कषाय होने से कफ का तथा अम्ल-मधुर होने से वात का शमन करती है—

स्वादुतिक्तकषायत्वात् पित्तहृत् कफहृत्तु सा।
कटुतिक्त कषायत्वादम्लत्वाद् वातहृच्छिवा।।

4. हरीतकी लवण के साथ सेवन करने से कफ का, मिश्री के साथ पित्त का, घी के साथ वात से उत्पन्न हुये रोगों का तथा गुड़ के साथ खाने से सम्पूर्ण रोगों का नाश करती है।

लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा।
घृतेन वातजान् रोगान् सर्वरोगान् गुड़ान्विता।।

5. दाँतों से चबाकर खाने से यह अग्नि को बढ़ाती है। पीसकर खाने से यह मल का शोधन करती है अर्थात् मल को निकाल कर उदर की शुद्धि करती है। पकाकर खाने से मल को रोकती है और भुनी हुई हरीतकी त्रिदोष का शमन करती है—

चर्विता वर्धयत्याग्निं पेषिता मल शोधनी।
स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत्।।

6. यह पूर्व में कहा गया है कि हरीतकी पथ्यों में श्रेष्ठतमा है। यह माता के समान हितकारिणी है। माता तो कभी-कभी कुपित हो जाती है परन्तु खाई हुई हरीतकी कभी भी विकार नहीं करती। यह भोजन से पूर्व और भोजन के पश्चात् तथा जीर्ण में अजीर्ण में सदैव पथ्य की गई है—

हरीतकी प्रयोगेण मातैव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी।।
भुक्ते पथ्याऽभुक्ते पथ्या भुक्ताभुक्ते पथ्यापथ्या।
जीर्णे पथ्याऽजीर्णे पथ्या जीर्णाजीर्णे पथ्या पथ्या।।
हरीतकी मलहरणात् पथ्या **(प्रि. व्र.)**

7. एक लोक कथा है जिसमें एक युवक की दुष्टा सास अपने घर-जमाई को निरन्तर बासी भात खिला खिलाकर बीमार कर देती हैं। हालत ज्यादा खराब होने पर उसकी पत्नी इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर उसे सलाह देती है कि वह हरड़ वृक्ष की लकड़ी के पट्टे पर सोया करे"। वह ऐसे ही करता है जिससे वह व्याधिमुक्त हो जाता है।

8. हरीतकी के बीजों की मज्जा भारी, वातपित्त शामक तथा नेत्रों के लिए हितकारी है।

9. अतिखिन्न, अतिक्षीण, अतिकृश, रूक्ष, लंघन कर्शित जिसका खून निकाला गया हो, नवीन ज्वर वाला, गर्भ-वती, हनुस्तम्भ-गलग्रह-मुखशोष-अधिकतृष्णा

पित्ताधिक्य आदि रोगों से ग्रसित को हरीतकी का सेवन नहीं करना चाहिये—

तृष्णायां मुखशोषे च हनुस्तम्भे गलग्रहे।
नवज्वरे तथा क्षीणे गर्भिण्यां न प्रशस्यते।।
अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च
रूक्षः कृशो लंघनकर्शितश्च।
पित्ताधिको गर्भवतीच नारी
विमुक्तरक्तस्त्वभयां न खादेत्।।

10. हरीतकी के फल का भार द्विकर्ष (20 ग्राम) कहा गया है और विभीतकफल का कर्ष (10 ग्राम) कहा गया है अतः हरीतकी का एक फल, विभीतक के दो फल और आमलक के चार फल लेने से तीनों की मात्रा बराबर हो जाती है और इन तीनों के मिश्रण को त्रिफला कहा गया है। यह त्रिफला विबन्ध, प्रमेह, कुष्ठ, नेत्ररोग, अग्निमांद्य एवं विषमज्वर आदि में लाभप्रद है।

अभयैका प्रदातव्या द्वावेव तु विभीतकौ।
धात्रीफलानि चत्वारि त्रिफलेयं प्रकीर्तिता।।

इनमें हरीतकी विशेषतः वातशामक, विभीतक कफ शामक और आमलक पित्तशामक कहा गया है।

11. पथ्या स्वास्थ्य का राजमार्ग है जिससे स्रोतों की शुद्धि होने के कारण शरीर में प्रशस्त धातुओं का संवहन होता है। इसके सेवन से स्रोतों का अवरोध दूर होता है। यह पथ्य (स्रोतोंके लिये हितकर) द्रव्यों में श्रेष्ठ मानी गई है। इसके सेवन से मनुष्य रोगों के भय से मुक्त हो जाता है अतः इसे अभया कहते हैं। शरीर के विबद्ध मलों का निर्हरण करने के कारण इसका नाम हरीतकी सार्थक है। शरीर धातुओं का क्षय रोक कर वयः स्थापन होनेसे यह कायस्था कही गई है।

गुणधर्म विवेचन—

हरीतकी पंचरसाऽलवणा तुवरा परम्।
रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी।।
चक्षुष्या लघुरायुष्या वृंहणी चानुलोमनी।
श्वास कास प्रमेहार्शः कुष्ठशोथोदरक्रिमीन्।।
वैसर्प्यग्रहणी रोग विबन्धविषमज्वरान्।।
गुल्माध्मान व्रणच्छर्दिहिक्का कण्ठहृदामयान्।।
कामलां शूलमानाहं प्लीहानं चं यकृद्ददम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं च नाशयेत।।

—भा. प्र. नि.

हरीतकीं पंचरसामुष्णामलवणां शिवाम्।
दोषानुलोमनीं लघ्वीं विद्याद् दीपन पाचनीम्।।
विशेषाद् वातशमनीं दोषत्रयहरीं सराम्।
बहुरोगप्रशमनीं बुद्धीन्द्रियबलप्रदाम्।।
अर्शोगुल्ममुदावर्त्तमानाहमुदरं नावम्।।
हन्ति शोथंच पाण्डुंच वैस्वर्यं कासमुद्धतम्।।

—प्रि. नि.

वैसे तो यह सभी स्रोतों के लिए पथ्या (पथ्य श्रेष्ठ) होने से उपयोगी है परन्तु यह पुरीषवह स्रोतस् की श्रेष्ठ औषधि है क्योंकि यह अनुलोमन है—

कृत्वा पाकं मलानां च भित्वा बन्धमधो नयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी।।

सामान्यतः अपक्व मल या साममल वायु को उत्पन्न करता है, आंत्रों की भित्ति पर चिपका रहता है अतः केवल रेचक द्रव्य ऐसी स्थिति में पूरा कार्य नहीं करता और रेचन करे भी तो उदर वेदना होती है। ऐसी स्थिति में मलों का पाचन करें और कठिनबद्ध मल को तोड़कर बाहर निकाले ऐसी औषध चाहिए इन कार्यों को अनुलोमन द्रव्य कहते हैं। पुरीष को निकालने के साथ ही ये द्रव्य वायु का भी अनुलोमन करते हैं। हरीतकी सर्वोत्तम अनुलोमन द्रव्य है। यहाँ पर मलों की बात कही गई है स्पष्टतः पुरीष की ही बात नहीं। अतः कुछ विद्वान् अनुलोमन का क्षेत्र केवल पुरीषवह स्रोतस् ही नहीं अपितु समस्त शरीर मानते हैं।

उनके मत से सभी वैकारिक भाव मल कहलाते हैं और वे कहीं भी किसी भी स्रोतस में हों उन्हें पचाकर बाहर निकालना अनुलोमन है। हरीतकी का अनुलोमन कर्म कोष्ठस्थ तथा सर्व शरीरगत भी है। अनुलोमन शब्द इस ओर भी संकेत करता है कि वैकारिक मलों की प्रतिलोमगति (विपरीत गति) को ठीक करना भी अनुलोमन कर्म है। जब अपानवायु बढ़कर विलोमगति करता है तब भी अनुलोमक कर्म द्वारा उसका चिकित्सा की जाती है। *—द्रव्यगुण सिद्धान्त*

रसायन द्रव्य वातादि दोषों, रसादि धातुओं तथा स्वेदादिमलों को वहन करने वाले मार्गों के अवरोध को दूर कर उनके अभिवहन को सुधारते हैं। इससे रोगों को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियां तो दूर होती ही हैं साथ में रसविनिमय सुधर जाने से धातुओं का एवं शरीर के सभी अंगों का सम्यक् तर्पण होता है। इसके फलस्वरूप आयु की वृद्धि होती है। इसी कारण रसायन द्रव्यों को रोगहारक तथा वयः स्थापन कहा जाता है। ऐसे रसायन द्रव्यों में हरीतकी का विशेष महत्व है। यही बात आलेख के प्रारम्भ में ही व्यक्त की गई है। भगवान् चरक ने चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय को "अभयामलकीय" नाम देकर इसके रयायन कर्म को ही व्यक्त किया है। सर्व प्रथम हरीतकी का वर्णन करना इसके रयायनत्व को दर्शानें के लिए पर्याप्त है।

भगवान् धन्वन्तरि जब समुद्र से प्रकट हुये तो उनके हाथ में यह हरीतकी थी। बंगाल में देवी देवताओं की पूजा सामग्री में हरीतकी का भी प्रमुखस्थान होता है। यह इसकी रसायन महत्ता को दर्शाते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मालवीय जी हरीतकी का सेवन करते थे। जिसके कारण उनकी खून की नलियां एक बालक के समान मुलायम और चौड़ी रही और उन्होंने 85 वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त किया।

चरक संहिता में वर्णित है कि स्नेहन स्वेदन करने के बाद कोष्ठ शुद्धि हेतु सैन्धव, आमलक, गुड़, वचा, विडंग, हरिद्रा, पिप्पली और सोंठ इन आठ द्रव्यों को बराबर लेकर इन सबके बराबर हरीतकी ले चूर्ण बनाकर यथोचित मात्रा में सेवन करना चाहिये। इसके बाद हरीतकी के योगों का सेवन करना हितावह है। हरीतक्यादि दो योग चरक संहिता में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त ब्राह्म रसायन भी हरीतकी और आमलक का योग है। कविराज गंगाधर ने कहा है कि कपाल रंजनादिकन्तु भेषजं न रसायनम्" अर्थात् खोपड़ी रंग देने वाले ही ये रसायन नहीं हैं अपितु इन रसायनों के सेवन से बुढ़ापा रूपी रोग का विध्वंस होता है। रसायन सेवी बलिष्ठ दीर्घायुष्य युक्त मेधावी तेजस्वी और यशस्वी होता है।

वृद्ध वाग्भट ने अपने अष्टांग संग्रह उत्तर स्थान अध्याय 49 में इस हरीतकी रसायन का उल्लेख किया है—हिमालय से प्राप्त परिपक्व पूर्ण रस वीर्य युक्त स्वस्थ 256 तोला (एक तोला = 12 ग्राम) हरीतकी को 1024 तोला गाय के दूध में दोलायन्त्र द्वारा मन्द अग्नि पर संस्वेदित करें। मुलायम होनेपर उतार कर पोंछ कर एक आढक (3 किलो 72 ग्राम) गाय के घी तथा इतने ही मधु में डुबोकर पात्र में रखें। तीन दिन रखे रहने के बाद प्रतिदिन इसे इतनी मात्रा में खावें जिससे भूख कम न हो। हरीतकी का पाचन हो जाने पर शालि या साठी के चावलों का भात दूध के साथ खावें। यह प्रयोग सब हरीतकी समाप्त होने तक किया जाना चाहिए। इसके सेवन से वह नीरोग रहता हुआ 100 वर्षों तक जीता है। इसी प्रकार का हरीतकीयुक्त रसायन रस रत्नसमुच्चय में भी "महाकनक सुन्दर रस" नाम से वर्णित है। जिसकी प्रशस्ति में कहा गया है—

जीवेद्वर्षशतं साग्रं वलीपलितवर्जितः।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो नित्यं स्त्रीशतसेवकः।।

आचार्य भावमिश्र ने रसायन कर्म हेतु ऋतुहरीतकी का वर्णन किया है—

सिन्धूत्थ शर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्।
वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायन् गुणैविषा।।

1. वर्षा	श्रावाण भाद्रपद	हरीतकी चूर्ण 4 ग्राम	सैन्धव 1 ग्राम
2. शरद्	आश्विन-कार्तिक	हरीतकी चूर्ण 4 ग्राम	शर्करा 4 ग्राम
3. हेमन्त	मार्ग. - पौष	हरीतकी चूर्ण 4 ग्राम	शुंण्ठी चूर्ण 1 ग्राम
4. शिशिर	माघ-फाल्गुन	हरीतकी चूर्ण 4 ग्राम	पिप्पली चूर्ण 500 मि.ग्रा.
5. वसन्त	चैत्र-वैशाख	हरीतकी चूर्ण 4 ग्राम	मधु 5 ग्राम
6. ग्रीष्म	जेष्ठ-आषाण	हरीतकी चूर्ण 4 ग्राम	गुड़ 5 ग्राम

इस प्रकार एक वर्ष तक ऋतु हरीतकी के सेवन से सभी रोग नष्ट होकर स्वास्थ्य स्थिर रहता है, आयु बढ़ती है तथा रसायन गुणों की प्राप्ति होती है।

कुछ अन्य हरीतकी रसायन प्रयोग—

1. कल्प—रसायन लाभ के लिये हरीतकी का 60 दिनों का कल्प केरूप में प्रयोग करना चाहिये। एक हरीतकी (छोटी) पानी में रात में भिगो दें। प्रात: 5 मुनक्का के साथ उसे पीसकर पिला दें। नित्य एक हरड़ बढ़ावें तथा मुनक्का भी बढ़ाते जावें। फिर 20 वें दिन 20 हरड़ और अगले 20 दिनों तक 20 हरड़ नित्य लें फिर क्रमश: रोज एक एक कम करें। भोजन में दूध का सेवन विशेष करें तो एक समय पुराने शालि चावल तथा दूध ही लें। चावलों में घी-बूरा भी मिलावें। इस प्रकार कल्प रूप में सेवन करने से आयु, कान्ति, मेधा, बल, सौन्दर्य तथा स्वास्थ्य की वृद्धि होकर शरीर दृढ़ होता है तथा आयु स्थिर होती है।

—डा. श्री सुरेश शर्मा

(सुधा. जुलाई 79)

2. हरीतकी, चित्रक, शुण्ठी, गुडूची और मूसली का चूर्ण गुड के साथ खाने से सभी रोग नष्ट होते हैं तथा दीर्घ आयु प्राप्त होती है। ***—अग्नि पुराण 282/45-46.***

3. बाल हरड़ 40 किलो, काले भांगरे का रस 40 किलो, गोखरू पंचांग 40 किलो, पंवाड़ के बीज 10 किलो, पुरना गुड़ 10 किलो उत्तम शहद 10 किलो। सबको मिलाकर आंवले के बराबर वटक बनालें। एक वटक नित्य प्रात: एक वर्ष तक निरन्तर सेवन करने से निश्चय ही बाल काले होकर नई जवानी प्राप्त होगी। अंग पुष्ट होंगे। यह जराहरण कल्प है। ***—श्री मुन्नालाल गुप्त***

(धन्व. जरा. चिकि.)

4. हरड़ के चूर्ण को घी में मिला लोहे के बर्तन में रात्रि को लेपकर दें। सुबह निकाल शहद-घी मिलाकर सेवन करें (तीनों 3-3 ग्राम) इससे बल वृद्धि होगी, रोगोत्पत्ति नहीं होगी। आयु भी बढ़ेगी।

—आचार्य श्री उदय लाल महात्मा

(धन्व. वनौ. वि.)

5. पीली हरड़ गुठली रहित का 3 ग्राम चूर्ण आधा किलो दूध के साथ प्रतिदिन रात्रि में एक वर्ष तक सेवन किया जाय तो मनुष्य बीमारियों से दूर रहता है। यौवन स्थिर रहता है। समय से पूर्व बुढ़ापा नहीं आता।

—परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

(चम. औषधियां)

त्रिफला के समभाग चूर्ण में समभाग घृत मिलाकर सेवन करने से भी कफपित्त प्रकोप जन्य रोग, कुष्ठ, प्रमेह, जीर्णज्वर आदि दूर होते हैं। इससे नेत्र ज्योति बढ़ती हैं और शरीर सुदृढ़ होता है। चक्रदत्त में वर्णित त्रिफलाघृत, महात्रिफलाद्यं घृत, त्रैफलघृत, फल त्रिकादिघृत भी इस निमित्त सेवन किये जा सकते हैं। इनके सेवन से दृष्टि प्रसादन के साथ जराव्याधि का विध्वंस होता है। आचार्य वाग्भट ने घृत में हरीतकी को प्रतप्त कर उस हरीतकी को

घृत को लाभप्रद कहा है और ऋतु हरीतकी में वर्णित द्रव्यों के साथ हरीतकी सेवन को हितकर कहा है—

गुडेन मधुना शुंण्ठ्या कृष्णया लवणेन वा।
द्वे द्वे खादन् सदा पथ्ये जीवेद्वर्ष शतं सुखी।।
हरीतकीं सर्पिषि संप्रताप्य
समश्नतस्तत्पिबतो घृतं च।
भवेच्चिरस्थापि बलं शरीरे
सकृत्कृतं साधु यथा कृतज्ञे।।

—अ. हृ. उ. स्था. 39

ग्राम्य जीवन में उत्तम स्वास्थ्य हेतु जो उक्तियां प्रचलित हैं उनमें एक यह है कि—

"सावन हर्रे भादो चीत, क्वार माह गुड़ खाओ मीत।"

अर्थात् श्रावण मास में हरीतकी, भाद्रपद में चित्रक, क्वार मास में गुड़ खाना चाहिये। त्रिफला को घी-शक्कर के साथ खाना भी शक्तिवर्धक कहा गया है—

हरड़ बहेड़ा आंवला घी शक्कर में खाय।
हाथी दाबै कांख में साठ कोस ले जाय।।

वस्तुतः यह अभया अभया ही है, सतत सेवन से निःसन्देह रयायन है—

अभ्या ह्यभ्या शुभप्रदा
सतताभ्यासवशाद्रसायनम्।।

—कल्याणकारक

यह पूर्व में कहा गया है कि यह अनुलोमन है। अनुलोमन को ही संर किंवा मृदुरेचन भी कहा जाता है। यह दीपन-पाचन, कृमिघ्न होने के अतिरिक्त यकृदुत्तेजक भी है। स्रोतः शोधन के लिए तो यह सर्वश्रेष्ठ है ही। अजीर्ण में मंजूषाकार इसके सेवन का प्रकार इस प्रकार लिखते हैं—

प्रतीते भोजनाजीर्णे संसेवध्वं शिवामृतम्।

—भोजनाजीर्णे प्रतीते सति शिवामृतं "हरडै का पानी" इति प्रसिद्धं संसेवध्वम्। विधि—हरीतकीमुत्क्वाथ्य, हिंगुधूपिते चिक्कणे मृत्यात्रे तत्पानीयमाधाय जीरकलवणमरिचादिवस्तूनि निक्षिप्य, कांजिकविधिना सम्पादनीयम्। भूयो भूयश्वेदमजीर्णे संसेव्यम्।

—कुंचिका

आचार्य वाग्भट ने बडवामुख चूर्ण को अजीर्ण में उपयोगी कहा है जो हरीतकी, शुण्ठी आदि से तैयार किया जाता है—

पथ्यानागरकृष्णाकरंजवेल्लाग्निभिः सितातुल्यैः।
वडवामुखइव जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम्।।

—अ. हृ. चि. 8

कई आचार्य इसमें विडंग के स्थान पर विल्व मिलाते हैं। अजीर्ण एवं अग्निमांद्य आदि में ये प्रयोग भी हितकर हैं—

हरीतकी की धान्यतुषोदसिद्धा
सपिप्पली सैन्धव हिंगुयुक्ता।
सोद्‌गारधूमं भृशमप्यजीर्णं
विजित्य सद्यो जनयेत क्षुधांच।।

—च. द.

हरीतकी का यह प्रयोग उत्तम अग्निवर्धक है—

हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा।
सैन्धवोपहिता वापि सतत्येनाग्निदीपनी।।

शार्ङ्गधरोक्त हरीतक्यादि क्वाथ भी उत्तम दीपन-पाचन प्रयोग है। अजीर्ण-अरुचि-विबन्ध आदि में हरड़ पीपलामूल और वेल का क्वाथ सैंधानमक के साथ हितकारी है—

पथ्याग्रन्थिकविल्वोत्थः क्वाथः सैन्धवसंयुतः।
विड्विबन्धं तथाजीर्णमरूचिंच विनश्यति।।

—क्वा. म. मा.

अरुचि, अफारा, जी मिचलाना, छर्दि, ग्रहणी आदि

में छोटी हरड़े को तीन दिन गोमूत्र में भिगोवें, तीन दिन तक्र में भिगोवें और इसके बाद एक माह तक नीबू के रस में भिगो कर रखें (काच के पात्र में)। इसके बाद इसमें, सेंधानमक और जीरा मिलाकर धूप में सुखाकर चूर्ण तैयार कर सेवन करें। छर्दि में हरीतकी सेवन का प्रकार यह है—

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिक संयुतम्।
अधोभागीकृते दोषे छर्दिः क्षिप्रं निवर्तते।।

—च. द.

वेगों के रोकने से उदावर्त रोग उत्पन्न होता है। इस रोग की निरुक्ति है—उद्‌भूतेन वेगविधारणेनावृतस्य वायोर्वर्तनमित्युदावर्तनिरुक्तिः। इसमें हरीतकी, यवक्षार, पीलु और निशोथ के चूर्ण को घी के साथ सेवन करना हितकारक कहा गया है—

हरीतकी यवक्षार पीलूनि त्रिवृत्ता तथा।
घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त विनाशनम्।।

—च. द.

अर्श नामक रोग में हरीतकी का प्रयोग खूब होता है। अभयारिष्ट, कांकायनमोदक, मणिभद्रमोदक, बाहुशालगुड़ आदि शास्त्रीय योगों में हरीतकी उपयोग में लायी जाती है। गोमूत्र भावित हरीतकी गुड़ के साथ देने से अर्श दूर होते हैं। अर्श, अतिसार, ग्रहणी आदि पाचन संस्थानगत रोग प्रायः अग्नि की मंदता से ही उत्पन्न होते हैं और हरीतकी के साथ गुड़ का सेवन अग्नि की मन्दता को दूर कर रोग का निवारण करता है। यद्यपि अकेला गुड़ अग्निमांद्यकर है किन्तु हरीतकी के साथ इसका सेवन अग्निमांद्य निवारक कहा गया है—

गुडः कर्ताग्निसादस्य
सह न त्वभयादिभिः।
कुष्ठं तत्कार्यपि तिलोहन्ति
भल्लातकैः सह।।

—सुश्रुत. चि. 6 की व्याख्या में डल्हण द्वारा उद्धृत

मणिमालाकार ने अभया (हरीतकी) के साथ तिल और भल्लातक को अर्श में उपयोगी कहा है—

अभयातिलभल्लातैः कल्पयेत् कल्कमुत्तमम्।
गद्याणं तस्य शाणं वा गिलेद्वातासृगर्शसि।।

गोमूत्र में पकाकर सुखाई गई हरीतकी के चूर्ण को गुड और लौह भस्म के साथ सेवन करना उदरशूल में हितकारक है—

मूत्रान्तः पाचितां शुष्कां लौहचूर्ण समन्विताम्।
सगुडामभयामद्यात् सर्वशूल प्रशान्तये।।

—च. द.

पित्तजशूल में त्रिफला, अमलतास के क्वाथ में मधु और शर्करा मिलाकर पान करना लाभप्रद कहा गया है—

त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्करा क्षौद्रसंयुतः।
रक्तपित्तहरो दाह पित्त शूलनिवारणः।।

—शा. सं.

उदररोगों में हरीतकी प्रयोग का विधान इस प्रकार है—

हरीतकी नागर देवदारू
पुनर्नवाछिन्नरूहाकषायः।
सगुग्गुलुर्मूत्रयुतस्तु पेयः
शोथोदराणां प्रवरः प्रयोगः।।
रोहीतकाभयाक्षोदभावितं मूत्रमम्बु वा।
पीतं सर्वोदर प्लीह मेहार्शः क्रिमिगुल्मनुत्।।

—च. द.

प्रायः सभी उदर रोग मंद अग्नि, अजीर्ण और मल संचय के कारण होते हैं, हरीतकी इन सभी कारणों को दूर कर उदररोगों को शान्त करती है। अभयादि मोदक, दन्ती हरीतकी आदि सभी कोष्ठबद्धता को दूर करने वाले योग उदर रोगों में लाभप्रद कहे गये हैं। आमातिसार में हरीतकी

अतीस, सेंधानमक आदि के साथ रोग निवारक होती है—

हरीतकी प्रतिविषा सिन्धु सौवर्चलं वचा।
हिंगु चेतिकृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा।।
आमातिसार शमनं ग्राहि चाग्निप्रबोधनम्।।

—शा. सं.

बड़ी हरीतकी, आंवला और कुचला को घी में भूनकर खिचड़ी में मिलाकर सेवन करना ग्रहणी में गुणकारक है ऐसा यह प्रयोग सिद्ध भेषज मणिमाला में वर्णित है। ग्रहणी रोग में हरीतकी को उबालकर कल्क बना कर सेवन करना चाहिये। मिट्टी खाने से उत्पन्न पाण्डु में इसे कुटकी के साथ में दिया जाना चाहिये। गोमूत्र भावित हरड़ भी उपयोगी है—

त्रिसप्ताहं गवां मूत्रैरभयां च विभावयेत्।
एकै का भक्षिता नित्यं पाण्डुरोगविनाशिनी।।

—वृ. नि. रत्ना.

मण्डूरपथ्या कटुकी रजांसि
पीतानि गोमूत्रविलोडितानि।
कुर्वन्ति मृत्स्ना परिपूर्णकोष्ठ—
संमार्जनं सत्यमिदं वदामि।।

—सि. भे. म. मा.

मण्डूरकद्वी क्रिमिवैरिपथ्याः
पाण्डूदरार्शः क्रिमिरुक्षु पथ्याः।
पथ्या तथैकोक्तरुजासु तथ्या
ब्रूमो वयं नात्र कदापि मिथ्या।।

—सि. भै. मंजूषा

आचार्य चरक ने पाण्डु, शोथ आदि में कंस हरीतकी (कंस = 64 पल) नामक प्रयोग का वर्णन किया है और इसके अतिरिक्त गुड़ के साथ या गोमूत्र के साथ हरीतकी का सेवन शोथ में हितकारी कहा है—

पीतं कफोत्थं शमयेतु शोफं
गव्येन मूत्रेण हरीतकी च।

—चरक. चि. 12

हरीतकीं वा तुल्यगुडामुपयुंजीत।

—सुश्रुत. चि. 23

शोथहर होने के साथ ही यह शोणित स्थापन और हृद्य भी है अतः रक्तपित्त रक्तविकार, वाक्तरक्त और हृदयदौर्बल्य आदि में हितकर है।

सन्तर्पण से उत्पन्न बहुदोष बलवान रोगी को जहाँ संशोधन की आवश्यकता होती है वहाँ ऊर्ध्वग रक्तपित्त में विरेचन व अधोग रक्तपित्त में वमन की आवश्कता होती है। विरेचन हेतु हरीतकी निशोथ, अमलतास, इन्द्रायणमूल आदि उपयुक्त कहे गये हैं। इसके पश्चात् संशमनयोगों में भी हरीतकी उपयोग में लाई जाती है—

अटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः।
मधुमिश्रः श्वासकासरक्त पित्त निबर्हणः।।

मणिमालाकार ने रक्तपित्त में वरावलेह का प्रयोग लिखा है जिसका वर्णन आगे किया जायेगा। यह एक यूनानी औषधि हैं जिसके लिए लिखा गया है—

नास्त्यनेन समः कश्चित् प्रयोगो यावने मते।

रक्त विकारों में हरीतकी का बाह्याभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। हरीतकी का सूक्ष्म चूर्ण किंवा इसकी भस्म मधु मिश्रित कर लेप करने से व्रणों का रोपण होता है। ये उपदंश एवं भगन्दर के व्रणों में लाभप्रद हैं। भगन्दर में एक अन्तः परिमार्जन प्रयोग है—

हरीतकी रोहिणि सैन्धवं वचा
कटुत्रिकं श्लक्ष्मतरं विचूर्णितम्।
पिबेत्कुलत्थोद्भवतक्रकांजिकां
द्रवेण के नापि युतं भगन्दरी।।

—कल्याणकारक

वातरक्त रोगी नवकार्षिका क्वाथ पीवे अथवा 3 या 5 हरड़े (छोटी) खाकर ऊपर गिलोय का क्वाथ पीवे—

तिस्रोऽथवा पंच गुडेन पथ्या

जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरूहाकषायम्।

तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानुसम्भिन्नमपि ह्यवश्यम्। **—च. द.**

जितने भी संतर्पण (वृहण) से उत्पन्न रोग होते हैं उनमें हरीतकी बहुत उपयोगी है—

संतर्पणकृतान् रोगान् प्रायोहन्ति हरीतकी।

—ध. नि.

अमृतादिगुग्गुलु, नवकगुग्गुलु, लौहरसायन आदि स्थौल्यरोग चिकित्सा में प्रयुक्त योगों में हरीतकी डाली जाती है। वह हृदय रोगों में शुण्ठी, पुष्करमूल आदि के साथ उपयोगी है—

हरीतकी वचा रास्ना पिप्पली विश्वभेषजम्।

शटी पुष्करमूलं च चूर्णं हृद्रोगनाशनम्।।

—भे. सं. चि. 21

इसके अतिरिक्त हरीतक्यादि घृत, अगस्त्य हरीतकी, ब्राह्म रसायन आदि की दोषानुसार हृदय रोगों में उपयोगिता प्रकट की गई है। राजनिघन्टुकार हरीतकी को "त्वगामयघ्नी किल योगवाहिनी" कहते हैं सुतरां कुष्ठ, विसर्प आदि त्वग्दोषों में इसे सेवन कराते हैं। बाह्याभ्यन्तर प्रयोग—

पथ्यातिलगुडैः पिण्डीकुष्ठं सारुष्करैर्जयेत।

—अ. हृ. चि. 19

कुष्ठालेपनमिष्टं रसांजनं चाभया चैव।

—च. चि. 7

चरक सू. 4 में हरीतकी को कुष्ठघ्न कहा गया है। कैयदेवनिघन्टु में भी इसे कुष्ठवैवर्ण्यनुत् कहा गया है। अन्यत्र भी—

शोथपाण्ड्वामयहरी गुल्ममेह कफोपहा।

कच्छूपामाहरी चैव पथ्या गोमूत्रसाधिता।।

हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्र माम्रत्वचोदाडिमवल्कलंच।

एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जंघाकषायश्च नराधिपाणाम्।। **—च. द.**

यह कफघ्न होने से कास, श्वास, प्रतिश्याय, स्वरभेद आदि में हितकारी है—

हरीतकी यव क्वाथद्रभाढके विंशतिं पचेत्।

स्विन्नामृदित्वा तास्तस्मिन् पुराणगुडषट्पलम्।।

दध्यान्मनःशिला कर्षं कर्षार्धं च रसांजनात्।

कुड़वार्धं च पिप्पल्याः स लेहः श्वासकासनुत्।।

—च. चि. 18

अन्य रोगों में—

गोमूत्रमध्ये क्वथिता प्रगाढं

मांस्यन्विता बालककुष्ठयुक्ता।

हरेच्च पथ्या निहिता मुखान्ते

दौर्गन्ध्यमन्यानपि वक्त्ररोगान्।।

—रा. मा.

हरीतकी वचाकुष्ठकल्कमाक्षिक संयुतम्।

पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्येन मुच्यते तालुकण्टकात्।। **—अ. हृ. उ. 2/68**

जरणलवण पथ्या शाल्मलीकण्टकानाम्

अनुदिनमनुघृष्टं दन्तमूलेषु चूर्णम्।

व्रणदरणरुगस्र स्रावचंचल्य शोफान्

अपनयति विवस्वानन्धकारानिवाशु।।

हरीतकी सैन्धवं च गैरिकं च रसांजनम्।

विड़ालको जले पिष्टः सर्वनेत्रामयापहः।।

—शा. सं.

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम्।

क्वाथं पिबेन्माक्षिक सम्प्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे।।

—च. द.

हरीतकी प्रमेहघ्न, वृष्य, गर्भाशय शोथहर एवं प्रजास्थापन है। यह शुक्रमेह, श्वेतप्रदर तथा गर्भाशयदौर्बल्य में प्रयुक्त होती है। आचार्य चरक ने चिकित्सा स्थान के रसायन अध्याय में जो संशोधन हेतु जो हरीतक्यादि चूर्ण कहा है। इस चूर्ण में हरीतकी, सैन्धव, आमलकी, वचा, विडंग, हरिद्रा, पिप्पली, शुण्ठी इन आठ द्रव्यों को समान मात्रा में लिया गया है। इनमें गुड की मात्रा इनके समान है। चूर्ण लेने में कठिनाई को ध्यान में रखते हुये डा. श्रीमती मंजुला वहन ने इसका क्वाथ बनाकर शुक्र विकारों में सेवन कराया। क्वाथ निर्माणार्थ आठों द्रव्यों का 10 ग्राम चूर्ण लेकर चार कप पानी में रात्रि में भिगोकर प्रात: एक चतुर्थांश भाग शेष रहने तक उबाल कर गुड़ मिलाकर सेवन कराया गया पश्चात् वृष्य चिकित्सा आवश्यकतानुसार एक-दो मास तक की गई। इस क्वाथ के प्रयोग से अल्प समय में ही जो परिणाम प्राप्त हुये उससे आशा बनती है कि लम्बे समय तक इसका सेवन कराया जाये तो इच्छित परिणाम की प्राप्ति हो सकती है (सुधा. पुरुषरोग अनुभवांक)।

हरीतकी त्रिदोषहर होते हुये भी विशेषत: वातहर कही गई है। वातव्याधि में यह अत्यन्त प्रशस्त मानी गई है। आचार्य सुश्रुत ने 6 द्रव्यों का एक षड्धरण योग (प्रत्येकं धरणं सुश्रुतोक्त पलदशमांशरूपं मानं यत्र स षड्धरण:) कहा है इसमें हरीतकी, चित्रक, इन्द्रयव, पाठा, कुटकी और अतीस है। इसकी चार ग्राम मात्रा वातव्याधि में हितकर है। एक उत्तम प्रयोग यह भी है–

पथ्यांशिवाग्रंथिकसिंहवक्त्र-
विभीतकारग्वधसिद्धमंभ:।
पीतं सपंचागुलतैलमाशु
प्रभंजनव्याधिमपाकरोति।।

—त्रिषती

शार्ङ्गधरोक्त प्रसिद्ध पथ्यादि क्वाथ शिरोवेदना की प्रशस्त औषधि है। यह नेत्र रोग, कर्णरोग, दन्तरोग आदि में भी लाभप्रद है। विशेष योगों में इसका आगे वर्णन किया गया है।

शोथवेदनायुक्त स्थानों में हरीतकी का लेप भी किया जाता है। नाड़ी दौर्बल्य तथा मस्तिष्क दौर्बल्य में इसको उपयोग में लाया जाता है। आचार्य चरक कहते हैं कि–

स्मृतिबुद्धि प्रमोहं च जयेच्छीघ्रं हरीतकी।

—चरक. चि.।

आचार्य सुश्रुत ने भी इसे मेध्य कहा है–

व्रणयमुष्णं सरं मेध्यं दोषघ्नं शोफकुष्ठनुत्।
कषायं दीपनं चाम्लं चक्षुष्यं चाभयाफलम्।।

—सुश्रुत. सू. 45

सामान्यतया शीतवीर्य तथा मधुर विपाकी द्रव्य मेध्य के रूप में क्रिया करते हैं। साथ ही उष्णवीर्य तथा तिक्तरस प्रधान कई द्रव्य मस्तिष्क पर इस प्रकार प्रभाव करते हैं किन्तु हरीतकी अपने रसायन कर्म से मेध्य प्रभाव करती है। सन्निपात में जब चित्तभ्रम हो जाता है वहाँ यह हरीतक्यादि क्वाथ लाभप्रद है–

पथ्यापर्पट कटुकामृद्वीकादारू जलदभूनिम्बै:।
ब्राह्या पटोलेन समं क्वाथश्चित्तभ्रमं हन्ति।।

—यो. चिन्ता.

हरीतक्यादि क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीना सन्निपातज्वर में लाभदायक है। विषम ज्वर में मणिमालाकार का यह योग हितावह होता है–

हरीतकी शम्बलवेल्लजानां
कुर्याद्वटीं वारिणि सर्षपाभाम्।
बेगं रुणद्धि प्रथमं प्रदत्ता
ज्वरस्य बेलेव महाम्बुराशै:।।

अन्त में हरीतकी के इन समस्तगुणों को एक श्लोक में व्यक्त करने वाले श्री कृष्णराम जी भट्ट के इस कथन को उद्धृत करना समीचीन समझता हूँ–

कासश्वास विशोषशूल जठराध्मानव्रणार्शोनिरू-
ग्वैस्वर्य ज्वर कामला ग्रहणिका हिक्का प्रमेहापहा।
गुल्मप्लीह हृदामयादिशमनी दोष त्रयोन्मूलिनी
चक्षुष्याति रसायिनी लघुसरा मेध्या शिवायुः प्रदा।।

यूनानी मत—हलील: स्याह (जवाहरड) पहले दर्जे में शीत और दूसरे दर्जे में रूक्ष है। यह आमाशय और दिमाग के लिए विशेष रूप से बलप्रद है।यह रक्तशोधक होने से कुष्ठ आदि में भी लाभप्रद है। अतिसार बन्द करने के लिए इसे स्नेहाक्त कर या सेक कर उपयोग में लाते हैं। हलील: जर्द (पीली हरड़े)-यह मेध्य, चक्षुष्य, दीपन, संग्राही और पित्त विरेचनीय है। इसका हिमकषाय या फांट इसके क्वाथ की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। हलील: काबुली (बड़ी हरड़े) यह दोषत्रय की विरेचन है और समस्त गुणों में पीली हरड़े के समान ही यह है।

होम्योपैथीमत—होम्योपैथी में बवासीर, कब्ज, पेचिश आदि के लिए हरड़े के मदर टिंक्चर का प्रयोग किया जाता है।

एलोपैथी मत—हरड़ क्षुधावर्धक, संकोचक और बलवर्धक है। इसका बना हुआ मंजन दांतों और मसूड़ों को मजबूत बनाता है। छोटी हरड़े अतिसार और पेचिश में उपयोगी है। कब्ज में सोते समय एक बड़ी हरड़ (चूर्ण या मुरब्बे के रूप में) सेवन करने से प्रात: एक या दो दस्त आ जाते हैं। इसमें टैनिक एसिड होने के कारण इसकी मरहम अर्शरोग पर उपयोगी है। *—एलो. निघन्टु*

डा. वा. ग. देसाई के मतानुसार यह मृदु विरेचन, अर्शोघ्न, शोथनाशक, कफघ्न, रक्त स्रावरोधक, गुल्महर, व्रणरोपण और वय: स्थापन है। यह शरीर की सब क्रियाओं को सुधारती है। दीपन-पाचन एवं रसायन है। विरेचनार्थ देने पर पहले विरेचन होकर फिर दस्त स्वयमेव बन्द हो जाते हैं। इससे मरोड़ नहीं उत्पन्न होता। दालचीनी समान सुगन्धित द्रव्य मिलाने से इसकी क्रिया सुधरती है। यह हृदय और रक्तवाहिनियों की शिथिलता को दूर करती है। रक्ताभिसरण क्रिया सुधरने से मस्तिष्क में अधिक रक्त पहुंचता है जिससे मुख पर तेजी आती है, निद्रा अच्छी आती है। इससे स्त्री सेवन में प्रीति उत्पन्न होती है और देह का रंग सुधरता है। ये सब लाभ इसे निरन्तर कई महीनों तक सेवन करने से प्राप्त होते हैं।

नादकर्णी के अनुसार यह एक निरापद सौम्य विरेचन औषधि है। साथ में यह ग्राही भी है। ये दोनों गुण परस्पर विरोधी हैं फिर भी शरीर की स्थिति के अनुसार इस प्रभाव का फलित होना अपने आप में इसकी एक विलक्षणता है। इससे आमाशय व्यवस्थित होता है तथा बवासीर ठीक होता है।

डा. घोष की ड्रग्स आफ हिन्दुस्तान के अनुसार यह आंतों की जीर्णव्याधियों में विशेष लाभकारी है। हरड़ के क्वाथ के एनिमा से अल्सरेटिव कोलाइटिस' जैसे असाध्य रोग भी शान्त होते देखे गये हैं। पेपेवरीन के समान शूल निवारक स्पास्मोलिटिक क्षमता भी हरड़ में पायी जाती है। इसका प्रभाव समग्र संस्थानों पर पड़ता है। यह दुर्बल नाड़ियों को सबल बनाती है तथा इन्द्रियों को सामर्थ्यवान्। शोथ निवारण में भी इसकी प्रमुख भूमिका है, चाहे वह कोषीय हो अथवा अन्तर्कोषीय।

सामान्य प्रयोग (बाह्य)—

1. वर्णनिखार हेतु—बड़ी हरड़ की छाल, पठानी लोध्र, नीम के पत्ते, अनार का छिलका और आम की छाल को जल में पीसकर उबटन करने से रूप-रंग में निखार आकर सुन्दरता बढ़ती है।

2. कण्डू (खुजली)—हरड़ को आठ गुने तैल में भून लें फिर इस तैल की मालिश करने से खुजली मिटती है।

3. नाड़ी व्रण—हरड़ का चूर्ण व्रण में डालते रहने अथवा गोमूत्र में घिसकर दिन में 4-5 बार लेप करते रहने पर पूयोत्पत्ति कम हो जाती है। फिर व्रण शुद्ध होकर शीघ्र भरता है। हरड़ का क्वाथ बनाकर छानकर इस क्वाथ जल से व्रणों को धोना भी उपयुक्त है इससे व्रणों का शोधन होता है।

4. उपदंश—(क) हरड़, सिरस की छाल और रसोत

इन्हें समान मात्रा में लेकर बारीक चूर्ण बनाकर उसमें शहद मिलाकर लेप करने से उपदंशज व्रण नष्ट होते हैं।

(ख) हरड़, बहेड़ा और आंवला को समान मात्रा में लेकर एक लोहे की कड़ाई में जलाकर उसकी भस्म बनालें और उसमें शहद मिलाकर लेप करने से भी उपदंशज व्रण शीघ्र ही भर जाते हैं। इसको अन्य व्रणों के रोपण हेतु भी उपयोग में लाया जा सकता है।

5. दारूणक (सिर की रूसी)—हरड़ और आम की गुठली के चूर्ण को दूध में मिलाकर सिर पर लेप करें।

6. वृषण वृद्धि—हरड़ को गोमूत्र या जल में पीसकर लेप करने से वृषण वृद्धि एवं शोथ का शमन होता है।

7. अर्श (बवासीर)—बड़ी हरड़ को पानी में घिसकर लेप करना चाहिये। रक्तार्श में हरड़ को रसौत के साथ घिसकर लेपन करने से लाभ होता है।

8. अतिस्वेद—हरड़ चूर्ण को शरीर पर मलें इससे स्वेद कम होता है।

9. नेत्ररोग—(क) त्रिफला के हिमकषाय से आंखें सुबह-शाम धोना सभी नेत्र रोगों में लाभप्रद है जौकुट किये हुये हरड़, बहेड़ा और आंवला के समभाग 20 ग्राम चूर्ण को 250 मि.लि. ठन्डे जल में डाल मिट्टी के या कांच के बर्तन में रातभर ढँककर रहने दें। प्रातः हाथ (साबुन से धोये हुये) से मसलकर, कपड़े से छानकर आंखों को धोयें। इसी प्रकार प्रातः भिगोकर सायंकाल आंखों को धोयें। आंखें धोने के लिए इसी काम के लिए बनी हुई कांच की प्याली (Eye Bath Glas) भी आती है। दीर्घकाल से नेत्रों से पानी टपकना, रोहा होने से पलक के नीचे गढ़ना, नेत्रों में खाज चलना, नेत्रों में जलन रहना, नेत्रों में भारीपन रहना, नेत्रों में वेदना होना, बार-बार आंखें आना और दृष्टिमांद्य हो जाना आदि नेत्र रोगों में यह हिम बहुत लाभप्रद है।

(ख) हरड़ को पानी में घिसकर पलक पर लगाने से अंजनामिका (गुहेरी) व अन्य नेत्राभिष्यन्द रोग ठीक होते हैं।

10. दन्तरोग—हरड़, जीरा, सेमर की छाल और सेंधानमक का बारीक चूर्ण कर दांतों पर मंजन करने से दांतों के सभी रोग दूर होते हैं।

अन्तः प्रयोग—

1. विबन्ध— (क) हरड़ की छाल 5 ग्राम, गुलाब के फूल 5 ग्राम, सौंफ 5 ग्राम, अमलतास 5 ग्राम और मुनक्का 10 ग्राम का क्वाथ बनाकर पिलावें।

(ख) बड़ी हरड़ 3 ग्राम, सनाय पत्ती 2 ग्राम और कालानमक एक ग्राम मिलाकर यह चूर्ण गरम जल से सेवन करें। यदि दस्त साफ नहीं लगे तो मात्रा बढ़ा देवें यदि ज्यादा लगे तो कम कर दें किन्तु तीनों दवाओं का अनुपात उक्त ही रखें।

(ग) हरड़ चूर्ण 5 ग्राम, मुनक्का 10 ग्राम को 100 मि.लि. दूध में 100 मि.लि. जल मिलाकर पकावें। दूध शेष रहने पर छानकर आवश्यकतानुसार पिलावें।

(घ) हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलेठी चूर्ण समभाग लेकर 3-4 ग्राम चूर्ण गरम जल से सेवन करें।

(ङ) बड़ी हरड़ का छिलका, कुटकी, नागरमोथा और अमलतास 3-3 ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर पीवें।

(च) त्रिफला चूर्ण में चौथाई भाग कालानमक पीसकर मिलाकर 5-6 ग्राम नित्य सेवन करें। इससे विबन्ध दूर होता है।

(छ) हरड़ चूर्ण 3-4 ग्राम को 20-25 ग्राम गुलकन्द में मिलाकर खावें और इसके बाद 5 ग्राम सौंफ चबायें।

(ज) छोटी हरड़ को आवश्यकतानुसार गोघृत में स्नेहावत करें और इसमें समभाग चीनी मिलाकर कपड़छान चूर्ण बनाकर रखलें। इसमें से 6-7 ग्राम चूर्ण को साठी चावल के धोवन 50 मि. लि. के साथ उपयोग में लाने से बिबन्धयुक्त प्रवाहिका में लाभप्रद है।

(झ) बड़ी हरड़, यवक्षार, निशोथ के चूर्ण (तीनों सम

मात्रा में लें) को एक-दो ग्राम की मात्रा में लेकर उसमें घी मिलाकर सेवन करने से उदावर्तजन्य विबन्ध का शमन होता है।

(त्र) हरड़ का मोटा जौकुट चूर्ण 18 ग्राम, जल में मिलाकर मंद अग्नि पर चतुर्थांश क्वाथ तैयार करें। फिर इसे छानकर इसमें 2 ग्राम सेंधानमक और 500 मि.ग्रा. सोंठ का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से उत्तम 3-4 जुलाब हो जाते हैं।

(ट) एरण्ड तैल में भुनी हुई छोटी हरड़े के चूर्ण को प्रातः मट्ठे (तक्र) के साथ, रात्रि में दूध शक्कर के साथ सेवन करने से सरलता से उदर शुद्धि हो जाती है। बवासीर के रोगियों के लिए यह प्रयोग हितावह सिद्ध होता है।

2. अन्तर्विद्रधि—हरड़, धाय के फूल और सेंधानमक समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर इसे घी और शहद के साथ सेवन करने से अन्तर्विद्रधि के रोगी को लाभ मिलता है।

3. नेत्ररोग—हरड़, बहेड़ा और आमला के समभाग का चूर्ण बनाकर इस चूर्ण के बराबर शक्कर मिलाकर रखें। यह चूर्ण 4-5 ग्राम लेकर इसमें घी मिलाकर सेवन करना सभी प्रकार के नेत्र रोगों में हितकारक है।

4. कृमि रोग—हरड़, हल्दी और कालानमक समान भाग लेकर इसमें इन्द्रायण फल का स्वरस मिलाकर सुखाकर रखलें। दो-तीन ग्राम चूर्ण सेवन करने से कृमि नष्ट होकर बाहर निकल जाते हैं।

5. प्रमेह—हरड़ के चूर्ण को मधु में मिलाकर सेवन करने से प्रमेह में लाभ होता है।

6. अतिसार—(क) छोटी हरड़ और सोंफ दोनों बराबर लेकर दोनों को कड़ाही में मन्द आंच पर सेक लें। जब सोंफ कुछ लाल हो जाय और हरड़ कुछ फूल जाय तब उतार कर कूट कर छान लें। सेकते समय ये अधिक जलने न पावें। दोनों के चूर्ण के बराबर मिश्री पीसकर मिला लें। चार-पांच ग्राम चूर्ण पानी के साथ दें। आमातिसार में बहुत उपयोगी है।

(ख) हरड़ का चूर्ण और ईसबगोल की भूसी समभाग लेकर 4-5 ग्राम सेवन करने से भी आम का पाचन होता है तथा आम का निष्कासन होता है जिससे आमातिसार के रोगी को लाभ मिल जाता है। जिन्हें आम की शिकायत रहती हो वे इनका नियमित भी सेवन कर सकते हैं।

(ग) हरड़, जीरा और सुपारी का कल्क बनाकर सेवन करने से पक्वातिसार में लाभ होता है।

(घ) हरड़, चित्रक, कुटकी, पाठा, वच, नागरमोथा, इन्द्र जौ और सोंठ का क्वाथ बनाकर सेवन करने से कफजन्य अतिसार का शमन होता है।

(ङ) हरड़, पाठा, बच, कूठ, चित्रक और कुटकी के समभाग चूर्ण को 2-3 ग्राम की मात्रा में उष्णजल के साथ सेवन करने से भी कफज अतिसार मिटता है।

(च) हरड़, सेंधानमक, शु. हींग, सौंचर नमक, अतीस और बच के समभाग चूर्ण को (एक ग्राम) सेवन करने से कफातिसार और आमातिसार नष्ट होते हैं।

(छ) हरड़, अतीस, सेंधानमक, कालानमक, बच और शुद्ध हींग इन छः द्रव्यों का चूर्ण बनाकर गर्म पानी के साथ पीने से आमातिसार नष्ट होकर अग्न्याशय की क्रिया प्रबल होती है।

7. कुष्ठ—(क) हरड़ और नीम के पत्तों को समान भाग लेकर सेवन करने से कुष्ठ एवं अन्य चर्मरोग मिटते हैं। इस प्रयोग को अधिक दिनों तक लेने की आवश्यकता है।

(ख) पीली हरड़, तिल और शुद्ध भिलावा समभाग लेकर पीसकर इसमें दुगना गुड़ मिलाकर तीन दिन लगातार कूट कर 250 मि. ग्राम. की गोलियां बनाकर एक-दो गोली दिन में दो-तीन बार कुछ दिनों तक खिलाते रहने से कुष्ठ एवं किलास (सफेद दाग) रोगों में लाभ होता है।

8. कास—(क) हरड़, नागरमोथा और सोंठ को समान मात्रा में लेकर इनके बराबर गुड मिलाकर गोली बनाकर तीन दिनों तक नित्य चूसते रहने से कास-श्वास में लाभ होता है। श्वास में गोमूत्रक्षार के साथ दें।

(ख) हरड़ और बहेड़ा का चूर्ण शहद के साथ लेने से खांसी में लाभ होता है। इससे पाचन क्रिया भी सुधरती है।

(ग) हरड़, पिप्पली और कालीमिर्च समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर इन सबके बराबर गुड़ मिलाकर खाने से कफ-खांसी मिटते हैं।

9. अश्मरी (पथरी)—जवा हरड़ को नीबू के रस में दो दिन भिगोकर उसमें अजवायन और कालानमक मिलाकर रखें। खाना खाने के बाद एक-दो ग्राम खाने से पथरी निकल जाती है। यह योग गुर्दों को भी स्वस्थ रखता है।

10. मूत्रकृच्छ्र—हरड़, गोखरू, अमलतास, पाषाण भेद और धमासा के क्वाथ में शहद मिलाकर सेवन करावें।

11. अजीर्ण—(क) हरड़, सोंठ, पीपल, करंजुआ, विडंग और चित्रक समभाग लेकर चूर्ण बना लें। फिर इस चूर्ण के बराबर मिश्री पीसकर रख लें। अजीर्ण होने पर 4-5 ग्राम चूर्ण सेवन करें।

(ख) हरड़, सेंधानमक, पीपल, चित्रक का चूर्ण भी गरम पानी के साथ सेवन से अजीर्ण-अग्निमांद्य का शमन होता है।

(ग) गुड़ के साथ हरीतकी का चूर्ण अजीर्ण की श्रेष्ठ औषधि है।

(घ) हरड़, छोटी पीपल और कालानमक का समभाग चूर्ण दही के पानी के साथ या उष्ण जल से सेवन करने पर भी सभी प्रकार के अजीर्ण दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दाग्नि, अरुचि, आफरा, गुल्म, उदरशूल आदि भी शान्त होते हैं।

(ङ) हरड़, पिपरामूल और बेल के क्वाथ में सेंधानमक मिलाकर पीने से अजीर्ण, अरुचि, विबन्ध आदि दूर होते हैं।

12. कोष्ठवात (गैस रोग)—एरण्डतैल में भुनी हुई हरड़ का चूर्ण बनाकर इसमें पिप्पली और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर रखें। एक-दो ग्राम चूर्ण के सेवन से उदर में उत्पन्न होने वाली वायु का अनुलोमन होकर उदर की शुद्धि होती है।

13. अग्निमांद्य—(क) हरीतकी का चूर्ण सोंठ-गुड़ या सोंठ-सैन्धव के साथ खाने से अग्निदीप्त होती है।

(ख) हरड़ 6 भाग, पीपल 4 भाग और चित्रक, सेंधानमक, शुद्ध हींग एक एक भाग लेकर चूर्ण बनाकर रखें। एक-दो ग्राम चूर्ण सेवन से अग्नि तीव्र होती है। यह चूर्ण रसायन भी है।

14. शीतपित्त—हरड़, बहेड़ा, आंवला और मंजीठ का सम भाग चूर्ण बना लें। 5-6 ग्राम चूर्ण मधु के साथ दिन में तीन-चार बार चटाने से शीतपित्त में लाभ होता है।

15. छर्दि—(वमन)—मधु के साथ हरड़ का चूर्ण खाने से विरेचन द्वारा दोष अधोगामी हो जाने पर छर्दि (उल्टियाँ) शीघ्र शान्त हो जाती हैं।

16. प्रवाहिका—4-5 ग्राम हरड़ के चूर्ण को घी, तिल तैल और शहद में मिश्रित कर अवलेह बनाकर रोगी को सेवन करायें। इससे प्रवाहिका शान्त होती है। आचार्य सुश्रुत ने इस योग को सर्वज्वरहर भी कहा है। डल्हण के अनुसार यह कास, विसर्प, वमि में हितकर है।

17. हिक्का—लगातार कायम रहने वाली हिचकी में हरड़ का चूर्ण गरम पानी के साथ देने से हिचकी बन्द हो जाती है। अपचन या आमाशय प्रदाह से उत्पन्न हिचकी में इससे अच्छा लाभ होता है।

18. गुल्मरोग—हरड़ और मुनक्का के क्वाथ में गुड़ मिलाकर सेवन करने से गुल्मरोग (वायुगोला) में लाभ होता है।

19. उदरशूल—(क) गोमूत्र में पकाई तथा सुखाई गई हरीतकी के चूर्ण के साथ लौह भस्म मिलाकर गुड़ के साथ सब प्रकार के पेट के दर्दों को शान्त करने के लिए खाना चाहिये।

(ख) त्रिफला चूर्ण और गोमूत्र में सात बार बुझाने से सिद्ध किया गया मण्डूर चूर्ण लेकर मधु तथा घृत के साथ उचित मात्रा में सेवन करने से सन्निपातज उदरशूल नष्ट होते हैं।

(ग) हरड़, बहेड़ा, आंवला और अमलतास के क्वाथ में मधु और शक्कर 6-6 ग्राम मिलाकर पान करने से पित्तजन्य उदर-शूल और रक्तपित्त दूर होते हैं।

(घ) हरड़, अजवायन, सर्जिक्षार और सेंधानमक क्रमशः आधे लेकर चूर्ण बना कर लें।

20. उदर रोग—(क) हरड़, बहेड़ा और आंवला के चूर्ण को गाय के दूध में मिलाकर या इस चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करने से उदर रोग शान्त होते हैं।

(ख) बड़ी हरड़, सोंठ, देवदारू, पुनर्नवा और गिलोय का विधिपूर्वक बनाया गया क्वाथ शुद्ध गूगल 500 मि.ग्रा. और गोमूत्र 6 मि.लि. के साथ पीने से शोथयुक्त उदर रोग मिटते हैं।

(ग) हरड़ और रोहिड़े की छाल के चूर्ण को गोमूत्र या पानी में मिलाकर पीने से उदररोग, प्लीहावृद्धि, प्रमेह, गुल्म, अर्श, क्रिमिरोग आदि दूर होते हैं। इन दोनों द्रव्यों का क्वाथ बनाकर एक एक ग्राम यवक्षार और पिप्पली चूर्ण उसमें मिलाकर सेवन करना भी यकृत् प्लीहावृद्धि को समाप्त करता है। यह अन्य उदर रोगों में तथा गुल्मरोग में भी हितकारी कहा गया है।

(घ) हरड़, निसोत और कुलथी के समभाग क्वाथ में एरण्ड तैल मिलाकर पीना उदर रोगों में लाभप्रद होता है।

(ङ) हरड़ और पोहकर मूल को तैल में पकाकर चूर्ण बनाकर इसके बराबर इसमें सेंधानमक और छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर रखें। 4-5 ग्राम चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करें। इससे जलोदर का निवारण होता है।

21. पाण्डु—(क) हरड़ को पीसकर इसका कल्क सेवन करें।

(ख) बड़ी हरड़ के छिलकों को तीन सप्ताह तक गोमूत्र में भिगोकर सुखाकर चूर्ण बना लें। तीन-तीन ग्राम चूर्ण दिन में 2-3 बार सेवन करने से पाण्डु-कामला दूर होकर रक्तवृद्धि होने लगती है।

(ग) हरड़, कुटकी और मण्डूर को समान मात्रा में लेकर चूर्ण तैयार करलें 2-3 ग्राम चूर्ण गोमूत्र में घोलकर पीने से मिट्टी खाने से उत्पन्न पाण्डुरोग मिटता है। यह योग सारी मिट्टी को निकाल देता है। इसमें विडंग और मिला देने से यह अधिक गुणकारी योग हो जाता है। यह योग पाण्डु के अतिरिक्त उदररोग, अर्श और क्रिमिरोग में भी हितकर है।

22. शोथ रोग—(क) कफजन्य शोथ को शान्त करने के लिए हरीतकी चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करना चाहिए।

(ख) शोथ में आमयुक्त मल आने पर हरीतकी चूर्ण को गुड़ के साथ खाना चाहिये। नरहरि पंडित शोथ में हरड़ को अपथ्य कहते हैं।

(ग) सभी प्रकार के शोथ में हरड़, सोंठ, देवदारू और पुनर्नवा के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर सेवन करना हितकर है।

(घ) हरड़, सोंठ और हरिद्रा के समभाग क्वाथ के पीने से ज्वर के कारण उत्पन्न शोथ का शमन होता है।

23. श्लीपद—हरड़ को एरण्ड तैल में भूनकर गोमूत्र के साथ सेवन करने से श्लीपद (हाथीपांव) रोग मिटता है।

24. हकलाना—हरीतकी, सोंठ, वच, मुलेठी, कूठ, पिप्पली, जीरा, अजवायन और सेंधा लवण समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर 3-4 ग्राम चूर्ण को घृत में मिलाकर दिन में 2-3 बार चटावें।

25. अर्श—(क) हरीतकी, इन्द्र जौ, नागकेशर और आंवला समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। दिन में दो-तीन बार 2-2 ग्राम चूर्ण सेवन करें। चूर्ण तक्र या जल से लें। रक्तार्श में बहुत लाभप्रद हैं।

(ख) घी में भुनी हुई छोटी हरड़ के चूर्ण के बराबर खांड मिलाकर खाने से बवासीर का रक्त आना रुक जाता है।

(ग) गोमूत्र में रात भर भिगोकर बड़ी हरड़ को गुड़ के साथ सेवन करने से बवासीर दूर होता है। यह सभी प्रकार के अर्श में लाभप्रद है।

(घ) हरड़े, तिल और भल्लातक इनका खूब बारीक कल्क कर 3 ग्राम या 6 ग्राम कल्क को निगल जाने से वात प्रधान रक्तार्श में लाभ होता है।

(ङ) हरड़, चित्रक और सोंठ के क्वाथ में यवक्षार मिला देने से अर्श रोग नष्ट होता है (वातार्श में उपयोगी)।

(च) हरड़, कालीमिर्च, विडंग, अजवायन और सोंठ का क्वाथ बनाकर पीने से वातार्श, उदरशूल, विबन्ध तथा कोष्ठवात (गैसरोग) आदि दूर होते हैं।

(छ) हरड़ चित्रक, भिलावा, सहरफोंका और सोंठ का क्वाथ सात दिनों तक पीने से भी वातार्श मिटते हैं।

(ज) हरड़, आंवला, छोटी पीपल, नागरमोथा, शतावर और कूडा की छाल का क्वाथ विबन्ध के साथ खूनी अर्श को भी दूर करता है।

(झ) बड़ी हरड़े के चूर्ण में चतुर्थांश सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से वातार्श एवं हरड़े का क्वाथ बनाकर ठन्डा कर पीने से रक्तार्श मिटता है।

26. बाल रोग—(क) हरड़, कूठ और बच समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। अवस्थानुसार 100-200 मि.ग्रा. चूर्ण को शहद में मिलाकर चटावें। इससे तालुकण्टक रोग दूर होता है और कब्ज मिटता है।

(ख) हरड़ को पानी में घिसकर शिशुओं को चटाने से वे नीरोग रहते है। एवं उसकी रोग क्षमता बढ़ती है।

(ग) हरड़, जीरा, हींग, सुहागा और काले नमक को पीसकर छोटे नन्हें बच्चों को देने से कब्ज होने के कारण जो उनके पेट में दर्द होता है वह मिट जाता है और कब्ज दूर हो जाती है।

(घ) बच्चों के ज्वरातिसार में हरड़, जावित्री, सोंठ की घूंटी दें।

27. मदात्यय—शराब व्यसनी को होने वाले मदात्यय में हरड़ के क्वाथ में दूध मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

28. मेदोरोग—(क) हरड़, गिलोय और नागरमोथा का चूर्ण मधु के साथ सेवन कराना चाहिये।

(ख) हरड़ चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन कराना हितकारी है।

29. वातरक्त—चार-पांच छोटी हरड़ खाकर ऊपर गिलोय क्वाथ पीवें। हरड़ चूर्ण को गुड़ के साथ मिलाकर सेवन करने के बाद भी गिलोय का क्वाथ पीने का भी विधान है।

30. रक्तपित्त—(क) हरड़, मुनक्का, अडूसा का मिश्री सहित क्वाथ मधु मिलित रक्त पित्त और श्वास कास में हितकारी है।

(ख) हरड़ चूर्ण 2 ग्राम पिप्पली चूर्ण 500 मि.ग्रा. को वासा पत्र क्वाथ के साथ पिलाने से भी इसमें लाभ होता है।

31. उरूस्तम्भ—(क) हरड़ चूर्ण, कुटकी चूर्ण 2-2 ग्राम चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें।

(ख) हरड़, दोनों हरिद्रा, मुलहठी, वच, सोंठ, अतीस का क्वाथ पिलावें।

(ग) हरड़, बहेड़ा, आंवला, पिप्पली, मोथा, चव्य और कुटकी का समभाग चूर्ण बनाकर 4-5 ग्राम चूर्ण गर्म जल से उपयोगी है।

(घ) हरड़, अतीस, कुटकी, पाढ, इन्द्र जौ, चित्रक के चूर्ण को समभाग लेकर 4-5 ग्राम को उष्ण जल से सेवन करना हितकर है।

32. पान-जरदा की लत छुड़ाने के लिए—(क) हरड़ का चूर्ण खाना हितकारी है। चाहे तो इस चूर्ण में चूना भी मिला सकते हैं।

(ख) हरड़ के चूर्ण को घी कंवार के रस में भिगोकर इसमें नमक मिलाकर खाने से भी यह दुरभ्यास (लत) छूट जाती है।

33. दुष्ट नाड़ी व्रण—हरड़, विडंग, सोंठ, निशोथ और सेंधानमक का चूर्ण गोमूत्र के साथ नित्य सुबह सेवन करते रहने से उदर शुद्धि होती है और रक्त प्रसादन होकर पूयोत्पत्ति रुक जाती है।

34. हृदयरोग—(क) हरड़, बच, रास्ना, पीपल,

सोंठ कचूर, पुष्करमूल समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर सेवन करना हितकर है।

(ख) सोंठ एक भाग पुष्कर मूल दो भाग और हरड़ तीन भाग लेकर चूर्ण बनाकर रखें। 3 ग्राम चूर्ण अर्जुन एवं रसौन के क्वाथ के साथ सेवन करें।

35. भ्रम—हरड़, सोंठ, शतावरी बराबर लेकर इनसे दुगना गुड़ मिलाकर एक-एक ग्राम की गोलियां बना लें। इन गोलियों के सेवन से भ्रम (चक्कर आना) मिटता है।

36. वात व्याधि—(क) हरड़, मुलेठी 50-50 ग्राम, मीठी सुरंजान 100 ग्राम, सोंठ, सोंफ और बड़ी इलायची के बीज 25-25 ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर रखलें। तीन-चार ग्राम चूर्ण गरम जल से दें।

(ख) हरड़, वच, रास्ना, सेंधानमक, अम्लवेत और सोंठ समान भाग चूर्ण 3 ग्राम को घी में मिलाकर चाटने से अपतंत्रक दूर होता है।

37. मुखरोग—हरड़, फूलप्रियंगु, पीपल, लोध, हल्दी और तेजवल समान भाग लेकर इनका क्वाथ बनावें। इस क्वाथ में शहद मिलाकर सेवन करने से मुखरोग दूर होते हैं तथा भोजन में रुचि उत्पन्न होती है। मधुयुक्त इस क्वाथ से कुल्ले भी करने चाहिये। इससे ज्वर जात कटुता मिटती है।

38. ज्वर—(क) हरड़, चित्रक, नीम के पत्ते, सेंधानमक और सोंठ को समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर 2-3 ग्राम सेवन करने से दुर्जल जल से उत्पन्न ज्वर दूर होता है।

(ख) हरड़ चूर्ण 5 ग्राम को मधु के साथ चाटने से विषमज्वर में लाभ होता है।

(ग) हरड़, पीपल और आमला के चूर्ण मधु के साथ सेवन करनें से कफज ज्वर का शमन होता है।

(घ) हरड़ के चूर्ण गोघृत एवं शहद के साथ खाने से दाहयुक्त पित्त ज्वर दूर होता है।

(ङ) हरीतकी, अजवायन, आक के न खिले फूल (छाया में सुखाये हुये) तीनों समभाग लेकर 250 मि.ग्रा. चूर्ण को सोंफ के क्वाथ के साथ सेवन कराने से श्वसनकज्वर में लाभ होता है।

39. अम्लपित्त—(क) हरड़, पिप्पली, मुनक्का, मिश्री, धनियां को पीसकर इसमें शहद मिलाकर चाटने से अम्लपित्त दूर होता है।

(ख) हरड़ और मुनक्का 6-6 ग्राम लेकर 100-200 मि.लि. जल के साथ पीसकर पीने से अम्लपित्त में लाभ होता है।

40. व्रघ्न (जंघासन्धि में गांठ)—हरड़, वच, सोंठ, निसोत, सनाय, लोंग और दोनों इलायची का क्वाथ पिलावें।

विशेष प्रयोग (विविध कल्प)—

क्वाथ—1. हरीतकी, नागरमोथा, धनियां, लालचन्दन, पद्माख, अडूसा, इन्द्रजौ, खस, गिलोय, अमलतास का गुदा, पाठा, सोंठ और कुटकी इन 13 द्रव्यों का जौकुट चूर्ण कर क्वाथ बनाकर उसमें पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीने से सन्निपातिकज्वर, कास, बार बार प्यास लगना, दाह, प्रलाप, श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं। यह क्वाथ उत्कृष्ट दीपन-पाचन है। यह मल मूत्र और वायु के अवरोध को दूर करता है। यह अरुचि, छर्दि, और मुखशोष को भी नष्ट करता है। —शा. सं.

2. हरीतकी, धमासा, अमलतास की गिरी, गोखरू और पाषाणभेद (पत्थर चूर) इन पांच द्रव्यों के क्वाथ में मधु 6 ग्राम मिलाकर पान करने से विबन्ध, जलन और वेदना युक्त मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में लाभ होता है।

—शा. सं.

3. हरड़, देवदारू, मुलेठी, कुटकी, दन्ती की जड़, पिप्पली, परवल के पत्ते, लाल चन्दन, दारूहल्दी, त्रायमाण और इन्दायण की जड़ का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें घी मिलाकर पीने से शोथ, ज्वर, दाह, विसर्प, तृष्णा, सन्ताप, सन्निपात और विषदोष शान्त होते हैं। —च. द.

4. हरड़, बहेड़ा, आंवला, चिरायता, हरिद्रा, नीम की

छाल, गिलोय इन सात द्रव्यों का क्वाथ बनाकर उसमें गुड़ मिलाकर पान करने से शिरोवेदना नष्ट होती है। शंख प्रदेश का शूल आधाशीशी, कर्णशूल, दाँतों का जल्दी टूटना, रतौंधी एवं अन्य आंखों की वेदनायें इससे नष्ट होती हैं। —शा. सं.

चूर्ण—1. हरड़, पीपल, अजवायन, सोंठ, कचूर, तुम्बुरू (नेपाली धनियां), शुद्ध हींग, सेंधानमक और कालानमक समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रखें। मात्रा 2-3 ग्राम। यह चूर्ण अग्निमांद्य-अजीर्ण को दूर करने में श्रेष्ठ है। —हा. सं.

2. सेंधानमक 2 भाग, यवक्षार 2 भाग, सोंठ 5 भाग और हरड़े 10 भाग इनका चूर्ण तैयार कर लें। यह चूर्ण 3-6 ग्राम नित्य दिन में दो-तीन बार सेवन करें। यह वैश्वानर चूर्ण है जो आमवात में हितकारी है।

3. सेंधानमक 2 भाग, अजवायन 2 भाग, अजमोद 3 भाग, सोंठ 5 भाग और बड़ी हरड़ 12 भाग लेकर सबका खूब महीन चूर्ण इसे दही के पानी, कांजी, मट्ठा, घी या उष्ण जल के साथ सेवन करने से आमवात, गुल्म, हृदयरोग, बस्ति के रोग प्लीहावृद्धि, उदरशूल, अफारा, अर्श, विबन्ध, उदररोग तथा हाथ पैरों के रोग शान्त होते हैं तथा वात का अनुलोमन होता है। यह भी वैश्वानर चूर्ण के नाम से जाना जाता है। —चं. द.

वटी-मोदक—1. हरीतकी, काली मिर्च, सोंठ, विडंग, आंवला, पीपल, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपात और नागरमोथा ये द्रव्य एक एक भाग दन्तीमूल 2 भाग, निशोथ 8 भाग और शर्करा 6 भाग लेकर चूर्ण बना मधु के साथ एक-एक ग्राम की वटी बनालें। इनसे प्रातः ठन्डे पानी से सेवन करने से विरेचन होता है और गर्मजल पीने से बन्द हो जाता है। यह पाचन संस्थानगत रोगों को दूर करती हैं। —शा. सं.

2. छोटी हरड़, शुद्ध भिलावा, सफेद मरिच और गुड़ प्रत्येक 60-60 ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर गुड़ के साथ एक जीव कर, 3-6 ग्राम के मोदक बनालें। एक-दो मोदक तक सेवन करें। इनसे कैंसर के रोगी को नित्य सेवन करना चाहिये। इस मोदक के सेवन से पूर्व और पश्चात् गोघृत सेवन कर लेना चाहिय। —सु. प्र. सं. (भाग 4)

3. हरड़, सोंठ और विधारा की जड़ का चूर्ण सम भाग लेकर इन तीनों से दुगना शु. गूगल मिला फिर आवश्यकतानुसार अण्डी का तैल मिलाकर एक दिन कूटकर 360 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें, इन्हें सुखाकर रखें। दो से चार गोली सुबह-शाम गर्मजल या दूध के साथ दें। इससे आमवात, वातव्याधि, विबन्ध दूर होता है। पाचन रस की उत्पत्ति आमसंचय नष्ट होता है। यह हरीतक्यादि गुग्गुलु नामक योग हैं। —वृ. नि. र.

4. हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपल 40-40 ग्राम, शुद्ध गूगल 200 ग्राम सबको एकत्र कूट कर घी के साथ 360 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। इसे त्रिफला गुग्गुलु कहा जाता है। सुबह-शाम 2 से 4 गोली त्रिफला क्वाथ या गोमूत्र के साथ दें। इसके सेवन से सब प्रकार के वातज शूल, भगन्दर, सूजन, बवासीर आदि रोग बहुत शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। बोन टी. बी. (अस्थिक्षय) में यह बहुत गुणकारी है। —शा. सं.

5. हरड़, भुई आमला, मूर्वा, सोंफ, हल्दी, दारूहल्दी, कौंचबीज, खरेंटी के बीज, बेलगिरी, लोंग, शतावरी, जटामांसी, सोया, सोंठ, विदारी कन्द, अनन्तमूल, आमला, भारंगी, पीपल, दाल चीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची, मेथीं, अजवायन, काला जीरा, दोनों चन्दन, मूसली, असगंध गोखरू सभी एक-एक भाग, 35 भाग मुनक्का, को घी में सेंकें, मिश्री 35 भाग लेकर चाशनी कर एक-एक ग्राम के मोदक बनालें। ये मोदक मांसवर्धक हैं। —भै. र.

घृत—हरड़, पोखरमूल, सोंठ, जौ, आमला, सेंधानमक और हींग समान भाग मिश्रित 200 ग्राम लेकर पानी के साथ पीस लें। 2 लीटर घी में यह कल्क और आठ लीटर पानी मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब पानी जल जावे तो घी को छान लें। मात्रा—10-20 ग्राम। यह घृत वातज हृद्रोग और पार्श्वशूल आदि में उपयोगी है। —बं. से.

अवलेह—100 हरड़े साबुत को दशमूल के 8 लीटर क्वाथ और 6 किलो 250 ग्राम गुड़ मिलाकर पकावें। जब लेह तैयार हो जाय तो उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च और यवक्षार का 12-12 ग्राम चूर्ण मिला दें। यह ठंडा हो जाने पर 500 ग्राम शहद मिलाकर सुरक्षित रखें। मात्रा—2 हरड़ और 10 ग्राम अवलेह। इसके सेवन से शोथ, ज्वर, प्रमेह, दुर्बलता, आमवात, अम्लपित्त, रक्तपित्त, उदररोग आदि रोगों का नाश होता है। *—ग. नि.*

पाक—हरड़, पीपल, सोंठ, कालीमिर्च का समान भाग चूर्ण करें। सबसे दोगुने गुड़ की चाशनी में मिलाकर पाक जमा दें। तीन तीन ग्राम की मात्रा में सेवन से खांसी नष्ट होती है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

—वृ. पा. सं.

हरीतकी खण्ड—हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, अजवायन, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धनियां, सौंफ, सोयाबीज, लौंग प्रत्येक 10-10 ग्राम; निशोथ 70 ग्राम, सनाय पत्ती 80 ग्राम, हरड़ 640 ग्राम, मिश्री या चीनी एक किलो 920 ग्राम लें। प्रथम काष्ठौषधियों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् चीनी में आवश्यकतानुसार जल मिलाकर चाशनी बनावें। चाशनी पाक योग्य बन जाने पर उपर्युक्त द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर पाक जमाकर सुरक्षित रखें। मात्रा 5-10 ग्राम दूध या गरम जल के साथ दें। इसके सेवन से समस्त प्रकार के शूल नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त अर्श, कोष्ठवात, वातरोग आदि रोगों को भी दूर करता है। यह उत्तम विरेचक है। *—आ. सा. सं.*

अभयारिष्ट—बड़ी हरड़ का छिलका 5 किलो, मुनक्का 2 किलो 500 ग्राम, महुये के फूल 500 ग्राम, विडंग 500 ग्राम लें तथा कूटने योग्य चीजों का जौकुट चूर्ण करें। इन सबको 51 लिटर 200 मि.लि. जल में डाल क्वाथ तैयार करें। चौथाई जल शेष रह जाने पर शीतल कर छान लें। फिर इसमें 8 किलोग्राम गुड़ घोल दें बाद में छोटा गोखरू, निशोथ, धनियां, धाय के फूल, इन्द्रायण की जड़ चव्य, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस प्रत्येक 100-100 ग्राम लेकर मोटा चूर्ण कर इसमें डाल दें और किसी चिकने व बड़े बर्तन में डालकर सन्धान कर दें। इसे एक मास बाद निकालकर छान लें। मात्रा—15-25 मि. लि. प्रातः सायं भोजन के बाद जल मिलाकर दें। यह बवासीर और उदररोगों की श्रेष्ठ औषधि है। यह मल-मूत्र की रुकावट को दूर करता है और अग्नि को भी बढ़ाता है।

—आ. सा. सं.

वरावलेह—त्रिफला, छोटी हरड़, धनिये की मींगी प्रत्येक 75-75 ग्राम का चूर्ण बनालेवें तथा चूर्ण में 75 ग्राम बादाम का तैल एवं 150 ग्राम शहद मिला दें। इस प्रकार सिद्ध यह अवलेह रक्तपित्त, नेत्रविकार, पेट की जलन, विबन्ध आदि विकारों का नाश करता है। इन रोगों के लिए यूनानी की यह सर्वश्रेष्ठ औषधि है। भोजन के बाद 3-3 ग्राम की मात्रा में प्रयोग करें।

—सि. भै. म. मा.

सि. भै. म. मा. के व्याख्याकार वैद्य श्री देवेन्द्र प्रसाद भट्ट ने तो "माक्षिके" से शहद ही ग्रहण किया है किन्तु कविरत्न आर. कलाधर भट्ट ने 'माक्षिके' से स्वर्णमाक्षिक और रूप्यमाक्षिक ग्रहण किया है।

इन योगों के अतिरिक्त बहुत से हरीतकी युक्त योग—अगस्त्यहरीतकी अवलेह (शा. सं.), वासाहरीतकी अवलेह (सि. यो. सं.), व्याघ्री हरीतकी (भै. र.), चित्रक हरीतकी (सि. यो. सं.), अमृताख्या हरीतकी (र. रा. सु.), भृगुहरीतकी (यो. र.) दन्ती हरीतकी (च. द.), दशमूल हरीतकी (च. द.) प्रचलित हैं। इन सबका विस्तार भय से यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा है। जिज्ञासुओं को उक्त ग्रन्थों में इनकी निर्माण विधि की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। वस्तुतः इस दिव्य वनौषधि हरीतकी के सर्वाधिक योग शास्त्रों में है। यदि इन सभी पर विचार कर विवेचना की जाये तो एक प्रथक् ग्रन्थ की आवश्यकता होती है।

यूनानी प्रयोग—

1. माजून सरअ (मिर्गी के लिए अवलेह)—काबुली हरड़ का बकला, सफेद निसोथ, सोंठ, रूमीमस्तङ्गी, ऊदसलीब प्रत्येक 135 ग्राम, उस्तूखद्दूस 4.5 ग्राम, काली हरड़ 22.5 ग्राम, बीज रहित आमला 22.5 ग्राम, दालचीनी 15 ग्राम—सबको कूट-छान कर 15 ग्राम बादाम के तैल से मलकर रखें। पुनः 1250 ग्राम मिश्री, 250 ग्राम शुद्ध मधु दोनों को अर्क सौंफ में घोलकर चाशनी तैयार कर शेष औषधियां मिलाकर चीनी के बरतन में रखकर जौ की राशि में गाड़ देवें। इसे 40 दिनों के बाद निकालकर इसमें से 10-12 ग्राम माजून 125 मि.लि. अर्क सौंफ के साथ सेवन करें। यह अपस्मार के लिए लाभदायक एवं सिद्ध भेषज है। *—धन्व. यू. चि. वि.*

2. अतरीफल मुलैयन (विरेचक अवलेह)—काबुली हरड़ का बक्कल, पीली हरड़ का बक्कल, काली हरड़, आमला, मुकश्शर अर्थात् गुठली रहित श्वेत निशोथ प्रत्येक 15 ग्राम, रेवन्द चीनी, सौंफ, मस्तंगी, उस्तूखद्दूस प्रत्येक 37.5 ग्राम, सकमूनिया 75 ग्राम। इनको कूट-छान कर आवश्यकतानुसार बादाम के तैल में स्नेहाक्त (चर्ब) करके तिगुने मधु के साथ विधिवत् अतरीफल तैयार कर लें। रात को सोते समय 9 ग्राम अतरीफल 125 मि.लि. सौंफ के अर्क के साथ सेवन करें। यह कब्ज, आमाशयशूल तथा आन्त्रशूल के लिए लाभकारी है। यह प्रधानतया कब्ज निवारक है। कब्ज से उत्पन्न मस्तिष्क रोगों के लिए यह विशेष उपयुक्त है। पुराने शिरःशूल में अतीव गुणकारी सिद्ध हुआ है। *—यू. सि. यो. सं.*

3. हब्ब नुजूलुल्माड—(मोतियाबिंदु में गोली-वटी)—पीली हरड़ के बीज की गिरी, आमला के बीज की गिरी समभाग लेकर जल में तीस पहर तक खरल करके चना प्रमाण की वटिकाएँ बनाएँ। तीन गोली तक रात्रि में सोते समय प्रतिदिन खाएँ। मोतियाबिंदु के प्रारम्भ में यह गोली परम हितकारी है। इसके उपयोग से आंखों से पानी बहना रुक जाता है।

4. जुवारिश मासिकुल्बौल (बहुमूत्रहर खाण्डव)—पीली हरड़ का बकला, बहेड़ा का बकला कूट-पीसकर घृत में स्नेहाक्त (चर्ब) किया हुआ, गुलनार और नागरमोथा प्रत्येक 9 ग्राम, कुन्दर और अजवायन प्रत्येक 4.5 ग्राम। इनको कूट-पीस कर यथावश्यक मधु में मिलाकर जुवारिश (खाण्डव) बना लें। **मात्रा**—7 ग्राम। यह बहुमूत्र में परम गुणकारी एवं परीक्षित है। *—यू. सि. यो. सं.*

5. मुरब्बा हरड़े—हरड़ सब्ज ताजा को जल में उबालें। हरड़े के नरम होने पर थोड़ी शुष्क करके पाक में डालें। दूसरे दिन पाक को हरड़े समेत पकावें कि पाक ठीक हो जावे तीसरे दिन फिर अग्नि पर चढ़ाकर पाक ठीक कर लें। यदि हरीतकी शुष्क हो तो पहले इसे कुछ दिन जल में भिगो रखें। फिर दूसरे पानी में डालकर उबालें। नरम होने पर गूंदकर घी में अर्धभूनी करें, फिर स्निग्धता दूर करके खांड के पाक में डाल दें। मात्रा— एक नग मुरब्बा जल से धोकर चांदी के वर्क लपेट कर खायें। यह मस्तिक, आमाशय, हृदय तथा यकृत को बल देता है। वमन, अतिसार में उपयोगी है, शिरोभ्रम में उत्तम है। *—यू. चि. सागर*

पेटेन्ट प्रयोगों में हरीतकी—

पेटेन्ट प्रयोगों, आयुर्वेदिक कैपसूलों तथा शास्त्रीय योगों के उत्पादन में गर्ग वनौषधि भंडार, विजयगढ़ का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बहुत से योगों में हरीतकी का संमिश्रण किया जाता है। इसके प्रसिद्ध शक्ति चन्द्रोदयवटी (शारीरिक एवं स्नायविक दुर्बलता तथा वीर्य विकारों की श्रेष्ठ औषधि), वातान्तकवटी (वात विकारों में लाभप्रद औषधि), सुगम चूर्ण (मलावरोध में), आमपाचक चूर्ण (आम पाचन के लिये), फीवेनोल सीरप (मलेरिया में), लिवट्रीट सीरप (यकृद् के रोगों में), बालविट जन्मघुट्टी (बालकों के रोगों में), बालविट बेबी ड्राप्स (शिशुओं के रोगों में) आदि पेटेन्ट प्रयोगों द्वारा हरीतकी की उपादेयता प्रदर्शित की गई है। इनके अतिरिक्त अर्शोरोगोपयोगी

(रक्तार्श वातार्श में) अर्शान्तक कैपसूल में, नपुंसकता में लाभदायक क्लीवान्तक कैपसूल में, पाण्डुहारी कैपसूल, में, मोटापे को कम करने के लिए उपयोगी फैटकिल कैपसूल में, श्लीपद में लाभदायक फाइलेरियल कैपसूल में, केश रोगों में हितकारी भृंगराज कैपसूल में, स्वप्नप्रमेह हर स्वप्ना कैपसूल में, नेत्रज्योति बढ़ाने हेतु चक्षुष्य कैपसूल में और गोमूत्रादिघन कैपसूल (अनेक रोगों में हितकर) में हरीतकी डाली जाती है। इन कैपसूलों में एक विरेचन कैपसूल भी है। इस कैपसूल के घटकों की मात्रा है—जुलाफा हरड़ घनसत्व 200 मि.ग्रा., सनाय, कालादाना, निशोथ 100-100 मिं. ग्रा., कालानमक 50 मि.ग्रा. और इन्द्रायण फल मज्जा 25 मि.ग्रा.। एक-दो कैपसूल रात्रि में सोते समय गरम जल के साथ सेवन करने से संचित मल निकल जाता है।

कौशिक आयुर्वेद भवन ...ालासर (राज.) के ''कब्जिना टेबलेट'' में हरीतकी 50 मि.ग्रा., सनाय 20 मि.ग्रा., सौंफ 20 मि.ग्रा., अमलतास क्वाथ और शु. जमालगोटा 0.5 मि.ग्रा है। एक-दो टेब. सेवन से कब्ज दूर होता है। कब्ज, गैस, पेटदर्द और एसिडिटी में विशेष प्रभावी जे. पी. आराम चूर्ण है। इसमें हरीतकी, सनाय, निशोथ, सोंठ, सौंफ, कालानमक आदि है। अन्जनी फार्मास्युटिकल्स के ओबेकान टेब. (मेदोरोग), पाइराकान टेब. (बवासीर), प्रोकान टेब. (पौरुषग्रन्थि की वृद्धि), और अम्लदोषनाशक चूर्ण में हरीतकी है। अलारसिन द्वारा विनिर्मित ''आर्जिन'' टिकियों में हरीतकी, अर्जुन, सर्पगन्धा, जटामांसी आदि हैं। ये रक्तचापाधिक्य में लाभप्रद है। हिमालया ड्रग के ''हर्बोलेक्स माईल्ड'' ''हर्बोलेक्स स्ट्राँग'' (दोनों विबन्धहर) और पाइलेक्स टिकिया में हरीतकी है। चरक फार्मा. की रेग्युलेक्स माइल्ड और फोर्ट (कब्जहर) टेबलेट में तथा पेडिलेक्स सीरप (बच्चों के लिए कब्ज में उपयोगी) में भी यह है। महर्षि के लिवोमेप टेब.-सीरप में और ल्यूंकोमेप (प्रदर) टेब. में हरीतकी है। हरीश फार्मा. के रेचक कैपसूल, अर्शान्तक वटी, आंवनिस्सारक वटी और निगम चूर्ण (मलावरोध में) आदि में हरीतकी हैं। इसके फैट क्योर कैपसूल में भी हरड़ घनसत्व डाला जाता है। ज्वाला आयु. भवन जो विबन्ध हारी कैपसूल, कृमिघ्नातिनी कैपसूल आदि तैयार करता है इनमें हरीतकी डाली जाती है। शिल्पाकेम के मिनीलेक्स टेबलेट (जुलाब), गैसहर सायरप और शिल्पा कफ सायरप में हरीतकी होती है। मेडिलिंक्स लेबोरेटरीस मदुराई (तमिलनाडु) के एस्डिलाक्स कैपसूल (मलावरोध के लिए) में हरीतकी-सनाय आदि हैं। रुद्रदेव आयुर्वेद भवन के रेची चूर्ण (दस्तावर), माधुरी कफ सीरप, कुर्चीनम (प्रवाहिका और डायोडिन कैप. (अतिसार) में भी हरीतकी डाली गई है।

अनुभूत प्रयोग—

1. **मलावरोधान्तक प्रयोग**—पीली हरीतकी दल, सनाय दोनों 50-50 ग्राम, बादाम गिरी 40 ग्राम, गुलकंद 50 ग्राम, बीजरहित मुनक्का 80 ग्राम, अंजीर पीला, उन्नाव 20-20 ग्राम लेकर शुष्क द्रव्यों को कूट-पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। मुनक्का तथा गुलकंद को पीस लें, पीछे सबको मिला खरल कर रखें। मात्रा—12 ग्राम, अनुपान गरम दूध। उपयोग—स्थायी मलबन्ध की उत्तम औषधि है। कुछ दिनों के सेवन से लाभ हो जाता है।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य

(सुधा. जौलाई 1984)

2. **''एन्टी डोज'' हरीतकी योग**—बड़ी हरड़ का छिलका 250 ग्राम, सोड़ा बाई कार्ब (खाने का सोड़ा) 125 ग्राम लेकर हरड़ का चूर्ण बनाकर सोड़ा मिलाकर रखें। इसकी मात्रा 125 से 375 मि. ग्रा. है। प्रायः होम्योपैथ पहले एन्टी डोज (पुरानी औषधियों का प्रभाव नष्ट करने वाली मात्रा) दिया करते हैं। इस तरह इसे भी एन्टीडोज कहते हैं। किसी रोगी को इस औषध की तीन या चार मात्रायें 4-4 या 5-5 घन्टे बाद दें। इससे पहले सेवन की औषधों का प्रभाव मिट जायेगा। बाद में दूसरे

दिन में रोग नाशक अन्यान्य औषधों का प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिये। दस्तों को छोड़कर शेष सभी रोगों में इसे गरम पानी से ही देना चाहिये। बच्चों को मात्रा कम देनी चाहिये।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर जैन शास्त्री

(आठ औषधों से इलाज)

3. रक्ताल्पता में उत्तम प्रयोग—पीली हरड़ का छिलका 30 ग्राम, हीरा कसीस 6 ग्राम, छोटी इलायची का दाना 3 ग्राम सबको पीसकर घृतकुमारी के गूदा में खरल करके चने के बराबर गोलियां बनालें। एक-एक गोली प्रति दिन दो बार खाएं। शरीर में लोहा कम हो जाने के कारण रक्ताल्पता में लाभप्रद है। इससे रक्त में लाली पैदा हो जाती है और यकृत् शक्तिशाली हो जाता है।

—वैद्य श्री रामचन्द्र शाकल्य

(सुधा. सित. 1995)

4. पाचन संस्थानगत् रोगोपयोगी एक सरल प्रयोग—100 ग्राम हरीतकी फलत्वक् चूर्ण में घृतकुमारी स्वरस की एक भावना देकर 20 ग्राम सैन्धव लवण मिलाकर 500 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। एक-दो गोली दिन में 2-3 बार पानी के साथ सेवन करें। यह योग उदररोग एवं विशेषकर अग्निमांद्य में लाभकारी है तथा खाना खाने के बाद पेट फूलना, गैस बनना, कब्ज आदि को दूर करता है। इस योग के द्वारा यकृत् को बल मिलता है तथा स्नेह के कारण होने वाले अजीर्ण को इस योग के सेवन से दूर किया जा सकता है।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर भारद्वाज, जयपुर

(वनौ. रत्ना. हेतु प्रेषित प्रयोग)

5. शताधिक रोगियों पर अनुभूत कोष्ठ शोधन प्रयोग—आजकल सर्वत्र विबन्ध, उदावर्त, गैस की वृद्धि, अपान दूषण बहुत होता है। नाराच रस, इच्छाभेदी आदि तीव्र विरेचन केवल एक दिन असर करते हैं, कई रोगियों को लाभ की अपेक्षा हानि भी। इस प्रकार के सभी रोगियों को समान रूप से लाभप्रद उत्तम योग है—

शिवा (जवाहरड़, छोटी हरड़) को एरण्ड स्नेह में तल लें। तलने पर यह तड़क कर फूल जाती है और इसका रंग हलका होकर भूरा हो जाता है। ठंडी होने पर इसका चूर्ण कर लें। इस चूर्ण में दशमांश कालानमक अथवा चतुर्थांश मिश्री मिलाकर (यथा रुचि) शीशी में भर कर रख लें। वयस्क की मात्रा 5 ग्राम और बच्चों को आधी मात्रा दें। रात्रि में सोते समय यह चूर्ण गर्म दूध (यदि चूर्ण मिश्री युक्त हो तो) अथवा गर्म जल (यदि चूर्ण काले नमक युक्त हो तो) से देने पर प्रातः एक-दो शौच होते हैं। मल फूला हुआ आता है। खूब अपानोत्सर्ग होता है। भूख लगने लगती है, कोष्ठ मृदु एवं वायु का अनुलोमन हो जाता है। यथावश्यक प्रयोग करने अथवा निरंतर उपयोग से आंतों में स्निग्धता आती है और मल एवं अपान वायु का स्वाभाविक अनुलोमन हो जाता है। वायु का अथवा कठोर कोष्ठ होने पर मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

—वैद्य श्री हरिमोहन शर्मा

(आयु. प्रकाश फर. 1976)

6. उदर रोगहर हरीतकी रसायन—छोटी हरड़ 8 भाग, सोंठ, सेंधानमक, छोटी पीपर, शर्करा प्रत्येक एक-एक भाग और गुड़ 2 भाग लेकर चूर्ण कर मिश्रित कर लें फिर इसमें इतना शहद मिलावें कि यह अवलेह जैसा हो जाय। दिन में एक बार रात में सोते समय या दोनों समय 10-10 ग्राम खाकर ऊपर से दूध या जल पीवें। यह प्रयोग विभिन्न उदर विकारों यथा जीर्ण अग्निदोष, जीर्ण प्रवाहिका, दुष्ट प्रतिश्याय तथा विविध वातरोगों में रामबाण योग है।

—आयु. च. श्री रामनारायण शास्त्री

(सुधा. अनु. प्र. संग्रह)

7. मधुमेहहर सरल प्रयोग—बड़ी हरड़ का बक्कल 50 ग्राम, जामुन की छाया शुष्क कोमल पत्ती 50 ग्राम, गुड़मार बूटी 50 ग्राम और जामुन की गुठली 50 ग्राम।

सबको कूट-पीसकर छान लें तथा करेला के रस की सात भावना देकर एक-एक ग्राम की गोलियां बनालें। एक-एक गोली सुबह-शाम फीके दूध केसाथ इस्तेमाल करें। सफल, सरल योग है, प्रयोग करें सफल होंगे।

—श्री विद्याधर यादव

(सुधा. अप्रेल 1982)

8. नेत्राभिष्यन्दहर प्रयोग—बड़ी हरड़ को गुलाबजल के साथ चन्दन के समान पत्थर पर घिसना चाहिये पश्चात् लुगदी के बजन से 8 गुना गुलाबजल लेकर उसे घोल देना चाहिये। लुगदी का आठवां भाग कर्पूर लेकर उसमें अच्छी तरह मिला देना चाहिये। इस प्रकार इसमें से 25 ग्राम गुलाबजल लेकर उसमें 125 मि.ग्रा. फिटकरी का फूला भी मिला दें और बोतल में भर दें। इस मिश्रण को 25 घन्टे रखा रहने दें बाद में इसे दोहरे वस्त्र से छानकर रख लेना चाहिये। आंखों की लालिमा, कण्डू आदि अभिष्यन्द जन्य उपद्रवों में 2-4 बूंद दिन में 2-3 बार डालने से बहुत लाभ करती है।

—वैद्य श्री काशीनाथ मुकुंद

(गु. सि. प्रयोगांक भाग 2)

9. अर्शो रोग में लाभप्रद प्रयोग—बड़ी हरड़ का मुरब्बा 12 नग, शुद्ध रसौत 30 ग्राम, कहरवा पिष्टी 30 ग्राम। इनको खरल में मिलाकर 500 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। एक-दो गोली प्रातः सायं 10 ग्राम मक्खन के साथ सेवन करें तो अर्श में लाभ होता है।

—वैद्य श्री होतीलाल

(धन्व. अनुभवांक)

10. कामलान्तक प्रयोग—हरड़, बहेड़ा, आंवला 20-20 ग्राम, इलायची दाना 10 ग्राम, श्वेत जीरा 10 ग्राम, संगजराहत ग्राम। उक्त औषधियों को कूट-पीसकर वस्त्रपूत करलें। मात्रा तथा अनुपान—5 ग्राम से 10 ग्राम तक की मात्रा में रक्तपुनर्नवा के रस, शुद्ध मधु 10 ग्राम के साथ प्रातः सायं दें तथा बच्चों को आधी मात्रा दें। इस चूर्ण को कुछ दिनों तक सेवन कराने से कामला तथा पाण्डु में लाभ हो जाता है। अनेक बार का परीक्षित योग है।

—पं. श्री अच्युतानन्द मिश्र वैद्यभूषण

(सुधा. प्र. सं. अंक प्रथम भाग)

11. हरीतकी का अद्भुत प्रभाव—एक 12 के लड़के के हाथ पैर की दशों अंगुलियों के नख कृष्ण, उभरे हुये एवं बेडौल हो गये थे। इन पर अंगुली का दबाब पड़ने से इन में पीड़ा होती थी। छेद्य-नखों के बढ़ने पर काटने के बाद भी जो नया नख आता वह भी विकृत ही आता था। एलोपैथी चिकित्सा 6 माह तक कराई परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मैंने अपने गत 13 वर्ष के चिकितसा काल में ऐसा रोगी नहीं देखा था। मैंने चिप्परोग की चिकित्सा के अनुसार चिकित्सा प्रारम्भ की (यद्यपि यह रोग वर्णित चिप्प नहीं था)। मैंने लडत्रके की अंगुलियों पर लेप के लिए यह योग बताया। लौह के पात्र में बड़ी हरड़ को हलदी के पानी के साथ घिसंकर नखों पर लेप लगानेको कहा और जौंक द्वारा रक्त मोक्षण कराने को भी कहा। जौंक मिली नहीं अतः रक्तमोक्षण तो नहीं हो सका परन्तु लेप चालू कर दिया गया। यह चिकित्सा भावप्रकाश में ही है। भगवान धन्वन्तरि की अनुकम्पा से 15 दिन बाद ही थोड़ा-थोड़ा लाभ मालूम होने लगा। छः मास तक निरन्तर उक्त लेप करते रहने से सभी नख पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो गय। लड़के के स्वस्थ नखों को देखकर एलोपैथी के चिकित्सकों ने (जिन्होंने पहले उसकी चिकित्सा की थी) आश्चर्य प्रकट किया और सहर्ष आयुर्वेद की महत्ता को स्वीकार किया।

—वैद्य श्री शंकरलाल शर्मा

(सचित्र आयु. जून. 57)

12 हरीतकी पर मेरे सफल अनुभव

● छोटी हर्र 20 ग्राम, बड़ी हर्र छिलका 60 ग्राम, नीम की निबौली 20 ग्राम, वकायन की निवौली 20 ग्राम, सोना गेरू 25 ग्राम, शुद्ध हींग भुनी 25 ग्राम, सुहागा भस्म 20 ग्राम, सनाय पत्र 25 ग्राम, इन सबका बारीक चूर्ण कर मूली

के रस में तीन दिन खरल कर मटर समान गोलियां बनाकर रखें।

● प्रातः 1 गोली गर्म दूध से, दोपहर 1 गोली शीतल जल से एवं रात को सोते समय 1 गो. गर्म दूध से लेने पर रक्तार्श को बहुत शीघ्र दूर करता है। सफल योग है।

● बड़ी हर्र छिल्का, नागौरी अश्वगंध, शतावर, यष्टीमधु, गोखरू, काली मिर्च, ईसबगोल भूसी सभी 100-100 ग्राम लेकर बारीक चूर्ण कर रखें। प्रातः सायं 5-5 ग्राम औषधि दूध के साथ सेवन करने से वीर्यपुष्ट होता है, स्वप्नदोष दूर होता है, और शीघ्रपतन नष्ट हो जाता है एवं यह योग कब्जनाशक अनुभूत योग है।

● छोटी हर्र, सौंठ, सौंफ, पीपली छोटी, भुनी हींग, सभी 50-50 ग्राम लेकर चूर्ण कर रखें। 2-6 रत्ती तक चूर्ण मां के दूध या शहद के साथ देने से बालक का ज्वर, जुकाम, खांसी, उदरशूल, बिगड़ेदस्त, उदरकृमि आदि सभी व्याधियां नष्ट होजाती हैं, मैंने स्वयं के बालक पर प्रथम प्रयोग किया था क्योंकि उसको 6 माह तक दस्त होते रहे, सब इलाज फेल हो गये तब यह चूर्ण रामबांण सिद्ध हुआ।

● हर्र का छिलका, शतावर, शंखपुष्पी, सोंठ, बच, गिलोय, अपामार्ग, बायविडंग, सभी 100 ग्राम लेकर बारीक चूर्ण कर रखें। प्रातः सायं 5-5 ग्राम चूर्ण घी में मिलाकर चाट लें ऊपर से मिश्रीयुक्त दूध पिलाने से उत्तम फल देता है बच्चों को आधी मात्रा दें। शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य हेतु बहुत उत्तम प्रयोग है।

● बड़ी हर्र के बीज की गिरी 50 ग्राम, माजूफल 50 ग्राम, दोनों बारीक चूर्ण कर रखें। समागम से 15-20 मिनट पूर्व 1 ग्राम चूर्ण यौनि में भीतर मल देने से यौनि का ढीलापन समाप्त हो जाता है। बहुत सरल और अच्छा परीक्षित सफल प्रयोग है।

—श्री डॉ. बी. के तिवारी 'आजाद'

(विशेषांक हेतु प्रेषित प्रयोग)



● सम्पादकीय टिप्पणी—

अगस्त्य हरीतकी अवलेह पर मेरे अनुभव

भैषज्य रत्नावाली में उल्लिखित हरड़ युक्त अगस्त्य हरीतकी अवलेह एक श्रेष्ठ कार्यकर योग है। यह अनेक प्रकार के रोगों में प्रभावशाली कार्य करता है लेकिन उदर विकारों की श्रेष्ठ औषध है। इस अवलेह का विभिन्न रोगों में हमारा अनुभव इस प्रकार है—

● **अर्श में**—अर्श रोग के लिए यह स्थाई लाभ करने वाला अवलेह है। हरड़ प्रधान योग होने के कारण आंत्र तथा गुदा में संचित मल को बाहर निकालने में सहायक है। लेकिन रक्तार्श की अवस्था में इसका सेवन हितावह नहीं होता।

● **मलावरोध**—जिन रोगियों को निरन्तर मलावरोध बना रहता है उनके लिए यह श्रेष्ठ औषधि है। 2 चम्मच रात्रि को गर्म जल से लेने से प्रातः 1-2 दस्त होकर पेट साफ हो जाता है। इसके सेवन से पेट में मरोड़ नहीं होती और लम्बे समय तक इसका सेवन करने से आंतों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती यह अरूचि, मन्दाग्नि अपचन आदि में भी लाभकर है।

● **कफज रोगों में**—अगस्त्य हरीतकी कफज विकारों तथा कास, क्षय, कफज्वर आदि में विशेष लाभ करता है। जीर्ण कास की अवस्था में अगस्त्य हरीतकी एवं च्यवनप्राश बराबर-बराबर मिलाकर चाटने से विशेष लाभ होता है।

● **शारीरिक एवं मानसिक अशक्ति में**—अगस्त्य हरीतकी अवलेह रसायन गुणवाली औषधि है। इसके सेवन से शरीरिक एवं मानसिक अशान्ति दूर होकर शरीर में नवीन स्फूर्ति का संचार होता है। मानसिक दौर्बल्य में हम ब्राह्मी रसायन के साथ समान मात्रा में मिलाकर इसका सेवन कराते हैं। तो चमत्कारिक लाभ देखने को मिलता है।

हिंगु
(Ferula Narthex)

आयुर्वेद के प्रमुख शास्त्रीय योगों में कांकायन मोदक (अर्श) और कांकायन गुटिका (गुल्म) आदि में अपना नाम अंकित कराकर प्रसिद्धि पाने वाले कांकायन, अफगानिस्तान के बाल्हीक (बलख) नगर के थे। इन्होंने गर्भ में सर्वप्रथम अंग की उत्पत्ति में (चरक. शा. 6) तथा वात विषयक गोष्ठी (चरक. सू. 12) में भी अपने विचार प्रस्तुत किये थे। सुश्रुत संहिता के व्याख्याकार डल्हण ने कांकायन नामक किसी वैद्य को दिवोदास धन्वन्तरि का शिष्य भी कहा है। संभवतः यह सब व्यक्तिवाची नाम ही नहीं अपितु देशवाची सर्वनाम भी है। अस्तु, इस बाल्हीक भिषक् की भांति एक बाल्हीक् औषधि भी प्रसिद्ध है जिसे हम हिंगु (हींग) के नाम से जानते हैं। वनौषधि वर्णन की इस प्रथम श्रृंखला में अन्तिम कड़ी के रूप में इस हिंगु को जोड़ा जा रहा है—

वात कफ रोगन में श्वास कास शोषन में
स्वल्प भये होसन में सदा सुखदाई है,
पाचन करन ताही षण्डता हरन ताही
शूल संहरन ताही ठीक ठहराई है।
वेदना विदारन में पक्षवध जारण में
वातरोग मारन में काम नित आई है,
कृमि कवलनहित बल बरधन हित
हिम हरसन हित हींग हुलसाई है।।

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने कटुक स्कन्ध के इस द्रव्य को दीपनीय (क्षुधावर्धक) एवं संज्ञास्थापन (नष्ट हुये होश को पुनः लाने वाला) दशेमानि गणों के अन्तर्गत कहकर व्याख्यान दिया था। इसी प्रकार भगवान दिवोदास धन्वन्तरि ने पिप्पल्यादि और ऊषकादिगणों के अन्तर्गत इसे व्याख्यायित किया था। ये व्याख्यान चरक संहिता के षड् विरेचनशतीय अध्याय और सुश्रुत संहिता के द्रव्यसंग्रहणीय अध्याय में वर्णित हैं।

प्राकृतिक वर्गीकरण केअनुसार यह हिंगु शत पुष्पा कुल (अम्बेलिफेरी) का द्रव्य है। भावप्रकाश निघन्टु के हरीतक्यादि वर्ग में इसका वर्णन मिलता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा द्वारा लिखित द्रव्यगुण विज्ञान द्वितीय भाग में दीपन द्रव्यों के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है क्योंकि चरक संहिता केयज्जः पुरूषीय अध्याय में इसके विषय में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

''हिंगुनिर्यासश्छेदनीय दीपनीयानुलोमिक वातकफप्रशमनानां श्रेष्ठः।''

नाम—

संस्कृत—हिंगु, जतुक, रामठ, बाल्हीक।
हिन्दी—हींग।
गुजराती—हींग, बधारणी।
मराठी—हींग।
बंगाली—हींग।
तामिल—रूङ्ग्यम्।
तेलगू—ङगुवा।
मलयालम—रुङ्ग्यम्।
अरबी—हिल्तीत।
फारसी—अंगोज, अंगजह।
अंग्रेजी—असाफिटडा (Asafoetida)
लैटिन—फेरूला नार्थेक्स (Ferula Narthex)

प्राप्ति स्थान—यह पूर्व में कहा गया है कि यह अफगानिस्तान में बहुतायत से होती है। भारत में हिंगु का आयात अफगानिस्तान, तथा फारस से होता रहा है। क्वेटा, डेरा ईस्माइल खां, मुल्तान एवं पेशावर में हिंगु की बड़ी मंडियां हैं। चर्म कोषों में बन्द होकर यह बलख, बुखारा, फारस आदि में बिकती है। इसकी विदेशी प्रजाति फेरूला

फीटिडा' वहीं से भारत में आती हैं। फेरुला नार्थेक्स के पौधे कश्मीर, आस्तीर, बालटिस्तान आदि में प्रचुरता से होते हैं। फेरुला जेस्खेना और फेरूला थोमसोनी ये दो अन्य प्रजातियाँ भी कश्मीर में होती हैं।

रासायनिक संघठन—हिंगु में राल 40-64, गोंद 25, उड़नशील तैल 10-17 तथा राख 1.5-10 प्रतिशत होते हैं। राल में मुख्यतः एसारेसि नोटेनोल स्वतन्त्र या फैरूलिक एसिड के साथ मिला होता है। गौंदयुक्त राल के उड़नशील राल के ऊर्ध्वपातन से उड़नशील तैल प्राप्त होता है, जिसमें मुख्य तत्व डाइल्फाइड होता है। इसी के कारण इस हिंगु में एक विशिष्टि गन्ध पाई जातीहै। यही तैल ही हिंगु की क्रियाशीलता का मुख्य हेतु है। ताजा यह तैल रंगहीन होता है किन्तु बाद में पीला हो जाता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका 5 से 8 फीट तक ऊँचा गंधयुक्त बहुवर्षायु क्षुप होता है। इसकी पत्तियाँ कोमल, रोमश, संयुक्त, दो पक्षयुक्त से 4 पक्षयुक्त होती हैं। अन्तिम खण्डों के पत्रकों के किनारे मुड़े हुये या सूक्ष्मदन्तुर होते हैं। पुष्प छोटे छोटे तथा पीले रंग के होते हैं जो संयुक्त छत्रकों में निकलते हैं। फल 1/3 इंच से 1/5 इंच चौड़े होते हैं। इसकी जड़ मोटी तथा शाखायुक्त होती है। इसके फल को अंजुदान कहते हैं और निर्यास को हिंगु (हींग) कहते हैं। फलको यूनानी चिकित्सक अपनी चिकित्सा में उपयोग में लाते हैं। इसके फूलने-फलने का समय मार्च-अप्रेल है।

जाति—इसकी सामान्यतया दो जातियां होती हैं—श्वेत और कृष्ण। श्वेत जाति की हिंगु सुगन्धित, शुभ्र, स्फटिकाकार एवं हीरकवत् होती है जो हीरा हींग' के नाम से जानी जाती है। यह उत्तम होतीहै। इसी का औषधि हेतु व्यवहार होता है। कृष्ण जाति की हिंगु हींगड़ा के नाम से जानी जाती है जो दुर्गन्धित होती है। हीरा हींग के अतिरिक्त दूधिया हींग, चोखी हींग, तलाबी हींग आदि भी हींग की अच्छी जातियां हैं। बाजार में हिंगु तीन रूपों में मिलती है—कण, पिण्ड और लेप (पेस्ट)। अश्रुवत् दानों केरूप में जो हिंगु आती है यह कणों वाली सबसे अच्छी होती है। इसके चपटे या गोल-गोल 5½ मि.मि. व्यास के भूरे या पीताभ कण होते हैं जो शुद्धतम होते हैं। सामान्यतया जो हिंगु उपलब्ध होती है वह पिण्ड हिंगु होतीहै जो गणों को एकत्र कर तैयार की जाती है। इसमें अश्रुवत् दाने परस्पर चिपके रहते हैं। यह बाजारू हींग इसी रूप में (ढेलों के रूप में) मिलती है। कभी-कभी हिंगु राल की तरह जमे हुये पेस्ट के रूप में भी मिलती है यह लेप हिंगु है। इस पिण्ड और लेप हिंगु में बालू-कंकड, मिट्टी एवं हिंगु के पौधे के काण्ड-मूल तथा पत्रादि के टुकड़े मिले होते हैं। 'कन्धारी हींग' प्रायः रक्तवर्ण की होती है, इसमें तत्स्थानीय लाल मिट्टी की मिलावट होती है।

संग्रह विधि—चार-पांच वर्ष के पौधे हिंगु संग्रह के योग्य माने जाते हैं। मार्च-अप्रेल के महीनों में पौधे पर पुष्प आने से पूर्व जड़ के पास की मिट्टी हटाकर जड़ के पास कुछ ऊपर कट लगाया जाता है जिससे दूध जैसा गाढ़ा स्राव निकलने लगता है। धूल-मिट्टी आदि से बचाने के लिए पत्थर या उपयुक्त पात्रों से उसे ढक दिया जाता है। कुछ दिनों के बाद इस निर्यास (स्राव) को खुरच कर पृथक् कर लेते हैं और दूसरा ताजा क्षत (कट) कर देते हैं। इस प्रकार जब तक स्राव निकलना बन्द नहीं हो जाता ऐसा लगभग तीन महीनों तक किया जाता है। कश्मीर आदि में हिंगु का संग्रह तने एवं जड़ दोनों से किया जाता है।

अपमिश्रण (मिलावट)—हिंगु में बजन बढ़ाने हेतु अनेक द्रव्यों यथा-कंकड़, बालू मिट्टी, रक्तमृत्तिका, इसके पौधे के मूल एवं त्वक् आदि के टुकड़े, गोदन्ती, फिटकरी, खटिका, गोंद, स्टार्च, आटा, आलू के टुकड़ों आदि का मिश्रण किया जाता है। हिंगु की कृष्ण जाति से प्राप्त निर्यास हींगड़ा सस्ता होने से उत्तम हिंगु में इसकी मिलावट कर दी जाती है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—जो हिंगु रूमीमस्तंगी के समान आकृति (अश्रुवत् दानों, गोल) एवं वर्णयुक्त (पीताभ या भूरे बादामी) हो, जिसका ताजा कटा हुआ तल पीताभ वर्ण, पारदर्शक या अपारदर्शक होता है जो गुलाबी तथा रक्तवर्ण और अन्त में रक्ताभ भूरे रंग का हो जाता है। हींग



हिंगु (FERULA NARTHEX)

नाम—सं०—हिंगु, रामठ; हि०—हींग; गु०—हींग; म०—हींग; अं.—असाफिटिडा; लै०—फेरुला नार्थेक्स।

प्राप्तिस्थान—अफगानिस्तान, फारस, कश्मीर (भारत)।

उपयोगी अंग—निर्यास। दोषशमन—कफवात शामक।

रोगोपयोग—अग्निमांद्य, आध्मान, कृमि, पक्षाघात, कास-श्वास, सन्निपात ज्वर, रजः कृच्छ्र आदि।

मुख्ययोग—हिंग्वष्ट चूर्ण, हिंग्वादि चूर्ण, हिंग्वादि वटी, हिंगु कर्पूर वटी, रजः प्रवर्तनी वटी आदि।

ढेले के रूप में होने पर उसे तोड़ने पर टूटा हुआ तल बादामी रंग का दिखाई देता है। यह उत्तम होता है। अच्छा हींग गरम घी में डालने से लावा के समान खिल जाता है। इसकी गन्ध तीव्र लहसुन के समान होती है। स्वादु में यह कटु तिक्त होती है। उत्तम हिंगु की परीक्षा—

1. उत्तम हिंगु जल में डालने पर धीरे-धीरे सफेद धारा देकर पूर्णतः घुल जाती है तथा विलयन पीताभ दुग्धवत् एवं स्वच्छ होता है। पात्र तल में प्रायः कोई अवशेष प्रक्षिप्त नहीं होता।

2. शुद्ध हिंगु जलाने पर चमकीली लौ के साथ जलेगी। न जलने पर यह मिलावटी होगी। शुद्ध हिंगु की भस्म में भी हिंगु के समान गंध आती है। यह भस्म 3-5 प्रतिशत होती है।

3. मानक के अनुसार हींग में 15 प्रतिशत से अधिक भस्म तथा 50 प्रतिशत से कम अलकोहल विलेय पदार्थ नहीं होना चाहिये।

4. सल्फ्यूरिक एसिड के सम्पर्क से इसका रंग गाढ़े लाल रंग या लालिमा लिये भूरे रंग का हो जाता है। पुनः जल से एसिड प्रक्षालन करने से बैंगनी रंग का हो जाता है।

5. हींग के ताजे कटे हुये तल पर नाइट्रिक एसिड 50 प्रतिशत डालने से उसका वर्ण हरा हो जाता है।

ढेलो (पिण्ड) या लेईदार (लेप) हींग में ही उपर्युक्त अपद्रव्यों की मिलावट की जाती है। अतः रूमी मस्तंगी के समान गोल दानों वाली (कण) हिंगु ही उपयोग में लानी चाहिये। इसमें विविध मिलावटी द्रव्यों की संभावना कम होती है। मिलावटी द्रव्यों से युक्त अशुद्ध हिंग का सेवन अभीसिप्त लाभ नहीं पहुचाता और अन्य विकृति भी इसके सेवन से हो सकती है अतः अशुद्ध हिंगु का परित्याग कर शुद्ध हिंगु को उपयोग में लाना चाहिये।

शोधन—मौखिक सेवन के लिए हिंगु का शोधन करना आवश्यकहै। इसके दो प्रकार हैं—(1) आठ गुने जल में इसे घोलकर मन्द आंच पर पकाकर पुनः जल हीन कर लिया जाता है। यह फुफ्फुस रोगों में उपयोगी है। (2) गाय के घी में इसे भूनते हैं जब शुष्क और खर हो जाती है तो उतार लेते हैं। यह भृष्ट हिंगु उदर रोगों में अधिक उपयोगी है।

रस—कटु।

गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—कफवातशामक और पित्तवर्धक।

उपयोगी अंग—निर्यास।

मात्रा—250 मि.ग्रा. से 500 मि.ग्रा.।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

अहितकर—यकृत्, मस्तिष्क एवं पित्त प्रकृति वालों के लिए।

निवारण—अनार, कतीरा, सेव, चन्दन, शतपुष्पा आदि।

गुण प्रकाशकसंज्ञा—शूलारि, जन्तुघ्न।

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग श्वासनलिका, त्वचा और वृक्कों द्वारा होता है।

गुणधर्म विवेचन—

हिंगूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहृत्।
शूलगुल्मोदरानाहक्रिमिघ्नं पित्तवर्धनम्।।

—भा. प्र. नि.

अत्युष्णं हिंगु कटुकं पित्तलं कफवातनुत्।
दीपनं जठराध्मानशूलघ्नं चेतना प्रदम्।।

—प्रि. नि.

हृद्यं हिंगु कटुष्णं च कृमि वातकफापहम्।
विबन्धानाहशूलघ्नं चक्षुष्य गुल्मनाशनम्।।

—रा. नि.

भगवान् चरक ने "हिंगु निर्यासश्छेनीयदीपनी यानुलोमिक वातकफ प्रशमनानाम्" कहकर हिंगु को प्राणवह स्रोतस् एवं अन्नवह स्रोतस् की श्रेष्ठ औषधि प्रदर्शित किया है। दीपन, पाचन, रोचन, अनुलोमन शूलप्रशमन और कृमिघ्न होने से यह अग्निमांद्य, अजीर्ण, अरुचि, आध्मान, उदरशूल, विबन्ध, गुल्म और कृमि आदि रोगों में बहुतायत से व्यवहृत होता है। इन रोगों में हिंगु के संयोग से बहुत से उपयोगी योगों का वर्णन मिलता है जो चूर्ण, वटी, घृत आदि कल्पों के रूप में रोगियों को दिये जाकर लाभ पहुंचाया जाता है। कतिपय वर्णित योग ये हैं—

शूली निरन्नकोष्ठोऽद्भिरूष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत्।
हिंगुप्रतिविषा व्योषवचा सौवर्चलाभयाः।।
हिंग्वम्लवेत सव्योषयमानी लवणत्रिकैः।
बीजपूर रसो पेतेर्गुडिका वातशूलनुत्।।

—चं. द.

हिंगूग्रगन्धाविड शुष्यजाती-
हरीतकी पुष्कर मूल कुष्ठम्।
भागोत्तरं चूर्णितमेवदिष्टं
गुल्मोदराजीर्ण विसूचिकासु।।

—च. द.

हिंगु त्रिगुणं सैन्धवमस्मात्त्रिगुणं तु तैलमैरण्डम्।
तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदरवर्ध्मशूलघ्नम्।।

—अ. ह.

रामठत्र्यूषणोपेतो नरसारो विशोधितः।
प्लीहोदरं निहन्त्याशु चिरजञ्चतिदारूणम्।।

—र. त. 14-10

यह वातहर एवं संज्ञास्थापन है सुतरां, पक्षाघात, अर्दित, मन्यास्तम्भ, गृध्रसी, आक्षेपक और अपतन्त्रक आदि वातविकार और संज्ञानाश की अवस्था में इसका प्रयोग किया जाता है—

हिंगु पुष्कर चूर्णाढ्यं दशमूलश्रृतं जयेत्।
गृध्रसीं केवलं क्वाथं शेफाली पत्र जस्तथा।।

—शा. सं.

हिंगु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपौष्करम्।
भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद् भवेत्।।

—च. द.

यह वातहर और हृद्य होने से वातजन्य हृदयरोग यथा हृद्द्रव (हृदय का अधिक धड़कना), हृदयशूल में लाभदायक है। यह योग हृदयरोग, आनाह, उर्ध्ववात आदि में लाभदायक है—

द्विरुत्तरा हिंगु वचाग्निकुष्ठा
सुवर्च्चिका चेति विडंगचूर्णम्।
सुखाम्बुनानाह विसूचिकार्ति—
हृद्रोगगुल्मोदर्ध्वसमीरणघ्नम्।।

—चरक चि. 26

छेदन और श्वासहर होने से यह फुफ्फुसशोथ, जीर्ण कास, श्वास और कुकुरकास में लाभप्रद है—

हिंगु सौवर्चलं कोलं समंगां, पिप्पली बलाम्।
मातुलुंगरसे पिष्टमारनालेन ना पिबेत्।।

—चरक. चि. 17

हिंग्वेलाजाजिचव्यत्रिकटुक-
यवजक्षारसौवर्चलं वै।
चूर्णीकृत्योष्णतोयैर्घृतयुत—
मथवा पीतमेतत्कफघ्नम्।।

—कल्याणकारक

यह मानस रोगों में भी हितकारी है। उष्ण तीक्ष्ण एवं कफवात शामक होने से इसे "मूर्च्छापस्मारहृत् परम्" कहा गया है। जिस हिंग्वादिघृत को चरक संहिता में उन्मादहर कहा है उसे ही अष्टांगहृदय में "उन्माद भूतापस्मारनुत् परम्" कहा गया है। हिंग्वादिघृत—

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैघृताढकम्।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम्।।

—चरक. चि. 9-39

वातिक मूत्राघात और बस्तिशूल में इसके प्रयोग से कष्ट दूर हो जाता है और मूत्र खुलकर आने लगता है। मलाशय और मूत्राशय से प्रारम्भ होकर नीचे गुदा व मूत्रेन्द्रिय तक जाने वाला शूल तूनी और गुदा-मूत्रेन्द्रिय से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर जाने वाला शूल प्रतितूनी कहलाता है। इनमें हिंगु का प्रयोग लाभदायक है—

पिप्पल्यादिरजस्तूनी-प्रतितून्योः सुखाम्बुना।
पिवेद्वा स्नेहलवणं सघृतं क्षारहिंगुवा।

—च. द.

सोंठ सुहागा हींगरज शोभाञ्जन का क्वाथ।
तूनी प्रतितूनीहरे सौवर्चल के साथ।।

सुश्रुतोक्त ऊषकादि गण (सू. 38) भी इन रोगों में लाभदायक हैं। इस गण में भी हिंगु है—

ऊषकसैन्धव शिला जतुकासीसद्वय हिंगूनि तुत्थकं चेति।

कर्णकीट, कर्णशूल आदि में हिंगु को उपयोग में लाया जाता है—

सद्यो हिंगु निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम्।
हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिः कटुतैलं विपाचयेत्।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णशूलं प्रणश्यति।।

—शा सं.

इसी प्रकार दन्तशूल में भी—

हिंगूकट्फलकासीससर्जिकाकुष्ठवेल्लजम्।
रजो रूजं जयत्याशु वस्त्रस्थं दशने धृतम्।।

—अ. हृ. उ. 22

और वृश्चिक दंश जन्य पीड़ा में—

हिंगुना हरितालेन मातुलुंगरसेन च।
लेपाञ्जनाभ्यां गुटिका परमं वृश्चिकापहा।।

—अ. हृ. उ. 37

उष्णता-तीक्ष्णता के कारण यह बाजीकरण और आर्तवजनन है। आचार्य सुश्रुत ने सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ शुक्रदोष का वर्णन किया है इसमें एक मलमूत्र-गन्धी शुक्र दोष भी है। इस दोष में रोगी को हींग, खस और चित्रक से सिद्ध घृत सेवन हितकारी कहा गया है—

विट्प्रभे पाययेत् सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः।

—सुश्रुत. शा. 2

नपुंसकता में हींग के सेवन करने से शिश्न में उत्तेजना आती है। यह बाह्याभ्यन्तर रूप में उपयोग में लायी जाती है। इसके अतिरिक्त यह स्त्रियों के रजोधर्म को उत्पन्न करने वाली है—"स्त्री-पुरुषजनम्" (महौषधनिघन्टु)। रजः कृच्छ्रता में तथा प्रसव के बाद इसे देने से गर्भाशय की शुद्धि होती है। रजः प्रवर्तिनीवटी का यह मुख्य घटक है, देखिये भै. र. का स्त्रीरोगाधिकार। इसी अधिकार में एक हिंग्वादि तैल भी वर्णित है, यह तैल परम पुष्पजनन, रजः कृच्छहर तथा योनिशूल निवारक है। इस तैल का योनि में पिचुधारण किया जाता है।

सन्निपात ज्वर, शीतज्वर और विषमज्वर में यह हिंगु विशेष उपयोगी है। हिंगु कर्पूरवटी (सि. यो. सं.) सन्निपातज्वर की प्रशस्त औषधि है। हींग के सेवन से विषमज्वर का आक्रमण रुकता है। यह कटुपौष्टिक एवं बल्य होने से दुर्बल व्यक्ति के लिए हितावह है। इसके सेवन से भूख बढ़ती है, पाचन ठीक होता है और रुधिराभिसरण बढ़ता है।

यूनानीमत—यूनानी मतानुसार हिंगु चौथे दर्जे में गरम एवं दूसरे दर्जे में रूक्ष है। इसके फल (अंजुदान) दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। ये फल (बीज) बस्ति के लिए अहितकर है। खरबूजे के बीज इसके अहितकर प्रभाव को

दूर करते हैं। सऊत वराय किर्मबीनी (नासाकृमि में नाक टपकाने के लिए) और हब्ब इख्तिना कुर्रिहम (हिस्टीरिया में सेवन करने हेतु) आदि हींग युक्त यूनानी योग हैं।

पाश्चात्य मत—डा. वा. ग. देसाई के मतानुसार हींग दीपन-पाचन, आमाशय व आंतों के लिए उत्तेजक, वायुनाशक, वातानुलोमिक, कृमिघ्न, मज्जा तन्तु और गर्भाशय के लिए उत्तेजक संकोच विकास प्रतिबन्धक और विषमज्वर को नष्ट करने वाली है। इसका कफनिस्सारक गुण प्याज के समान होता है। इसके सेवन से श्वासोच्छ्वास के केन्द्र स्थान की क्रिया कुछ धीमी हो जाती है जिससे बिना कारण आने वाली खांसी कम हो जाती है। फुफ्फुस के रोगों में इसे पानी में घोटकर देते हैं। गृध्रसी, पक्षाघात आदि वातरोगों में हींग को देने से बहुत लाभ होता है।

डा. आर. एन. खोरी के कथनानुसार हींग आक्षेप निवारक, आध्मान नाशक, बल्य, मृदुरेचक, मूत्रल, रजः प्रवर्तक, कृमिघ्न एवं वृष्य है। यह नाड़ीशूल, अपस्मार तथा अन्य मनोविकारों में व्यवहृत होती है। यह कास श्वास में भी लाभप्रद है।

मेजर वसु और कीर्तिकर के मत से हींग एक शक्तिशाली आक्षेप निवारक, कफ निस्सारक, कृमिनाशक, मज्जातन्तुओं को उत्तेजना देने वाली और मृदुविरेचक है। यह हिस्टीरिया और हिस्टीरिया जनित विकारों में बहुत लाभदायक है। यह कूकर कास, हृदयशूल, निमोनिया आदि में अपना आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाती है। बच्चों के ब्रोंकाइटिस में भी इसका उत्तम प्रभाव होता है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

1. **कृमिरोग**—हींग को पानी में घोलकर उसका एनिमा देना चाहिये। दो ग्राम हींग को 100 मि.लि. जल में मिलाकर घोल बनाकर प्रयोग करें।

2. **दद्रु (दाद)**—दाद पर हींग का लेप करने से दाद अच्छा हो जाता है।

3. **स्नायुक (नारू)**—हींग का लेप करना हितकारी है।

4. **कास-श्वास**—कास-श्वास के रोगी के छाती पर हींग का लेप करने से उत्तम लाभ होता है।

5. **उदावर्त**—हींग और सेंधानमक को समान मात्रा में लेकर बत्ती बनाने लायक इसमें शहद मिलाकर बत्ती बना लें। इस बत्ती को घी में डुबोकर गुदा में रखने से उदावर्त दूर होता है।

6. **नपुंसकता**—हींग को पानी में पीसकर या इसके चूर्ण को दुगने शहद में मिलाकर शिश्नपर लेप करें। इससे शिश्न में कठोरता आती है। यह प्रयोग रात में सोते समय करना चाहिये।

7. **शिरःशूल**—जिन्हें सर्दी के कारण तेज सिर दर्द होने लगे उन्हें हींग को कुछ पानी में चन्दन की तरह घिसकर सिर पर लेप करना चाहिये। इससे दर्द मिट जाता है।

8. **पार्श्वशूल**—हींग, एलिया, सोंठ, श्रृगिंक विष, रूमीमस्तंगी इन्हें पानी में पीस थोड़ा गाय का घी मिलाकर छाती पर लेप करने से छाती का दर्द दूर होता है।

9. **आध्मान**—जिन व्यक्तियों को गैस ट्रबल रहता हो उन्हें अपनी नाभि में हींग का छोटा सा टुकड़ा धारण करना चाहिये। चार-पांच दिनों बाद नया टुकड़ा रखना चाहिये।

10. **उदरशूल**—(क) हींग, सोंठ, काली मिरच, पीपल और सेंधानमक को पानी में पीसकर पेट पर लेप करने से उदरशूल मिटता है। इसके साथ गरम जल से पेट पर सेक भी करना चाहिये।

(ख) उदरशूल की किसी भी दशा में 5-6 ग्राम हींग गरम पानी में घोलकर गुदामार्ग द्वारा पिचकारी देने से लाभ होता है। एरण्ड तैल में हींग मिलाकर भी पिचकारी दी जा सकती है।

(ग) एरण्डतैल या सरसों के तैल 25 मि.लि. में 4-5 ग्राम हींग को पकाकर सुहाता सुहाता पेट पर मलना और बोतल में गरम पानी डालकर सेक करना चाहिये।

(घ) नवजात शिशु के पेट में दर्द होने से हींग को पानी में मिलाकर नाभि के चारों ओर लेप कर दें। इससे शीघ्र ही दर्द दूर हो जाता है। इससे दस्त भी ठीक आने लगता है। इससे सूत्रकृमि भी मरते हैं।

11. वृश्चिक दंश—बिच्छू के दंश के स्थान पर अर्क दुग्ध के साथ हींग का लेप करने से पीड़ा कम होतीहै।

12. अपस्मार (मृगी)—रोगी को हींग सुंघाना ठीक रहता है।

13. दन्तशूल—दंतशूल होने पर गरम पानी में हींग को घोलकर इस घोल से कुल्ला करें। यदि दांत में कोटर (गड्ढा) हो तो हींग का टुकड़ा रखना चाहिये। इससे कृमि जन्य दन्तशूल मिटता है।

आभ्यान्तरीय प्रयोग—

1. अपतंत्रक (हिस्टीरिया)—(क) शुद्ध हींग 10 ग्राम में 40 ग्राम गुड़ मिलाकर 125 मि. ग्रा. की गोलियां बनाकर एक-एक गोली प्रातः सायं कुछ दिनों तक सेवन करावें।

(ख) हींग और एलुवा 250-250 मि.ग्रा. को पानी के साथ सेवन करायें।

(ग) हींग, कालानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल के चूर्ण को गोमूत्र में भावित कर सुखाकर रखें। फिर इसे एक-एक ग्राम की मात्रा में बकरी के दूध के साथ सेवन करायें।

2. तूनी-प्रतितूनी (बस्तिशूल)—(क) 125 मि. ग्रा. भुनी हींग, एक ग्राम जवाखार को घी के साथ मिलाकर सेवन करने से तूनी-प्रतितूनी नाम बस्ती मेढ्र में उत्पन्नशूल दूर होता है।

(ख) शुद्ध हींग एक भाग, शुद्ध सुहागा 2 भाग और सोंठ चूर्ण 3 भाग लेकर रखलें। सहिंजन की छाल के क्वाथ में कालानमक मिलाकर इस अनुपान के साथ उक्त चूर्ण सेवन करें। इससे भी तूनी-प्रतितूनी में लाभ होता है।

3. गृध्रसी—(क) भुनी हुई हींग एक ग्राम और पुष्करमूल का चूर्ण 3 ग्राम को निर्गुण्डी के पत्तों के क्वाथ में मिलाकर सेवन करने से गृध्रसी (साइटिका) रोग में लाभ मिलता है।

(ख) इसी प्रकार हींग और पुष्करमूल के चूर्ण को दशमूल के क्वाथ में मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है। इससे भी गृध्रसी में उत्तम लाभ होता है।

4. आमवात—हींग (शुद्ध) एक भाग, चव्य दो भाग, विडनमक 4 भाग, सोंठ 8 भाग, कालाजीरा 16 भाग और पुष्करमूल 32 भाग लेकर चूर्ण बनालें। यह 2-3 ग्राम चूर्ण उष्ण जल से आमवात में सेवन करें।

5. अहिफेनविष—हींग को जल में घोटकर पिलाने से अफीम का विष दूर होता है। मट्ठे में मिलाकर भी हींग को दिया जा सकता है। इससे उत्तम लाभ होता है।

6. वत्सनाभविष—500 मि.ग्रा. हींग को गाय के 25 ग्राम घी के साथ बार-बार पिलाने से बत्सनाभ विष का जहर शीघ्र ही उतर कर आराम हो जाता है।

7. कास—हींग, इलायची, जीरा, चाव, त्रिकटु, यवक्षार और काला नमक के चूर्ण को गरम पानी या घृत में मिलाकर सेवन करने से कफ का नाश होता है।

8. हृदय रोग—भुनी हुई हींग एक भाग, बच दो भाग, कूठ चार भाग, सज्जीक्षार 8 भाग और बायविडंग 16 भाग लेकर इन सबका अत्यन्त बारीक चूर्ण तैयार कर लें। दो-तीन ग्राम चूर्ण को गरम जल से सेवन करें। यह चूर्ण हृदयरोग, गैस रोग, पेट का आफरा, वायुगोला (गुल्म) और उर्ध्ववात में हितकर है।

9. हीनरक्तचाप (लो ब्लड प्रेशर)—100-200 मि.ग्रा. हींग निगलकर खूब पानी पीने से हीन रक्त चाप समान्य होकर रोगी को लाभ होता है। हीन रक्तचाप के रोगी को आहार में भी हींग का प्रयोग करना चाहिये। जब अधिक विकृति हो तो इसे पृथक् से सेवन करें।

10. उदरशूल—(क) हींग, त्रिकटु, कूठ, यवक्षार और सेंधानमक सबको समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनालें। एक ग्राम चूर्ण को बिजोरा नींबू के रस या बिजोरे के जड़ का क्वाथ बनाकर इस अनुपान से सेवन करने से प्लीहाजन्य शूल दूर होता है। सर्वत्र हींग घृत में भुनी हुई लें।

(ख) हींग (भुनी हुई), नेपाली धनियां (तुम्बुरू), त्रिकटु, अजवायन, चित्रक, बड़ी हरड़, यवक्षार और काला नमक सब औषधियों को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनालें। एक-दो ग्राम चूर्ण गरम पानी के साथ सेवन करने से मल, मूत्र, वायु की स्तब्धता दूर होकर उदरशूल मिटता है। इससे आम का पाचन होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

(ग) भुनी हींग, सोंठ, चित्रक, सेंधानमक, बेल के जड़ की छाल और एरण्ड मूल की छाल समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर उष्ण जल से सेवन करने से कफजशूल नष्ट होता है। हींग, सैंधव के अतिरिक्त सब द्रव्य 20 ग्राम लेकर इनका क्वाथ बनाकर फिर इसमें 125 मि.ग्रा. हींग और एक ग्राम सेंधानमक मिलाकर भी इसे सेवन किया जा सकता है।

(घ) भुनी हुई हींग, तीनों नमक (सेंधा, काला, विड) और पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) इनके चूर्ण (एक ग्राम) को गरम जल के साथ सेवन करने से भी कफजन्य शूल का शमन होता है।

(ङ) हींग, अतीस, त्रिकटु, वच, कालानमक और बड़ी हरड़ का समभाग चूर्ण एक-दो ग्राम सेवन करें। उदरशूल और विबन्ध के रोगी को बिना अन्न खाये इसे उष्ण जल के अनुपान से सेवन करना चाहिये।

(च) हींग एक भाग, सेंधानमक तीन भाग, एरण्ड तैल नौ भाग, लहसुन का रस 27 भाग, यह योग उदरशूल, विबन्ध एवं सभी उदररोगों में लाभप्रद है।

(छ) हींग, अनारदाना, विडनमक और सेंधानमक के चूर्ण को बिजौरे नीबू (चकोतरे) के रस के साथ सेवन करने से उदरशूल एवं वातगुल्मजन्य पीड़ा का निवारण होता है।

(ज) सोंठ और एरण्डमूल के क्वाथ में अथवा इन्द्रजौ के क्वाथ में भुनी हींग और कालानमक एक एक ग्राम मिलाकर पान करने से बातजन्य शूल नष्ट होता है।

(झ) शुद्ध हींग, शुद्ध नोसादर और सोंठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण (प्रत्येक 250 मि.ग्रा.) पानी के साथ सेवन करने से वातजन्य शूल और प्लीहावृद्धि में लाभ होता है।

(ञ) शु. हींग एक भाग, तुलसी दो भाग और काला नमक तीन भाग लेकर चूर्ण बना लें। तीन-तीन ग्राम चूर्ण दिन में दो-तीन बार गरम जल के साथ सेवन करने से उदरशूल में अच्छा लाभ होता है

(ट) शु. हींग और एलुवा 250-250 मि. ग्राम अथवा हींग के साथ अजवायन चूर्ण 3 ग्राम सेवन करने से उदरशूल, गैसरोग, कब्जियत, अपचन आदि रोगों में लाभ होता है।

(ठ) भोजन करने के उपरान्त यदि दो-तीन घंटे बाद पेट में दर्द होने लगे तो शु. हींग 250 मि.ग्रा., मीठा सोड़ा 500 मि. ग्राम और जीरा 2 ग्राम का चूर्ण उष्णजल के साथ सेवन करायें। इससे शीघ्र ही दर्द मिटने लगता है।

11. ज्वर—शु. हींग एक भाग, बहेड़ा 2 भाग, सोंठ 3 भाग और कटकरंज बीज 4 भाग के चूर्ण को गिलोय के क्वाथ के साथ सेवन करने से विषमज्वर शान्त होता है। सन्निपात जवरों में हिंगुकर्पूर वटी का सेवन करावें।

12. विबन्ध—हींग 250 मि.ग्रा., हरड़ चूर्ण 2 ग्राम, सोंफ चूर्ण एक ग्राम, मधुरक्षार 500 मि.ग्रा. गरम पानी से सेवन करें।

13. उत्फुल्लिका (डब्बारोग)—शु. हींग, काकड़ा सिंगी, मुलेठी, गेरू, छोटी इलायची और सोंठ समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। शहद के साथ 200-300 मि.ग्रा. चूर्ण को बालकों को चटाने से उनका डब्बारोग (न्यूमोनिया) ठीक होता है।

14. हिक्का—हींग और उड़द का धूम्रपान करने से वातप्रकोप जन्य हिक्का का शमन होता है। उष्णजल के साथ हिंग्वष्टक चूर्ण 3-3 ग्राम सेवन करने से भी लाभ होता है।

15. श्वास—कच्ची हींग में अधिक तीक्ष्णता और छेदनशक्ति होती है अतः श्वास के रोगी को बिना भुनी हुई कच्ची हींग ही उपयोग में लानी चाहिये। इसके सेवन से श्वास नलिका की सूजन भी मिटती है।

16. मूत्रकृच्छ्र—125 मि.ग्रा. शु. हींग और एक ग्राम छोटी इलायची का चूर्ण थोड़ी-थोड़ी देर से सेवन करावें।

17. स्नायुक (न्हारुवा)—हींग 500 मि.ग्रा. लेकर इसे गाय के 250. ग्राम दही में मिलाकर निरन्तर ग्यारह दिनों तक सेवन करने से न्हारुवा भीतर ही भीतर समाप्त हो जाता है।

18. पक्षाघात—पक्षाघात एवं अर्दित के रोगी को हिंगु का प्रयोग अदरख के रस के साथ सेवन कराना चाहिये। यदि रोगी दवा लेने में असमर्थ हो तो हींग युक्त अदरख रस को रोगी की जीभ पर मल देना चाहिये। इससे भी रोगी को लाभ मिलता है।

19. कष्टार्तव—शु. हींग और एलवा का मिश्रित चूर्ण 500 मि.ग्रा. दिन में दो-तीन बार उष्ण जल के अनुपान से या दशमूल क्वाथ के साथ सेवन करना हितावह है।

20. मक्कलशूल—शु. हींग 500 मि.ग्राम को 25 ग्राम घी के साथ देने से मक्कलशूल में काफी फायदा होता है। साथ में हल्दी और सौंठ का क्वाथ या दशमूल क्वाथ भी देना चाहिये जिससे दूषित रक्त का निष्कासन होकर गर्भाशय की शुद्धि होती है।

21. उदावर्त—घी में भुनी हुई हींग एक भाग, कूठ 2 भाग, वच चार भाग और विड़नमक 16 भाग लेकर चूर्ण बनाकर रखें। दो-तीन ग्राम चूर्ण द्राक्षासव या जल के साथ लेने से वायु, मल का अनुलोमन होकर उदावर्त दूर होता है।

22. आध्मान—(क) हींग और कालानमक का चूर्ण गरम पानी से सेवन करना चाहिये। इसमें शुद्ध नौसादर और काली मिर्च (चारों द्रव्य समान मात्रा में) का चूर्ण मिलाकर 2-3 ग्राम सेवन करने से अधिक लाभ होता है।

(ख) 250 मि.ग्रा. हींग को घी लगाकर निगलवा देने से आध्मान दूर होता है। हिंग्वष्टक चूर्ण भी देने से लाभ होता है।

23. अम्लपित्त—हींग (शुद्ध), हरीतकी और सज्जीक्षार का चूर्ण सेवन करना लाभप्रद है।

छर्दि (वमन)—हींग और सारिवामूल समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण के सेवन से वमन मिटता है।

24. अजीर्ण—(क) हींग, अम्लवेतस, त्रिकटु, चित्रकमूल और जवाखार का समभाग चूर्ण पानी के साथ सेवन करें।

(ख) 125 मि.ग्रा. शु. हींग, जीरा और सेंधानमक एक एक ग्राम लेकर दिन में 2-3 बार सेवन करें।

25. अग्निमांद्य—शु. हींग और यवक्षार एक-एक भाग चित्रक, हरड़, सौंठ और पीपल दो-दो भाग लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण के सेवन से अग्निमांद्य एवं ग्रहणी (कफजन्य) रोग में लाभ होता है।

26. अतिसार—(क) हींग, अफीम और खैरसार इनका कपड़छान बारीक चूर्ण करके चने के प्रमाण गोलियां बनालें। पानी के साथ इस गोली को निगलने से प्राण घातक अतिसार भी नष्ट होता है।

(ख) हींग और अफीम दोनों को घोटकर अच्छी तरह मिला लेवें। इनकी टिकियां बनाकर उनको तवे के ऊपर एक तरफ से ही सेक लेवें। दूसरी तरफ का भाग नहीं सेकें। इस तरह एक ही तरफ से सेकी गई टिकियों में से एक चने जितना हिस्सा लेकर शीतल जल के साथ निगल जावें। इससे अतिसार में लाभ होता है।

27. अपस्मार—शु. हींग 250 मि.ग्रा. और सेंधानमक 2 ग्राम को घी में मिलाकर सेवन करें। घी गाय का होना चाहिये। यदि पञ्चगव्य घृत उपयोग में लाया जाय तो अधिक लाभ होता है।

28. कृमिरोग—शु. हींग के चूर्ण को अजवायन के क्वाथ के साथ सेवन करावें।

29. विसूची (हैजा)—(क) हींग, पुरानी अफीम, कपूर, काली मिर्च और लाल के बीज इन्हें पीसकर 100-100 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। इनके सेवन से विसूची और अतिसार मिटते हैं।

(ख) हींग, नौसादर और पाठा इन प्रत्येक को आग में भूनकर पानी से बारीक पीस गोलियां बनालें। ये गोलियां भी विसूची में लाभप्रद हैं।

(ग) हींग और कपूर 125-125 मि.ग्रा. लेकर इन्हें पुदीना के स्वरस के साथ पुनः पुनः सेवन करावें।

विशेष प्रयोग (विविध कल्प)—

वटी—

1. भुनी हींग, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, सेंधानमक, कालानमक और विडनमक इन सबको बराबर बराबर लेकर चूर्ण कर बिजौरे नीबू के रस की भावना देकर गोली बनालें। एक ग्राम सेवन करने से वातजन्य उदरशूल का शमन होता है। —*च. द.*

2. घी में सेकी हुई हींग 10 ग्राम, कपूर 10 ग्राम, चरस या गांजा 10 ग्राम, खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती 20 ग्राम और तगर (यूनानी-आसारून) 20 ग्राम सबका कपड़छान चूर्ण कर, जटामांसी के फाण्ट में पीस 240 मि. ग्रा. की गोलियां बनाकर छाया में सुखा लें। इसकी दो गोली लेकर ऊपर से मांस्यादि क्वाथ (सि. यो. सं.) पिलावें। ऐसे दिन में 3-4 मात्रा यथावश्यक दें। यह अपतन्त्रकारिवटी अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) में अच्छा लाभ पहुंचाती हैं। —*सि. यो. सं.*

3. घी में सेकी हुई हींग एक भाग, कपूर एक भाग, कस्तूरी 1/8 भाग लें। सबको एकत्र घोटकर 120 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। कपूर और हींग को एकत्र घोटने से प्रायः गोली बनने योग्य हो जाता है। यदि न हो तो जरा शहद मिलावें। इसे हिंगुकपूरवटी कहते हैं। ठंडे पानी से एक गोली निगला दें। यदि रोगी गोली निगलने में समर्थ न हो तो गोली को शहद में या थोड़े अदरख के रस में मिलाकर जीभ पर लगा दें। इससे सन्निपात ज्वर के रोगी लाभ प्राप्त करता है। इससे नाड़ी की गति सुधरती है और हाथ-पाँव काँपना, कपड़ा फेंकना, उठ-बैठ करना, बकना आदि लक्षण कम होते हैं। श्वसनक ज्वर में इससे कफ पतला होकर निकलने लगता है और कफगत कीटाणु का नाश होता है। यह श्वास एवं कफजन्य हृदय रोग में भी लाभप्रद है। श्वास में इसे अदरख रस व मधु के साथ, हृद्कम्प में गरम जल के साथ तथा अपतंत्रक व आक्षेपक ज्वरों में मांस्यादि क्वाथ के साथ देना चाहिये। पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर में इसे न दें। गर्भिणी को भी यह योग नहीं देना चाहिये।

—*सि. यो. संग्रह*

4. घी में भुनी हुई हींग 20 ग्राम, कड़ुवा कूठ, घोड़बच, सुहागे का लावा, जवाखार, सोंठ, पीपल और काली मिर्च ये सातों चीजें 10-10 ग्राम लें। सभी को कूट-पीसकर खरल में रखें और ऊपर से अदरख, पान और सहिजन की जड़ की छाल के रसों में एक एक दिन खरल कर 500 मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। तीनों का रस इतना लेना चाहिये जिससे चूर्ण खूब तर होकर पतला हो जाय। दिन में 4-5 बार गरम पानी या गोरख मुंडी के अर्क के साथ ये गोलियां देने से गुल्म (वायु-गोलाशूल) मन्दाग्नि, अधिक डकारें आना, हाथ-पैरों की ऐंठन, हृदय की धड़कन बढ़ना आदि रोगों में लाभ होता है।

—*हींग के उपयोग*

5. हींग, कसीस भस्म, एलुआ और टंकण इन्हें समान मात्रा में लेकर कुमारी स्वरस में घोटकर 250 मि.ग्रा. की गोलियां बनालें। ये रजःकृच्छ्रता में उपयोगी हैं।

—भै. र.

चूर्ण—

1. भुनी हींग एक भाग, बच दो भाग, विडनमक तीन भाग, सोंठ चार भाग, जीरा पांच भाग, हरड़ छः भाग, पोखरमूल सात भाग और कूठ आठ भाग सबका चूर्ण कर एक-दो ग्राम चूर्ण को गरम जल के साथ सेवन करने से गुल्म, उदररोग, अजीर्ण तथा हैज़ा दूर हो जाता है।

—च. द.

2. हींग, पोखरमूल, तुम्बुरू (नेपाली धनियां), बड़ी हरड़, निशोथ, विडनमक, सेंधानमक, जवाखार और सोंठ सबको बराबर लेकर चूर्ण कर घी के साथ भून लें। इस चूर्ण को यव (जौ) के क्वाथ के साथ सेवन करने से गुल्म दूर होता है। गुल्म के उपद्रव शूल आदि भी इसके सेवन से शान्त होते हैं।

—च. द.

3. भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाढ, हाऊबेर, हरड़, कपूर, अजमोद, अजवायन, इमली, अम्लवेत, अनारदाना, पोखरमूल, धनियां, जीरा, चित्रक, बच, यवक्षार, सज्जीक्षार, सेंधानमक काला नमक और चव्य इन सबको एकत्र मिला चूर्ण कर लें। यह चूर्ण अन्न-पान के साथ सेवन करना चाहिये अथवा भोजन के पहले गरम पानी से सेवन करें। इससे पार्श्वशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल, वातकफज गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, योनिशूल, ग्रहणी, अरुचि, हिक्का, श्वास आदि रोगों का शमन होता है।

—च. द.

4. गाय के घी में शुद्ध की हुई हींग, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, अजवायन, सेंधानमक, सफेद जीरा, काला जीरा ये सभी समान मात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण करलें। इस हिंग्वष्टक चूर्ण को 2-3 ग्राम की मात्रा में भोजन के पहले ग्रास में घी के साथ सेवन करना चाहिये। यह अग्नि को प्रदीप्त करने वाला तथा वात सम्बन्धी रोगों को दूर करता है। यह चूर्ण कृमिघ्न रूप में भी अच्छा लाभदायक होता है। इस हेतु इसके सेवन के बाद विरेचक औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

—अ. हृ.

5. भर्जित हींग एक भाग, नीबू सत दो भाग, सफेद मिरच चार भाग, सिका हुआ सफेद जीरा आठ भाग और सेंधानमक सोलह भाग इस प्रकार क्रमशः इन द्रव्यों को दुगना लेकर चूर्ण बनाकर रखें। यह रसनानर्त्तक लवण नामक चूर्ण अग्निमांद्य, विसूची को मेटता है।

—सि. भै. मञ्जूषा

6. शुद्ध हींग 12.5 ग्राम, विडनमक 25 ग्राम, कालीमिर्च, सेंधानमक, सोंठ, पीपल, अजवायन, काला जीरा, सफेद जीरा, अजमोद, हरड़, बहेड़ा प्रत्येक 50-50 ग्राम, सनाय और आंवला 100-100 ग्राम, वेल तथा कैथ का गूदा 200-200 ग्राम लेकर चूर्ण बनावें फिर इसे बिजोरे नीबू के रस में घोटकर सुरक्षित रखें। मात्रा—4-5 ग्राम। इसके सेवन से अरुचि, आफरा, विबन्ध, अग्निमांद्य का नाश होता है।

—यो. र.

घृत—

1. हींग, कालानमक और त्रिकटु प्रत्येक दो-दो पल (96-96 ग्राम), घृत एक आढक (3 किलो 72 ग्राम) और गोमूत्र घृत से चौगुना मिलाकर सिद्ध करें। एक-दो ग्राम घृत सेवन करने से उन्माद, अपस्मार में लाभ होता है।

—अ. हृ. उ. 6-22

2. हींग, कालानमक, विडनमक, जीरा, अनारदाना, अजमोद, पोखरमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, धनियां, अम्लवेत, जवाखार, चित्रक, कचूर, वच, अजमोद, इलायची और तुलसी समान भाग मिश्रित 250 ग्राम का कल्क बनालें। दो किलो घृत में यह कल्क और 8 किलो दही मिलाकर

पकावें। मंद अग्नि पर घृत सिद्ध हो जाने पर इसे छानकर रखें। यह घृत 10-20 ग्राम सेवन करने से वात गुल्म, उदरशूल और आनाह आदि में लाभ होता है।

—सुश्रुत संहिता चि. 42

3. हींग, सरसों, बच, सोंठ, मिर्च, पीपल 25-25 ग्राम, दो किलो घी में यह कल्क और 8 लीटर गोमूत्र मिलाकर पकावें। इस सिद्ध घृत के पान करने से, नस्य लेने से और मालिश करने से देवग्रह जनित उन्माद नष्ट होता है।

—गदनिग्रह

तैल—हींग, नेपाली धनियां और सोंठ प्रत्येक 10-10 ग्राम लेकर कल्क बनालें और सरसों का तैल 125 मि.लि. में पाक करें। परिपाक होने पर उतार कर छान लें और सुरक्षित रखें। इस हिंग्वादि तैल को कान में डालने से कर्णशूल नष्ट होता है।

—शा. सं.

लेप—हींग, हल्दी, दारूहल्दी, इन्द्रायन की जड़, कूठ, सेंधानमक और देवदारू के समान भाग मिलित चूर्ण को आक के दूध में पीसकर लेप करने से कर्णमूल शोथ (सन्निपात ज्वर में होने वाली कान के पीछे की सूजन) का नाश होता है। *—यो. र.*

वर्तिका—हींग, रसोंत, मंजीठ, हल्दी, दारूहल्दी, नीम के पके पत्ते, निशोथ, मालकांगनी और जमालगोटे की जड़ इन नौ द्रव्यों को बराबर लेकर पीसकर शहद मिलाकर कुछ मुलायम कर रख लें। यह नासूर (नाडीव्रण) में उपयोगी है। जब नासूर में इसे डालना हो तब शहद से इसे थोड़ा और पतलाकर साफ कपड़े की बनी बत्ती को उसी में सानकर नासूर में डालें। दूसरे दिन बत्ती को निकाल, नीम के पत्ते डालकर उबाले जल से साफ करें और सुखाकर पुनः नई बत्ती डालें।

पेटेन्ट प्रयोगों में हिंगु—भारतीय महौषधि संस्थान द्वारा बनाई जाने वाली "डायडिस टिकिया' हींग, बबूल निर्यास, मोचरस, सोंठ, इन्द्र जौ, विल्व आदि का मिश्रण है। दो-चार टिकिया दिन में तीन चार बार दी जानी चाहिये। यह आमातिसार, प्रवाहिका की औषधि है। धन्वन्तरि कार्यालय सैन्ट्रल विजयगढ़ द्वारा बनाई गई औषधि "ग्रहणीरिपु" में भी हिंगु है। इसके अतिरिक्त त्रिकटु, भंगा, अजमोद, जीरक, लवण आदि भी है। प्रातः सायं 500-500 मि.ग्रा. तक्र के साथ दिया जाना चाहिये। एक "अग्निबल्लभक्षार" भी इनके द्वारा तैयार किया जाता है जो अपने नाम के अनुसार अग्निमांद्य को दूर करने का योग है। इसमें हींग, सोंठ, जीरा, पीपल, लवण, क्षार आदि हैं। बान (भारतीय औषध निर्माणशाला, राजकोट) के द्वारा जो "केलक्युरोसीन" नामक सीरप में हींग, पिपरमेंट, मूलीक्षार, यवक्षार आदि हैं। अश्मरी को मूत्र में घुलाने एवं निष्कासित करने में इस सीरप का विशेष महत्व है। इसी निर्माणशाला के दो और उत्पादन हैं—"कालीकारमीन ड्राप्स" और "गेस्ट्रेक्स टिकिया"। कालीकारमीन बच्चों के लिए उपयोगी है जो उनके उदरशूल, पेट फूलने की शिकायत को दूर कर उनकी पाचन क्रिया को ठीक करता है तो गेस्ट्रेक्स बड़ों के लिए उदररोगों का उपचार है। प्रथम में हींग, विडंग, अतीस, अजवायन, सैन्धव आदि हैं तो द्वितीय में त्रिकटु, हींग, शंख, कपर्द, विषतिन्दुक आदि हैं। लक्ष्मी कैमीकल इन्ड. द्वारा विनिर्मित "एन्ट्रामिक्स" गोलियां भी आंव, कुपच, दस्त, संग्रहणी की दवा है। इसमें हींग, कपूर, सोंठ, मोच-रस, सौंफ, कुटज आदि हैं। गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ़ के "गैसान्तक कैपसूल" और "गैसनौल शर्बत" नामक योगों में हींग, आक, सोंठ, काली मिर्च, कालानमक, सैन्धानमक आदि हैं। कोष्ठवात (गैस) को दूर करने के लिए दोनों ही योग उपयोगी हैं। पेट में गैस उत्पन्न होने से होने वाली परेशानियों तथा हृदय रोगों को दूर करने वाली चरक की "गार्लिल गोलियां भी हैं। इनमें भी लहसुन, हींग, सोंठ, विडंग, कालानमक आदि द्रव्य हैं। कौशिक आयुर्वेद भवन (सालासर-राज.) के "रूमारन

सीरप" में हींग, शोभाञ्जनछाल, घृतकुमारी, रसोन, सोंठ, असगंध, शतावरी आदि हैं। वात विकार, शोथ, आमवात, हृदय रोग, स्नायुदौर्बल्य आदि रोगों में उपयोगी पेय है। श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़ द्वारा बनाये गये "गेसोना कैपसूल में हींग के अतिरिक्त चित्रक, लहसुन, सोंठ, जीरक, विडंग आदि हैं। यह गैस बनने, अजीर्ण, अग्निमांद्य आदि में लाभप्रद हैं। इसी भवन के "रजावरोधान्तक कैपसूल" में भी हींग, एलुवा, कासीस, यवानी, टंकण आदि है। इसी प्रकार के "गैस्ट्रोजाइम कैपसूल" और "मेन्सोरेक्स कैपसूल" हैं जिनमें हींग के अतिरिक्त अन्य उपयोगी द्रव्य हैं। इनमें प्रथम गैस, अपचन के लिए तथा द्वितीय रजावरोध के लिए है।

अनुभूत प्रयोग—

1. उदरशूलहर प्रयोग—भुनी हुई तलाबी हींग 100 ग्राम, कूठ मीठा 100 ग्राम, पोहकरमूल 100 ग्राम तीनों को कूटकर छानकर नीबू के रस में घोटकर 500 मि. ग्रा. की गोलियां बनाकर सुखाकर रख लें। दो-दो गोली ताजे जल में लेने पर तुरन्त लाभ करती हैं तत्पश्चात् दो-दो घन्टों पर तीन बार लेने से शूल नष्ट हो जायेगा।

—वैद्य श्री नगेन्द्रनाथ दीक्षित

(धन्व. अक्टू. 2003)

2. सर्वातिसारहर प्रयोग—घी में भुनी हुई हींग (दीपन-पाचन, वातानुलोमन) 250 मि.ग्रा., सोंठ (दीपन-पाचन, वातानुलोमन) एक ग्राम, मोचरस (स्तम्भन) 1.5 ग्राम और रस पर्पटी (शोषक) 125 मि. ग्रा. इस मात्रा से दिन में दो या तीन बार देने से अतिसार में अच्छा लाभ होता है। इस योग से अनेक रोगियों को लाभ पहुंचाया गया है। ***—वैद्य श्री जगदीश प्रसाद शर्मा***

(वनौ. रत्ना. हेतु प्रे. प्रयोग)

3. स्नायुक शामक प्रयोग—वास्तव में हींग स्नायुक (नारू) नाशक औषधियों में श्रेष्ठ प्रमाणित हुई है। मैंने सैकड़ों रुग्णों पर हींग का प्रयोग कर पूर्ण सफलता प्राप्त की है। अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यदि निकालते समय नारू खण्डित हो जाए तो इस प्रयोग का सेवन करायें, नारू बिना कष्ट के नष्ट हो जाता है। इस योग को माघ मास में 20 दिन सेवन करायें तो सदैव के लिए इस रोग से छुटकारा मिल जाता है। योग इस प्रकार है—शुद्ध हींग 500 मि.ग्रा.—750 मि.ग्रा. प्रातः काल शीतल जल के साथ देकर ऊपर से 60 ग्राम गोघृत पिलावें और 25 ग्राम मिश्री खाने (चबाने) के लिए दें।

—श्री मोहर सिंह आर्य हितैषी

(धन्व. यूनानी चिकित्सांक)

4. अपतंत्रक (हिस्टीरिया) रोग में उपयोगी प्रयोग—घी में भुनी हींग 20 ग्राम, बच 20 ग्राम, जटामांसी 20 ग्राम, कूठ 40 ग्राम, कालानमक 40 ग्राम, विडंग 160 ग्राम सबको मिलाकर बारीक कपड़छन चूर्ण कर 2-3 ग्राम तक दिन में तीन बार दें। इससे उत्तम लाभ होता है। साथ में अश्वगन्धारिष्ट और सारस्वतारिष्ट का भी सेवन करावें।

—डा. कमला पाण्डेय

(सुधा. अक्टू. 1988)

5. कोष्ठवातहर प्रयोग—जिन लोगों को कोष्ठवात (गैस बनने, गैस्ट्राइटिस) की शिकायत रहती है, उनके लिए यह योग सर्वाधिक लाभप्रद प्रमाणित हुआ है—शुद्ध हींग, सोंठ, जीरा, सेंधानमक, कालानमक, अजवायन और डीकामाली इन सबको समान मात्रा में लेकर मिश्रित चूर्ण एक किलो ग्राम लेकर, उसमें आकड़े के फूल की चौकड़ियाँ नग 160 लेकर सुखाकर इनका चूर्ण बनाकर उसमें मिलावें। फिर शीशी में भरकर रखें। एक चम्मच (2-3 ग्राम) चूर्ण पानी के साथ फंका देने से अपान वायु का खुलकर निःसरण हो जाता है। अपानवायु की नीचे की ओर गति होनी चाहिये। इसकी ऊर्ध्वगति होने पर

हृदयरोग, बस्ति पीड़ा, शिरःशूल, मन के रोग और वातनाड़ी संस्थान के रोग हो जाते हैं। अतः अपानवायु के अधोगमन करने में यह योग लाभप्रद है। यह योग पूर्ण अनुभूत और अचूक फलप्रद है।

—कविराज श्री राजेन्द्र प्रकाश आ. भटनागर

(सचित्र आयुर्वेद अक्टू. 1975)

6. शूल शामक 'धन्वन्तरिवटी'—शुद्ध हींग, सेंधानमक, फूला हुआ सुहागा और सोंठ प्रत्येक 25-25 ग्राम लेकर बारीक चूर्ण कर लें। फिर इस मिश्रण को खरल में डालकर सहिंजन की छाल के स्वरस अथवा क्वाथ में सात दिनों तक मर्दन कर चने के बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर रख लें। एक-एक गोली पानी के साथ दिन में तीन बार दें। इससे हर प्रकार के शूल, उदर-शूल, गठिया, आमवात, गृध्रसी तथा बायगोला आदि रोग दूर होते हैं।

—डा. श्री उधवदास लालवानी

(आयु. विकास जन. 1985)

7. आध्मान नाशक पेय—हींग असली, नोसादर और सेंधानमक प्रत्येक 10-10 ग्राम लेकर इन्हें 500 मि. लि. जल में अच्छी तरह मिश्रित कर बोतल में भरकर रखें। आध्मान की अवस्था में 25 से 50 मि.लि. तक इसे पिलाने से लाभ होता है। *—डा. श्री देशराज खुराना*

(धन्व. अनुभवांक)

8. अर्श रोग नाशक प्रयोग—हींग भुनी हुई, सज्जीखार, लहसुन की कलियां और नीम की निबोली की गिरी सबको समान मात्रा में लेकर पुराना गुड़ चौगुना मिलाकर 2-2 ग्राम की गोलियां बनालें। एक-एक गोली सुबह-शाम पानी से सेवन करें। यह वातार्श में उपयोगी योग है। *—पं. श्री हरिदयाल पाण्डेय*

(धन्व. गु. सि. प्र. भा. 3)

9. उदररोगोपयोगी भीष्मबाण चूर्ण—हिंग्वष्टक चूर्ण 50 ग्राम, छोटी हरड़ 40 ग्राम, मधुरक्षार (सोडाबाई कार्ब) 30 ग्राम, शुद्ध कुचला 20 ग्राम, पिपरमेंट 10 ग्राम-सबको मिलाकर चूर्ण करें। एक ग्राम चूर्ण को जल के साथ सेवन करने से पेट के समस्त रोग, कब्ज, अफरा, शूल, अरुचि, मुंह से पानी आना और अम्लपित्त दूर होते हैं। यह योग नये और पुराने तथा वातरोगों पर शतशोऽनुभूत हैं।

—श्री डा. चन्दगीराम वर्मा

(धन्व. गु. सि. प्र. भा. 3)

10. कृमिरोग हर प्रयोग—असली हींग 500 मि.ग्रा. चिरायता एक ग्राम 250 मि.ग्रा. और अजमोद 3 ग्राम यह एक खुराक है। शाम को गर्म पानी के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के कृमि मर कर निकल जाते हैं। अगर संयोग वश दस्त साफ नहीं आवे तो एरण्ड तैल 20-25 ग्राम को गर्म दूध के साथ लें। इससे दस्त साफ होकर मरे हुये कृमि बाहर निकलने में आसानी होगी।

—श्री डा. रामगोपाल शर्मा

(धन्व. स. सि. प्रयो.)

11. दन्तशूलहर प्रयोग—बढ़िया हींग 20 ग्राम, बाय विडंग 25 ग्राम, घोड़ाबच 20 ग्राम, कपूर 20 ग्राम। इन सभी घटकों का महीन चूर्ण कर एक शीशी में रख लें। जब भी या जहाँ भी दर्द हो डाढ़ एवं दांत के बीच में दबा दें दर्द में शीघ्र आराम हो जायेगा।

यह दवा मैंने पुरानी पुस्तक सुधानिधि अनुभवांक में पढ़ी थी। कई दिनों से इस दवा को उपयोग में ला रहा हूँ, अच्छा लाभ मिलता है। अन्य वैद्य बन्धु भी लाभ उठावें।

—डा. श्री रामप्रकाश अग्रवाल

(वनौ. र. के लिए प्रेषित)

12. उदररोगों में लाभप्रद एक स्वानुभव सिद्ध सफल प्रयोग—"अर्क हिंगु पाचक"—हीरा हींग (उत्तम) एक ग्राम, सैन्धव लवण 10 ग्राम, नवसादर 10 ग्राम, अर्क सौंफ (उत्तम) 750 मि.ली. (एसेन्स निर्मित नहीं हो) लेकर सर्व प्रथम हींग को थोड़े अर्क सौंफ में डालकर खरल करें, बाद में नवसादर तथा सैन्धानमक को भी डालकर इसी में घोट लें। अब उक्त मिश्रण को, शेष रहे अर्क सौंफ की बोतल में मिला दें तथा भली प्रकार (5-7 बार) बोतल को उलट-पलट कर हिलालें। यह एक दूधिया रंग का अर्क तैयार होगा। इसे सुरक्षित रखें।

मात्रा—वयस्कों को 4-4 चम्मच भोजन के बाद दो बार।

बच्चों को—2-2 चम्मच भोजन के बाद दो बार।

शिशुओं को—चौथाई चम्मच दिन में 2-3 बार।

यह अजीर्ण, अग्निमांद्य, उदावर्त (गैस बनना), अरुचि, यकृत, विकार आदि उदर विकारों पर आशु लाभकारी सफल व अनुभव सिद्ध प्रयोग है। यह हर गृहस्थ में तैयार कर रखने योग्य, उत्तम घरेलू प्रयोग रत्न है।

नोट—प्रयोग की कार्यकारिता उत्तम क्वालिटी (मेडीकेटेड) अर्क सौंफ पर ही निर्भर अधिक है।

—आयु. चक्रवर्ती वैद्य श्री हरीशंकर शाडिल्य

(वनौ. रत्ना. हेतु प्रेषित प्रयोग)



● **सम्पादकीय टिप्पणी—**

हिंगु घटित 2 योगों पर मेरा अनुभव

(1) हिंगु कर्पूर वटी—

घटक—हींग तथा कर्पूर समभाग। निर्माण विधि—दोनों को शहद में घोटकर 1-1 रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—1-2 गोली जल, शहद या अर्द्रक के साथ।

उपयोग एवं अनुभव—उपरोक्त हिंगु कर्पूर वटी अनेक उदर विकारों की श्रेष्ठ औषधि है। आध्मान, उदरशूल, अतिसार की अवस्था में श्रेष्ठ कार्यकर है इसमें शुद्ध अहिफेन चौथाई भाग मिला देने से यह अत्यन्त उपयोगी औषधि हो जाती है। विशूचिका, अपस्मार, योषापस्मार, उन्माद, प्रलाप, अनिद्रा आदि रोगों में इसका उपयोग विशेष गुणकारक हो जाता है।

(2) हिंग्वादि वटी—

घटक—भुनी हींग, अम्लवेत, सोंठ, कालीमिरच, पीपर, अजवायन, सेंधानमक, विडनमक, कालानमक, सभी को विजौरा नींबू के रस में घोटकर 2-2 रत्ती की गोली बना लें। मात्रा—1-2 गोली जल के साथ भोजन के उपरान्त लें या मुंह में डालकर चूसें।

उपयोग एवं अनुभव—यह विभिन्न उदर विकारों के लिए श्रेष्ठ औषधि है। जब दुष्पाच्य आहार के सेवन से पेट फूल जावे और किसी भी उपाय से हवा खारिज न हो तो यह गोलियां चमत्कारिक लाभ दिखाती हैं। यह उदरशूल में भी परम लाभकर है।

—वैद्य गोपालशरण गर्ग

मूल्य सूची

(Price-List)

गर्ग निर्मित

आयुर्वेदिक पेटेण्ट शास्त्रोक्त औषधियों

तथा आयुर्वेदिक कैपसूलों का

संक्षिप्त विवरण

गर्ग वनौषधि भण्डार

विजयगढ़ (उ. प्र.)

Garg Vanaushadhi Bhandar

Vijaygarh (U.P.) 202170

(15 अक्टूबर 2004 से नवीन संशोधित सूची)

आयुर्वेदिक पेटेण्ट उत्पादन

क्र.	नाम उत्पादन	पैकिंग	मूल्य
	शर्बत		
1.	अशोका कार्डियल फोर्ट	400 मि.ली.	78.00
		200 मि.ली.	40.00
2.	एनर्जी टोनप सीरप	400 मि.ली.	78.00
		200 मि.ली.	40.00
3.	कासरिपु सीरप	400 मि.ली.	96.00
		100 मि.ली.	25.00
		50 मि.ली.	13.00
4.	गैसनोल सीरप	400 मि.ली.	100.00
		200 मि.ली.	52.00
5.	जुकामहारी सीरप	400 मि.ली.	96.00
		100 मि.ली.	25.00
6.	डायनोल सीरप	50 मि.ली.	18.00
7.	फीवेनोल सीरप	100 मि.ली.	25.00
8.	ब्राह्मीशंखपुष्पी सीरप	400 मि.ली.	78.00
		200 मि.ली.	40.00
9.	वालविट ड्राप्स	30 मि.ली.	14.00
10.	वालविट जन्म घुटी	100 मि.ली.	26.00
		50 मि.ली.	14.00
11.	ल्यूकोनोल सीरप+कैपसूल	200 मि.ली.	45.00
12.	लिवट्रीट सीरप	400 मि.ली.	100.00
		100 मि.ली.	27.00
13.	स्वर्णरक्ता सीरप	400 मि.ली.	78.00
		200 मि.ली.	40.00
14.	प्रेग्नीकेयर सीरप	200 मि.ली.	40.00
15.	तरंगगोल्ड सीरप	200. मि.ली.	40.00
	पेटेण्ट चूर्ण		
1.	अग्निपाचक क्षार	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
		50 ग्राम	16.00
2.	आमवातारि चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
3.	अम्लपित्तान्तक चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
4.	आमपाचक चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
5.	उदरामृत चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
		50 ग्राम	15.00
6.	क्लीवान्तक पोटली	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
7.	छाजन हर चूर्ण	200 ग्राम	22.00
8.	छालेजा	10 ग्राम	16.00
9.	फैटकिल चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
10.	भृंगराज चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
11.	योनि प्रक्षालन चूर्ण	1 किलो	270.00
		100 ग्राम	28.00
12.	श्वेत प्रदरान्तक चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
13.	शिवाशक्ति चूर्ण	1 किलो	350.00
		100 ग्राम	36.00
		50 ग्राम	19.00
14.	स्वप्ना चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
15.	स्वादिष्ट पाचक चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
		50 ग्राम	16.00
16.	सुगरौल चूर्ण	1 किलो	340.00
		100 ग्राम	35.00
17.	सुगम चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
		50 ग्राम	16.00
18.	हृदयरोगान्तक चूर्ण	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
	मंजन, उबटन		
1.	पायोहर्व दन्त मंजन	1 किलो	290.00
		100 ग्राम	30.00
		50 ग्राम	16.00
2.	रुपनिखार उबटन	1 किलो	340.00
		100 ग्राम	35.00
	वटी		
1.	कुटज विल्वादि घनवटी	1 किलो	740.00
		100 ग्राम	75.00
2.	रास्नादिकुपीलु घनवटी	1 किलो	740.00
		100 ग्राम	75.00
3.	सुदर्शन गुडूची घनवटी	1 किलो	740.00
		100 ग्राम	75.00
4.	अर्शहर वटी	60 गोली	60.00
5.	कफ टैब	50 ग्राम	48.00
		25 ग्राम	25.00

आयुर्वेदिक पेटेण्ट उत्पादन

क्र.	नाम उत्पादन	पैकिंग	मूल्य
6.	कामशक्ति केशरी वटी	60 गोली	200.00
7.	गोमूत्रादि घनवटी	1 किलो	840.00
		100 ग्राम	85.00
8.	दशमूलादि घनवटी	1 किलो	740.00
		100 ग्राम	75.00
9.	नपुंसकत्वारि वटी	60 गोली	175.00
10.	फैटोनिल टेबलेट	500 गोली	625.00
		60 गोली	78.00
11.	बसन्तकुसुमाकर रस(विशेष)	60 गोली	350.00
12.	मलेरिया दमन वटी	1 किलो	630.00
		100 ग्राम	68.00
13.	मलेरिया दमन वटी (शुगरकोटेड)	60 गोली	62.00
14.	यौवन पिडिकान्तक वटी	60 गोली	68.00
15.	रुदन्ती–10 टेबलेट	500 गोली	600.00
		60 गोली	75.00
16.	वातान्तक वटी	60 गोली	60.00
17.	शक्तिचन्द्रोदय वटी	1000 गोली	375.00
		500 गोली	200.00
		60 गोली	32.00
18.	शिवत्रहर वटी	20 ग्राम	63.00
19.	स्वर्ण चन्द्रोदय वटी	500 गोली	640.00
		60 गोली	80.00
20.	सुगरौल टेबलेट	60 गोली	78.00
21.	जीर्ण प्रतिश्यायहर वटी	1 किलो	650.00
		100 ग्राम	70.00
22.	विरेचनी वटी	500 गोली	240.00
		60 गोली	30.00

घृत एवं तैल (ड्राप्स)

क्र.	नाम उत्पादन	पैकिंग	मूल्य
1.	ब्रेस्टअप मसाज ऑयल	25 मि.ली.	36.00
2.	तरंग मसाज ऑयल	125 मि.ली.	36.00
3.	चर्म रोगारि तैल	400 मि.ली.	185.00
		100 मि.ली.	48.00
		50 मि.ली.	25.00
4.	वातनोल तैल	400 मि.ली.	225.00
		100 मि.ली.	58.00
		50 मि.ली.	30.00
5.	भृंगराज केश तैल	400 मि.ली.	172.00
		100 मि.ली.	45.00
6.	शिरःशूलारि तैल	400 मि.ली.	172.00
		50 मि.ली.	23.00
7.	शिवत्रहर घृत	50 मि.ली.	36.00
8.	शिशुरक्षक लाल तैल	50 मि.ली.	25.00
9.	सुकर्ण ईयर ड्राप्स	10 मि.ली.	20.00
10.	सुनेत्र आई ड्राप्स	10 मि.ली.	20.00
11.	नेत्र ज्योतिवर्धक सुरमा	5 ग्राम	20.00
		2 ग्राम.	12.00

मलहम

क्र.	नाम उत्पादन	पैकिंग	मूल्य
1.	अर्शोघ्न मलहम	28 ग्राम	22.00
		10 ग्राम	12.00
2.	चर्मनोल मलहम	28 ग्राम	22.00
3.	छाजन हर मलहम	28 ग्राम	22.00
4.	दग्धनौल मलहम	28 ग्राम	16.00
5.	नवयौवन मलहम	10 ग्राम	22.00
6.	वातनौल मलहम	28 ग्राम	22.00

अवलेह मोदक

क्र.	नाम उत्पादन	पैकिंग	मूल्य
1.	कामशक्ति केशरी रसायन	1 किलो	260.00
		500 ग्राम	135.00
		250 ग्राम	70.00
2.	च्यवनप्राश स्पेशल (सितोपलायुक्त)	1 किलो	150.00
		500 ग्राम	80.00
		250 ग्राम	42.00
3.	च्यवनप्राश स्पेशल	1 किलो	140.00
		500 ग्राम	72.00
		250 ग्राम	37.00
4.	मदनानन्द मोदक	1 किलो	450.00
		500 ग्राम	230.00
		250 ग्राम	120.00
5.	वांसावलेह	1 किलो	140.00
		500 ग्राम	72.00
		250 ग्राम	37.00
6.	त्रिफलावलेह	1 किलो	140.00
		500 ग्राम	72.00
		250 ग्राम	37.00
7.	कौंचपाक	1 किलो	260.00
		500 ग्राम	135.00
		250 ग्राम	70.00

गर्ग के अनुभूत आयुर्वेदिक कैपसूल

क्र.	नाम कैपसूल	500 कैप.	120 कैप.	60 कैप.
1.	अस्थि संधानक (अस्थि संधान में उपयोगी)	600.00	150.00	78.00
2.	अर्शान्तक (अर्शनाशक)	600.00	150.00	78.00
3.	ईसोफिल (ईसनोफीलिया नाशक)	640.00	160.00	82.00
4.	उष्णवातघ्न (सुजाक नाशक)	600.00	150.00	78.00
5.	एसिडिन (अम्लपित्त नाशक)	600.00	150.00	78.00
6.	एपिलैप (अपस्मार नाशक)	600.00	150.00	78.00
7.	क्लीवान्तक (शीघ्रपतन नाशक)	730.00	183.00	94.00
8.	कृमिघ्न (कृमिनाशक)	600.00	150.00	78.00
9.	कुटज विल्वादि घन कैप. (ग्रहणी में उपयोगी)	520.00	130.00	68.00
10	कामशक्ति वर्धक कैप. (कामशक्ति वर्धक)	3460.00	865.00	435.00
11	गैसान्तक (गैस नाशक)	600.00	150.00	78.00
12	गोमूत्रादि घन कैपसूल (यकृत विकारों में उपयोगी)	520.00	130.00	68.00
13	चर्मरोगान्तक (चर्मविकार नाशक)	600.00	150.00	78.00
14	चक्षुष्य (नेत्र विकार नाशक)	600.00	150.00	78.00
15	ज्वरीना (विभिन्न ज्वरनाशक)	600.00	150.00	78.00
16	तरंग गोल्ड (कामशक्ति वर्धक कामोत्तेजक)	3060.00	60कैप. 385.00	30कैप.195.00
17	दशमूलघन कैप. (प्रसूति जन्य विकारों में उपयोगी)	520.00	130.00	68.00
18	डायरोल (अतिसार नाशक)	600.00	150.00	78.00
19	प्रदरान्तक (प्रदर नाशक)	600.00	150.00	78.00
20	पथरीन (पथरी नाशक)	600.00	150.00	78.00
21	पाण्डुहारी (पाण्डुकामला नाशक)	600.00	150.00	78.00
22	पुंसवन (पुंसवन कर्म के लिये)	950.00	235.00	120.00
23	प्रैग्नीकेयर कैप्सूल (गर्भावस्था में उपयोगी)	640.00	160.00	82.00
24	पोलियान (पोलियो नाशक)	600.00	150.00	78.00
25	पंचतिक्त घृत कैपसूल (चर्म विकारों में उपयोगी)	520.00	130.00	68.00
26	फाईलेरियल (फाईलेरिया नाशक)	600.00	150.00	78.00
27	फैटकिल (मोटापा नाशक)	640.00	160.00	82.00
28	भृंगराज (केशरोगों में उपयोगी)	600.00	150.00	78.00
29	मधुमेहान्तक (मधुमेह नाशक)	600.00	150.00	78.00
30	माइग्रेन क्योर कैपसूल (माइग्रेन में उपयोगी)	640.00	160.00	82.00
31	यक्ष्मान्तक (स्वर्णबसन्त मालतीयुक्त) यक्ष्मानाशक	950.00	235.00	120.00
32	रक्तचापान्तक (उच्च रक्तचाप नाशक)	600.00	150.00	78.00
33	रजावरोधान्तक (रजावरोध में उपयोगी)	600.00	150.00	78.00
34	लिवट्रीट (यकृत विकार नाशक)	600.00	150.00	78.00
35	वातान्तक गोल्ड (वातविकार में उपयोगी)	3460.00	60कैप. 435.00	30कैप.220.00
36	वातान्तक (वातविकार नाशक)	600.00	150.00	78.00
37	विषमज्वरान्तक (मलेरिया नाशक)	600.00	150.00	78.00
38	विरेचन (मलावरोध नाशक)	600.00	150.00	78.00
39	वीर्यतरलान्तक (वीर्य गाढ़ा करने वाला)	600.00	150.00	78.00

40	श्वासान्तक (श्वासकास नाशक)	600.00	150.00	78.00
41	शिवाशक्ति (शक्तिवर्धक)	600.00	150.00	78.00
42	शिवाशक्ति फोर्ट (कामशक्तिवर्धक)	1500.00	375.00	190.00
43	शिशुशोषान्तक (सूखारोग नाशक)	600.00	150.00	75800
44	शिलाजीत (शक्ति वर्धक)	725.00	180.00	92.00
45	श्वित्रहर (श्वेतकुष्ठ नाशक)	600.00	150.00	78.00
46	शीतपित्तारि (शीतमित्त में उपयोगी)	640.00	160.00	82.00
47	शूलान्तक (विभिन्न शूल नाशक)	600.00	150.00	78.00
48	स्वप्ना (स्वप्नदोष नाशक)	600.00	150.00	78.00
49	स्ट्रेस क्योर (मानसिक अशान्ति नाशक)	600.00	150.00	78.00
50	स्मृतिदा (स्मरण शक्ति वर्धक)	600.00	150.00	78.00
51	हिस्टीरियान्तक (हिस्टीरिया नाशक)	600.00	150.00	78.00
52	हृदय रोगान्तक (हृदय विकार नाशक)	600.00	150.00	78.00

शास्त्रोक्त दवाओं के कैपसूल

क्र.	नाम कैपसूल	500 कैपसूल	120 कैपसूल	60 कैपसूल
1.	आरोग्यवर्धिनी कैपसूल (यकृत एवं विभिन्न उदर रोगों में उपयोगी)	500.00	125.00	65.00
2.	चन्द्रप्रभावटी कैपसूल (प्रमेह एवं विभिन्न मूत्र विकारों में उपयोगी)	500.00	125.00	65.00
3.	पुनर्नवादि माण्डूर कैपसूल (शोथ एवं विभिन्न उदर विकारों में उपयोगी)	540.00	135.00	70.00
4.	गंधक रसायन कैपसूल (रक्तशोधन में उपयोगी)	540.00	135.00	70.00
5.	नवायस लोह कैपसूल (रक्तवर्धन हेतु उपयोगी)	540.00	135.00	70.00
6.	योगराज गूगल कैपसूल (विभिन्न वात विकारों में उपयोगी)	420.00	105.00	55.00
7.	वृ. योगराज गूगल कैपसूल (विभिन्न वात विकारों में उपयोगी)	900.00	225.00	115.00
8.	सिंहनादि गूगल कैपसूल (विभिन्न वात विकारों में उपयोगी)	420.00	105.00	55.00
9.	कांचनार गूगल कैपसूल (गलगण्ड, गण्डमाला, ग्रन्थि रोगों में उपयोगी)	420.00	105.00	55.00
10	मेदोहर गूगल कैपसूल (मेदवृद्धि (मोटापा)में उपयोगी)	420.00	105.00	55.00

गर्ग के आयुर्वेदिक घनसत्व व उनसे निर्मित कैपसूल

क्र.	नाम कैपसूल	पाउडर 1 किलो	पाउडर 100 ग्राम	500 कैपसूल	120 कैपसूल	60 कैपसूल
1.	अर्जुन घनसत्व (हृदय विकार नाशक)	1050.00	110.00	600.00	150.00	78.00
2.	अशोक घनसत्व (प्रदर नाशक)	1050.00	110.00	600.00	150.00	78.00
3.	अश्वगन्धा घनसत्व (शक्ति वर्धक)	1200.00	125.00	640.00	160.00	82.00
4.	अपामार्ग घनसत्व (कास श्वास नाशक)	1050.00	110.00	600.00	150.00	78.00
5.	उदुम्बर घनसत्व (मधुमेह बहुमूत्र नाशक)	1050.00	110.00	600.00	150.00	78.00
6.	कुटज घनसत्व (आमातिसार नाशक)	1050.00	110.00	600.00	150.00	78.00
7.	नेत्रबलादि घनसत्व (अपस्मार नाशक)	1050.00	110.00	600.00	150.00	78.00
8.	निम्ब घनसत्व (चर्मविकार नाशक)	1050.00	110.00	600.00	150.00	78.00
9.	बावलीघास घनसत्व (रक्तरोधक)	1050.00	110.00	640.00	160.00	82.00
10	ब्राह्मी शंखपुष्पी घनसत्व (स्मरण शक्तिवर्धक)	1200.00	125.00	640.00	160.00	82.00
11	मुलहठी घनसत्व (कास नाशक)	1200.00	125.00	640.00	160.00	82.00
12	रास्ना घनसत्व (वात नाशक)	1200.00	125.00			

क्र. नाम कैपसूल	पाउडर 1 किलो	पाउडर 100 ग्राम	500 कैपसूल	120 कैपसूल	60 कैपसूल
13. रुदन्ती घनसत्व (यक्ष्मा, जीर्णज्वर में उपयोगी)	1250.00	130.00	710.00	175.00	90.00
14. सर्पगंधा घनसत्व (अनिद्रा नाशक)	1200.00	125.00	640.00	160.00	82.00
145 सुदर्शन घनसत्व (मलेरिया नाशक)	1200.00	125.00	640.00	160.00	82.00

आयुर्वेदिक शास्त्रोक औषधियां

कूपीपक्व रसायन	50 ग्राम	10 ग्राम	5 ग्राम	1 ग्राम
मल्ल सिन्दूर (वातविकार नाशक)	550.00	115.00	60.00	14.00
रस सिन्दूर (सन्निपात, दुर्बलतानाशक)	495.00	100.00	55.00	13.00
रस माणिक्य (रक्तविकार नाशक)	275.00	60.00	33.00	8.00
समीरपन्नग (श्वास कास में उपयोगी)	660.00	137.00	72.00	17.00
स्वर्ण बंग (शुक्र विकार, दौर्बल्यहर)	500.00	105.00	55.00	13.00
सिद्ध मकरध्वज (सन्निपात, नाड़ी क्षीणताहर)	1760.00	358.00	182.00	40.00
सिद्ध चन्द्रोदय (सन्निपात, कफ विकार नाशक)	1760.00	358.00	182.00	40.00

पर्पटी	50 ग्राम	10 ग्राम	5 ग्राम	1 ग्राम
ताम्र पर्पटी (संक्रमण नाशक)	155.00	33.00	18.00	
पंचामृत पर्पटी (संग्रहणी नाशक)	155.00	33.00	18.00	
रस पर्पटी (संग्रहणी नाशक)	155.00	33.00	18.00	
लोह पर्पटी (रक्ताल्पता नाशक)	155.00	33.00	18.00	
श्वेत पर्पटी (मूत्रकृच्छ् नाशक)	90.00	20.00	11.00	

पिष्टी	50 ग्राम	10 ग्राम	5 ग्राम	1 ग्राम
अकीक पिष्टी (ह्रदय विकार नाशक)	120.00	28.00	15.00	
जहरमोहरा पिष्टी (पित्तज विकार नाशक)	120.00	28.00	15.00	
मुक्ता पिष्टी (ह्रदय विकारों में उपयोगी)		1075.00	550.00	115.00
मुक्ता शुक्ति पिष्टी (ह्रदय विकारों में उपयोगी)	100.00	22.00	12.00	
कहरवा पिष्टी (रक्तपित्त नाशक)	395.00	82.00	44.00	

बहुमूल्य रस रसायन (स्वर्ण युक्त)	10 ग्राम	5 ग्राम	1 ग्राम	1/2 ग्राम
आमवातेश्वर रस (वातविकार नाशक)	143.00	77.00	17.00	10.00
कामदुधारस नं. 1 (पित्तज विकार नाशक)	170.00	95.00	20.00	12.00
कुमार कल्याण रस (बालरोग नाशक)	1980.00	1000.00	205.00	105.00
वृ. काम चूड़ामणि रस (काम शक्ति वर्धक)	825.00	420.00	88.00	45.00
जय मंगल रस (विभिन्न ज्वर नाशक)	2035.00	1028.00	210.00	110.00
वृ. पूर्ण चन्द्र रस (रसायन बाजीकरण)	825.00	420.00	88.00	45.00
बसन्त कुसुमाकर रस (मधुमेह, नपुंसकता नाशक)	880.00	450.00	95.00	50.00
वात कुलान्तक रस (वात रोग नाशक)	385.00	200.00	45.00	23.00
वृ. वात चिन्तामणि रस (वातरोग नाशक)	1722.00	870.00	180.00	95.00

ब्राह्मी वटी (स्वर्णयुक्त) (आंत्रिक ज्वर, नाशक)	815.00	415.00	85.00	42.00
महालक्ष्मी विलास रस (प्रतिश्याय, कास नाशक)	572.00	292.00	62.00	33.00
योगेन्द्र रस (वातविकार नाशक)	2238.00	1122.00	225.00	115.00
रसराज रस (वातविकार नाशक)	1672.00	842.00	170.00	90.00
श्वास कास चिन्तामणि रस (श्वास कास नाशक)	682.00	335.00	72.00	39.00
स्वर्णबसन्त मालती (यक्ष्मा नाशक)	900.00	456.00	94.00	50.00
सूतशेखर रस (स्वर्णयुक्त) (अम्लपित्त नाशक)	737.00	375.00	77.00	42.00
भस्म	**50 ग्राम**	**10 ग्राम**	**5 ग्राम**	**1 ग्राम**
अकीक भस्म (हृदय विकारों में प्रशस्त)	105.00	23.00	13.00	
अभ्रक भस्म नं. 1(दौर्बल्य कास नाशक)	2050.00	412.00	210.00	46.00
अभ्रक भस्म 100 पुटी (दौर्बल्य कास नाशक)	495.00	110.00	57.00	
अभ्रक भस्म साधारण (दौर्बल्य कास नाशक)	187.00	42.00	22.00	
कपर्द भस्म (उदर विकारों में प्रशस्त)	94.00	20.00	11.00	
कान्तलौह भस्म (रक्ताल्पता में प्रशस्त)	187.00	42.00	22.00	
कुक्कुटाण्डत्वक भस्म (प्रदर, प्रमेह, सूखारोग नाशक)	1430.00	31.00	16.00	
गौदन्ती हरताल भस्म (विभिन्न ज्वर नाशक)	66.00	15.00	9.00	
जहर मोहरा भस्म (पित्तशामक)	105.00	23.00	13.00	
ताम्र भस्म (यकृत विकारों में प्रशस्त)	220.00	46.00	25.00	
तबकी हरताल भस्म (रक्त विकारों में प्रशस्त)	340.00	70.00	38.00	
नाग भस्म (दौर्बल्यता नाशक)	187.00	42.00	22.00	
बंग भस्म (धातु क्षीणता, मधुमेह में प्रशस्त)	187.00	42.00	22.00	
माण्डूर भस्म (पाण्डुकामला में प्रशस्त)	66.00	15.00	9.00	
मुक्ता भस्म (मस्तिष्क एवं हृदय विकारों में प्रशस्त)		1117.00	605.00	127.00
मुक्ताशुक्ति भस्म (पित्त विकारों में प्रशस्त)	94.00	20.00	11.00	
टंकण भस्म (कास में उपयोगी)	66.00	15.00	9.00	
यशद भस्म (दौर्बल्यता नाशक)	143.00	31.00	16.00	
लौह भस्म नं. 1 (रक्ताल्पता में प्रशस्त)	402.00	83.00	44.00	
लौह भस्म साधारण (रक्ताल्पता में प्रशस्त)	105.00	23.00	13.00	
शंख भस्म (विभिन्न उदर विकार नाशक)	66.00	15.00	9.00	
स्वर्णमाक्षिक भस्म (रक्तवर्धक)	143.00	31.00	16.00	
संगजराहत भस्म (प्रदर, धातुक्षय में प्रशस्त)	72.00	17.00	10.00	
त्रिवंग भस्म (मधुमेह, मूत्र विकारों में प्रशस्त)	143.00	31.00	16.00	

रस रसायन गुटिका	1 किलो	100 ग्राम	50 ग्राम	10 ग्राम
अग्नि कुमार रस (उदर विकारों में प्रशस्त)	1430.00	15000	78.00	17.00
अग्नितुण्डी वटी (उदर विकारों में प्रशस्त)	1540.00	160.00	83.00	18.00
अजीर्ण कण्टक रस (उदर विकारों में प्रशस्त)	1430.00	150.00	78.00	17.00
अर्शकुठार रस (अर्श में उपयोगी)	1540.00	160.00	83.00	18.00
आनन्द भैरव रस (कफ ज्वर नाशक)	1540.00	160.00	83.00	18.00
आमलकी रसायन (पित्तशामक)	660.00	70.00	38.00	10.00
आरोग्यवर्धनी वटी (उदर विकारों में प्रशस्त)	1540.00	160.00	83.00	18.00
अम्ल पित्तान्तक लौह (अम्ल पित्तनाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
इच्छाभेदी रस (मलावरोध नाशक)	1320.00	138.00	72.00	16.00
उपदंश कुठार रस (उपदंश में प्रशस्त)	1320.00	138.00	72.00	16.00
एकांगवीर रस (वात विकार नाशक)	3520.00	358.00	182.00	39.00
एलादि वटी (कास में उपयोगी)	1320.00	138.00	72.00	16.00
एलुआदि वटी (अर्श में उपयोगी)	1320.00	138.00	72.00	16.00
कफकेतु रस (कफज विकारों में प्रशस्त)	1320.00	138.00	72.00	16.00
कफकुठार रस (कफज विकारों में प्रशस्त)	1980.00	205.00	105.00	22.00
कनकसुन्दर रस (ज्वरातिसार में प्रशस्त)	2200.00	225.00	115.00	25.00
क्रव्यादि रस (उदर विकार में प्रशस्त)	2200.00	225.00	115.00	25.00
कृमि कुठार रस (कृमि विकारों में प्रशस्त)	1980.00	205.00	105.00	22.00
कामदुधा रस (पित्तज विकारों में उपयोगी)	1980.00	205.00	105.00	22.00
कामिनी कुलमण्डन रस (गर्भाशय विकारों में प्रशस्त)	2420.00	248.00	127.00	27.00
कांकायन वटी (अर्श विकार नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
खैरसार वटी (कास में उपयोगी)	1430.00	150.00	78.00	17.00
गंधक वटी (उदर विकार नाशक)	1100.00	115.00	60.00	13.00
गंधक रसायन (रक्तविकारों में प्रशस्त)	1540.00	160.00	83.00	18.00
गंगाधर रस (अतिसार में उपयोगी)	3300.00	335.00	170.00	35.00
ग्रहणी गजेन्द्र रस (अतिसार में उपयोगी)	1980.00	205.00	105.00	22.00
गर्भपाल रस (गर्भ विकारों में प्रशस्त)	1980.00	205.00	105.00	22.00
गुड़मार वटी (मधुमेह में प्रशस्त)	1430.00	150.00	78.00	17.00
गर्भ चिन्तामणि रस (गर्भावस्था जन्य रोगों में प्रशस्त)	2530.00	258.00	132.00	28.00
ग्रहणी कपाट रस काला (अतिसार में उपयोगी)	2420.00	248.00	127.00	27.00

गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़, अलीगढ़ (उ.प्र.)

रस रसायन वटी	1 किलो	100 ग्राम	50 ग्राम	10 ग्राम
घोड़ाचोली रस (मलावरोध ज्वर नाशक)	1540.00	160.00	83.00	18.00
चन्द्रामृत रस (कास में उपयोगी)	1540.00	160.00	83.00	18.00
चन्द्रांशु रस (योनि दोषहर)	2750.00	280.00	143.00	30.00
चन्द्रप्रभा वटी (बहुमूत्रविकार नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
चित्रकादि वटी (उदर विकार नाशक)	1100.00	115.00	60.00	13.00
चन्दनादि लोह (ज्वर) (पित्त ज्वर नाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
चन्दनादि लोह (प्रमेह) (प्रमेह नाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
जलोदरारि वटी (जलोदर में प्रशस्त)	2200.00	225.00	115.00	25.00
ज्वरांकुश रस (विषम ज्वर में प्रशस्त)	1540.00	160.00	83.00	18.00
जातिफलादि रस (आमातिसार नाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
ताप्यादि लोह (यकृत विकार नाशक)	3135.00	320.00	165.00	34.00
धात्री लोह (अम्लपित्त में उपयोगी)	2200.00	225.00	115.00	25.00
गुल्म कुठार रस (गुल्म में उपयोगी)	1430.00	150.00	78.00	17.00
नवज्वरहर वटी (नवीन ज्वर, विषम ज्वर नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
नष्ट पुष्पान्तक वटी (रंजः कृच्छता में प्रशस्त)	3300.00	335.00	170.00	35.00
नृपति बल्लभ रस (अतिसार, संग्रहणी नाशक)	1980.00	205.00	105.00	22.00
नवायस लोह (रक्ताल्पता में उपयोगी)	2200.00	225.00	115.00	25.00
नित्यानन्द रस (श्लीपद, वातरक्त में प्रशस्त)	1980.00	205.00	105.00	22.00
प्रदरारि रस (प्रदर में प्रशस्त)	1430.00	150.00	78.00	17.00
प्रदरारि लोह (प्रदर में प्रशस्त)	2200.00	225.00	115.00	25.00
प्रदरान्तक रस (प्रदर में प्रशस्त)	2750.00	280.00	143.00	30.00
प्रदरान्तक लोह (प्रदर में प्रशस्त)	2750.00	280.00	143.00	30.00
प्रताप लंकेश्वर रस (प्रसूति ज्वर नाशक)	1980.00	205.00	105.00	22.00
पुष्पधन्वा रस (वीर्य विकार नाशक)	3795.00	385.00	198.00	41.00
पुनर्नवादि माण्डूर (शोथ नाशक)	1540.00	160.00	89.00	18.00
पीपल चोंसठ प्रहरी (मंद ज्वर नाशक)	1980.00	205.00	105.00	22.00
बोलबद्ध रस (रक्तपित्त में प्रशस्त)	1980.00	205.00	105.00	22.00
ब्राह्मी वटी (मन्थर ज्वर नाशक)	1760.00	182.00	94.00	20.00
महावात विध्वंस रस (वातविकारों में प्रशस्त)	3520.00	358.00	182.00	39.00
महामृत्युंजय रस (ज्वरनाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
महाशूलहर रस (उदरशूल नाशक)	1980.00	205.00	105.00	22.00
मूत्र–कृच्छान्तक रस (मूत्रकृच्छ में प्रशस्त)	2420.00	248.00	127.00	27.00
यकृतहर लोह (यकृत विकारों में उपयोगी)	2530.00	258.00	132.00	28.00
रस पीपरी (बाल विकारों में उपयोगी)	3410.00	346.00	176.00	36.00

रस रसायन वटी	1 किलो	100 ग्राम	50 ग्राम	10 ग्राम
रक्त पित्तान्तक रस (रक्त पित्त नाशक)	1760.00	182.00	94.00	20.00
रामबाण रस (उदरशूल में उपयोगी)	1980.00	205.00	105.00	22.00
लवंगादि वटी (कास नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
लशुनादि वटी (आध्मान में उपयोगी)	1430.00	150.00	78.00	17.00
लघु मालती (क्षय रोग नाशक)	2640.00	270.00	138.00	29.00
लक्ष्मी विलास रस (कास–ज्वर नाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
लक्ष्मी नारायण रस (कास–ज्वर नाशक)	2530.00	258.00	132.00	28.00
लाई रस (अतिसार नाशक)	1540.00	160.00	83.00	18.00
लीला विलास रस (अम्लपित्त नाशक)	3080.00	314.00	160.00	33.00
लोकनाथ रस (ज्वरातिसार में उपयोगी	2200.00	225.00	115.00	25.00
वृद्धिवाधिका वटी (आत्रवृद्धि में प्रशस्त)	1760.00	182.00	94.00	20.00
वृ. वात गजांकुश रस(वात विकार नाशक)	1980.00	205.00	105.00	22.00
विषमुष्टिका वटी (वात विकार नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
विषम ज्वरान्तक लोह (विषम ज्वर नाशक)	2640.00	270.00	138.00	29.00
श्वास कुठार रस (श्वास, कास में उपयोगी)	1760.00	182.00	94.00	20.00
वृ. शंख वटी (उदरशूल में उपयोगी)	1430.00	150.00	78.00	17.00
शंख वटी (उदरशूल में प्रशस्त)	1320.00	138.00	72.00	16.00
शूल वज्रिणी वटी (उदरशूल में प्रशस्त)	1980.00	205.00	105.00	22.00
शूलगज केशरी (विभिन्न शूल नाशक)	3410.00	346.00	176.00	36.00
शिलाजीत वटी (मधुमेह में प्रशस्त)	2420.00	248.00	127.00	27.00
शोथोदरारि लोह (शोथ विकार नाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
स्मृति सागर रस (स्मृति नाश में प्रशस्त)	3080.00	314.00	160.00	33.00
सप्तामृत लोह (नेत्र विकारों में प्रशस्त)	2420.00	248.00	127.00	27.00
सर्वज्वरहर लोह (ज्वर नाशक)	2530.00	25800	132.00	28.00
सर्पगंधा वटी (अनिद्रा नाशक)	3080.00	314.00	160.00	33.00
संजीवनी वटी (ज्वर, अतिसार में प्रशस्त)	1100.00	115.00	60.00	13.00
सारिवादि वटी (कर्णविकार नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
सूत शेखर रस (अम्लपित्त में उपयोगी)	2530.00	258.00	132.00	28.00
सिद्ध प्राणेश्वर रस (अतिसार में प्रशस्त)	1980.00	205.00	105.00	22.00
श्रृंगाराभ्रक रस (कास–श्वास नाशक)	2200.00	225.00	115.00	25.00
हिंग्वादि वटी (उदर विकार नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
हृदयार्णव रस (हृदय विकार नाशक)	3080.00	315.00	160.00	33.00
त्रिभुवन कीर्ति रस (कफज ज्वर नाशक)	1430.00	150.00	78.00	17.00
त्रिविक्रम रस (मूत्रकृच्छ, मूत्राश्मरी में प्रशस्त)	3520.00	358.00	182.00	39.00

गूगल	1 किलो	100 ग्राम	50 ग्राम	15 ग्राम
अमृतादि गूगल (वातरक्त में उपयोगी)	1045.00	110.00	60.00	20.00
कांचनार गूगल (कंठमाला अपची में प्रशस्त)	1045.00	110.00	60.00	20.00
कैशोर गूगल (वातरक्त नाशक)	1045.00	110.00	60.00	20.00
गोक्षुरादि गूगल (मूत्रकृच्छ में उपयोगी)	1045.00	110.00	60.00	20.00
पंचतिक्त घृत गूगल (सोरायसिस, चर्मविकार नाशक)	1045.00	110.00	60.00	20.00
मेदोहर गूगल (मेद वृद्धि में प्रशस्त)	935.00	100.00	55.00	18.00
वृ. योगराज गूगल (वात विकार नाशक)	3025.00	308.00	160.00	50.00
योगराज गूगल (वात विकार नाशक)	1045.00	110.00	60.00	20.00
सिंहनादि गूगल (वात विकार नाशक)	1045.00	110.00	60.00	20.00
त्रयोदशांग गूगल (वात एवं कफज विकार नाशक)	1045.00	110.00	60.00	20.00
त्रिफला गूगल (व्रण नाशक)	1045.00	110.00	60.00	20.00

तैल व घृत	400 मि.ली.	100 मि.ली.	50 मि.ली.
अशोक घृत (प्रदर में उपयोगी)	225.00	60.00	31.00
काशीशादि तैल (अर्श में उपयोगी)	185.00	48.00	25.00
कुमारी तैल (शिरः शूल में उपयोगी)	185.00	48.00	25.00
चर्म रोगारि तैल (चर्म विकार में उपयोगी)	185.00	48.00	25.00
चन्दनबला लाक्षादि तैल (जीर्णज्वर, क्षयनाशक)	210.00	55.00	29.00
जात्यादि तैल (व्रण नाशक)	200.00	53.00	27.00
फल घृत (गर्भाशय के विकारों में उपयोगी)	225.00	60.00	31.00
विल्व तैल (कर्ण विकारों में प्रशस्त)	200.00	53.00	27.00
ब्राह्मी घृत (स्मरण शक्ति वर्धक)	225.00	60.00	31.00
भृंगराज तैल (केश विकार नाशक)	185.00	48.00	25.00
महाविषगर्भ तैल (वातविकार नाशक)	190.00	50.00	26.00
महानारायण तैल (वातविकार नाशक)	190.00	50.00	26.00
महामरिच्यादि तैल (चर्म विकारों में उपयोगी)	200.00	53.00	27.00
महा त्रिफलादि घृत (नेत्र विकारों में उपयोगी)	225.00	60.00	31.00
महामाष तैल (वात रोगों में प्रशस्त)	220.00	58.00	30.00
महाचन्दनादि तैल (जीर्णज्वर नाशक)	200.00	53.00	27.00
लाक्षदि तैल (दुर्बलता, क्षय रोग नाशक)	210.00	55.00	29.00
हिमसागर तैल (शिरःशूल में उपयोगी)	220.00	58.00	30.00
षट्बिन्दु तैल (जीर्ण प्रतिश्याय नाशक)	210.00	55.00	29.00

गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़, अलीगढ़ (उ.प्र.)

चूर्ण	1 किलो	100 ग्राम	50 ग्राम
अविपत्तिकर चूर्ण (अम्लपित्त में उपयोगी)	385.00	42.00	22.00
कामदेव चूर्ण (वीर्य वर्धक)	495.00	53.00	28.00
जातिफलादि चूर्ण (अतिसार–संग्रहणी नाशक)	495.00	53.00	28.00
तालीसादि चूर्ण (कास–कफ ज्वर नाशक)	385.00	42.00	22.00
दशनसंस्कार चूर्ण (दन्त विकारों में उपयोगी)	385.00	42.00	22.00
निम्बादि चूर्ण (चर्म विकारों में प्रशस्त)	350.00	38.00	20.00
प्रदरान्तक चूर्ण (प्रदररोग नाशक)	385.00	42.00	22.00
पंचसकार चूर्ण (मलावरोध नाशक)	275.00	31.00	17.00
पुष्यानुग चूर्ण (प्रदर में उपयोगी)	275.00	31.00	17.00
बिल्वादि चूर्ण (ग्रहणी, अतिसार में उपयोगी)	385.00	42.00	22.00
लवणभास्कर चूर्ण (अजीर्ण, मंदाग्नि,अतिसार नाशक)	275.00	31.00	17.00
सितोपलादि चूर्ण (कास श्वास नाशक)	430.00	46.00	24.00
सुदर्शन चूर्ण (विषम ज्वर नाशक)	275.00	31.00	17.00
हिंग्वष्टक चूर्ण (मंदाग्नि, उदरशूल में उपयोगी)	385.00	42.00	22.00
त्रिफ़ला चूर्ण (मलावरोध नाशक)	210.00	24.00	13.00

शोधित द्रव्य	500 ग्राम	250 ग्राम	100 ग्राम
कज्जली (बरांबर गन्धक–पारद)	660.00	335.00	138.00
शुद्ध गन्धक (आंवलासार)	242.00	127.00	53.00
शुद्ध गिलोयसत्व	286.00	149.00	61.00
शुद्ध गूगल	253.00	132.00	55.00
शुद्ध पारद (हिंगुलोत्थ)	1020.00	515.00	210.00
शुद्ध मैंसिल	737.00	374.00	154.00
शुद्ध शिलाजीत (सूखा)	1020.00	515.00	210.00
शुद्ध शिलाजीत (गीला)	870.00	440.00	182.00
शुद्ध हरताल	815.00	415.00	170.00
शुद्ध हिंगुल हंसपदी	847.00	430.00	175.00

अर्क	450 मि.ली.	225 मि.ली.
अर्क अजवाइन (उदर विकार नाशक)	46.00	24.00
अर्क उसवा (रक्तशोधक)	46.00	24.00
अर्क पोदीना (उदर विकार नाशक)	46.00	24.00
अर्क महामंजिष्ठादि (रक्तशोधक)	46.00	24.00
अर्क रास्नादि (वात विकार नाशक)	46.00	24.00
अर्क सौंफ(अम्लपित्त दाह में उपयोगी)	46.00	24.00

आसव- अरिष्ट	450 मि.ली.	225 मि.ली.
अमृतारिष्ट (विभिन्न ज्वर नाशक)	46.00	24.00
अर्जुनारिष्ट (हृदय विकार नाशक)	46.00	24.00
अरविन्दासव (बाल रोगों में उपयोगी)	46.00	24.00
अशोकारिष्ट (प्रदर विकार नाशक)	46.00	24.00
अभयारिष्ट (मलावरोध, उदरविकारों में प्रशस्त)	46.00	24.00
अश्वगंधारिष्ट (निर्बलता, वातरोग नाशक)	48.00	25.00
उशीरासव (रक्तपित्त में उपयोगी)	46.00	24.00
कनकासव (श्वास—कास में प्रशस्त)	46.00	24.00
कुटजारिष्ट (आवांतिसार में उपयोगी)	46.00	24.00
कुमारी आसव (उदर विकार नाशक)	46.00	24.00
खदिरारिष्ट (रक्त विकार नाशक)	46.00	24.00
चन्दनासव (मूत्रकृच्छ, मूत्र जलन में प्रशस्त)	46.00	24.00
दशमूलारिष्ट (प्रसूति ज्वर में प्रशस्त)	48.00	25.00
द्राक्षासव (दुर्बलता, क्षय नाशक)	48.00	25.00
द्राक्षारिष्ट (दुर्बलता, क्षय नाशक)	48.00	25.00
पुनर्नवासव (शोथ, यकृत विकार नाशक)	46.00	24.00
लोहासव (रक्ताल्पता, पाण्डु में प्रशस्त)	46.00	24.00
वासारिष्ट (कास, श्वास में उपयोगी)	46.00	24.00
विडंगासव (कृमि विकारों में प्रशस्त)	46.00	24.00
सारस्वतारिष्ट (स्मरणशक्ति वर्धक)	46.00	24.00
सारिवाद्यासव (रक्त विकारों में प्रशस्त)	46.00	24.00

पेटेण्ट आसव	450 मि.ली.	225 मि.ली.
उदर विकारासव (उदर विकार नाशक)	48.00	25.00
उदर विकारासव (उदर विकार नाशक) (कार्ड वक्स पैकिंग)	50.00	——
प्रदर रोगासव (प्रदर रोग नाशक)	48.00	25.00
प्रदर रोगासव (प्रदर रोग नाशक) (कार्ड वक्स पैकिंग)	50.00	——
रक्तशोधासव (रक्त विकार नाशक)	48.00	25.00
ज्वर विकारासव (विभिन्न ज्वर नाशक)	48.00	25.00
वातविकारासव (वात विकार नाशक)	50.00	26.00
शक्ति पंचासव (शक्ति वर्धक)	48.00	25.00
शक्ति पंचासव (शक्ति वर्धक)(कार्ड वक्स पैकिंग)	50.00	——
श्वास कासासव (श्वास कास में उपयोगी)	48.00	25.00

सुधानिधि द्वारा प्रकाशित

वैद्य गोपीनाथ जी पारीक "गोपेश"

भिषगाचार्य, आयुर्वेद रत्न, साहित्य रत्न

द्वारा संपादित

वनौषधि रत्नाकर

के निम्न सभी सात भाग उपलब्ध हैं जिनमें निम्नलिखित वनौषधियों की सम्पूर्ण जानकारी दी गयी है।

प्रथम भाग

1. अकरकरा 2. अंकोल
3. अगर 4. अग्निमन्थ
5. अर्जुन 6. अतीस
7. अपामार्ग 8. अमरूद
9. अम्लवेतस 10. अमलतास
11. अर्क 12. अलसी
13. असगन्ध 14. अशोक
15. अहिफेन 16. आमलक
17. आम्र 18. ईसबगोल
19. इन्द्रायण

मूल्य : 80 रुपये

द्वितीय भाग

1. उदुम्बर 2. उलटकम्बल
3. उशीर 4. उस्तखुद्दूस
5. एरण्ड 6. एलाद्वय
7. कटफल 8. कटुका
9. कण्टकारी 10. बृहती
11. कपिकच्छु 12. कर्पूर
13. करंज त्रय 14. कर्कटश्रृंगी
15. कांचनार 16. किराततिक्त
17. कुचेलक

मूल्य : 40 रुपये

तृतीय भाग

1. कुटज 2. कुमारी
3. कुलिंजन 4. कुष्ठ
5. केसर/कुकंम 6. खर्जूर
7. खदिर 8. गुग्गुल
9. गुडूची/गिलोय 10. गुलाब
11. गोक्षुर 12. चक्रमर्द
13. चन्दन रक्त चन्दन
14. चव्य 15. चित्रक

मूल्य : 40 रुपये

चतुर्थ भाग

1. जटामांसी, 2. जातीफल, 3. जीरक चतुष्टय, 4. ज्योतिष्मती, 5. ताम्बूल, 6. तालीस, 7. तुवरक, 8. तुलसी, 9. तेजवती, 10. त्रिवृत्त, 11. त्वक्, 12. दन्तीद्वय, 13. दन्तीबीज, 14. दाडिम, 15. द्राक्षा

मूल्य : 80 रुपये

पंचम भाग

1. दुरालभा 2. दूर्वा
3. देवदारू 4. द्रोणपुष्पी
5. धत्तूर 6. धातकी
7. धान्यक 8. नागकेशर
9. निम्बुक 10. निम्ब
11. महानिम्ब 12. निर्गुण्डी
13. पटोल 14. पर्पट
15. पलाश 16. पलाण्डु
17. वन पलाण्डु 18. पाषाणभेद
19. पाटला 20. पाठा
21. पिप्पली

मूल्य : 50 रुपये

छटवां भाग

1. पिप्पली 2. पुनर्नवा
3. पुष्करमूल 4. पृश्निपर्णी
5. बकुल 6. वालचातुष्टय
7. बाकुची 8. विभीतक
9. बिल्व 10. ब्राह्मी
11. भंगा 12. भृंगराज
13. भल्लातक

मूल्य : 50 रुपये

सप्तम भाग

1. भारंगी 2. मंजिष्ठा
3. मदनफल 4. मरिच
5. मुस्तक 6. यष्टीमधु
7. यवानी 8. अजमोद
9. पारसीय यवानी
10. रसोन 11. रास्ना
12. लवंग 13. लोध्र
14. वचा
15. द्वीपान्तर वचा

मूल्य : 70 रुपये

उपरोक्त मूल्यों पर 25 प्रतिशत कमीशन, एक साथ सभी विशेषांक मंगाने पर 10 प्रतिशत अतिरिक्त कमीशन, पोस्ट व्यय, सैल टैक्स पृथक

पुस्तक प्राप्ति का स्थान - सुधानिधि कार्यालय, विजयगढ़ (उ.प्र.) 202170

सुधानिधि के ग्राहक बनने के नियम

- सुधानिधि के ग्राहक जनवरी से दिसम्वर तक के लिए वनाये जाते हैं, लेकिन ग्राहक किसी भी माह में वन सकते हैं। जिस महीने से ग्राहक वनता है, उससे पहले के महीनों के सभी अंक भेजकर जनवरी से ग्राहक वना लिया जाता है और उसका भी वर्ष सभी ग्राहकों के साथ दिसम्वर में ही समाप्त हो जाता है। ग्राहक पूरे वर्ष के लिए ही वनाये जाते हैं।
- सुधानिधि एक वर्ष में 320 पृष्ठों का एक विशाल विशेषांक (जो मार्च माह का विशेष अंक होता है) तथा 11 माह के अन्य अंक ग्राहकों को भेंट करता है, जिनमें चार लघु विशेषांक भी शामिल हैं।
- ग्राहक मूल्य—सुधानिधि दो कागजों पर छपता है। ग्लेज कागज पर छपने वाले सुधानिधि का ग्राहक शुल्क 95/- वार्षिक पोस्ट व्यय सहित है तथा साधारण रफ कागज पर छपने वाले सुधानिधि का ग्राहक शुल्क 75/- वार्षिक पोस्ट व्यय सहित है।
- जो ग्राहक ग्लेज कागज पर छपे विशेषांक को प्राप्त कर ग्राहक वनना चाहते हैं वह 70.00 अग्रिम भेजकर 15.00 की छूट प्राप्त कर सकते हैं।
- जो ग्राहक साधारण कागज पर छपे विशेषांक को प्राप्त कर ग्राहक वनना चाहते हैं वह 50.00 अग्रिम भेजकर 15.00 की छूट प्राप्त कर सकते हैं।
- ग्लेज कागज पर छपा विशेषांक प्राप्त करने के लिये अग्रिम रुपया भेजना आवश्यक है।
- साधारण कागज पर छपा विशेषांक 50.00 की वी0पी0 से भेजा जाता है लेकिन जो महानुभाव अग्रिम रुपया नहीं भेजते उन्हें वी0पी0 प्राप्त कर 15.00 का मनिआर्डर 1 माह में भेजना आवश्यक होता है।
- सुधानिधि का आजीवन ग्राहक शुल्क साधारण कागज पर छपे विशेषांक का 850.00 वार्षिक है। यह शुल्क मनिआर्डर से सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ के नाम से भेजना चाहिए। ड्राफ्ट स्वीकार नहीं करेगें।

सुधानिधि के पाठकों को सूचना

सुधानिधि के अनेक पाठक अपने रोग के विषय में हमसे स्वयं मिलकर परामर्श तथा औषधि चाहते हैं। विजयगढ़ जहां से सुधानिधि प्रकाशित होता है ऐसे स्थान पर है जहां आने-जाने का साधन सुविधाजनक नहीं है। अतः हम उन्हें विजयगढ़ वुलाना उचित नहीं समझते। हम अपने 4 चिकित्सालयों के पते तथा टेलीफोन नम्वर दे रहे हैं। जहां पर नियत दिन के अनुसार रोगी मुझसे सम्पर्क कर सकते हैं। इन चिकित्सालयों का पूरा विवरण इस प्रकार है।

अलीगढ़—किसी भी वृहस्पतिवार को रोगी मुझसे मिल सकते हैं। वरेली, मेरठ आदि की ओर के रोगियों के लिये यहां सुविधा रहेगी। पता—आरोग्यधाम, शाहकमाल रोड (कव्रकुत्ता) पुराने वस स्टेण्ड के पास अलीगढ़। फोन नं0 2403930

मथुरा—किसी भी सोमवार को प्रातः 10 वजे से सायंकाल 4 वजे तक मिल सकते हैं। दिल्ली, हरियाणा, पंजाव, राजस्थान के रोगी यहां सम्पर्क कर सकते हैं। स्थान आरोग्यधाम भरतपुर गेट (डा. गोपाल (नेत्र रोग विशेषज्ञ के वरावर) रामगंज के सामने मथुरा। फोन-2406287

वृन्दावन (द्वितीय एवं चतुर्थ रविवार को)—अखण्डानन्द आश्रम मोतीझील वृन्दावन। फोन-2540487

इन्दौर—किसी भी माह के प्रथम मंगलवार को मिलें। पता—श्री मिट्ठूलाल जी चौधरी की कोठी मल्हारगंज, गली नं0 2 (सांईवावा मन्दिर गली) टेलीफोन नं0—(0731) 2411277।

फोन पर सम्पर्क करें।

यदि आप सुधानिधि कार्यालय या गर्ग वनौषधि भण्डार के कार्यालय में किसी आदेश, पूछताछ आदि के लिए फोन से सम्पर्क करना आवश्यक समझें तो निम्न नम्वरों पर सम्पर्क कर सकते हैं—

(एस.टी.डी कोड 0571) फोन आफिस—2262245, फैक्ट0—2262243, निवास, 2262251

यदि उपरोक्त फोन पर सम्पर्क न हो सके तो हमारे मोवाइल नं. पर सम्पर्क कर सकते हैं-9837074430

भगवान धन्वन्तरि



सुधानिधि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)